मातृ-भाषानुरागी

श्रीमान्

राव कृष्णपालसिंह साहिब बहादुर

(अवागढ़)

के

कर-कमलोंमें

उनके प्रोत्साहनका यह फल

सविनय और सानुराग

समर्पित

है ।

निवेदन ।

(दूसरा संस्करण)

कादम्बरी के अनुवाद का पहला संस्करण सन् १६२१ में गांधी-पुस्तक-भंडार, बबई द्वारा मुद्रित हुआ था। इधर बीस वर्ष से यह अप्राप्य हो रहा था और इसकी मॉग बराबर बढ़ रही थी। कई कारणों से कई वर्ष इसका प्रकाशन स्थगित रहा। अन्त में अब यह भारती-भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

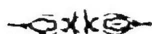
अनुवाद कई विश्व-विद्यालयों की उच्च परीक्षाओं के पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत रह चुका है और संस्कृत के विद्यार्थियों को भी उपयोगी रहा है क्योंकि एम० ए० की परीक्षा मे संस्कृत कादम्बरी प्रायः पाठ्य-पुस्तक रहती है।

कई कठिन स्थलों का फिर से मूल संस्कृत पुस्तक से मिलाकर संशोधन कर दिया गया है और कई अन्य परिवर्तन कर दिए गए हैं जिनसे पाठकों को समझने मे और भी आसानी होगी।

आगरा
१०।१०।१६५०

ऋषीश्वर ।

प्रस्तावना



बाणभट्ट।

संस्कृतके कवियोंकी श्रेणीमें बाणभट्टका आसन बहुत ऊँचा है। उनकी गणना गद्य काव्य-रचनाके जन्मदाताओंमें है। उनका गद्य यथार्थमें पद्यका ही रूपान्तर है। उनकी विचित्र रचना कोमल तथा लालित्य-पूर्ण है। उसमें प्रसादकी कमी नहीं, ओजकी कमी नहीं, अलंकारोंकी कमी नहीं। उसमें काव्यके सब लक्षण पाए जाते हैं। वह कल्पनाकी विशालता, संविधानक चातुर्य और ललित अर्थ प्रकट करनेमें अनुपम है। उसके पढनेसे मालूम होता है कि बाणभट्ट असाधारण कवि थे—संस्कृत भाषा पर उनका पूरा आधिपत्य था।

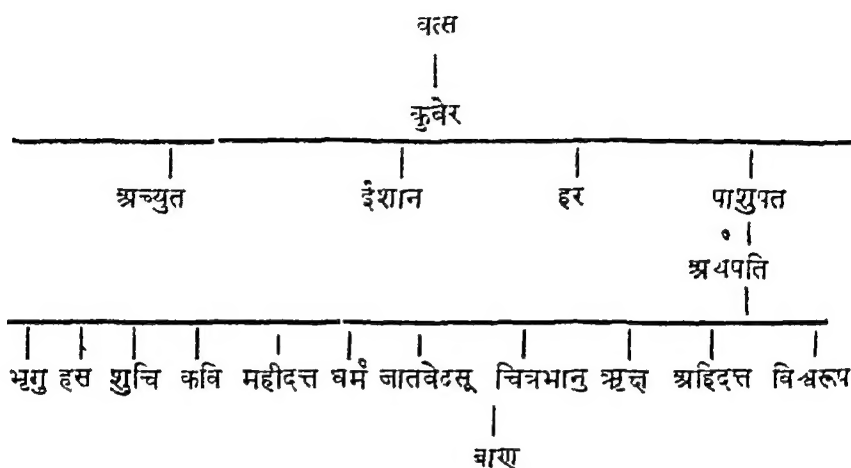
बाणभट्टका समय।

चीनका प्रसिद्ध यात्री ह्यूनसॉग सन् ६२९ से ६४५ ई० तक भारतवर्षमें था। उसने अपनी यात्राके वर्णनमें उत्तरीय भारतके सम्राट् हर्षका सविस्तर हाल लिखा है। महाराज हर्षकी राजधानी थानेश्वरमें थी। उन्होंने सन् ६०६ ई० से ६४८ ई० तक राज्य किया। जिसे हर्ष-संवत्‌का नेपालमें प्रचार है वह इन्हींके राज्यकालसे आरंभ हुआ है। यही हर्ष बाणभट्टके आश्रयदाता थे। इन्हीका वर्णन उन्होंने हर्ष-चरितमें किया है। इससे प्रमाणित होता है कि बाणभट्ट छठी शताब्दीके अन्त और सातवींके आरंभमें विद्यमान थे।

बाणभट्टका वंश।

संस्कृत-कवियोंके जीवन-चरितके विषयमें हमारा ज्ञान नितान्त अपूर्ण है। ऐसे कवि केवल मुट्ठीभर हैं जो अपने ग्रंथों में अपना कुछ वृत्तात लिख गए हैं। उन्हींमेंसे हमारे चरित्र-नायक हैं। कादम्बरीमें तो उन्होंने अपने व संक्षिप्त हाल दिया है, पर हर्ष-चरितमें उनका तथा उनके पूर्वजोंका वि वर्णन मिलता है।

हर्ष-चरित के अनुसार बाणभट्ट की वंशावली ।



कादम्बरीमें दिया गया वंश-वर्णन इससे भिन्न है। उसमें पाशुपतका नाम नहीं मिलता। इस विचित्रताका कुछ कारण समझमें नहीं आता। सम्भव है कि जिन हस्त लिखित प्रतियोंके आधार पर कादम्बरी मुद्रित हुई हो उनमें पाशुपत सम्बन्धी श्लोक न हो।

बाणभट्ट वात्स्यायन वंशमें पैदा हुए थे। उनके पूर्वज सोन नदीके किनारे प्रीतिकूट ग्राममें रहते थे। उनकी माताका नाम राज्यदेवी था। उनकी बाल्यावस्थामें ही माताकी मृत्यु हो गई। पिताने ही उनका पालन किया। जब १४ वर्षके थे तब उनके पिता भी परलोककी यात्रा कर गए।

बाणभट्टको देशाटनका बड़ा शौक था। इस कारण बहुधा लोग उनका उपहास भी किया करते थे। पर्यटनसे उनको बड़ा लाभ हुआ—बुद्धि-विकास और सांसारिक अनुभव हुआ। देशाटनके बाद वे घर पर रह कर अध्ययनमें समय व्यतीत करने लगे। वहाँसे उनको महाराज हर्षने बुलवाया। उसने पहले तो उनका विशेष सत्कार नहीं किया, पर बादमें उनको अपने आश्रयमें रख लिया।

बाणभट्टके ग्रंथ ।

१—हर्ष-चरित ।

इसमें राजा हर्षका वर्णन है और कविने अपने वंशका सविस्तर हाल लिखा है ।

२—चंडिका-शतक ।

इसमें चंडिकाकी स्तुतिके १०० श्लोक हैं ।

३—पार्वती-परिणय ।

यह नाटक कुमारसंभवकी कथाके आधार पर लिखा गया है ।

४—मुकुट-ताडित नाटक ।

नल-चंपूके टीकाकार चंद्रपाल तथा गुणविजय गणिने बाणभट्टके इस नाटकके एक श्लोकका अवतरण दिया है। इससे अनुमान होता है कि यह नाटक भी बाणभट्टने बनाया था ।

५—कादंबरी ।

कादंबरीकी कथा शृङ्गार-रस-प्रधान है । इसमें निर्दोष और पवित्र शृंगारका वर्णन है। इसकी रचनामें कविने ओजको अतिके दरजेको पहुँचा दिया है—जहाँ तक अवकाश मिला है श्लेष आदि अलंकारोंको नहीं छोड़ा है । कहीं कहीं तो अर्थके स्पष्ट होने न होनेका भी विचार नहीं रक्खा है। लम्बे लम्बे वर्णनोंमें बहुतसे पद ऐसे हैं कि अगर शब्दोंका साधारण अर्थ लिया जाय तो उनका कुछ अर्थ ही न हो । लम्बी लम्बी समासोंका प्रयोग प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर पाया जाता है। कहीं कहीं क्रियाएँ ५।६ पृष्ठोंके बाद आई हैं। बीचमें बड़े बड़े कठिन वाक्य भर दिए गए हैं। इनमें लालित्य होने पर भी जटिलता अवश्य आ गई है। बाणभट्टने कादंबरीमें उत्तम गद्यका यह लक्षण दिया है—'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणीप्रतिपाद्यमानानेकाभिनवार्थसंचयम्' । अपनी रचनामें उन्होंने इसे खूब सार्थक किया है ।

कादंबरीका कथानक बड़ा जटिल है। एक एकके भीतर दूसरी कहानियाँ घुसी हुई हैं पर कथानकके उद्घाटनके लिए प्रत्येक कहानी नितान्त आवश्यक है। कथानकका क्रम पूर्वक विकाश करके कविने वस्तु-संकलनमें अपना अनुपम चातुर्य दिखाया है। कथाके अधबीचमें पहुँच जाने पर भी

यह थाह नहीं मिलती कि इसका अन्त क्या है। कथाकी यह एक बहुत बड़ी खूबी समझी जाती है। पूरी कहानी तोतेके द्वारा कहलाई गई है जो यथार्थमें पुंडरीक है और इस कथाका उपनायक है। शुरूमें शायद ही किसीको यह खयाल हो सके कि राजा शूद्रक और तोता, अपने दूसरे या तीसरे जन्ममें, इस कथाके नायक और उपनायक हैं। कादंबरी और महाश्वेता नायिका उपनायिका हैं, पर आधी पुस्तक समाप्त होने तक तो नायिकाका नाम भी नहीं सुन पड़ता। इस कथामें पाठकोंको इस बातकी थाह नहीं मिलती कि आगे क्या क्या होगा और कैसे इसका अंत होगा। इससे पाठकोंका कुतूहल बराबर जाग्रत रहता है और अत्यंत रमणीय तथा अलौकिक आनंददायक वर्णनोंके कारण उत्साह शिथिल नहीं होने पाता।

बाणभट्टका उद्देश्य कल्पित कथा लिखनेका था। उनकी काल्पनिक कथाको सांसारिक यथार्थताके दृष्टि-स्थलसे देखना अनुचित होगा। कादंबरीके सब पात्र कल्पित हैं, पर कविने इस चातुर्यसे उनके चरित्रका विकास किया है कि पाठक उनके सुख दुःखमें तन्मय होकर अपनेको भूल जाते हैं और उनको पात्रोंकी काल्पनिकताका ध्यान नहीं रहता।

चरित्र-चित्रणमें बाणभट्टने अपनी बुद्धिका अद्भुत चमत्कार दिखाया है। कादंबरीके सब चरित्र सजीव हैं और उनका कोई कर्म उनकी स्थितिके विरुद्ध नहीं है। नायिकाके चित्रणमें कविने कोई बात उठा नहीं रक्खी। इसमें उन्होंने अपनी सूक्ष्म-दर्शिता और मनःकल्पनाकी पूरी सम्पत्तिका उपयोग किया है। बाणभट्टने मनुष्य-जीवनकी स्थितिके सब रूपोंका वर्णन बड़ी देखभालके साथ किया है। महाश्वेताके प्रेम और दुःखकी कहानी कह कर उन्होंने कादंबरीकी दशा सुननेके लिए पाठकोंको तैयार किया है। हारीतकी महानुभावता, तारापीड़की परोपकारशीलता, विलासवतीकी प्रेमालुता, शुकनासकी विश्वसनीयता, कपिंजलकी मित्र-वत्सलता, महाश्वेताकी शारीरिक और मानसिक पवित्रता, पत्रलेखाकी स्वामिभक्ति—पाठकोंके हृदय पर अंकित हो जाती है। शुकनासने चंद्रापीड़को जो शिक्षा दी है उसकी रचनामें तो कविने अपनी कलम तोड़ दी है। वह इतनी रहस्यपूर्ण और मार्मिक है कि प्रत्येक देशके प्रत्येक राजाके लिए उपयोगिनी होगी।

बाणभट्ट प्रकृतिके भी बड़े प्रेमी थे। उनके ग्रन्थोंमें प्राकृतिक सौन्दर्यके बहुधा सब रूपोंका वर्णन पाया जाता है। कहीं कहीं तो वर्णन इतने लम्बे हैं कि उनको पढ़ते पढ़ते पाठक मूल-कथाको भूल जाते हैं पर वे इतने सरस हैं कि मन उकताने नहीं पाता। कादम्बरी में वन, पर्वत, ऋतु तथा सरोवर आदिका वर्णन बड़ा हृदयग्राही है।

प्राचीनकालकी रीति भाँति और रहन-सहनका भी पता कादम्बरीसे लगता है। भारतवर्षमें लोग पुरानी चालको बहुत धीरे धीरे छोड़ते हैं इस कारण कादम्बरीमें बहुतसी बातें ऐसी मिलती हैं जो अब तक ज्योंकी त्यों बनी हैं। बाणभट्ट सिर्फ राजाओं और राजसभाओंके ही नहीं, मनुष्य-जीवनके साधारण रूपोंके भी सूक्ष्म निरीक्षक थे। उन्होंने अपने समयके राज दरबारोंका तथा नागरिकोंकी रहन-सहनका बड़ा चित्ताकर्षक चित्र उतारा है। सब प्रजा सुख-दुःखके अवसरों पर अपने शासकके साथ पूरी सहानुभूति दिखाती है। वनमें तपस्वियोंका शान्ति पूर्वक रहना, चन्द्रापीड़की युवराज पद पर प्रतिष्ठा, विलासवतीकी पुत्रके लिए तपस्या, महाकालका अभिवादन—ये वर्णन बड़े मनो मोहक हैं। चन्द्रापीड़ने जो महाश्वेताका समाश्वासन किया है उसके पढ़नेसे पता लगता है कि उस जमानेमें प्रजाकी चित्त वृत्ति सती प्रथाके विरुद्ध हो चली थी। इस प्रथाके विरुद्ध बड़ी मनोरञ्जक दलीलें दी गई हैं। भोजनमें छुआ-छूतका भी जिक्र आया है। चांडाल-कन्याने तोतेसे कहा है कि आपत्तिके समय ब्राह्मण भी चाहे जिस प्रकारका भोजन कर सकता है। राजसभामें बहुतसे धर्मोंके अनुयायियों का नाम आया है। महाकाल नामक शिवकी पूजाका विशेष उल्लेख है। अग्नि और मातृकाओंका भी पूजन हुआ है। राजाओंकी सभामें सबका प्रवेश था और वे सबकी सुनते थे। उन दिनोंमें भी असद्-विश्वासोंका प्रचार था—जैसे रात्रिके अन्तके स्वप्नोंका सच्चा होना, जादूके मंडल, पुत्र-प्राप्तिके लिए नाग-कुलके सरोवरोंमें नहाना, सरसोंके दाने और घी बालकके मुँहमें रखना। इन वर्णनोंमें छोटीसे छोटी बात भी नहीं छोड़ी गई है।

कादंबरीकी संक्षिप्त कथा

राजा शूद्रकके पास एक दिन एक चांडाल-कन्या एक तोता लेकर आई। तोतेने अपना दक्षिण चरण उठा कर राजाकी प्रशंसामें एक श्लोक पढ़ा।

उसे सुन राजा अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने तोतेसे उसका सब हाल पूछा। तोतेने अपना सब वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया।

विंध्य नामके जंगलमें एक सेमरके वृक्षके कोटरमें मेरे माता पिता रहते थे। मेरे पैदा होते ही मेरी माताकी मृत्यु हो गई। एक दिन वहाँ शिकारियोंका शब्द सुनाई पड़ा। उनमेंसे एक वृद्ध शिकारी वृक्ष पर चढ़ गया और तोतोंके प्राण ले लेकर उन्हें भूमि पर पटकने लगा। उसने मेरे पिताको भी मार कर पृथ्वी पर फेंक दिया। मैं भयके कारण पिताके पंखोंमें चिपट गया था इससे उसने मुझे नहीं देखा। मैं जाकर एक तमाल वृक्षकी जड़में छिप गया। इतनेमें वह व्याध मरे हुए पक्षियोंको लेकर चला गया। मैं भी चलनेका उद्योग करने लगा। वहाँसे थोड़ी दूर पर जाबालि मुनि रहते थे। उनके पुत्र हारीत उसी ओर होकर सरोवरमें नहानेके लिए जाते थे। उन्होंने मुझे रास्तेमेंसे उठा लिया। वे मुझे तीर पर ले गए और मेरा मुँह खोल कर अपनी उँगलीसे पानी पिलाया। फिर वे मुझे लेकर तपोवनको गये। वहाँ सबने हारीतसे पूछा—इस तोतेके बच्चेको कहाँसे लाए? उन्होंने मेरे ले आनेका सब हाल सुनाया।

हारीतकी बात सुन जाबालिने मेरी ओर देख कर कहा कि यह अपने कियेका फल भोग रहा है। तब सबने पूछा कि महाराज, इसने क्या कर्म किया है जिसका फल भोग रहा है? महर्षिने कहा—इसकी कथा थोड़े समयमें पूरी नहीं हो सकती। अब संध्या होनेको है। जब रातको निश्चिन्त होकर बैठोगे तब मैं वर्णन करूँगा। फिर जब सब नित्य-कृत्यसे निवृत्त हो गये तब जाबालिने इस प्रकार मेरी कथा सुनाई —

उज्जयिनीमें तारापीड नामका राजा था। उसकी रानीका नाम विलासवती था। उसका मन्त्री शुकनास था और शुकनासकी पत्नीका नाम मनोरमा था। अनपत्यताके कारण राजा अत्यन्त दुःखित रहता था। एक दिन रानीको रोते देख कर राजाने बहुत समझाया और देवताओंके पूजा करनेकी सलाह दी। कुछ दिन पीछे एक रातको राजाने स्वप्नमें विलासवतीके मुखमें चन्द्रमाको प्रवेश करते देखा। शुकनासने एक ब्राह्मणको मनोरमाके ऊपर एक खिला हुआ कमल फेंकते देखा। कुछ कालके अनन्तर रानीके पुत्र उत्पन्न हुआ। मनोरमाके भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने अपने कुमारका नाम चन्द्रापीड़

और शुकनासने वैशपायनको जन्म दिया। तब राजाने उनको शिक्षाके लिए आचार्योंके सुपुर्द किया। कुछ समय बाद वे दोनों विद्या पढ़ कर वापिस आए। फिर चन्द्रापीड़ शिकार खेलने गया। उसके अनंतर अपनी माताकी भेजी हुई—कुलूत देशके राजाकी पुत्री—पत्रलेखाको उसने अपनी ताम्बूल-वाहिनीका पद दिया।

कुछ कालके अनन्तर राजाने चन्द्रापीड़का राज्याभिषेक किया। फिर युवराजने दिग्विजयके लिए प्रस्थान किया। वैशपायन भी एक हाथी पर चढ़ कर युवराजके साथ गया। राजकुमारने क्रमश सब देशोंको जीत कर वहाँके राजाओंसे कर वसूल किया। इसके बाद युवराज कैलास पर्वतके पास पहुँचा और अपनी थकी हुई सेनाको विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

एक दिन वह वहाँसे शिकारके लिए गया तो उसने वनमें किन्नरोंके एक जोड़ेको भ्रमण करते देखा। उसे देख पकड़नेके लिए वह आगे बढ़ा। परन्तु वे दोनों भाग कर पर्वतके ऊपर चढ गए और अदृश्य हो गए। तब युवराजने घोड़ेको दक्षिणकी ओर फेरा और पास ही उसे एक वृक्षसे बाँध दिया। फिर जलाशयकी खोजमें इधर उधर देखने लगा तो उसे अच्छोद नामका सरोवर देख पड़ा। उसमेंसे जल पीकर वह एक कुंजमें शिला पर लेट गया। इतनेमें उसने गानकी ध्वनि सुनी। वह घोड़े पर चढ कर उसीकी ओर चला और उपवनके बीचमें एक मंदिरके पास पहुँचा। वहाँ उसने देखा तो महादेवकी मूर्तिके सामने एक कन्या वीणा बजा कर स्तुति कर रही है। भजन समाप्त होने पर कन्याने राजपुत्रका स्वागत किया और उसे वह अपने साथ लिवा ले गई।

कुछ दूर जाकर दोनों एक गुहामें गये और शिलाओं पर बैठे। कन्याने राजकुमारका परिचय पूछा तब उसने अपनी कथा सुनाई। फिर कन्याने राजकुमारको फल खानेको दिये। अवसर देख कर राजकुमारने उस कन्यासे उसका जीवन वृत्तान्त पूछा। कन्याने कहा—

देवलोकमें अप्सराएँ रहती हैं। उनके चौदह कुल हैं। उनमेंसे दक्षराजकी कन्या मुनि और अरिष्टाके साथ गंधर्वोंका समागम होनेसे दो कुल हुए। मुनिके गर्भसे चित्ररथका और अरिष्टाके गर्भसे हंसका जन्म हुआ। वे दोनों
पर रहते हैं। मैं अभागिन हंसकी पुत्री हूँ और मेरा नाम महाश्वेता है।

एक समय मैं माताके साथ अच्छोद सरोवरमें नहानेको गई तब कहींसे एक अद्‌भुत सुगंध आई। उस गंधका अनुसरण करती करती मैं आगे बढ़ी तो मैंने शिष्य (कपिंजल) के साथ एक मुनिकुमारको आते हुए देखा। उनके कानमें एक कुसुम मंजरी थी। मैंने जाना कि उसीकी सुगंधसे वन महक रहा है। मैंने उनको प्रणाम किया और उनके शिष्यसे उनका तथा कुसुम-मंजरीका हाल पूछा। उसने कहा—ये श्वेतकेतुके पुत्र पुंडरीक हैं। यह पारिजात वृक्षकी मंजरी है। इतनेमें मुनिकुमारने उसे मेरे कानमें पहना दिया। उसी क्षण उनकी रुद्राक्षकी माला गिर पड़ी। उसे मैंने अपने गलेमें पहन लिया। इसी समय छत्रधारिणी मुझे स्नानके लिए बुला ले गई। चलते समय उन्होंने अपनी माला मुझसे माँगी। मैंने अक्षमालाके भ्रमसे अपना हार उनको दे दिया। फिर मैं नहा कर घर गई।

बहुत देर पीछे तरलिकाने मुझसे कहा कि उन मुनिकुमारके शिष्यने मुझसे आपका हाल पूछा था और यह पत्रिका दी थी। पत्रिका पढ़ कर मैं विकल हो गई।

सायंकाल छत्रधारिणीने कहा—उन दो मुनिकुमारोंमेंसे एक अपनी माला लेने आए हैं और द्वार पर खड़े हैं। मैंने उनको बुलवाया। देखा तो कपिंजल है। उसने कहा—जबसे तुमको देखा है तबसे मेरे मित्रकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। जो उचित हो सो करो। इतनेमें ही प्रतिहारीने कहा कि महारानी आती हैं। यह सुनते ही कपिंजल उठ कर चला गया।

फिर माताके चले जानेके बाद मैं तरलिकासे सलाह करके प्रमद-वनकी ...के द्वारसे पुंडरीकसे मिलनेको चली। सरोवरके निकट पहुँचते ही मुझे ...। विलाप सुन पड़ा। जाकर देखा तो पुंडरीक शिला पर पड़े हैं और ...ल उनकी गरदन हाथमें थाम रहा है। फिर मैंने क्या किया और मेरी दशा हुई—इस बातका मुझे होश नहीं है।

इस प्रकार अपना हाल कहते कहते महाश्वेताको मूर्च्छा आ गई। चन्द्रापीड़ने हाथ फैला कर उसे सहारा दिया और उसकी हवा करने लगा। जब महाश्वेता होशमें आई तब फिर कहने लगी—उनकी मृत्युसे हताश होकर मैं चिता बनानेके लिए तरलिकासे कह रही थी कि इतनेमें स्वर्गसे एक महापुरुषने

उतर कर पुंडरीकके शरीरको पकड़ कर कहा—महाश्वेता, तुम प्राणत्याग मत करना। पुंडरीकके साथ तुम्हारी भेंट फिर होगी। यों कह कर वह पुंडरीकके शरीरको आकाशमें ले गया और कपिंजल उसके पीछे दौड़ गया। फिर प्रातःकाल उठ कर मने सरोवरमें स्नान किया और तबसे श्री शिवजीकी उपासनामें समय व्यतीत करती हूं। तरलिकाके सिवाय और कोई बात करनेको भी नहीं है। इस प्रकार कह कर वह रोने लगी। तब चंद्रापीडने उसे बहुत समझाया और पूछा कि तरलिका कहाँ है?

महाश्वेताने कहा—महाभाग, अप्सराओंके—अमृतसे उत्पन्न हुए—कुलमें मदिरा नामकी कन्या थी। उसका विवाह चित्ररथके साथ हुआ। उसकी एक कन्या कादंबरी है। मेरा उससे बड़ा प्रेम है। मेरी दशा सुन कर उसने प्रतिज्ञा की है जब तक तक मे इस दशामें रहूँगी वह भी विवाह न करेगी। उसके माँ बाप यह सुन कर अत्यंत दुःखित हुए हैं। उन्होंने आज प्रातःकाल मुझसे कादंबरीको समझानेके लिए कहला भेजा था इसीलिए मैंने तरलिकाको उसके पास भेजा है।

प्रातःकाल महाश्वेता जप कर रही थी और चंद्रापीड अपना प्राभातिक कर्म कर रहे थे कि इतनेमें केयूरकके साथ तरलिका आई। केयूरकने कादंबरीका संदेश सुनाया। तब महाश्वेताने उसे वापिस लौटा दिया और कहा कि मैं आती हूं। फिर वह चंद्रापीड़को साथ लेकर कादंबरीसे मिलने गई। कादंबरी उससे मिल कर बहुत आनंदित हुई। इतनेमें ही प्रतीहारीने महाश्वेतासे कहा कि तुमको राजा और रानी बुलाते हैं। तब वह चंद्रापीड़को प्रमद-वनके मणि-महलमें ठहरानेका प्रबंध करके आप चली गई। रात्रिको कादंबरी चन्द्रापीड़से मिलने गई। प्रातःकाल चन्द्रापीड भी मन्दर-प्रासादके आँगनमें उससे मिलने गए। फिर कादंबरीसे विदा होकर राजकुमारने प्रस्थान किया। वहाँसे चल कर वह अपनी सेनामें आ पहुँचा। दूसरे दिन केयूरक उससे मिलने आया। उसके साथ वह फिर गंधर्व नगरको गया और पत्रलेखाको अपने साथ लेता गया।

जब वह वहाँसे वापिस लौट कर अपनी सेनामें आया तब एक दूत राजा तारापीडका पत्र लेकर आया। तब राजपुत्रने मेघनादसे कहा कि पिताने बुलाया है इस कारण म जाता हूँ। तुम यहाँ ठहरो। वैशंपायनके साथ सेना

चले आना। यों कह कर कुमार चल दिया और उज्जयिनीमें आ पहुँचा। वहाँ एक दिन केयूरक आया। उससे कादम्बरीकी विरह-दशाका हाल सुन कुमार अत्यन्त दुखित हुआ। केयूरकसे यों कह कर कि—तुम चलो, मैं आता हूँ—उसे विदा किया।

तब उसने सुना कि सेना दशपुर तक आ पहुँची है। इससे वह पिताकी आज्ञा लेकर वैशपायनसे मिलने गया। सेनामें पहुँचने पर उसने सुना कि वैशंपायन अच्छोद सरोवर पर रह गया है। यह जान कर वह अत्यन्त चिंतित हुआ। रात्रिको वह सेना लेकर चल दिया और प्रातःकाल उज्जयिनीमें पहुँच गया। वहाँसे पिताकी आज्ञा लेकर राजकुमार वैशम्पायनकी तलाश में चला। कुछ दिन पीछे अच्छोद सरोवरके पास पहुँच गया पर वैशम्पायनका पता कहीं न लगा। तब महाश्वेताके आश्रममें गया। देखा तो महाश्वेता रो रही है। उससे शोकका कारण पूछा।

महाश्वेताने धीरेसे कहा—महाभाग, एक समय मैं अपने आश्रममें बैठी थी कि एक ब्राह्मण-युवक मेरे पास आया और मुझसे प्रेमकी बातें करने लगा। जब वह किसी प्रकार नहीं माना तब मैंने कहा—यदि मेरा अन्तःकरण पवित्र है तो यह तिर्यग्जातिमें पतित हो! इतना मेरा कहना था कि वह अचेत होकर गिर पड़ा। उसके साथी चिल्ला उठे। उनसे मैंने सुना कि वह आपका मित्र था। यों कह कर वह लज्जासे मुँह नीचा कर फिर रोने लगी।

यह सुन चंद्रापीड़ बोला—देवि, अब दूसरे जन्ममें कादम्बरीके साथ मेरा समागम कराना। इतनेमें ही उसका हृदय फट गया और वह छिन्नमूल वृक्षकी तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देख महाश्वेता तथा राजकुमारके सब परिचारक विलाप करने लगे।

उधर पत्रलेखाके मुँहसे चन्द्रापीड़के आनेका समाचार सुन कादम्बरी महाश्वेताके आश्रममें आई। देखा तो प्राणहीन चंद्रापीड़का शरीर पृथ्वी पर पड़ा है। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी और सिर पीट कर रोने लगी। फिर उसने महाश्वेताका आलिंगन करके कहा—जन्मान्तरमें फिर तुमसे भेंट होगी। इतनेमें ही चन्द्रापीड़के शरीरसे एक ज्योति उत्पन्न हुई और यह शब्द हुआ—महाश्वेता, तेरे प्रियतमसे तेरी भेंट अवश्य होगी। कादम्बरी,

चंद्रापीड़के शरीरका अग्निसंस्कार मत करना। यह फिर जीवित होगा।

आकाशवाणी सुन कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। होश आने पर पत्र-लेखाने इन्द्रायुधको अच्छोद सरोवरमें ढकेल दिया। उस सरोवरमेंसे कपिंजल निकला। उसने कहा—जब वह दिव्य पुरुष मेरे मित्रके शरीरको ले गया तब मैं उसके पीछे पीछे दौड़ा चला गया। उसने चन्द्रलोकमें पहुँच कर कहा—मैं चंद्रमा हूँ। मेरे ही शापके कारण इसे मृत्युलोकमें दो बार जन्म लेना पड़ेगा। जब तक शाप दूर न होगा इसका शरीर यहीं रहेगा। तुम जाकर श्वेतकेतुसे सब हाल कह दो।

यह सुन मैं आकाश मार्गसे चला जाता था कि मैंने एक वैमानिककी राह काट दी। उसके शापसे मैं घोड़ा हुआ। जो तुम्हारे शापसे विनष्ट हुए वे मेरे मित्र पुंडरीक थे। यह सब आपका कारण था। यह कह कर कपिंजल आकाशको चला गया। फिर महाश्वेताने कहा कि जब तक चंद्रापीडका शरीर पुनर्जीवित न हो तब तक उसकी रक्षा करनी चाहिए।

प्रातःकाल कादंबरीने मदलेखाको घर भेजा। वह कादंबरीके माता पितासे सब हाल कह कर वापिस आ गई। जब वर्षाऋतु बीत गई तब एक समय मेघनादने कादंबरीसे कहा—महाराज तारापीड़ने राजकुमारका वृत्तान्त जाननेके लिए दूत भेजे हैं। तब कादंबरीने सब हाल सुनानेके लिए त्वरितकको उनके साथ भेज दिया। उसने राजासे सब हाल कहा। तब सब अच्छोद सरोवर पर आए और राजकुमारका शरीर देखा।

इतनी कथा कहनेके बाद जाबालि बोले—महाश्वेताके शापसे जो तिर्यग्-योनिमें पतित हुआ वही यह शुक है। यह बात सुन कर मुझे अपने पूर्वजन्मकी सब विद्या याद आ गई। मैंने पूछा—कृपा कर चन्द्रापीड़का जन्म स्थान बता दीजिए। उन्होंने कहा—पहले उड़नेकी शक्ति प्राप्त कर ले तब बतला दूँगा।

इतनेमें ही प्रभात हो गया और सब मुनि नित्य-कृत्य करने लगे। हारीतने मुझसे कहा—कपिंजल तुमको ढूँढता हुआ यहाँ आया है। इतनेमें ही कपिंजल मेरे सामने आया। उसने कहा—पिता कुशल-पूर्वक हैं। हम सबके उद्धारके लिए वे अनुष्ठान कर रहे हैं। जब तक उनका अनुष्ठान समाप्त न हो तब तक तुम यहीं रहो। यों कह कर वह देखते देखते आकाशमें अन्तर्धान हो गया।

हारीत यत्नपूर्वक मेरा पालन करने लगे। एक दिन मे महाश्वेताके आश्रमकी ओर चलनेके इरादेमे उड चला, पर थोडी ही दूर जाने पर थक गया और वहाँ सरोवरके तीर पर एक कुंजमे सो गया। जब नींद उचटी तब देखा कि सामने एक व्याध खड़ा है। उससे मने बहुत प्रार्थना की पर उसने एक न मानी। वह मुझे अपने चाडाल स्वामी के यहाँ ले पहुँचा और मुझे चाडाल-कन्याकी सुपुर्द कर दिया। उस कन्याने मुझे एक काठके पींजडेमें रक्खा। इस प्रकार कितने ही दिन बीत गए। एक समय सोकर उठा तो क्या देखा कि में सुवर्णके पींजड़ेमें बैठा हूँ। फिर यह कन्या मुझे यहाँ ले आई।

इतनी कथा सुन कर राजाने चाडाल-कन्याको बुलवाया। कन्याने आकर कहा—हे चन्द्र, आपने अपना और शुकका वृत्तान्त सुना। मे इसकी माता हूँ। मैंने अब तक इसे दुष्कर्मसे रोका। अब आप दोनों अपने देहोंका त्याग करके वाञ्छित भोग करो। इतना कह कर कन्या अन्तर्धान हो गई।

लक्ष्मीकी बातें सुन कर राजाको पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। इधर वसंत-काल आ पहुँचा। कादम्बरीने चन्द्रापीड़के शरीरको भली भाँति अलङ्कृत किया। इतनेमें ही चन्द्रापीड़ जीवित हो उठा। वह कादम्बरीसे अपना हाल कह रहा था कि इतनेमे पुंडरीक चन्द्रलोकसे उतरा। राजा रानी सब अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर चन्द्रापीड़ और पुंडरीक दोनों अपनी अपनी प्रियाओंके साथ रहने लगे।

कादंबरीकी मूल-कथा।

कादम्बरीकी मूल-कथा बाणभट्टकी कल्पनाकी उपज नहीं है। सोमदेवके कथा-सरित्सागरमे नरवाहनदत्त राजाके मन्त्रीने उससे एक कहानी कही है। उसका और कादम्बरीका एक ही कथानक है। मालूम होता है बाणभट्टने उसी कहानीका संस्कार किया है।

कथासरित्सागरके लेखक सोमदेव ईसाके बाद बारहवीं शताब्दीके आरंभमें हुए। उन्होंने लिखा है कि उनका ग्रन्थ पैशाची भाषामें लिखी गई गुणाढ्यकी बृहत्कथाका संक्षिप्त अनुवाद है। इस ग्रन्थका अब पता नहीं चलता। डाक्टर बूलरके अनुमानसे गुणाढ्य पहली या दूसरी शताब्दीमें हुआ। बाणभट्टको

बृहत्कथाकी प्रशंसा की, क्योंकि हर्ष-चरितमें उन्होंने लिखा है—

समुद्दीपितकदर्पा कृतगौरीप्रसाधना।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा॥

इस कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि वाणभट्टने गुणाढ्यकी बृहत्कथासे कथानक लिया।

कथा-सरित्सागरमें दी हुई कहानी।

काञ्चनपुरीमें एक बड़ा प्रतापी सुमना नामक राजा था। एक समय राजा सभा मण्डपमें स्थित था कि निषादाधिपकी कन्या मुक्तालता अपने भाई वीरप्रभके साथ उसके दर्शनोंको आई और एक तोतेको पींजड़ेमें रख कर लाई। प्रतीहारके द्वारा राजाकी आज्ञा मिलने पर मुक्तालताने सभामें आकर राजाको प्रणाम करके निवेदन किया—

पृथिवीनाथ, यह शास्त्रगज नामक तोता सब कलाओं और विद्याओंमें प्रवीण है तथा वेदोंका ज्ञाता है। आप इसे ग्रहण कीजिए। यह कह कर उसने तोता प्रतीहारको दे दिया। प्रतीहार तोतेको राजाके पास ले गया। वहाँ तोतेने यह श्लोक पढा—

राजन् युक्तमिदं सदैव यदयं देवस्य सधुक्षते,
धूमश्याममुखो द्विषद्विरहिणीनिःश्वासवातोद्गमैः।
एतत्त्वद्भुतमेव यत्परिभवाद्वाष्पाम्बुपूरप्लवै—
रासां प्रज्वलतीह दिक्षु दशसु प्राज्यः प्रतापानलः।

फिर तोतेने कहा—महाराज, आज्ञा कीजिए किस शास्त्रसे कौनसा प्रमेय कहूँ।

यह सुन राजा अत्यन्त विस्मित हुआ। तब मन्त्रीने कहा—महाराज, मालूम होता है कि पूर्वजन्मका कोई मुनि शापके कारण तोता हो गया है और अपने पुण्यके प्रभाव से इसे पूर्वजन्मके सब शास्त्रोंका स्मरण है।

मन्त्रीके वचन सुन कर राजाने तोतेसे पूछा—तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ? तिर्यग्योनिमें भी तुमको शास्त्र-ज्ञान कैसे हुआ? तुम कौन हो? अपना पूरा पूरा हाल मुझसे कहो।

यह सुन तोतेने आँसू बहा कर कहा—राजन्, यद्यपि मेरा हाल कहनेके

योग्य नहीं है तथापि मे आपकी आज्ञाका पालन करता हूँ। सुनिए—

हिमालयके पास एक बहुत बड़े वृक्ष पर एक तोता अपनी तोतीके साथ कोटर बना कर रहता था। मे उसीका पुत्र हूँ। मेरे पैदा होते ही मेरी माताकी मृत्यु हो गई। इससे मेरे वृद्ध पिता अत्यत दु:खी हुए। वह आस-पास रहनेवाले तोतोंके जूठे फलोंको आप खाते और मुझे भी खिलाते थे तथा अपने पखोंकी ओटमे रख कर मेरा पालन करते थे।

एक बार वहाँ बहुतसे भील आखेटके लिए आए। वे दिनभर अनेक प्रकारके पशु-पक्षियोंको मारते रहे। सायकाल एक वृद्ध भील कोई पशु-पक्षी न पाकर मेरे रहनेके वृक्षके पास आया। उसमे पक्षियोंका शब्द सुन कर वह उस पर चढ गया और तोतोंको तथा अन्य पक्षियोंको कोटरोंमेसे निकाल कर मार मार कर जमीन पर पटकने लगा। उसे पास आता देख मे भयभीत हो अपने पिताके पखोंमे घुस गया। इतनेमे उसने मेरे कोटरमें भी अपना हाथ डाल कर मेरे पिताको निकाल लिया और मार कर जमीन पर पटक दिया। पिताके पंखोंमें लिपटा हुआ मे भी पृथ्वी पर गिर पड़ा और उनमेसे निकल कर सूखे पत्तोंमें घुस गया।

वह भील सब पक्षियोंको मार कर पृथ्वी पर उतरा। उसने कुछ पक्षियोंको तो अग्निमें भून कर खा लिया और जो बाकी बचे उनको लेकर वह अपने साथियोंके साथ चला गया।

उसके चले जाने पर मे निर्भय तो हो गया पर रात्रि बड़े दु:खमे व्यतीत हुई। प्रात:काल सूर्योदय होने पर तृषासे व्याकुल होनेके कारण अपने पखोंको फैला कर मे निकटवर्ती पद्मसर नामक तालाबके पास धीरे धीरे चला । वहाँ मारीच मुनि नहानेके लिए आए थे। मुझे देख कर उन्होंने मुँहमे पानीकी बूँदें डालीं और मुझे दोनेमें रख कर वे अपने आश्रमको गए। वहाँ मुझे देख कर महर्षि पुलस्त्यजी मुसकुराये। तब अन्य मुनियोंने उनसे पूछा—महाराज, इस तोतेको देख कर आप मुसकुराये क्यों?

सुन कर महर्षिने कहा—यह शापके कारण तोतेके रूपमे है। नित्यकृत्यके बाद इसकी कथा तुमको सुनाऊँगा। उसे सुनते ही इसे अपने पूर्वजन्मकी याद आ जायगी।

इतना कह कर वे नित्य-कृत्य करनेको गए। उसके बाद सब मुनियोंने उनसे मेरी कथाका वर्णन करनेके लिए प्रार्थना की। तब उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया—

रत्नाकर नामक नगरमें ज्योतिःप्रभ नामक एक बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा था। उसके उग्र तपसे महादेवजी उस पर प्रसन्न हो गए। उनकी कृपासे उसकी रानी हर्षवतीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। गर्भके दिनोंमें रानीने स्वप्नमें चन्द्रमाको अपने मुखमें प्रविष्ट होते हुए देखा था, इस कारण राजाने अपने पुत्रका नाम सोमप्रभ रक्खा।

सोमप्रभ क्रम से सब विद्याओं और कलाओंमें प्रवीण होकर युवावस्थाको प्राप्त हुआ। तब ज्योतिष्प्रभने उसे युवराजपदवी दे दी और अपने प्रभाकर नामक मन्त्रीके पुत्र प्रियंकरको उसका मन्त्री बना दिया। उसी समय मातलि एक घोड़ा लेकर आकाशसे उतरा। उसने निकट आकर सोमप्रभसे कहा—आप पूर्वजन्ममें इन्द्रके मित्र विद्याधर थे। उसी स्नेहके कारण इन्द्रने उच्चैःश्रवाका पुत्र यह आशुश्रवा नाम घोड़ा आपके लिए भेजा है। जब आप इस पर आरूढ होंगे तब आपको कोई शत्रु नहीं जीत सकेगा।

यह कह कर और घोड़ा देकर मातलि चला गया। उसके चले जाने पर दूसरे दिन सोमप्रभने अपने पितासे कहा—तात, क्षत्रियोंका यह धर्म नहीं है कि विजयकी इच्छा न करें और स्वस्थ होकर घर पर बैठे रहें। इस कारण मुझे दिग्विजय करनेके लिए जानेकी आज्ञा दीजिए।

यह सुन कर ज्योतिःप्रभने प्रसन्न होकर दिग्विजयकी सब तैयारी करके अच्छे मुहूर्तमें उसे विदा किया।

सोमप्रभने उस दिव्य घोड़ेके प्रभावसे चारों दिशाओंके सम्पूर्ण राजाओंको जीत लिया और उनसे बहुतसे रत्न उपहारमें लिए। फिर दिग्विजयसे लौटते समय उसने हिमालयके पास सेना समेत डेरा डाला। वहाँसे वह उसी दिव्य घोड़े पर चढ कर वनमें शिकार खेलने गया। वहाँ एक मणिमय किन्नरको देख उसे पकड़नेके लिए सोमप्रभने अपना घोड़ा दौड़ाया। किन्नर तो पर्वतकी कंदरामें छिप गया पर सोम-प्रभको वह घोड़ा वनमें बहुत दूर ले गया। इतनेमें ही सूर्य भगवान् भी अस्ताचलको प्राप्त हो गए।

सोमप्रभ उस समय बहुत थक गया था और लौटनेका इरादा कर रहा था कि इतनेमें उसे एक बड़ा भारी सरोवर देख पड़ा। उसीके तट पर रात काटनेके विचारसे उसने घोड़े परसे उतर कर उसे घास और जलसे सतुष्ट किया। फिर आप भी उसने मधुर फल खाकर और जल पीकर वहाँ कोमल पत्ते बिछा कर उन पर विश्राम किया। उस समय उसे अकस्मात् मधुर गीतों की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसे सुन कर वह उठा और जिस ओरसे वह शब्द आता था उसी ओर कुछ दूर जाकर एक मंदिरमें महादेवके लिंगके आगे गान करती हुई एक दिव्य कन्याको उसने देखा और आश्चर्यपूर्वक मनमें विचार किया कि यह रूपवती कौन है? उस कन्याने अतिथि सत्कार करके पूछा—तुम कौन हो? किस प्रकार तथा किस प्रयोजनसे इस दुर्गम स्थानमें आए हो?

यह सुन कर सोमप्रभने अपना सब वृत्तान्त कहा और उससे पूछा—तुम कौन हो? इस वनमें अकेली क्यों रहती हो?

यह सुन उस कन्याने आँसू बहा कर कहा—महाभाग, जो आपको कुतूहल है तो मेरा सब हाल सुनिए—

हिमालय पर काञ्चनाभ नामक नगरमें विद्याधरोंका राजा पद्मकूट है। उसकी हेमप्रभा नामक रानीके गर्भसे मैं उत्पन्न हुई हूँ। मेरा नाम मनोरथप्रभा है। मैं अपनी सखियोंके साथ आश्रमोंमें, द्वीपोंमें, पर्वतोंमें, वनोंमें तथा उपवनोंमें क्रीड़ा करके भोजनके समय अपने पिताके पास आ जाया करती थी।

एक समय जब मैं इस सरोवरके तट पर विहार करनेके लिए आई तब एक मुनिपुत्र अपने मित्र सहित मुझे यहाँ दिखाई पड़ा। उसके रूपकी शोभा देखनेसे उसके वशीभूत होकर मैं उसके पास गई। उसने भी मुझे प्रेममय दृष्टिसे देखा। तब मेरी सखीने हम दोनोंके अभिप्रायको जान कर मुनिपुत्रके मित्रसे पूछा—महाभाग तुम कौन हो?

उसने कहा—सखि, यहाँसे थोड़ी दूर पर तपोवनमें दीधिति नामक मुनि रहते हैं। एक समय वे इसी तड़ागमें नहानेके लिए आए। उसी समय लक्ष्मी भी आई। लक्ष्मीने उनको देख कर अपने मनमें संभोगकी इच्छा की। इसीसे उसको मानस पुत्र प्राप्त हुआ। लक्ष्मीने मुनिको बालक देकर कहा कि यह आपहीके

दर्शनसे उत्पन्न हुआ है। यों कह कर वह अन्तर्ध्यान हो गई। मुनिने भी अनायास मिले हुए उस पुत्रको लेकर उसका नाम रश्मिमान् रक्खा और यज्ञोपवीत आदि संस्कार करके उसे सब विद्याएँ सिखलाईं। यह वही मुनि-पुत्र रश्मिमान् है। मेरे साथ यहाँ सैर करनेको आया है। यह कह कर उसने मेरी सखीसे मेरा नाम तथा वंश पूछा।

जब मैं उस मुनि-पुत्रके पास बैठी थी तब मेरे घरसे मेरी एक सखीने आकर मुझसे कहा—जलदी चलो। तुम्हारे पिता भोजनके लिए तुम्हारी राह देख रहे हैं।

यह सुन उस मुनि पुत्रको वहीं छोड़ मैं भयभीत होकर अपने पिताके पास चली गई। वहाँ भोजन करके ज्यों ही मैं बाहर निकली त्यों ही मेरी पहली सखीने मुझसे कहा—उस मुनि-पुत्रका मित्र बाहर खड़ा है। वह कहता है कि मुझे रश्मिमान्ने अपने पिताकी बताई हुई आकाश-गामिनी विद्या देकर मनोरथ-प्रभाके पास भेजा है और यह कहलाया है कि कामदेवने मेरी ऐसी दारुण दशा कर दी है कि अब मैं आपके बिना क्षणभर भी नहीं जी सकता।

यह सुन कर मैं अपनी सखीको लेकर यहाँ आई। परन्तु मेरे आनेके पहले ही चन्द्रोदय होने पर मुनि-पुत्र मेरे वियोगके कारण इस संसारको त्याग कर परलोक चला गया। उसे मरा हुआ देख कर मैंने उसके शरीरके साथ अपनेको भस्म करना चाहा। उस समय एक अत्यन्त तेजस्वी पुरुष आकाशसे उतरा और उस शरीरको लेकर चला गया।

फिर मैं अकेली ही अग्निमें भस्म होनेको उद्यत हुई, तब यह आकाशवाणी हुई कि हे मनोरथप्रभे, ऐसा साहस मत करो। कुछ कालमें इस मुनि-पुत्रके साथ फिर तुम्हारा समागम होगा।

इस आकाशवाणीको सुन कर मैंने मरनेका इरादा छोड़ दिया और समागमकी प्रतीक्षा करती हुई मैं यहाँ रहने लगी। यहाँ महादेवके पूजनमें लगी रहती हूँ। मुनि-पुत्रका वह मित्र भी न जाने कहाँ गया।

उसके वृत्तान्तको सुन कर सोमप्रभने पूछा—तुम्हें अकेली छोड़ कर तुम्हारी वह सखी कहाँ चली गई?

मनोरथप्रभाने कहा—विद्याधरोंके स्वामी राजा सिंहविक्रमकी एक बड़ी

रूपवती कन्या है। उसका नाम मकरंदिका है। वह मेरी प्राणोंसे भी अधिक प्यारी सखी है और मेरे ही दुःखसे दुःखित होकर उसने अब तक अपना विवाह नहीं किया है। उसने अपनी सखीको मेरे पास कुशल पूछनेको भेजा था। इस कारण मैंने भी उसीकी सखीके साथ उसे देखनेके लिए अपनी सखीको भेज दिया है। इसीसे मैं आज यहाँ अकेली हूँ।

मनोरथप्रभा यों कह रही थी कि इतनेमें उसे आकाशके उतरती हुई अपनी सखी देख पड़ी। उससे मकरंदिकाका सब हाल पूछ कर सोमप्रभके लिए कोमल पत्तोंका बिछौना बिछवाया और उसके घोड़ेके पास घास डलवा दी। उन सबने उसी मंदिरमें रात्रिको शयन किया।

प्रातःकाल देवजय नामक विद्याधर आया। उसने प्रणाम करके मनोरथ-प्रभासे कहा—राजकुमारी, राजा सिंहविक्रमने आपसे कहलाया है कि जब तक तुम्हारा विवाह नहीं होगा तब तक तुम्हारी प्रियसखी मकरंदिका भी अपना विवाह नहीं करना चाहती। इससे तुम यहाँ आकर इसे समझाओ कि यह अपना व्याह कर ले।

यह सुन मनोरथप्रभा वहाँ जानेको उद्यत हुई। तब सोमप्रभने कहा—सखि, मैं विद्याधरोंका लोक देखना चाहता हूँ इससे आप मुझे भी वहाँ ले चलिए। घोड़ा यहीं बँधा रहेगा। इसके आगे मैं घास डाले देता हूँ।

यह सुन मनोरथप्रभाने सोमप्रभको देवजयकी गोदीमें बिठा कर अपने साथ ले लिया और वह विद्याधरोंके लोकको गई। वहाँ मकरंदिकाने मनोरथप्रभाका [illegible] करके सोमप्रभको देख उसका हाल पूछा। मनोरथप्रभाने उसका सब [illegible] कह सुनाया। उसे सुन मकरंदिकाका मन उस पर आसक्त हो गया। [illegible] भी रूपवती लक्ष्मीके समान मकरंदिकाको देख कर अपने मनमें [illegible]के साथ विचार किया कि यह लावण्यवती किसके साथ विवाह करेगी।

इसके बाद एकान्तमें मनोरथप्रभाने मकरंदिकासे विवाह न करनेका कारण [illegible]। मकरंदिकाने कहा—सखि, अभी तो तुमने भी अपने लिए वर स्वीकार नहीं किया है, फिर मैं कैसे अपना विवाह कर सकती हूँ? तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो।

मकरंदिकाके प्रेम युक्त वचन सुन कर मनोरथप्रभाने कहा—मुग्धे, मैंने तो

वर स्वीकार कर लिया है। मै केवल उसकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। तुमको विवाह अवश्य करना चाहिए।

मकरंदिकाने कहा—अच्छा, जैसा तुम कहती हो वैसा ही करूँगी।

तब मनोरथप्रभाने उसके अभिप्रायको जान कर कहा—राजपुत्र सोमप्रभ पृथ्वीमें भ्रमण करके तुम्हारे यहाँ अतिथिकी हैसियतसे आए हैं। इनका उचित सत्कार करो। मकरंदिका बोली—मैंने शरीर समेत अपनी सब वस्तुएँ उनके अर्पण कर दी हैं। वे जो चाहे लेलें।

उसके ये वचन सुन कर मनोरथप्रभाने राजा सिंहविक्रमसे कह कर सोमप्रभके साथ उसके विवाहका निश्चय कर दिया। सोमप्रभ भी इस वृत्तान्तको जान कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मनोरथप्रभासे बोला—अब मैं तुम्हारे आश्रमको जाता हूँ। कहीं ऐसा न हो कि मेरा मंत्री सेना समेत वहाँ आकर और केवल घोड़ेहीको देख कर मेरे विषयमें कुछ अनिष्टकी चिन्ता करे और वापिस चला जाय। इस कारण मैं वहाँ जाकर और अपनी सेनाकी देख-भाल करके फिर वापिस आऊँगा और शुभ लग्नमें मकरंदिकाके साथ विवाह करूँगा।

उसके वचन सुन कर मनोरथप्रभा उसे देवजयकी गोदीमे चढा कर अपने आश्रममें ले आई। इतनेमें ही उसका मंत्री प्रियकर भी उसकी सब सेनाके साथ वहीं आ पहुँचा। उससे मिलकर ज्यों ही सोमप्रभ उससे अपना वृत्तान्त कहने लगा त्योंही उसके पिताके एक दूतने आकर कहा—चलिए। महाराज ज्योतिष्प्रभने आपको बहुत शीघ्र बुलाया है। पिताके संदेशको सुन कर सोमप्रभ अपनी सेना सहित अपने नगरको गया और मनोरथप्रभा तथा देवजयसे यह कह गया कि मैं पिताके दर्शन करके शीघ्र ही वापिस आऊँगा।

जब देवजय लौट कर गया तब उससे यह वृत्तान्त सुन कर मकरंदिका विरहसे इतनी व्याकुल हुई कि उपवनमें, सखियोंके साथ क्रीड़ामें, गानमें तथा तोते आदि पक्षियोंके मनोहर शब्दोंमें भी अपने चित्तको न बहला सकी। उस दिनसे उसने भोजन भी नहीं किया। वह कमलके पत्तोंके बिछोनेको छोड़ कर उन्मत्तके समान इधर उधर घूमने लगी। उसकी यह दशा देख कर माता-पिताने उसे बहुत समझाया, पर जब उसने धैर्य धारण नहीं किय

क्रोध करके उसे यह श्राप दिया कि तू कुछ काल तक इसी शरीरसे अपनी जातिको भूल कर निषादोंके यहाँ रहेगी।

माता-पिताके इस श्रापसे मकरंदिका तो निषादके यहाँ जाकर निषाद-कन्या हो गई और उसके माता-पिता उसके शोकसे मर गए। उसका पिता मर कर पहले तो सब शास्त्रोंका ज्ञाता ऋषि हुआ और फिर किसी पापसे तोता हो गया। उसकी माता वनकी शूकरी हो गई। यह वही तोता है। पूर्वजन्मके तपोबलसे इसे अपनी सब विद्याएँ याद हैं। इसकी विचित्र कर्मगतिको देख कर मुझे हँसी आ गई थी। यह इस कथाको राजसभामें कह कर अपने पापोंसे छूट जायगा और सोमप्रभ इसकी कन्याको अवश्य पावेगा। मनोरथप्रभा राजा हुए रश्मिमान् नामक मुनि-पुत्रको प्राप्त होगी। इस समय सोमप्रभ भी अपने पिताके दर्शन करके लौट कर उसी आश्रममें मकरंदिकाकी प्राप्तिके लिए महादेवकी आराधना कर रहा है।

इस कथाको कह कर जब पुलस्त्य मुनि चुप हो गए तब मैं अपने पूर्व-जन्मका स्मरण करके हर्ष तथा शोकसे व्याप्त हो गया। जो मरीचि मुझे आश्रममें ले आए थे वही मेरा पालन करते रहे। कुछ कालके अनन्तर जब मेरे पख निकल आए तब मैं चपलताके कारण वहाँसे उड़ कर इधर उधर भ्रमण करके अपनी विद्याका आश्चर्य दिखाता हुआ निषादोंके हाथ पड़ गया और आपके पास आ पहुँचा। इस समय मेरा सब पाप क्षीण हो गया है।

जब वह तोता इस कथाको कह कर चुप हो गया तब राजा सुमना अत्यन्त आनंदित हुआ। इस बीचमें महादेवने प्रसन्न होकर सोमप्रभको आज्ञा दी—

, उठो, राजा सुमनाके पास जाओ। वहाँ मकरदिका तुमको मिल जायगी। - अपने पिताके श्रापसे मुक्तालता नामक निषाद-कन्या होकर तोतेके रूपमें उत्पन्न हुए अपने पिताको लेकर राजा सुमनाके पास गई है। तुम्हें देख कर उसे अपनी जातिकी याद आ जायगी और वह अपने श्रापसे छूट जायगी। तब आपसमें एक दूसरेको पहचाननेसे तुम दोनोंका समागम होगा।

इस प्रकार सोमप्रभसे कह कर महादेवने मनोरथप्रभासे कहा—तुम्हारा प्रिय रश्मिमान् नामक मुनि पुत्र सुगमना नाम राजा हुआ है। इस कारण तुम उसके पास जाओ। वह तुमको देख कर अपने पूर्व जन्मका स्मरण करके अपना

शरीर पावेगा। इस प्रकार स्वप्नमें महादेवसे आज्ञा पाकर सोमप्रभ तथा मनोरथप्रभा राजा सुमनाकी सभामे आए। वहाँ सोमप्रभको देख कर मकरंदिका अपनी जातिका स्मरण करके शीघ्र ही विद्याधरी होकर उसके गलेसे लिपट गई और सोमप्रभ भी महादेवकी कृपासे प्राप्त हुई मकरंदिकाका आलिंगन करके कृतार्थ हुआ। राजा सुमनाने भी मनोरथप्रभाको देख कर अपने पूर्व जन्मका स्मरण करके आकाशसे गिरे हुए अपने पूर्व शरीरमें प्रवेश किया। फिर मुनि-पुत्र रश्मिमान् अपनी प्रिया मनोरथप्रभाको साथ लेकर अपने आश्रमको गया। सोमप्रभ भी मकरंदिकाको लेकर अपने नगरको गया और वह तोता भी अपने शरीरको त्याग कर तपके प्रभावसे प्राप्त हुए उच्च स्थानको गया।

दोनों का मिलान

इन दोनों कथाओंका मिलान करनेसे पता लगता है कि बाणभट्टने कथा-सरित्सागरकी नीरस कहानीके ढाँचेमें जान डाल दी है। मुख्य भेद उन व्यक्तियों में पाया जाता है जिनको शाप दिया गया है। यह बाणभट्टकी विलक्षण बुद्धिके कल्पना-कौशलकी विशिष्टता है कि कादम्बरी या उसके माता-पिताको फिर जन्म नहीं लेना पड़ा है।

कथासरित्सागरकी कहानीमें नायकके एक साथ लौट जानेके पहले ही उसके विवाहका प्रबंध हो गया है इस कारण नायिकाको विरहका दुःख भोगना पड़ा है। उसे कादम्बरीकी तरह चिन्ता-सागरमें नहीं डूबना पड़ा है।

संभव है यह कथा और कादम्बरी एक ही मौलिक ग्रंथसे ली गई हों जिसका अब पता नहीं चलता। कदाचित् यह गुणाढ्यकी बृहत्कथा हो।

बाण-तनय।

यह कथा आधी समाप्त हो पाई थी—कविने पाठकोंको कथाकी नायिकाके पास तक पहुँचाया ही था—कि कराल कालने कविका ग्रास कर लिया। तब उसके पुत्रने केवल कथाको पूरा करनेके इरादेसे उसे हाथमें लिया, कुछ कवित्वके[1] दर्पसे नहीं।

१—याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं, विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबंधः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य, प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात्।

डाक्टर बूलरने खोजसे पता लगाया था कि बाणभट्टके पुत्रका नाम भूषणबाण है। पर हालमें विशेष अनुसंधानसे पता लगा है कि बाणभट्टके पुत्र का नाम पुलिन[1] या पुलिंदभट्ट[2] है।

पुलिन भी अपने पिताके समान ही विद्वान् था। उसका भी संस्कृत पर पूरा अधिकार था। यद्यपि उसने अपने पिताकी शैलीका ही अनुसरण किया है तथापि उसकी रचनामें, बाणभट्टकी रचनाके समान, कल्पनाके जोहर नजर नहीं आते। पढनेसे मालूम होता है कि उसने बहुत जलदीमें पुस्तकको पूरा किया है।

पुलिन बड़ा विनीत, पितृ-भक्त और निरभिमानी था। उसने अपने पिताके अंतिम निर्देशका पालन किया और पूरा ग्रंथ पिताके नामसे ही प्रसिद्ध होने देनेके उद्देश्यसे कहीं अपना नाम तक नहीं दिया। उसने पूर्वार्धके अनुसार ही उत्तरार्धकी रचना की है। यद्यपि उत्तरार्ध पूर्वार्धसे घटिया है तथापि पिताके संकेत मात्रसे इतना बनाना कुछ खेल नहीं है। एक कविके भी भिन्न भिन्न ग्रंथ बहुधा एकसे नहीं पाए जाते। कालिदासके मालविकाग्निमित्र और शकुन्तलामें भी बड़ा अन्तर पाया जाता है। इसमें संदेह नहीं कि यदि बाणभट्ट स्वयं इसे पूरा कर पाते तो इसका आकार भी बढ जाता और जितना रस उत्तरार्धमें पाया जाता है उससे कहीं अधिक पाया जाता।

कादम्बरीकी टीकाएँ।

कादम्बरीकी अधो लिखित टीकाएँ मेरे देखनेमें आईं—

१—भानुचन्द्र सिद्धचन्द्र कृत टीका—इसमें मूलके सब शब्दोंके पर्याय शब्द दे दिए गए हैं। उनसे मूल समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है, पर कहीं कहीं इसकी व्याख्या संतोष जनक नहीं है।

मयूरेश्वर रामचंद काले कृत टीका—इसमें मूलकी बड़ी विशद और

1—Dr Stein's Catalogue of Sanskrit Mss at Jammu, P 299,

2—Professor S R. Bhandarkar's report on the search for Mss 1904—5, 1905—6, P 37

विस्तृत व्याख्या की गई है। अन्तमें अँगरेजी नोट दे देनेसे पुस्तकका महत्त्व और भी बढ गया है।

३—मिस रिडिङ्कृत अँगरेजी अनुवाद—इसमें कितने ही वर्णन छोड़ दिए गए हैं तथा कितने ही वर्णनोंको संक्षिप्त कर दिया गया है। तथापि यह अनुवाद बड़े परिश्रमसे किया गया है। इसमें कितने ही वाक्यों और शब्दोंके बहुत अच्छे अर्थ किए गए हैं। फिर भी कितने ही स्थल ऐसे रह गए हैं जिनकी विस्तृत व्याख्या होना जरूरी मालूम होता है।

४—डाक्टर पीटर्सनकी संशोधित आवृत्ति और नोट—ये नोट बड़े विस्तृत और गवेषणा पूर्ण हैं। इनमें पाठ भेद पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। इस आवृत्तिके प्रकाशनके अनन्तर कादंबरीके जितने संस्करण निकले हैं उनके संपादकोंने इससे थोड़ा बहुत उत्तमर्णका काम लिया है।

अनुवाद।

कादंबरीकी भाषा बड़ी क्लिष्ट और जटिल है। उसका अनुवाद करनेमें मुझे बड़ी बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। मैंने लम्बे पदोंको वाक्योंमें विभक्त करके प्रत्येक वाक्यका अर्थ लिखा है। अनुवादमें मूलके शब्दों पर विशेष ध्यान रक्खा है। जहाँ तक हो सका है अनुवाद मूलार्थक और शाब्दिक ही किया है। जहाँ शाब्दिक अनुवाद अत्यन्त स्पष्ट होता नहीं देख पड़ा वहाँ भावानुवाद दिया है। कहीं कहीं प्रसंगके अनुसार वाक्य इधरके उधर ले जाने पड़े हैं। श्लेष आदि अलंकारोंके अर्थको टिप्पणीमें स्पष्ट कर दिया है। पाठकोंकी सुविधाके लिये पैराग्राफके नंबर भी दे दिए हैं। अनुवाद करनेमें मुझे उपर्युक्त सब टीकाओंसे थोड़ी बहुत सहायता मिली है। अतः मैं सबके लेखकोंका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तावना लिखनेमें मुझे उपर्युक्त टीकाओंके अतिरिक्त श्री विष्णु शास्त्री चिपलूनकरके निबन्धसे अत्यंत सहायता मिली है तथा बाणभट्टके पुत्रका नाम मुझे मेयो-कालिज अजमेरके प्रधान संस्कृताध्यापक श्री १०८ पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरीसे मालूम हुआ है। अतः इन दोनों महानुभावोंका मैं अत्यन्त ऋणी हूँ।

इस महा कठिन ग्रंथका अनुवाद, मैंने अपनी अल्प योग्यताके अनुसार, जहाँ तक हो सका ठीक ठीक करनेकी कोशिश की है। लेकिन फिर भी मुझे विश्वास है कि इसमें अनेक त्रुटियाँ रह गई होंगी। यदि विद्वजन उनकी सूचना देनेकी कृपा करेंगे तो मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूँगा और अगले संस्करणमें संशोधन कर दूँगा। पुस्तक बंबईमें छपी है और वहीं इसके प्रूफ देखे गए हैं। इसमें छापेकी भी बहुतसी अशुद्धियाँ रह गई हैं। अतः जो त्रुटियाँ खटकनेवाली और भ्रम पैदा करनेवाली थीं उनको पुस्तकके अन्तमें शुद्धिपत्रमें दे दिया है।

बेलविडियर
नैनीताल
ता० १।१०।२१

ऋषीश्वर।

कादम्बरी चित्र

[ले०—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

इसमें सन्देह नहीं कि अनेक विषयोंमें प्राचीन भारतवर्षकी असाधारणता देख पड़ती है। अन्य देशोंमें नगरसे सभ्यताकी सृष्टि हुई है, मगर हमारे देशमें वन उसका जन्मस्थान है। वस्त्र-आभूषण और ऐश्वर्यका गौरव सर्वत्र ही नजर आता है, किन्तु वस्त्र-भूषण के आडम्बरसे रहित भिक्षाचर्याका गौरव भारतवर्षमें ही हुआ है। अन्यान्य देश धर्म विश्वासके बारेमें शास्त्रके अधीन और आहार-विहार-आचारमें स्वाधीन हैं, परन्तु भारतवर्ष धर्म-विश्वासके बारेमें बन्धन-हीन किन्तु आहार-विहार-विचारमें पूर्णरूपसे शास्त्रके अनुगत है। इस तरहके अनेक दृष्टान्तों द्वारा दिखाया जा सकता है कि साधारण मानव-प्रकृतिसे भारतवर्षकी प्रकृति अनेक विषयोंमें विभिन्न है। उस असामान्यताका और एक लक्षण यह देखा जाता है कि पृथ्वीकी प्रायः सभी जातियाँ किस्सा कहानी सुनना पसन्द करती हैं, किन्तु केवल प्राचीन भारतवर्षको ही किस्सा-कहानी सुननेके बारेमें किसी तरहकी उत्सुकता नहीं थी। सभी सभ्य देश अपने साहित्यमें इतिहास, जीवनी, उपन्यास आदिका सञ्चय आग्रहके साथ करते रहते हैं, किन्तु भारतवर्षके प्राचीन साहित्यमें उसका चिह्न भी नहीं देख पड़ता। यदि भारतके प्राचीन साहित्यमें कोई इतिहास या उपन्यास है भी, तो उसमें आग्रहका आभास नहीं पाया जाता। वर्णना, तत्वकी आलोचना और अवान्तर प्रसंगोंसे उसका कथा प्रवाह पग-पग पर खण्डित होने पर भी प्रशान्त भारतवर्षकी धैर्यच्युति होते नहीं देख पड़ती। वर्णना आदि मूल-काव्यके अंग हैं, या प्रक्षिप्त, इसकी आलोचना वेकार है। कारण, प्रक्षेप सहनेवाले मनुष्यके न होनेसे प्रक्षिप्त टिक ही नहीं सकता। नदी यद्यपि पर्वत शिखर परसे सेवारको लेकर नहीं आती, तथापि उसके प्रवाहका वेग क्षीण न हो तो उसमें सेवारको उत्पन्न होनेका—जमनेका—अवसर ही नहीं मिलता। भगवद्गीताके महात्म्यको

कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, लेकिन जब कुरुक्षेत्रका घोर समर निकट था, उस समय अठारह अध्याय समग्र गीताको एकाग्र हो कर सुन सकनेवाला मनुष्य सिवा भारतवर्षके और देशमें नहीं मिल सकता। वाल्मीकि-रचित रामायणके किष्किन्धा और सुन्दरकाण्डमें सौन्दर्यका अभाव नहीं है, यह हम मानते हैं, तो भी जब राक्षसराज रावण सीताको हर कर ले गया, तब कथा भागके ऊपर इतना बड़ा वर्णनाका भारी पत्थर दबा देनेको केवल रुदनशील भारतवर्ष ही क्षमा कर सकता है। वह क्यों क्षमा करता है? उसका कारण यह है कि कथाका अन्तिम अंश या परिणाम सुननेके लिए उसे कुछ भी जल्दी नहीं है। सोचते सोचते, प्रश्न करते करते आसपासकी सैर करते करते भारतवर्ष सात प्रकाण्ड काण्डों और अठारह भारी पर्वोंमें अकातर चित्तसे, मृदु-मन्द गतिसे, परिभ्रमण करनेमें कुछ भी क्लान्तिका अनुभव नहीं करता।

फिर, कथा सुननेके आग्रहके अनुसार कहानीकी प्रकृतिका रूप भी भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। छः काण्डोंमें जो कहानी वेदना और आनन्दसे परिपूर्ण हो उठी थी, उसे एक मात्र उत्तरकाण्डमें बिना किसी सकोचके चूर्ण कर डालना क्या सहज बात है? हम लंकाकाण्ड तक यही देखते आये कि अधर्माचारी निष्ठुर राक्षस रावण ही सीताका परम शत्रु था, असाधारण शौर्य और विपुल आयोजनके द्वारा उस भयंकर राक्षसके हाथसे छुटकारा मिला, तब हमारी सब चिन्ता दूर हुई, हम आनन्दके लिए प्रस्तुत हुए, इसी समय दमभरमें कविने दिखा दिया कि सीताका चरम शत्रु अधार्मिक रावण नहीं है, वह शत्रु धर्मनिष्ठ राम है। सीताको पर गृहमें वैसा संकट नहीं घटा, जैसा कि अपने राजाधिराज स्वामीके घरमें। जो सुवर्ण तरणी बहुत समय तक प्राणपण युद्ध करके घोर तूफानसे उबरी, वह घाटहीके पत्थरसे टकरा कर दमभरमें दो टुकड़े हो गई! जिसके मनमें कथाके ऊपर कुछ भी ममता है, वह क्या ऐसा आकस्मिक उपद्रव सहन कर सकता है? जिस वैराग्यके प्रभावसे हम लोगोंने कथाकी विविध प्रासंगिक और अप्रासंगिक बाधाओंको सहन किया, उसी वैराग्यने कथाकी इस अकस्मात् अपघात मृत्युमें भी हमारे धैर्यकी रक्षा की।

महाभारतमें भी यही बात है। एक स्वर्गारोहण पर्वमें ही कुरुक्षेत्र युद्धका स्वर्गनाश हो गया कथा प्रिय व्यक्तिके निकट कथाकी समाप्ति जहाँ पर है, महा

भारत वहाँ पर नहीं रुका—वह इतनी बड़ी कथाको बालूके बने घरकी तरह एक घड़ीमें तोड़ फोड़ कर चला गया, और कथाके प्रति जिन्हें वैराग्य है, उन्होंने उसके भीतरसे सत्यकी उपलब्धि की, उन्हें कुछ भी क्षोभ नहीं हुआ। जो मनुष्य महाभारतको किस्सेकी तरह पढनेकी चेष्टा करता है, वह समझता है कि अर्जुनका शौर्य अमोघ है, वह समझता है कि वेदव्यासने श्लोकके ऊपर श्लोक रख कर अर्जुनके जयस्तंभको अभ्रभेदी (बादलोंको फोड़ जानेवाला, अर्थात् अत्यन्त उच्च) बना दिया है, किन्तु समस्त कुरुक्षेत्र-युद्धके उपरान्त अचानक एक दिन एक जगह पर बहुत ही थोड़ी बातोंमें देख पड़ा कि कुछ साधारण डाकुओंके एक दलने कृष्णकी स्त्रियोंको अर्जुनके हाथसे छीन लिया। स्त्रियाँ कृष्णसखा पार्थको पुकार कर आर्तस्वरसे विलाप करने लगीं, मगर अर्जुन गाण्डीव धनुषको उठा नहीं सके। अर्जुनका ऐसा अचिन्तनीय अपमान महाभारतकी कल्पनामें स्थान पा सकता है, ऐसा सन्देह भी पूर्व पर्वोंको पढनेवालेके मनमें स्थान नहीं पा सकता था किन्तु कविको किसी पर ममता नहीं है। जहाँ श्रोता वैरागी है, लौकिक शौर्य-वीर्य महत्त्वके अवश्यभावी परिणाम—विनाश—का स्मरण करके उनके प्रति अनासक्त है, वहाँ कवि भी निर्मम है, और कहानी भी केवल कौतूहल चरितार्थ करनेके लिए सब प्रकारके भारको छुड़ा कर द्रुत वेगसे आगे नहीं बढती।

उसके बाद, बीचमें सुदीर्घ विच्छेद पार होकर, काव्य साहित्यमें एकदम कालिदासके पास हम ठहरते हैं। इससे पहले भारतवर्ष मनोरंजनके लिए किस उपायको काममें लाया था, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। उत्सवके दिन जिन मिट्टीके दीपकोंसे सुन्दर दीपमालाकी रचना होती है, उन दीपकोंको दूसरे दिन कोई उठाकर नहीं रखता। भारतवर्षमें आनन्दोत्सवों पर निश्चय ही ऐसे अनेक मिट्टीके दीपक—अनेक क्षणिक साहित्य—अर्धरात्रिको अपना काम पूरा करके सवेरे बुझ गये हैं—विस्मृति लोकमें लीन हो गये हैं। पहले पहल हमें जो स्वर्णदीपक देख पड़ता है, वह कालिदासकी रचना है। वह पैतृक प्रदीप इस समय भी हमारे घरोंमें प्रकाश डाल रहा है। वह जो रत्नदीप हमारे उज्जयिनीवासी पितामहके प्रासाद शिखर पर जला था उसमें अभी तक कलककी छाया नहीं पड़ी। हमारे कहनेका मतलब यह है कि संस्कृत साहित्यमें

केवल आनन्द दानके उद्देश्यसे काव्यकी रचना पहले पहल कालिदासने की है। (यहाँ हम खण्डकाव्यकी बात कह रहे हैं, नाटककी नहीं।) हमारे इस कथनका एक दृष्टान्त मेघदूत है। हम समझते हैं, संस्कृत साहित्यमें ऐसा दृष्टान्त और नहीं है। जो है, वह मेघदूतका ही आधुनिक अनुकरण है। जैसे पदाङ्कदूत आदि, और वह भी पौराणिक है। कुमारसम्भव, रघुवंश पौराणिक अवश्य हैं, लेकिन वे पुराण नहीं, काव्य हैं। वे चित्त-विनोदनके लिए लिखे गये हैं, उनके पाठ फलमें स्वर्गलाभका प्रलोभन नहीं है। भारतवर्षके आर्य-साहित्यकी धर्म-प्राणताके सम्बन्धमें कोई कैसा ही मतवाद प्रचारित करे, पर हम आशा करते हैं, ऐसा उपदेश कोई भी न देगा कि ऋतुसंहार काव्यके पाठसे मोक्ष लाभमें सहायता होगी।

किन्तु तो भी कालिदासके कुमारसम्भवमें कहानी नहींके बराबर है—क्योंकि जो कुछ कहानीका सूत्र है, वह अति सूक्ष्म और प्रच्छन्न होनेके सिवा असमाप्त भी है। देवतोंने दैत्योंके हाथसे किसी तरह किसी उपायसे परित्राण पाया कि नहीं पाया, इस सम्बंधमें कविकी कुछ भी उत्सुकता हम नहीं देख पाते—उनसे जल्दी आगे बढनेके लिए कहनेवाला कोई आदमी भी नहीं है। अथच विक्रमादित्यके समयमें शक हूण-रूपी शत्रुओंके साथ भारतवर्षका एक भारी द्वन्द्व चल रहा था, और स्वयं विक्रमादित्य उसके एक प्रधान नायक थे। अतएव ऐसी आशा करना असंगत नहीं था कि देव-दैत्योंके युद्ध और स्वर्गके पुनरुद्धारका प्रसंग उस समयके श्रोताओंके निकट विशेष औत्सुक्य-जनक होगा। किन्तु कहाँ ? वह बात तो नहीं देख पड़ती। राजसभाके श्रोता लोग देवतोंकी विपत्तिका हाल सुन कर भी उस विषयमें उदासीन देख पड़ते हैं। मदन दहन, रति विलाप, पार्वतीकी तपश्चर्या आदि किसी भी घटनामें त्वरान्वित होनेके लिए—जल्दी करनेके लिए—उनका कोई अनुरोध-उपरोध नहीं हम देखते। सभी जैसे कह रहे हैं कि कहानी रुकी रहे, यही वर्णना चलने दो। रघुवंश भी इसी तरह विचित्र वर्णनका उपलक्ष मात्र है।

राज-श्रोता लोग अगर कहानीके प्रेमी होते तो कालिदासकी लेखनीसे अवश्य ही कुछ तत्कालीन चित्र निकलते और हम देखनेको मिलते। हाय, अवन्तीके राज्यमें नववर्षके दिन 'उदयन-कथा कोविद' ग्राम-वृद्ध लोग जिन

प्राचीन कहानियोंको कहते थे, वे सब गई कहाँ ? असल बात यह है कि उस समय ग्राम वृद्ध लोग कहानियाँ कहते थे ग्राम्य-भाषामें । उस भाषामे जो कवि रचना करते थे, वे यथेष्ट आनन्द दे गये हैं, किन्तु उसके बदलेमे वे अमर नहीं हुए । यह बात नहीं है कि उनमे कवित्व-शक्ति अल्प था, और इसी लिए वे अपनी रचनाके साथ विनाशको प्राप्त हुए । कमसे कम हम तो ऐसा नहीं कहते । निःसन्देह उनमें अनेक महाकवि थे । किन्तु असल बात यह है कि ग्राम्य भाषा प्रदेश विशेषमें सीमा-बद्ध होती है, शिक्षित मण्डली उसकी अपेक्षा करती है, और समय समय पर उसमे परिवर्तन होते रहते हैं । उस भाषामे जिन्होंने रचनाकी है, उन्होंने कोई स्थायी भित्ति नहीं पाई । इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनेक बड़ी बड़ी साहित्य पुरी चलनशीली पालीभाषाकी मृत्तिकाके भीतर दब कर एकदम अदृश्य हो गई हैं ।

संस्कृत भाषा बोल-चालकी भाषा नहीं थी, उस भाषामे भारतवर्षके समस्त हृदयकी बातें सम्पूर्ण रूपसे नहीं कही गई या नहीं कही जा सकीं । अंग-रेजी अलंकारमे जिस श्रेणीकी कविताको लीरिक (Lyrics) कहते हैं, वह मृत-भाषामे नहीं की जा सकती । कालिदासके विक्रमोर्वशी नाटकमें जो संस्कृत-गान हैं, उनमें भी गानकी लघुता, सरलता और माधुर्य नहीं पाया जाता । बंगाली जयदेव कवि संस्कृत भाषामें गान-रचना कर सके हैं, किन्तु बंगाली वैष्णव कवियोंकी बंगला पदावलीके साथ उन गानोंकी तुलना नहीं हो सकती ।

मृत भाषामें, पराई भाषामें, कहानी भी नहीं कही जा सकती । कारण, कहानीकी भाषामे, लघुता और गति वेग आवश्यक हैं । भाषा जब अपने प्रवाहके साथ श्रोताओंको भी नहीं बहा ले जाती, उसे जब भावका मत लाद कर चलना होता है, तब उसमे गान और कहानीकी रचना सम्भव नहीं होती ।

कालिदासकी कविता ठीक प्रवाहकी तरह सर्वाङ्गसे नहीं चलती—उसका हर एक श्लोक अपनेमें आप ही समाप्त है—एक बार रुक कर खड़े होकर उस श्लोकको हृदयंगम कर ले चुकने पर तब कहीं आगेके श्लोकमें हस्तक्षेप करना होता है । हर एक श्लोक जुदे-जुदे हीरकखण्डके समान उज्ज्वल है, और समग्र काव्य एक हीरक हारके समान सुन्दर है । किन्तु नदी प्रवाहकी तरह उसमें अखण्ड कलरव और अविच्छिन्न धारा नहीं है ।

केवल आनन्द दानके उद्देश्यसे काव्यकी रचना पहले पहल कालिदासने की है। (यहाँ हम खण्डकाव्यकी बात कह रहे हैं, नाटककी नहीं।) हमारे इस कथनका एक दृष्टान्त मेघदूत है। हम समझते हैं, संस्कृत साहित्यमें ऐसा दृष्टान्त और नहीं है। जो है, वह मेघदूतका ही आधुनिक अनुकरण है। जैसे पदाङ्कदूत आदि, और वह भी पौराणिक है। कुमारसम्भव, रघुवंश पौराणिक अवश्य हैं, लेकिन वे पुराण नहीं, काव्य हैं। वे चित्त-विनोदनके लिए लिखे गये हैं, उनके पाठ फलमें स्वर्गलाभका प्रलोभन नहीं है। भारतवर्षके आर्य-साहित्यकी धर्म-प्राणताके सम्बन्धमें कोई कैसा ही मतवाद प्रचारित करे, पर हम आशा करते हैं, ऐसा उपदेश कोई भी न देगा कि ऋतुसंहार काव्यके पाठसे मोक्ष लाभमें सहायता होगी।

किन्तु तो भी कालिदासके कुमारसम्भवमें कहानी नहींके बराबर है—क्योंकि जो कुछ कहानीका मूल है, वह अति सूक्ष्म और प्रच्छन्न होनेके सिवा असमाप्त भी है। देवतोंने दैत्योंके हाथसे किसी तरह किसी उपायसे परित्राण पाया कि नहीं पाया, इस सम्बन्धमें कविकी कुछ भी उत्सुकता हम नहीं देख पाते—उनसे जल्दी आगे बढनेके लिए कहनेवाला कोई आदमी भी नहीं है। अथच विक्रमादित्यके समयमें शक हूण-रूपी शत्रुओंके साथ भारतवर्षका एक भारी द्वन्द्व चल रहा था, और स्वयं विक्रमादित्य उसके एक प्रधान नायक थे। अतएव ऐसी आशा करना असंगत नहीं था कि देव-दैत्योंके युद्ध और स्वर्गके पुनरुद्धारका प्रसंग उस समयके श्रोताओंके निकट विशेष औत्सुक्य-जनक होगा। किन्तु कहाँ ? वह बात तो नहीं देख पड़ती। राजसभाके श्रोता लोग देवतोंकी विपत्तिका हाल सुन कर भी उस विषयमें उदासीन देख पड़ते हैं। मदन दहन, रति-विलाप, पार्वतीकी तपश्चर्या आदि किसी भी परिणाम त्वरान्वित होनेके लिए—जल्दी करनेके लिए—उनका कोई अनुरोध-उपरोध नहीं हम देखते। सभी जैसे कह रहे हैं कि कहानी रुकी रहे, यही वर्णना चलने दो। रघुवंश भी इसी तरह विचित्र वर्णनका उपलक्ष मात्र है।

राज-श्रोता लोग अगर कहानीके प्रेमी होते तो कालिदासकी लेखनीसे अवश्य ही कुछ तत्कालीन चित्र निकलते और हमें देखनेको मिलते। हाय, अवन्तीके राज्यमें नववर्षके दिन 'उदयन-कथा कोविद' ग्राम-वृद्ध लोग जिन

प्राचीन कहानियोंको कहते थे, वे सब गई कहाँ ? असल बात यह है कि उस समय ग्राम वृद्ध लोग कहानियाँ कहते थे ग्राम्य-भाषामें। उस भाषामें जो कवि रचना करते थे, वे यथेष्ट आनन्द दे गये हैं, किन्तु उसके बदलेमें वे अमर नहीं हुए। यह बात नहीं है कि उनमें कवित्व-शक्ति अल्प थी, और इसी लिए वे अपनी रचनाके साथ विनाशको प्राप्त हुए। कमसे कम हम तो ऐसा नहीं कहते। निःसन्देह उनमें अनेक महाकवि थे। किन्तु असल बात यह है कि ग्राम्य भाषा प्रदेश विशेषमें सीमाबद्ध होती है, शिक्षित मण्डली उसकी अवज्ञा करती है, और समय समय पर उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। उस भाषामें जिन्होंने रचना की है, उन्होंने कोई स्थायी भित्ति नहीं पाई। इसमें सन्देह नहीं कि अनेक बड़ी बड़ी साहित्य पुरी चलनशीली पाली भाषाके [illegible] भीतर दब कर एकदम अदृश्य हो गई हैं।

संस्कृत भाषा बोल-चालकी भाषा नहीं थी, उस भाषामें [illegible] समस्त हृदयकी बातें संपूर्ण रूपसे नहीं कही गई या नहीं कही जा सकतीं। अंग्रेजी अलंकारमें जिस श्रेणीकी कविताको लीरिक (Lyrics) कहते हैं, [illegible] मृत-भाषामें नहीं की जा सकती। कालिदासके विक्रमोर्वशी नाटकमें जो [illegible] गान हैं, उनमें भी गानकी लघुता, सरलता और माधुर्य नहीं पाया जाता। बंगाली जयदेव कवि संस्कृत भाषामें गान-रचना कर सके हैं, किन्तु [illegible] वैष्णव कवियोंकी बंगला पदावलीके साथ उन गानोंकी तुलना नहीं हो सकती।

मृत भाषामें, पराई भाषामें, [illegible] नहीं [illegible] पदावलीकी भाषामें, लघुता और गति [illegible] आवश्यक है। [illegible] प्रवाहके साथ श्रोताओंको भी [illegible] ले जाती, उसे जब [illegible] होता है, तब उसमें गान और पदावलीकी रचना [illegible] नहीं होती।

इसके सिवा संस्कृत भाषामें ऐसा स्वर-वैचित्र्य, ध्वनि गाभीर्य और स्वाभाविक आकर्षण है कि निपुणताके साथ उसका सञ्चालन कर सकनेसे उसमें अनेक बाजोंका ऐसा कन्सर्ट बज उठता है, उसकी अन्तर्निहित रागिणीकी ऐसी एक अनिर्वचनीयता है कि कवि पण्डित लोग वाणीकी निपुणताके द्वारा पण्डित-श्रोताओंको मुग्ध करनेका प्रलोभन रोक नहीं सकते थे। इस कारण जिस जगह वाक्यको संक्षिप्त करके विषयको शीघ्र आगे बढ़ानेकी आवश्यकता है, वहाँ पर भी भाषाके प्रलोभनको रोकना दु साध्य होता है, और वाक्य समूह विषयको प्रकाशित न करके पग पग पर उसे ढक लेते हैं। मतलब यह कि विषयकी अपेक्षा वाक्य ही अधिक बहादुरी लेनेकी चेष्टा करता है, और वह उस काममें सफलभी होता है। ऐसे मयूरपुच्छ-निर्मित अनेक सुन्दर पंखे होते हैं, जिनसे अच्छी तरह हवा नहीं निकलती, किन्तु हवा करनेका उपलक्ष्य मात्र करके राजसभामें केवल शोभाके लिए ही वे डुलाये जाते हैं। राजसभामें संस्कृत-काव्य भी घटना विन्यासके लिए उतना अधिक व्यग्र नहीं होते। उनका वाग्विस्तार, उपमा-कौशल, वर्णना-नैपुण्य ही प्रत्येक पदक्षेपमें राजसभाको चमत्कृत करता रहता है।

संस्कृत-साहित्यमें गद्यमें जो दो-तीन उपन्यास हैं, उनमें कादम्बरीने ही सबसे अधिक ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त की है। जैसे रमणीकी वैसे ही पद्यकी अल ...की ओर रुचि या आकर्षण अधिक होता है। गद्यकी साज-सज्जा स्वभावसे कर्मक्षेत्रके उपयुक्त होती है। उसे तर्क करना होता है, अनुसन्धान करना ...ता है, इतिहास कहना होता है—उसे विचित्र व्यवहारके लिए प्रस्तुत रहना होता है। इसी कारण गद्यकी वेष भूषा हल्की होती है, उसके हाथ पैर अनावृत होते हैं। दुर्भाग्यवश संस्कृत गद्य सर्वदा व्यवहारके लिए नियुक्त नहीं था, इसी कारण उसकी बाहरी शोभाकी बहुतायत कम नहीं है। वादीसे—मेदेकी अधिकतासे—फूले हुए विलासी पुरुषके समान उसके समास बहुल विपुल आयतनको देख कर सहज ही जान पड़ता है कि वह सर्वदा चलने फिरनेके लिए नहीं बनाया गया। बड़े-बड़े टीकाकार, भाष्यकार, पण्डित वाहकगण जब तक उसे अपने कंधों पर लाद कर न ले चलें, तब तक उसका फिरना असाध्य है। वह अचल भले ही हो, किन्तु किरीट, कुण्डल, कंकण, कण्ठहार आदि अनन्य अलंकारोंसे राजाकी तरह विराजमान रहता है।

इसी कारण बाणभट्ट यद्यपि स्पष्ट रूपसे कहानी कहने बैठे हैं, तथापि भाषाके विपुल गौरवको घटा कर उन्होंने कहानीको कहीं पर तेज चालसे दौड़ाया नहीं। संस्कृत भाषाको अनुचर-परिवृत सम्राटकी तरह आगे करके कहानी उसके पीछे प्रच्छन्नप्राय भावसे छत्र उसके मस्तक पर लगाए चली है। भाषाकी राजमर्यादा बढ़ानेके लिए कहानीका कुछ प्रयोजन है, इसीलिए कहानीका अस्तित्व है, किन्तु उसके ऊपर किसीकी नजर नहीं है।

शूद्रक राजा कादम्बरी उपन्यासके नायक नहीं हैं। वह उपन्यासके [illegible] मात्र हैं। इसलिए उनका परिचय अगर संक्षिप्त होता तो कुछ हर्ज न था। आख्यायिकाका बाहरी अंश अगर यथोपयुक्त कम न हो, तो [illegible] परिमाणका सामञ्जस्य नष्ट हो जाता है। हमारी दृष्टि-शक्तिकी तरह [illegible] कल्पना शक्ति भी सीमाबद्ध है। हम किसी वस्तुके सम्पूर्ण अंशोंको [illegible] समान परिमाणमें नहीं देख पाते अर्थात् सामनेके हिस्सेको [illegible] हैं, उसके पीछेके भागको छोटा देखते हैं, और पृष्ठ भागको देख ही [illegible]— उसका अनुमान मात्र कर लेते हैं। इसी कारण कवि-शिल्पी [illegible] शिल्पका जो अंश प्रधान रूपसे दिखाना चाहते हैं उसीको विशेष [illegible] गोचर बना कर बाकी अंशोंको आसपास पीछे और अनुमान [illegible]। किन्तु कादम्बरीकारने मुख्य गौण, छोटी-बड़ी किसी भी बातको [illegible] करना नहीं चाहा। उससे अगर कहानीकी क्षति हो, रसभंग [illegible], तो उससे वे या उनके श्रोता कुछ भी कुण्ठित नहीं हैं। तथापि [illegible] भी छोड़ देनेसे काम नहीं चलेगा। कारण, यह कहानी बहुत [illegible] है, बहुत ही सुस्वाद्य है, कौशल, माधुर्य, गाम्भीर्य, ध्वनि और [illegible] से परिपूर्ण है।

हुए हैं, यह बहुत ही व्यस्तताका समय है। इस समयमे सब बातोंका सब कुछ कहनेका प्रलोभन पग-पग पर रोकना पड़ता है। कादम्बरी-रचना-कालमें कविने कथा-विस्तारके विचित्र कौशलका आश्रय लिया था, और इस समय हमें कथा सक्षेपके सभी कौशल सीखने पड़ते हैं। उन दिनोंमें मनोरंजनके लिए जिस विद्याका प्रयोजन था, इन दिनोंके मनोरंजनके लिए ठीक उससे उल्टी विद्याकी आवश्यकता है।

किन्तु एक कालका मधु लोभी यदि अन्य कालसे मधु-सग्रह करनेकी इच्छा करे, तो वह अपने कालके प्रागणमें बैठे-बैठे उसे नहीं पा सकेगा—उसे अन्य कालमें प्रवेश करना होगा। जो लोग कादम्बरीके आनन्दका उपभोग करना चाहते हैं, उन्हें यह भूल जाना होगा कि दफ्तर जानेका समय हो गया, उन्हें खयाल करना होगा कि वह कोई वाक्य-रस-विलासी राज्येश्वर हैं, राजसभामे बैठे हैं, और "समानवयोविद्यालङ्कारैः अखिलकलाकलापालोचनकठोरमतिभिः अतिप्रगल्भैः अग्राम्यपरिहासकुशलैः काव्यनाटकाख्यानाख्यायिकालेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैः विनयव्यवहारिभिः आत्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः।"[1] हैं। इस तरह रस चर्चामें रसिक-परिवृत होकर रहनेसे मनुष्य प्रतिदिनके सुख दुःख-समाकुल, युद्ध-निरत, स्वेद सिक्त, कर्माकुल ससारसे विच्छिन्न हो पडता है। शराबी जैसे खाना पीना भूल कर शराब पीता रहता है, वे भी वैसे ही जीवनके कठिन अशको त्याग कर भावके तरल रसको पीनेमें विह्वल हो रहते हैं। उस समय सत्यके याथातथ्य और परिमाण पर दृष्टि नहीं रहती, केवल हुक्म होता है—ढालो, ढालो, और ढालो! आजकलके जमानेमें मनुष्यके प्रति हमारा आकर्षण अधिक हो गया है। वह कौन है, और क्या करता है, इसके प्रति हमारा अत्यन्त कौतूहल है। इसी कारण घरमें और बाहर चारों ओर मनुष्योंके कामोंको और जीवन-वृत्तान्तको हम रत्ती-रत्ती जॉच कर भी तृप्त नहीं होते। किन्तु उस जमानेमें पठित

१—समान वय-विद्या-अलकारवाले, संपूर्ण कला-कलापकी आलोचनासे परिपक्व बुद्धि, अतिप्रगल्भ, नागरिक परिहासमें कुशल, काव्य नाटक आख्यान-आख्यायिका आलेख्य आदिके व्याख्यान कर्ममें निपुण, विनय-व्यवहारी, अपने प्रतिबिम्ब सदृश राजपुत्रोंके साथ विराजमान।

हो, चाहे राजा हो, कोई भी मनुष्यको कुछ बहुत अधिक महत्त्व नहीं देता था। जान पड़ता है, स्मृति-विहित नित्य नैमित्तिक कामोंमें और एकान्त एकाग्रताके साथ शास्त्र-ग्रन्थोंकी आलोचनामें लगे रहनेके कारण उस जमानेके लोग जगत्-संसारमें अधिकतर निर्लिप्त ही रहते थे। शायद विधि विधान नियम संयमके शासनमें व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यको अधिक प्रश्रय नहीं मिलता था। इसी [illegible] रामायण और महाभारतके परवर्ती संस्कृत साहित्यमें लोकचरित्रकी वर्णना [illegible] प्राधान्य नहीं देखा जाता। भाव और रस उसके प्रधान अवलम्बन हैं। [illegible] दिग्विजयका वर्णन करनेमें अनेक उपमाओंका प्रयोग हुआ है, और [illegible] की गई है, किन्तु रघुके वीरत्वका विशेष एक चरित्रगत [illegible] चेष्टा नहीं देख पड़ती। अज इन्दुमतीकी कथामें अज और इन्दुमती [illegible] मात्र हैं—उनकी व्यक्तिगत विशेष मूर्ति अच्छी तरह [illegible] है, किन्तु परिणय, प्रणय, वियोग, शोक आदिका एक साधारण [illegible] वर्णनाके साथ उमड़ पड़ता है। कुमारसम्भवमें शिव पार्वती [illegible] प्रेम, सौन्दर्य, उपमा, वर्णना आदि जोर शोरसे [illegible] की गई है। [illegible] और संसारके विशेषत्वके प्रति उस जमानेकी यह अपेक्षाकृत उदासीनता [illegible] कारण भाषाकी वर्णनाने सर्वत्र मनुष्य और घटनाओं [illegible] जाता है—रंग दिखाया है। इस बातको स्मरण रखकर, [illegible] विशेषताको भूल कर, काव्यके रसास्वादनमें प्रवृत्त होने पर [illegible] सीना पड़ेगी।

सुन लो। कारण, तुम जिस जगह पर आ पड़े हो, वहाँ पर कौतूहल होनेसे कोई फल नहीं है, वह तो रसमें मस्त होनेका स्थान है। अतएव स्निग्ध जलद-निर्घोषसे इस समय शूद्रक राजाका वर्णन सुना जाय। उस वर्णनामें हम शूद्रक राजाके चरित्र-चित्रकी प्रत्याशा नहीं करेंगे। कारण, चरित्र चित्रमें एक सीमा रेखा अंकित करनी होती है। किन्तु इसमें सीमा नहीं है—भाषा कल्लोल-मुखर समुद्रकी बढ़ियाकी तरह जहाँ तक उमड़ आई है, वहाँ पर उसे रोकने-वाला कोई नहीं है। यद्यपि सत्यके अनुरोधसे कहना पड़ता है कि शूद्रक नरेश केवल विदिशा नगरीके राजा हैं, तथापि अप्रतिहतगतिशालिनी भाषा और भावके अनुरोधसे कहना पड़ा कि वह "चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्ता।" (चारो समुद्र पर्यन्त पृथ्वीके स्वामी) हैं। शूद्रककी महिमा कितनी सी थी, इस व्यक्तिगत तुच्छ तथ्यकी आलोचनाका प्रयोजन नहीं है। राजकीय महिमा कहाँ तक जा सकती है—यही बात यथोचित समारोहके साथ घोषित होने दो।

सभी जानते हैं, भाव सत्यकी तरह कृपण नहीं है। सत्यके निकट जो बालक अंधा है, भावके निकट उसका कमल-नयन होना कुछ भी विचित्र नहीं। भावकी उस राजकीय अजस्रता या उदारताके उपयोगी भाषा संस्कृत भाषा ही है। वही स्वभाव-विपुल भाषा कादम्बरीमें पूर्ण वर्षाकी नदी की तरह आवर्त, तरंग, गर्जना और प्रकाशच्छटासे विचित्र हो उठी है।

किन्तु कादम्बरीका विशेष महात्म्य यह है कि भाषा और भावके विशाल विस्तारकी रक्षा करके भी उसके चित्र सजीव हो उठे हैं। सब प्लावित होकर साकार नहीं हो गया। कादम्बरीके प्रथम आरंभ चित्रको देखनेसे ही उसका प्रमाण मिल जायगा।

उस समय भगवान् मरीचिमाली (सूर्य) आकाशमें अधिक दूर नहीं ऊपर उठे हैं, नवीन पद्मोंके पत्र पुटसंपुट खुल गये हैं और उनके भीतरकी पाटल आभा कुछ उन्मुक्त हो चुकी है।—

इतना कह कर वर्णनाका आरंभ हुआ। इस वर्णनाका और कोई उद्देश्य नहीं है, केवल श्रोताकी आँखोंके आगे एक कोमल रंग फैला देना और उसके सब अंगोंमें एक स्निग्ध सुगन्ध व्यजन डुला देना ही उद्देश्य है। "एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसंपुटभिदि किंचिदुन्मुक्तपाटलिम्नि भगवति मरीचि

मालिनि"—शब्दोंमें कैसा मोह भरा पड़ा है। अनुवाद करनेसे केवल इतना ही व्यक्त होता है कि बाल सूर्यका वर्ण कुछ लाली लिए है, किन्तु भाषाके इन्द्र-जालसे, केवल उक्त विशेष्य-विशेषणके विन्यासले, एक सुरम्य, सुगन्ध, सुवर्ण, सुशीतल, प्रभातकाल तत्काल हृदयके ऊपर अपनी छाया डाल देता है, यह जैसे प्रभातका चित्र है, वैसे ही कुछ शब्दोंमें तपोवनमें सन्ध्या-[illegible] वर्ण-चित्र अन्यत्रसे उद्धृत करते हैं। यथा—"दिवावसाने [illegible] वनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या।" अर्थात् दिन समाप्त होने पर [illegible] नेत्रोंवाली तपोवनकी कपिला गऊ जैसे आश्रममें लौट आई, वैसे ही [illegible] लाल तारोंवाली कपिलवर्ण सन्ध्या भी तपोवनमें दिखाई दी। [illegible] साथ सन्ध्याके रंगकी तुलना करनेमें सन्ध्याकी सम्पूर्ण शान्ति, [illegible] छायाको कविने दमभरमें श्रोताके मनमें प्रतिफलित कर दिया। [illegible] वर्णनमें जैसे केवल तुलनाके बहाने उन्मुक्त प्राय [illegible] [illegible] विकास करके भाषाकी झनकारने समस्त प्रभातको [illegible] सुस्निग्धतासे परिपूर्ण कर दिया है—वैसे ही सन्ध्याकी उपमासे [illegible] आश्रममें लौट कर आई हुई अरुणनेत्रा [illegible] धेनुके [illegible] सब भावोंको सम्पूर्ण रूपसे व्यक्त कर दिया है।

रङ्कुमृगके रंगकी-सी एक प्रकारकी पाण्डुता (पीलापन या मैलापन) क्रमशः विस्तीर्ण हो रही थी, गज रुधिर रक्त सिंहकी गर्दनके बालोंके समान लाल और कुछ तपे हुए लाक्षातन्तुके समान पाटलवर्ण सुदीर्घ सूर्यकी किरणें ठीक जैसे पद्मरागमणिकी शलाकाओंकी समार्जनीकी तरह आकाश रूप आँगनसे नक्षत्र-रूप फूलोंको बुहार कर हटा रही थीं ··।

रङ्ग फैलानेमें कविको कैसा आनन्द मिलता है! जैसे श्रान्ति नहीं है, तृप्ति नहीं है! वह रङ्ग केवल चित्रपटका रङ्ग नहीं है, उसमें कवित्वका रङ्ग है, भावका रङ्ग है। अर्थात् किसी चीजका क्या रङ्ग है, केवल यह वर्णन ही नहीं है, उसमें हृदयका अंश भी है। इसका एक दृष्टान्त यहाँ उद्धृत करनेसे हमारा कथन और भी स्पष्ट हो जायगा। बात यह है कि व्याध वृक्षके ऊपर चढ़ कर घोंसलेसे पक्षियोंके बच्चोंको निकालता और पृथ्वी पर फेंकता है। उन उड़नेकी शक्तिसे रहित बच्चोंका रङ्ग कैसा है? “कांश्चिदल्पदिवसजातान् गर्भच्छविपाटलान् शाल्मलिकुसुमशंकामुपजनयत, कांश्चिदकोंरलमदशान्, कांश्चिल्लोहितायमानचञ्चुकोटीन् ईषद्विघटितदलपुटपाटलमुखाना कमलमुकुलाना श्रियमुद्वहत., कांश्चिदनवरतशिर. कम्पव्याजेन निवारयत इव, प्रतिकारासमर्थान् एकैकश फलानीव तस्य वनस्पते शाखासन्धिभ्यः कोटराभ्यन्तरेभ्यश्च शुकशावकानग्रहीत, अपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत्।” व्याध प्रतिकारमें असमर्थ शुकशावकों (तोतों के बच्चों) को वृक्षकी शाखासन्धि और कोटरों (छिद्रों) के भीतर से एक-एक करके वृक्षके फलोंकी तरह निकाल कर मार कर पृथ्वी पर फेंकने लगा। उनमें कोई कुछ ही दिनके जन्मे थे, उनकी नवप्रसूत कमनीय पाटल कान्ति जैसे सेमरके फूलों का भ्रम उत्पन्न कर रही थी, किसी किसीके पद्मके नवदलोंके समान कुछ कुछ पख निकल रहे थे, किसीका वर्ण पद्मरागमणिका ऐसा था, किसी-किसीकी लाल चोंचका अग्रभाग किञ्चित् विकसित कमलकलीके समान था, कुछका सिर बारंबार हिलनेसे जान पड़ता था कि वे व्याधको मना कर रहे हैं।

इस वर्णनके भीतर केवल कोरा वर्ण-विन्यास नहीं है—उसके साथ करुणा मिली हुई है, अथच कवि स्पष्टरूपसे हाय हाय नहीं करता। उसके वर्णनमें केवल तुलनाओंकी सुकुमारतासे करुणा आप ही प्रस्फुटित हो उठी है।

किन्तु इस तरह दिखानेसे यह लेख समाप्त न होगा। कारण, कादम्बरीमें प्रलोभन ढेरों हैं, इस कुंजवनकी हर गलीमें नव नव वर्णोंके फूले हुए लता-वितान भरे पड़े हैं। यहाँ समालोचक अगर मधुपान करने लगे, तो उसकी गुञ्जनध्वनि बंद हो जायगी। वास्तवमें समालोचना करनेका हमारा विचार नहीं था, केवल सौन्दर्य दिखानेके प्रलोभनमें पड़ कर हम इस मार्गमें यहाँ तक खिंच आये हैं। जिस उपलक्ष्यमें हम यह प्रबन्ध लिखने बैठे थे, उसके साथ ही उसी प्रसंगमें कादम्बरीके सौन्दर्यकी आलोचना करके आनन्द लाभ कर लेंगे, [illegible] हमने सोचा था। किन्तु कुछ दूर अग्रसर होते ही हमारी समझ [illegible] यह मार्ग संक्षिप्त नहीं है, इस रस प्रवाहमें आत्म-समर्पण करने [illegible] मार्गमें शीघ्र नहीं लौट सकेंगे।

"प्रदीप" (मासिक पत्र) की इस संख्यामें जो [illegible] पर कुछ लिखनेके लिए हमसे अनुरोध किया गया था। [illegible] वर्णतलमें अंकित है, चित्र कादम्बरीसे लिया गया है, [illegible] स्नेहास्पद नवयुवक आत्मीय ख्यातनामा श्रीमान् [illegible]

साथ उक्त चित्रकी प्रतिकृति अपने पत्रमें छापी है और हमसे उसकी भूमिका लिखनेका अनुरोध किया है।

कादम्बरीका जो प्रसङ्ग चित्रमें दिखलाया गया है, उसकी संस्कृतसे बँगलामें व्याख्या कर देना ही इस चित्रकी उपयुक्त भूमिका है। वह प्रसंग कादम्बरीके ठीक प्रवेश-द्वारमें ही है। आलोचना करते करते हम ठीक वहीं तक आये थे, किन्तु लोभमें पड़ कर अन्य ओर चले गये थे, अब फिर वहीं लौटते हैं।

नव-प्रभातमें राजा शूद्रक सभामें विराजमान हैं। इसी समय प्रतिहारीने आकर पृथ्वीतल पर घुटने टेक कर हाथ जोड़ कर निवेदन किया—"दक्षिणा पथसे चण्डाल कन्या एक पिञ्जरस्थित शुक लेकर आई है और कहती है कि महाराज समुद्रकी तरह पृथ्वी भरके सब रत्नोंके एक मात्र पात्र हैं। वह पक्षी भी एक अद्भुत आश्चर्यजनक अमूल्य रत्न-विशेष है। अतः देवके श्रीचरणोंमें इसे अर्पण करनेको मैं आई हूँ, और देवके दर्शन सुखका अनुभव करनेकी इच्छा करती हूँ।"

पाठकगण ऐसा न समझें कि प्रतीहारी इतने संक्षेपमें छुट्टी पा गई थी—अकृपण कवि-प्रतिभाने उसके ऊपर भी अजस्र कल्पनाकी वर्षा की है। यथा—उसके वाम पार्श्वमें अंगनाजन विरुद्ध किर्च लटकनेसे वह विषधर-जड़ित चन्दन-लता के समान भीषण रमणीय देख पड़ती थी। वह शरत्-लक्ष्मीकी तरह कल-हंस शुभ्र-वसना थी, विन्ध्य-वन-भूमिकी तरह वेत्र-लतावती थी। वह जैसे मूर्ति-मती राजाज्ञा थी, जैसे शरीरधारिणी राज्यकी अधिष्ठात्री देवता थी—इत्यादि।

समीपवर्ती राजोंके मुखकी ओर देख कर संजात कुतूहल राजाने प्रतीहारीसे कहा—उसे आने दो। प्रतीहारीने तब चण्डाल कन्याको सभातलमें उपस्थित किया।

वहाँ वज्रभय पुञ्जित शैल श्रेणी मध्यगत कनकशिखरी मेरु पर्वतके समान सहस्रों नरपतियोंके मध्यमें राजा शूद्रक विराजमान हैं। विविध रत्नाभरण किरण-जालसे उनके अंग प्रच्छन्न प्राय होनेके कारण जान पड़ता है जैसे सहस्रों इन्द्र-धनुओंसे आठों दिशाओंको आच्छादित करके वर्षाकालका घनगम्भीर दिवस विराजमान है। लटकते हुए स्थूल मुक्ता-कलाप और स्वर्णशृङ्खला में बँधे चार मणिदण्डों पर अमल शुभ्र अनतिवृहत् दुकूल वितान (चँदोवा) तना हुआ

है। उसीके नीचे चन्द्रकान्तमणिके पलँग पर राजा बैठे हैं। उनके आसपास सुवर्णदण्ड शोभित चँवर डुलाये जा रहे हैं। पश्चिमके प्रक्षीण चन्द्रमाके समान विशद उज्ज्वल स्फटिक-निर्मित पादपीठ पर उनका बायाँ पैर रक्खा हुआ है। उनके अमृतफेन सरीखे लघुशुभ्र दुकूलवसनके छोरमें गोरोचनाके द्वारा रचित अनेक जोड़े मिलमिलेदार अङ्कित हैं। अत्यन्त सुगन्ध चन्दनानुलेपनसे उनका वक्षःस्थल धवल हो रहा है। वक्षःस्थल बीचबीचमें कुसुम चर्चित [illegible] शूद्रक जान पड़ते हैं, जैसे जगह-जगह पड़ी हुई प्रभात रविकी [illegible] कैलास पर्वत हैं। इन्द्रनीलमणिके अङ्गद उनके दोनों हाथोंमें [illegible] हैं, [illegible] पड़ता है, उन्होंने चञ्चला राजलक्ष्मीको दोनों हाथोंसे बाँध रक्खा है। [illegible] कानका उत्पल (नीलकमल) कुछ लटका सा है। मस्तक पर सुगन्धित [illegible] माला है—जैसे उषाकालमें अस्ताचलके शिखर पर तारापुञ्ज [illegible] है। उपस्थित रमणियाँ दिग्वधुओंके समान उन्हें घेरे हुए हैं।

तब प्रतीहारीने महाराजको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए [illegible] दन्तकोमल हाथमें वेत्रलता लेकर एक बार सभाके फर्श पर [illegible] किया। तालफल पतनशब्दसे जगती हाथियोंके झुण्ड जैसे [illegible] ही उस खटकारसे सब राजमण्डलीने मुख फिरा कर उसकी ओर दे[illegible]।

हमने अपने समालोच्य चित्रका विषय कुछ संक्षेपमे अनुवाद कर दिया। संस्कृत कवियोमे, चित्र अंकित करनेमें, बाणभट्टके समकक्ष और सिद्धहस्त अन्य कोई नहीं हुआ—यह बात हम साहस पूर्वक कह सकते हैं। संपूर्ण कादम्बरी काव्य एक चित्रशाला है। साधारणतः लोग घटनाका वर्णन करके कहानी कहते हैं, किन्तु बाणभट्टने एकके बाद एक चित्र सजा कर कहानी कही है। इसीलिए उनकी कहानी गतिशील नही है। वह वर्णच्छटासे अंकित है। चित्र भी घने सलग्न या धारावाहिक नहीं हैं। एकएक चित्रके चारों ओर प्रचुर कारुकार्य-विशिष्ट बहु विस्तृत भाषाके स्वर्ण-निर्मित फ्रेम हैं। फ्रेम समेत उन चित्रोंके सौन्दर्यके आस्वादनसे जो वंचित है वह निःसन्देह दुर्भाग्य है।

अनुवादक—रूपनारायण पाण्डेय।



की वेदिकाके विटक[1] रूपी पीठका स्पर्श करनेके कारण जिनकी उँगलियां लाल हो जाती थीं उन—भर्तु के—दोनों चरण-कमलोंको नमस्कार करता हूं।

५—विना कारण वैर प्रकट करनेसे भयकर मालूम होते हुए आदमीसे किसे भय नहीं होता? महासर्पके मुखमे दु सह विषके समान, उसके मुखमे सदा दु सह दुर्वचन रहता है।

६—कर्कश शब्द करती हुई तथा कालिमा पैदा करनेवाली बाँधनेकी जंजीरोंके समान कटु शब्द बोलनेवाले तथा मिथ्या कलक लगानेवाले दुष्ट बहुत कष्ट देते हैं। सज्जन मनोहर शब्दोंसे पद पद पर उसी तरह मन हर लेते हैं जैसे मणि नूपुर अपनी भनभनाहटसे पद पद पर चित्तका आकर्षण करते हैं।

७—आल्हाद-जनक सुभाषित भी दुर्जनके गलेमे, राहुके[2] कंठमे अमृतके समान, नीचे नहीं उतरता। उसे ही सज्जन इस प्रकार हृदयमे धारण करता है जैसे विष्णु अत्यन्त निर्मल कौस्तुभ मणिको।

८—मधुर बातचीत और विलासमें कोमल तथा शृंगार आदि रसोंसे

१—विटक = सबसे ऊँचा सिरा। जब सब सामन्त भर्तु को नमस्कार करते थे तब उनके मुकुटोंसे एक ऊँची वेदिका बन जाती थी जो पायदान का काम देती थी। जब भर्तु के चरण इसके ऊपर रक्खे जाते थे तब रत्नोंकी चमकसे उँगलियाँ लाल हो जाती थीं।

२—एक बार देवताओं और दैत्यों ने समुद्र के तले में से अमूल्य रत्न चाहा। तब उन्होंने मंदर पर्वत को रई तथा वासुकि नाग को रस्सी बनाकर समुद्र मथा। इन्हे बहुतसे रत्नोंके साथ अमृत भी मिला। अमृत भी उन सबमें बराबर बाँटा जाने को था तब एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके विष्णु वहाँ आये और यह काम उनके सुपुर्द किया गया। उन्होंने इस बात पर ध्यान रक्खा कि दैत्यों को अमृत नहीं मिले क्योंकि उससे वे अमर हो जायँगे और फिर देवता उनको न जीत सकेंगे। किसी चाल से राहु देवताओं के साथ बैठ गया और उसे भी अमृत दे दिया गया। सूर्य-चन्द्र ने उसे पहचानकर विष्णु से कहा। तब विष्णु ने क्रुद्ध होकर सुदर्शन से उसका सिर काट लिया। उसने थोड़ा सा अमृत पी लिया था, इस कारण उसका सिर अमर हो गया।

अनायास ही उत्तम रचनाको प्राप्त हुई अपूर्व कथा, लोगोंके हृदयमें, इस तरह अत्यन्त कौतुक पैदा करती है जैसे मधुर आलाप और विभ्रमसे रसगोष्ठी [illegible] नवोढा वधू प्रेमसे अपने आप पलंग पर आकर लोगोंके हृदयमें अनुराग उत्पन्न करती है।

९—जैसे खिलनेको तैयार हुए तथा उज्ज्वल दीपक समान चम्पे [illegible] चमकीली कलियोंसे गूँथी गई, निरन्तर रचनाओंसे घनी और सुन्दर [illegible] युक्त बड़ी बड़ी मालाएं मन हर लेती हैं उसी तरह, जिसमें [illegible] दीपक और उपमा अलंकार स्पष्ट दीखते हैं एवं [illegible] अलंकारसे युक्त और निरन्तर श्लेषोंसे व्याप्त कथा [illegible]।

१०—वात्स्यायन वंश समुत्पन्न, [illegible] गुणवान [illegible] जिनके चरण कमलोंकी धूल [illegible] अनेक राजाओंने [illegible] कुबेर नामक ब्राह्मण, [illegible] हुए।

११—वेदोंके अभ्यासके [illegible] और सदा पवित्र रहता था, [illegible] गाया [illegible] और जो सब शास्त्रोंमें [illegible] सरस्वती निवास करती थी।

१५—उन्होंने वेदोक्त[1] मार्गके अनुसार दानसे शोभित, जलती[2] हुई श्रौताग्नियोंसे युक्त तथा पशु-बन्धन स्तंभ[3] रूपी करवाले, हाथियोंके समान, असंख्य यज्ञोंसे अनायास ही सुरलोकको जीत लिया था।

१६—उन्होंने काल क्रमसे महात्मा, वेदोंको प्रकाशित करनेवाले तथा क्षमा युक्त उत्तम पुत्रोंके बीचमें स्फटिकके समान निर्मल पुत्र चित्रभानु, पर्वतोंमें स्फटिक मणियोंसे निर्मल कैलासके समान, प्राप्त किया।

१७—उन महात्मा चित्रभानुके दिगंत-व्यापी, लाञ्छन-रहित चन्द्रमाकी कलाके समान निर्मल कान्तिवाले गुण, रास्ता बना कर, शत्रुओंके मनमें भी इस तरह प्रवेश कर गये जैसे नृसिंहके नखाङ्कुर हिरण्य-कश्यपके हृदयमें घुस गे।

१८—दिशाओंके ललाटमें अलकोंके समान तथा त्रयीरूप[4] वधूके कानमें तमाल-पल्लवके समान, उनके यज्ञोंके धूमकी पंक्तिने मलिन होने पर भी उनके यशको अत्यन्त उज्ज्वल किया।

१९—जिनके होममें श्रम करनेसे पैदा हुई पसीनेकी बूंदोंको सरस्वती अपने कर-कमलोंसे पोंछती थी, तथा जिन्होंने अपने यशकी किरणोंसे सातों भुवनोंको श्वेत कर दिया था उन चित्रभानुसे बाण नामक पुत्र पैदा हुआ।

२०—उस बाण ब्राह्मणने-यथार्थ प्रकट करनेमें असमर्थ, चित्तके महामोह-रूपी अन्धकारसे अन्धी, तथा समुचित वर्णनकी चातुर्य लीला का लाभ न होनेसे मुग्ध हुई बुद्धिसे इस अद्भुत कथा की रचनाकी है।

१—हाथी मद-जनक ह्रदय से पैदा हुए मद-जल से अच्छे मालूम होते हैं।

२—हाथियों पर बड़े-बड़े योद्धा बैठे रहते हैं।

३—हाथियों की सूँड यूपों के समान होती है।

४—ऋक, यजु, साम।

कथा।

१—शूद्रक नामका राजा मानो दूसरा इन्द्र था। उसकी आज्ञा [illegible] सिर झुकाकर सादर स्वीकार करते थे। वह चारों समुद्रों की माला [illegible] से युक्त पृथ्वी का स्वामी था। पराक्रम अनुराग के [illegible] अधीन हो गये थे। उसमें चक्रवर्ति के सब लक्षण थे। विष्णु [illegible] पर कमल शंख चक्र[1] लाञ्छित थे। शिव के समान उसने [illegible][2] [illegible] स्वामिकार्तिक के समान उसकी शक्ति[3] अकुण्ठित थी, [illegible] राजहंस मण्डल का[4] विभाग किया था, समुद्र के समान [illegible][5] [illegible] था, गंगा प्रवाह के समान वह भगीरथ के मार्ग[6] पर [illegible]

१—विष्णु के हाथों से शंख चक्र हैं, शूद्रक के हाथों में [illegible]

२—शिव ने कामदेव को जीता था, शूद्रक ने [illegible] पर जिया था।

३ स्वामिकार्तिक का शक्ति नामक अस्त्र अकुण्ठित था [illegible] प्रकार की शक्ति अर्थात् प्रभाव शक्ति, उत्साह शक्ति और [illegible]

४ ब्रह्मा ने राजहंसों का विभाग [illegible] श्रेष्ठ राजाओं का विभाग किया था [illegible]

५—समुद्र [illegible]

६ गंगा प्रवाह [illegible] से लाया था, [illegible] का अनुसरण करता था [illegible] सम्पन्न और सात्त्विक था।

वह प्रति दिन उदयको[१] प्राप्त होता था, सुमेरु पर्वत के समान उसकी पादच्छायामें[२] सब लोक आश्रय लेते थे, दिग्गजके समान उसका कर निरंतर दानसे[३] गीला रहता था। वह बड़े आश्चर्य जनक काम करता था, बड़े बड़े यज्ञ करता था, सब शास्त्रोंका पूरा पंडित था, सब कलाओंका उत्पन्न कर्ता था, सब गुणोंकी परंपरा का निवासस्थान था, काव्यामृत रसका आश्रय स्थान था, मित्र-मंडलका[४] उदय शैल था, शत्रुओंका उत्पातकेतु[५] था, धनुर्धारियोंका गर्व तोड़ने वाला था, बलवानोंमें धुरंधर था, चतुरोंका शिरोमणि था, गरुड़के समान विनतानंद[६]-दायक था, और पृथुराज के समान उसने चाप-कोटिसे शत्रु-कुल[७]-पर्वतोंका नाश कर दिया था।

कि उसके पुत्र केवल गंगा-जल से शुद्ध हो सकते हैं। गंगा उस समय स्वर्ग में थी और उसे पृथ्वी पर लाना कठिन था। सगर, उसका पुत्र असमंजस, उसका पौत्र अंशुमान तथा उसका प्रपौत्र दिलीप—सब मर गये पर गंगा को न ला सके। तब अन्त में उस वंश के पाँचवें अपत्य भगीरथ ने तप करके देवताओं को प्रसन्न किया। उनकी कृपा से वह गंगा को पृथ्वी पर लाया और उसके जल से शुद्ध होकर भस्म हुए पूर्वज स्वर्ग को गये।]

१—सूर्यका प्रतिदिन उदय होता है, शूद्रकका अभ्युदय होता था।

२—सुमेरुकी छोटी-छोटी पहाड़ियों के नीचे सब लोक स्थित हैं, शूद्रक के चरण का, रक्षा के लिये, सब संसार आश्रय लेता था।

३—दिग्गज की सूँड़ निरन्तर दान अर्थात् मद से गीली रहती है, शूद्रकका हाथ दान के संकल्प के जल से गीला रहता था।

४—उदय-शैल पर सूर्य मंडल का उदय होता है, शूद्रक के पास उसके मित्रों का अभ्युदय होता था।

५—धूमकेतुका उदय होने से प्रजा को उत्पात की शंका होती है, शूद्रक से उसके शत्रुओं को अनिष्ट की शंका होती थी।

६—गरुड़-अपनी माता-विनता को आनन्द देते हैं, शूद्रक उनको आनन्द देता था जो नम्र रहते थे।

७—पृथुराजने अपने शत्रु कुल-पर्वतोंका नाश किया था, शूद्रक ने अपने

अनुकरण करता था। मदसे मतवाले हाथियोंके कुम्भस्थल विदीर्ण करनेके कारण उसकी तलवारमें बड़े बड़े मोतियोंके दाने चिपक रहे थे और मुट्ठीमें मजबूत पकड़नेके कारण निकली हुई पसीनेकी बूँदोंसे वह मानो और भी पैनी हो गई थी। ऐसी तलवारसे खिंच कर योधाओंके विशाल वक्षस्थलों पर धारण किये गये हजारों कवचोंमें रहनेवाली राज-लक्ष्मी—हाथियोंके गण्डस्थलोंमेंसे मदकी वर्षा होनेके कारण गहन हुए युद्धमें—इस तरह बार बार उसके पास आती थी जैसे वर्षासे घनघोर हुई अंधेरी रात्रियोंमें अभिसारिका अपने प्रेमीके पास जाती है। उसके प्रतापकी अग्नि—शत्रुओंकी वियोगिनी स्त्रियोंके हृदयोंमें रहे हुए पतियोंको भी मानो जलानेकी इच्छासे ही—अन्तर्दाह उत्पन्न करके दिन रात जला करती थी।

३—सम्पूर्ण जगत्‌का जीतनेवाला राजा शूद्रक जब पृथ्वीका पालन करता था तब प्रजामें केवल चित्र कार्यमें ही वर्णसंकर[1] होते थे, कामक्रीडामें ही केश खींचे जाते थे, काव्योंमें ही दृढ़[2] बन्ध थे, शास्त्रमें ही चिन्ता रक्खी जाती थी, स्वप्नमें ही वियोग होता था, छत्रोंमें ही कनक दंड[3] थे, केवल ध्वजा ही काँपती थी, गीतमें ही राग विलास[4] था, हाथियोंमें ही मद विकार[5] था, धनुषोंमें ही गुणच्छेद[6] होता था, खिड़कियोंमें ही जाल मार्ग[7] थे, चन्द्र सूर्य और कान्त में ही कलंक[8] था, प्रेम कलहमें ही दूतका काम पड़ता था, जुएके खेलमें ही

१—चित्र-कार्यमें रंगोंका मेल होता था, ब्राह्मणादि वर्णों में संकर नहीं होता अर्थात् सब अपनी ही जातिमें विवाहादि करते थे।

२—काव्योंमें अक्षर रचनाके खड्ग-बन्ध आदि बनाए जाते थे, अपराधियों के दृढ़ बाँधनेकी जरूरत नहीं होती थी।

३—छत्रोंमें ही सुवर्णकी डंडियाँ थीं, किसी पर जुरमाना नहीं होता था।

४—गीतमें ही-भैरव आदि रागोंका विलास था, प्रजामें इन्द्रिय-विकार नहीं था।

५—हाथियों में दानका विकार था, प्रजामें गर्वका विकार नहीं था।

६—धनुषोंकी ही डोरियाँ टूटती थीं, प्रजा गुणहीन नहीं थी।

७—खिड़कियोंमें जालियाँ लगी थीं, प्रजामें कपटकी बातें नहीं थीं।

८—इनमें ही कालिमा थी, किसीके कुलमें दोष नहीं था।

घर[1] सूने होते थे, सब परलोकवासी था, मगर[2] अन्न पुरुषी स्त्रियों का [illegible] था, तुरस्ता[3] नूपुरोंमें ही थी, [illegible][6] विवाहमें ही [illegible] था, [illegible] उठते रोमाञ्चके अुर्गने ही प्राय गिनते थे चाबुक [illegible] [illegible] आती थी, और धनुषटंकार[4] [illegible] सामदकता ही होता था ।

हृदयमें प्रतापसे अनुराग करते थे। अत्यन्त प्रगल्भ तथा अवसर जाननेवाले, सभ्यतापूर्वक परिहास करनेमें कुशल, मनके भाव और आकार समझनेवाले, काव्य नाटक कहानी कथा चित्रकर्म-व्याख्यानादि क्रियाओंमें निपुण, अत्यन्त कठिन और पुष्ट कन्धे, जंघा तथा भुजावाले—ये राजकुमार मानो राजा शूद्रकके ही प्रतिबिम्ब थे। इन्होंने, सिंहके बच्चोंकी भाँति, अनेक बार शत्रुओंके मदमत्त हाथियोंके कुम्भस्थल विदीर्ण कर डाले थे और ये पराक्रम दिखानेके बड़े शौकीन होने पर भी विनीत भावसे रहते थे। परन्तु, जय प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा और बड़े भारी पराक्रमके कारण, राजा शूद्रक स्त्री-जातिको तिनकेके समान तुच्छ समझता था। यद्यपि वह तरुण और मनोहर था तथा मन्त्रियोंको उससे सन्तान होनेकी आशा थी तो भी उसे कामक्रीड़ासे कुछ द्वेष सा था। रूप और विलासमें रतिके भी गर्व भावका उपहास करनेवाली, लावण्यमयी, शीलवती, कुलीन और मनोहर स्त्रियाँ उसके रनवासमें थीं, परन्तु उनके होने पर भी वह कभी संगीतमें मृदंग बजाता, जिससे बार बार उसके हाथका रत्न-जटित कंकण हिलने लगता था, कभी घुँघरू बजानेमें वह झूमने लगता, जिससे उसके मणिमय कर्णभूषणकी झनझनाहट होती थी, कभी मृगयामें अनगिनती बाणोंकी वर्षासे पशुओंको मार कर वनोंको खाली कर देता था, कभी पण्डितोंकी सभा करके काव्य प्रबन्ध-रचनामें, कभी शास्त्रकी बातचीतमें, कभी आख्यान, कथा, इतिहास और पुराणोंके सुननेमें, कभी चित्रकर्ममें, कभी वीणा बजानेमें, कभी दर्शनके लिये आए मुनियोंकी चरणसेवामें, और कभी अक्षरच्युतक[1], मात्राच्युतक[2], बिन्दुमती,[3] गूढ़चतुर्थपाद[4] और पहेलियोंके करने करानेमें लगा रहता था

१—जिस छन्दका एक अक्षर निकाल देनेसे दूसरा अर्थ हो उसे अक्षर-च्युतक कहते हैं।

२—जिस छन्दमें एक मात्रा बदल देनेसे दूसरा अर्थ हो उसे मात्रा-च्युतक कहते हैं।

३—जिसमें अक्षरोंके स्थानमें केवल बिन्दु रख दिये जायँ उसे बिन्दुमती कहते हैं—जैसे ठिठठठिठी .. ([illegible])

४—जिसके चतुर्थ पादके अक्षर पहले तीन पादोंमें छिपे हों उसे गूढ़-चतुर्थ-पाद कहते हैं।

हृदयमें प्रतापसे अनुराग करते थे। अत्यन्त प्रगल्भ तथा अवसर जाननेवाले, सभ्यता पूर्वक परिहास करनेमें कुशल, मनके भाव और आकार समझनेवाले, काव्य नाटक कहानी कथा चित्रकर्म व्याख्यानादि क्रियाओंमें निपुण, अत्यन्त कठिन और पुष्ट कन्धे, जंघा तथा भुजावाले—ये राजकुमार मानो राजा शूद्रकके ही प्रतिबिम्ब थे। इन्होंने, सिंहके बच्चोंकी भाँति, अनेक बार शत्रुओंके मदमत्त हाथियोंके कुम्भस्थल विदीर्ण कर डाले थे और ये पराक्रम दिखानेके बड़े शौकीन होने पर भी विनीत भावमें रहते थे। परन्तु, जय प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा और बड़े भारी पराक्रमके कारण, राजा शूद्रक स्त्री-जातिको तिनकेके समान तुच्छ समझता था। यद्यपि वह तरुण और मनोहर था तथा मन्त्रियोंको उससे सन्तान होनेकी आशा थी तो भी उसे कामकी ओरसे कुछ द्वेष सा था। रूप और विलासमें रतिके भी गर्व भावका उपहास करनेवाली, लावण्यमयी, शीलवती, कुलीन और मनोहर स्त्रियाँ उसके रनवासमें थीं, परन्तु उनके होने पर भी वह कभी सङ्गीतमें मृदङ्ग बजाता, जिससे बार बार उसके हाथका रत्न-जटित कङ्कण हिलने लगता था, कभी घुँघरू बजानेमें वह झूमने लगता, जिससे उसके मणिमय कर्णभूषणकी झाँझनाहट होती थी, कभी मृगयामें अनगिनती बाणोंकी वर्षासे पशुओंको मार कर वनको खाली कर देता था, कभी पण्डितोंकी सभा करके काव्य रचनेमें, कभी शास्त्रकी बातचीतमें, कभी आख्यान, कथा, इतिहास और पुराणोंके सुननेमें, कभी चित्रकर्ममें, कभी वीणा बजानेमें, कभी दर्शनके लिये आए मुनियोंका चरण सेवामें, और कभी अक्षरच्युतक[1], मात्रा[2] च्युतक, बिन्दुमती,[3] गूढ़चतुर्थपाद[4] और पहेलियोंके करने कहनेमें लगा रहता था

१—जिस छन्दका एक अक्षर निकाल देनेसे दूसरा अर्थ हो उसे अक्षर-च्युतक कहते हैं।

२—जिस छन्दमें एक मात्रा बदल देनेसे दूसरा अर्थ हो उसे मात्रा च्युतक कहते हैं।

३—जिसमें अक्षरोंके स्थानमें केवल बिन्दु रख दिये जायँ उसे बिन्दुमती कहते हैं—जैसे ठिठ्ठठठिठी . (विपन्नमणिनीडय)

४—जिसके चतुर्थ पादके अक्षर पहले तीन पादोंमें छिपे हों उसे गूढ़ चतुर्थपाद कहते हैं।

और स्त्री-सम्भोग सुखमें मन नहीं लगाता था। इस प्रकार पूरा दिन वह मित्रोंके साथ व्यतीत करता था और इसी रीतिसे रात भी अनेक प्रकारकी क्रीडा और परिहासमें कुशल मित्रोंके साथ व्यतीत होती थी।

६—एक दिन कमलोंकी नई कलियोंके खिलानेवाले भगवान् भास्करके उदयके थोडी देर बाद—जब उनका गुलाबी रंग कुछ कुछ कम हो गया था उस समय—शरीर धारण करके आई हुई राज-कुल-देवीके समान प्रतीहारी सभा मण्डलमें स्थित महाराजके पास आई। स्त्रियोंके अयोग्य खड्ग बाईं ओर धारण करनेसे उसका आकार, सर्प युक्त चंदनलताके समान, भयंकर और रमणीक लगता था। चदनके घने लेपसे स्तन-तट श्वेत होनेके कारण वह ऐसी दीखती थी मानो ऊपर तैर आए ऐरावतके कुंभस्थल सहित मन्दाकिनी हो। वह परशुरामके परशुकी धारके समान सब राज मण्डलको वश[1] करनेवाली, शरद् ऋतुके समान कलहंसश्वेत अम्बरवाली[2] और विंध्याचलकी वन भूमिके समान वेत्र-लतासे[3] युक्त थी। आस पास बैठे राजाओंके मुकुट मणियोंमें जब उसका प्रतिबिंब पडा तब ऐसा मालूम हुआ मानो राजा शूद्रककी आज्ञाको उन्होंने शिर पर धारण कर लिया हो। वह अपने घुटने तथा हाथ भूमि पर टेक कर विनय पूर्वक कहने लगी —

७—महाराज, एक चाण्डाल कन्या दक्षिण दिशासे आकर दरवाजे पर खडी है। वह कुपित हुए इन्द्रकी हुंकारसे गिरी स्वर्गमें जाते त्रिशंकुकी[4] राज

१—परशुरामके परशुकी धारने सब राजाओंको अधीन कर लिया था, प्रतीहारीने सब राज मंडलको मोहित कर लिया।

२—शरद् ऋतुमें कलहंसोंके उडनेसे आकाश श्वेत हो जाता है, प्रतीहारीका कलहंसोके समान श्वेत वस्त्र था।

३—विंध्याचलकी वन-भूमिमें बेंतकी बेलें लगी रहती हैं, प्रतीहारीके हाथमें बेंत की छडी थी।

४—एक बार राजा त्रिशंकुकी इच्छा हुई कि मैं यज्ञ करके सशरीर स्वर्ग जाऊँ। तब उसने वसिष्ठ से कहा। उन्होंने मना कर दिया तब उनके पुत्रोंसे कहा। पिताके अपमानसे क्रुद्ध होकर उन्होंने त्रिशंकुको शाप दिया कि तू चाण्डाल हो जा। तब विश्वामित्रने यज्ञ कराया परन्तु य देवता यज्ञमें

लक्ष्मीके समान मालूम होती है। एक तोतेको पिंजरेमें रख कर लाई है और महाराजसे प्रार्थना करती है कि पृथ्वीतल पर, महाराज, समुद्रके समान सब रत्नोंके आकर हैं और मेरा आश्चर्य-जनक तोता भी सब भुवनोंका एक रत्न है। यह समझ महाराजके दर्शन सुखकी अभिलाषासे मैं उसे लेकर महाराजके चरणोंमें आई हूँ। महाराजकी क्या आज्ञा है?

८—प्रतीहारीके इतना कह चुकने पर राजाको भी उसके देखनेकी लालसा हुई और आस पास बैठे सब राजा लोगोंके मुखकी ओर देख उसने आज्ञा दी—कुछ हर्ज नहीं, भीतर आने दो।

९—राजाका वचन सुनते ही प्रतीहारी उठ कर चाण्डाल कन्याको भीतर ले आई। आते ही कन्याने हजारों नृपोंके मध्यमें विराजमान राजा शूद्रकको देखा। वह ऐसा लगता था मानो वज्रके भयसे एकत्रित हुए कुल पर्वतोंके बीचमें सुमेरु बैठा हो। अनेक रत्नाभूषणोंके किरण जालमें अवयवोंके ढक जानेसे वह ऐसा शोभायमान लगता था मानो हजारों इन्द्र धनुषसे व्याप्त आठ दिशाओंवाला वर्षा ऋतुका दिन हो। वह चन्द्रकान्त मणिके सिंहासन पर विराजमान था। उसमें बड़े बड़े मोतियोंकी झालर लटक रही थी और उसके चारों मणि-दण्ड सोनेकी जंजीरोंसे बँधे थे। उसके ऊपर मन्दाकिनीके झागके समान सफेद महीन वस्त्रका चँदोवा टंग रहा था। राजा शूद्रक पर सोनेकी डण्डीके चमर ढल रहे थे और स्फटिक मणिके पायदान पर उसका बायाँ [पैर] रक्खा था। यह पायदान ऐसा लगता था मानो उसके चारों ओर लगी हुई किरणावली-सुन्दरी कान्तिसे पराजित होकर नम्र हुआ चन्द्रमा

नहीं आये। विश्वामित्रने क्रोध करके उसे अपने बलसे स्वर्ग भेजा। इन्द्रने उसे स्वर्ग में न घुसने दिया। तब उसे नीचे गिरनेमें विश्वामित्रने अन्तरालमें स्थिर किया।

[illegible]—पहले पर्वतोंके पंख थे। इनसे वे चाहे जहां चले जाते थे तथा मनुष्योंको और ऋषियों को कष्ट देते थे। तब मनुष्यों और ऋषियोंने इस अपनी पीड़ा छुड़ाने के लिए इन्द्रसे प्रार्थना की। इन्द्रने अपने वज्रसे इनके पंख काटकर उन्हें अपने स्थान से हटने लायक नहीं रक्खा।

हो। उसके चरण नखोंकी किरणें नीलमके फर्शकी प्रभाके सम्पर्कसे कुछ श्याम हो गई थी। वे ऐसी लगती थी मानो वशीभूत शत्रुओंके निश्वाससे मलीन हो गई हो। सिंहासनमसे फैलती हुई मानककी किरणोंसे उसकी दोनों जंघाएँ लाल-लाल हो गई थी, जिनसे वह—कुछ समय पहले मारे गए मधुकैटभके रुधिरसे लाल हुई जंघाओंवाले—विष्णुके समान लगता था। वह अमृतके झागके समान सफेद दो वस्त्र पहन रहा था। उनकी कोर पर गोरोचनसे हंसोंके जोड़े चित्रित थे और उनके पल्ले चमरकी हवासे उड़ रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चंदन रसके लेपसे उसकी छाती गोरी हो गई थी और उस पर उसने केशर छिड़क ली थी जिससे—प्रातःकालकी धूप जिस पर कहीं कहीं पड़ी हो ऐसे—कैलाश पर्वतके समान वह शोभायमान लगता था। मोतियोंकी मालाने उसके मुखके इधर उधर परिवेश कर रक्खा था। वह ऐसी लगती थी मानो उसके मुखको दूसरा चन्द्र समझ कर नक्षत्रमाला आई हो। दो इन्द्रनील मणि-जटित बाजूबंद उसकी भुजाओंमें बँधे थे। वे चन्दन-रसकी सुगंधके लाभसे आए दो सर्पोंके समान लगते थे और उन्हें देखकर अत्यन्त चञ्चल राज-लक्ष्मीको बाँधनेकी जञ्जीरोंकी शंका होती थी। उसका कर्ण-कमल कुछ लटक रहा था, नाक ऊँची थी, खिले हुए सफेद कमलके समान नेत्र थे, चन्द्रमाके आधे टुकड़ेके आकारका ललाट था—वह निर्मल सुवर्ण-पट्टके समान विशाल था और सब भुवनोंके राज्याभिषेकके जलसे पवित्र हुआ था, भौंओंके बीचमें रोमोंका भँवर था। उसने सुगन्धित चमेली के फूलोंका मुकुट पहन रक्खा था, जिससे वह शिखर पर प्रातःकाल एकत्रित हुए तारा-सहित अस्ताचलके समान शोभायमान लगता था। गहनोंके प्रकाशसे उसके सब अंग पीले हो रहे थे, जिससे वह—महादेवके तीसरे नेत्रमेंसे निकली हुई अग्निसे जलते हुए—कामदेव के समान देख पड़ता था। उसके आस पास, दिशा-रूप-स्त्रियोंके समान, वेश्यायें सेवाके लिए उपस्थित थीं। निर्मल मणिमय फर्शमें उसका प्रतिबिंब पड़नेसे ऐसा मालूम होता था मानो पृथ्वीने अपने पतिको प्रेम पूर्वक छातीसे लगा लिया हो। उसका तेज अन्य राजाओंके समान साधारण नहीं था, इस कारण—अनेक जनोंकी भोगी हुई होने पर भी—असाधारण राज-लक्ष्मीने उसके शरीरका आलिंगन किया था।

लक्ष्मीके समान मालूम होती है। एक तोतेको पिंजरेमें रख कर लाई है और महाराजसे प्रार्थना करती है कि पृथ्वीतल पर, महाराज, समुद्रके समान सब रत्नोंके आकर हैं और मेरा आश्चर्यजनक तोता भी सब भुवनोंका एक रत्न है। यह समझ महाराजके दर्शन सुखकी अभिलाषासे मैं उसे लेकर महाराजके चरणोंमें आई हूँ। महाराजकी क्या आज्ञा है?

८—प्रतीहारीके इतना कह चुकने पर राजाको भी उसके देखनेकी लालसा हुई और आसपास बैठे सब राजा लोगोंके मुखकी ओर देख उसने आज्ञा दी—कुछ हानि नहीं, भीतर आने दो।

९—राजाकी आज्ञा सुनते ही प्रतीहारी उठ कर चाण्डाल कन्याको भीतर ले आई। उसने भी हजारों नृपोंके मध्यमें विराजमान राजा शूद्रकको देखा। वह ऐसा लगता था मानो वज्रके[१] भयसे एकत्रित हुए कुलपर्वतोंके बीचमें सुमेरु बैठा हो। अनेक रत्नाभूषणोंके किरणजालमें अवयवोंके ढक जानेसे वह ऐसा शोभायमान लगता था मानो हजारों इन्द्रधनुषसे व्याप्त आठ दिशाओंका वर्षा ऋतुका दिन हो। वह चन्द्रकान्त मणिके सिंहासन पर विराजमान था। उसमें बड़े बड़े मोतियोंकी झालर लटक रही थी और उसके चार [illegible] सोनेकी जंजीरोंसे बंधे थे। उसके ऊपर मन्दाकिनीके झागके समान सफेद [illegible] चंदोवा टंग रहा था। राजा शूद्रक पर सोनेकी डण्डीके चँवर डुल रहे थे और स्फटिकमणिके पादपीठ पर उसका बायाँ [illegible] था। यह पादपीठ ऐसा लगता था मानो उसके चारों ओर
हुई त्रिशंकुसे कान्तिमें पराजित होकर नम्र हुआ चन्द्रमा

राजे। विश्वामित्रने कोप करके उन्हें अपने बलसे स्वर्ग भेजा। इन्द्रने स्वर्गमें न घुसने दिया। तब उन्हें नीचे गिरनेसे विश्वामित्रने अन्तरालमें स्थिर किया।

१—पहले पर्वतोंके पंख थे। इनसे वे चाहे जहाँ चले जाते थे तथा मनुष्यों और ऋषियोंको कष्ट देते थे। तब मनुष्यों और ऋषियोंने इनके पंख छुड़ानेके लिए इन्द्रसे प्रार्थना की। इन्द्रने अपने वज्रसे इनके पंख काटकर इन्हें अपने स्थानसे हटने लायक नहीं रक्खा।

हो। उसके चरण नखोंकी किरणें नीलमके फर्शकी प्रभाके संपर्कसे कुछ श्याम हो गई थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो वशीभूत शत्रुओंके निश्वाससे मलीन हो गई हों। सिंहासनमेंसे फैलती हुई माणककी किरणोंसे उसकी दोनों जंघाएँ लाल-लाल हो गई थीं, जिनसे वह—कुछ समय पहले मारे गए मधुकैटभके रुधिरसे लाल हुई जंघाओंवाले—विष्णुके समान लगता था। वह अमृतके भागके समान सफेद दो वस्त्र पहन रहा था। उनकी कोर पर गोरोचनसे हंसोंके जोड़े चित्रित थे और उनके पल्ले चमरकी हवासे उड़ रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चंदन-रसके लेपसे उसकी छाती गोरी हो गई थी और उस पर उसने केशर छिड़क ली थी, जिससे—प्रातःकालकी धूप जिस पर कहीं-कहीं पड़ी हो ऐसे—कैलास पर्वतके समान वह शोभायमान लगता था। मोतियोंकी मालाने उसके मुखके इधर उधर परिवेश कर रक्खा था। वह ऐसी लगती थी मानो उसके मुखको दूसरा चन्द्र समझ कर नक्षत्र माला आई हो। दो इन्द्रनील मणि-जटित बाजूबंद उसकी भुजाओंमें बँधे थे। वे चन्दन-रसकी सुगंधके लोभसे आए दो सर्पोंके समान लगते थे और उन्हें देखकर अत्यन्त चञ्चल राज-लक्ष्मीको बाँधनेकी जञ्जीरोंकी शंका होती थी। उसका कर्ण-कमल कुछ लटक रहा था, नाक ऊँची थी, खिले हुए सफेद कमलके समान नेत्र थे, चन्द्रमाके आधे टुकड़ेके आकारका ललाट था—वह निर्मल सुवर्ण-पट्टके समान विशाल था और सब भुवनोंके राज्याभिषेकके जलसे पवित्र हुआ था, भौंओंके बीचमें रोमोंका भँवर था। उसने सुगन्धित चमेली के फूलोंका मुकुट पहन रक्खा था, जिससे वह शिखर पर प्रातःकाल एकत्रित हुए तारा सहित अस्ताचलके समान शोभायमान लगता था। गहनोंके प्रकाशसे उसके सब अंग पीले हो रहे थे, जिससे वह—महादेवके तीसरे नेत्रमेंसे निकली हुई अग्निसे जलते हुए—कामदेव के समान देख पड़ता था। उसके आस पास, दिशा-रूप-स्त्रियोंके समान, वेश्यायें सेवाके लिए उपस्थित थीं। निर्मल मणिमय फर्शमें उसका प्रतिबिंब पड़नेसे ऐसा मालूम होता था मानो पृथ्वीने अपने पतिको प्रेम पूर्वक छातीसे लगा लिया हो। उसका तेज अन्य राजाओंके समान साधारण नहीं था, इस कारण—अनेक जनोंकी भोगी हुई होने पर भी—असाधारण राज-लक्ष्मीने उसके शरीरका आलिंगन किया था।

जाती थी, वल्कल धोए जाते थे, समिधका संग्रह होता था, कृष्ण मृगचर्म साफ किये जाते थे, पशुओंके खानेको घास ली जाती थी, कमल-बीज सुखाए जाते थे, अक्षमाला गूँथी जाती थी, बेतके दंड रक्खे जाते थे, परिव्राजकोंका सत्कार किया जाता था, कमण्डलुमें जल भरा जाता था। कलिकालने उस आश्रमको कभी देखा नहीं था। असत्यका उमसे परिचय नहीं था। कामदेवने उसका नाम भी नहीं सुना था। ब्रह्माकी तरह वह त्रिभुवन-वंदित था। विष्णुके समान उसने [1]नृसिंह-वाराह रूप प्रकट किया था। सांख्यकी तरह वह [2]कपिलाधिष्ठित था। मथुराके उपवनकी तरह वह [3]बलावलीढ दर्पित धेनुक था। उदयनकी तरह वह वत्स-कुलको[4] आनंद देता था। किम्पुरुष राज्यके समान वहाँ जल-कलश लेकर मुनि द्रुमाभिषेक[5] करते थे। ग्रीष्म ऋतुके अंतकी तरह [6]जल-प्रपात पास ही था। वर्षाकालकी तरह वहाँ [7]वन-गहनके बीचमें हरि आरामसे सोते थे। हनूमान्के समान वहाँ पत्थरोंके टुकड़ोंकी चोटोंसे अक्षके[8] अस्थि-संचयका चूरा किया जाता था। खांडव-वन

१—विष्णुने नृसिंह तथा वाराह अवतार लिया था, आश्रममें मनुष्य, सिंह, शूकर तथा अन्य पशु थे।

२—कपिल मुनिने सांख्य शास्त्रका प्रवर्तन किया था, आश्रम कपिला गौसे युक्त था।

३—मथुरामें बलरामने उद्धत धेनुकको मारा था, आश्रममें बल युक्त तथा दर्पित हथिनियाँ थीं।

४—उदयनने अपने वत्स-कुलको आनंद दिया था, आश्रममें बछड़ोंको आनंद होता था।

५—राज्यमें द्रुम राजाका अभिषेक हुआ था, आश्रममें मुनि वृक्ष सींचते थे।

६—ग्रीष्मके अंतमें वर्षा होती है, आश्रमके पास ही पानीका झरना था।

७—वर्षाऋतुमें समुद्रमें विष्णु सोते हैं, आश्रमके वनमें सिंह सोते थे।

८—हनूमान्ने रावणके पुत्र अक्षयकुमारकी हड्डियाँ तोड़ी थीं, आश्रममें बहेड़ेकी गुठलियाँ तोड़ी जाती थीं।

जलानेमे तत्पर हुए अर्जुनके समान वहाँ अग्नि-कार्यका[1] आरभ हुआ था। सुरभि विलेपनके[2] होने पर भी वहाँ सदा धूमकी गध निकलती थी। मातग-[3] कुलका वास होने पर भी वह पवित्र था। सैकडो धूमकेतु[4] वहाँ दीखते थे तथापि उपद्रव कुछ भी नहीं होता था। द्विजपतिका[5] सब मडल वहाँ होने पर भी पासके वृक्षोंकी झाडीमे सदा अँधेरा ही रहता था।

४६—वहाँ मलिनता[6] केवल यज्ञ-धूममे थी, चरित्रमे नहीं, मुख-राग[7] तोतोंहीमे था, कोपमे नहीं, तीक्ष्णता[8] दर्भाग्रमें ही थी, स्वभावमे नहीं; चचलता[9] केलेके पत्तोंमे ही थी, मनमें नहीं, चक्षू-राग[10] कोकिलोंमे ही था, पर स्त्रियोंमे नहीं, कठग्रह[11] कमडलहीमे था, रति-विलासमें नहीं, मेखला-बन्ध[12] व्रतहीमे था, ईर्षा कलहमे नहीं, होमकी गायोंके स्तनका ही स्पर्श होता था, स्त्रियोंके नहीं, मुर्गोंहीका पक्षपात[13] होता था, विद्या विवादमे नहीं, अग्निकी

१—वनमे अर्जुनने अग्निको जलानेमें मदद दी थी, आश्रममें होम आरभ हुआ था।

२—सुगंधित लेप, गोबर।

३—चाडाल, हाथी।

४—केतु, अग्नि।

५—चद्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण।

६—मलिनता=कालोंच, दोप। वहाँ धूममे ही कालोंच थी, किसीके चरित्रमें दोष नहीं था।

७—तोतोंके मुँह पर ललाई थी, क्रोधसे मुँह लाल नहीं होता था।

८—दर्भाग्र ही तेज थे, किसीके स्वभावमे सख्ती नहीं थी।

९—तरलता, अस्थिरता।

१०—नेत्रोंमे ललाई, नयन-प्रीति।

११—गर्दन पकड़ना, कठालिंगन।

१२—मौंजी-बधन, जंजीर बाँधना।

१३—[illegible]

प्रदक्षिणामें ही भ्रान्ति[1] होती थी, शास्त्रार्थमें नहीं, दिव्यकथाओंमें ही वसु[2] संकीर्तन होता था, धन-तृष्णामें नहीं, रुद्राक्षकी मालाकी गणना[3] होती थी, शरीरकी नहीं; मुनि-बालोंका[4] नाश यज्ञ-दीक्षामें ही होता था, मृत्युसे नहीं, रामानुराग[5] रामायणमें होता था, यौवनमें नहीं, मुख पर भङ्ग[6]-विकार बुढापेमें ही होता था, धनाभिमानसे नहीं, इसी प्रकार शकुनि-वध[7] महाभारतहीमें था, वायु-प्रलाप[8] पुराणोंमे ही था, द्विज-पतन[9] बुढापेमें ही होता था, जाड्य[10] उपवनके चंदन-वृक्षोंमें ही था, भूति[11] अग्निमे ही थी, गीत सुननेका शौक मृगोंहीको था, नृत्य-पक्षपात[12] मोरोंहीका था, भोग[13] साँपही को था, श्रीफल[14] का प्रेम बन्दरोंही को था, और अधोगति[15] केवल वृक्षोंके मूलकी ही थी।

५०—ऐसे आश्रमके मध्य-भागको शोभित करता लाल अशोक का एक वृक्ष था। उसके पत्ते लाखके समान लाल थे। मुनियोंने उसकी डालियों पर काले मृगचर्म और जल-पात्र लटका दिये थे। ऋषि-कुमारिकाओं ने उसके मूल-भाग पर हलदीके बहुससे थापे लगा दिये थे। उसके चारों

१—भ्रमण, भ्रम।

२—देव-विशेषोंका वर्णन, द्रव्यका गिनना।

३—गिनती, आदर।

४—मुनियोंके केश, मुनियोंके बालक।

५—राममें भक्ति, स्त्रीमें अनुराग।

६—झुर्री पड़ना, विकृति।

७—दुर्योधनका मामा, पक्षी।

८—वायुदेवका भाषण, अनर्थक प्रलाप।

९—दाँत गिरना, ब्राह्मणोंकी अवनति।

१०—शीतलता, मूर्खता।

११—राख, धन।

१२—नृत्यमें पक्ष गिरना, नृत्य में अभिरुचि।

१३—फन, स्त्री आदि का सुख।

१४—बिल्वफल, धनके फल।

१५—नीचे जाना, नरक।

ओर क्यारी बनी थी। हिरन के बच्चे उसमें से पानी पीते थे। मुनि कुमारिकाओंने उसमें दर्भ, वस्त्र और हार बाँध दिये थे। गाय के ताजे गोबर से उसका तला लीप दिया था। उसी समय वहाँ फूलों का उपहार दिया गया था। उससे वह और भी रमणीक मालूम होता था। वह बहुत बड़ा नहीं था तो भी चारों ओर फैलनेसे उसका अवकाश विस्तीर्ण लगता था। उसकी छायामें बैठे भगवान् जाबालिमुनि को मैंने देखा। जैसे समुद्रोंसे भुवन, कुल-पर्वतोंसे मेरु, यज्ञकी अग्नियोंसे यज्ञ, सूर्योंसे प्रलय दिवस और कल्पोंसे काल घिरा रहता है उसी तरह महर्षियोंसे जाबालि परिवृत थे। भयानक शापके डरसे मानो देह कँपाती, प्रणयिनीके समान केशों[1] का ग्रहण करती, क्रुद्धकी भाँति भ्रू-भंग[2] करती, उन्मत्तकी तरह गमनमें[3] स्खलन करती, अलंकार-युक्त स्त्रीकी तरह तिलक[4] प्रकट करती, व्रतधारिणीकी भाँति भस्म-धवल[5] देह पड़ती वृद्धावस्थाने उनका शरीर श्वेत कर दिया था। उनकी लम्बी और बुढ़ापेके कारण सफेद जटा ऐसी मालूम होती थी मानो तपसे सब मुनियोंको जीत कर प्राप्त की हुई ऊँची धर्म-पताका हो, स्वर्गमें जानेके लिए इकट्ठी की हुई पुण्यकी रस्सियाँ हों और बहुत दूर तक फैले हुए तप रूपी वृक्षके फूलोंकी मंजरी हो। भस्मके त्रिपुंड्से उनका माथा ऐसा मालूम होता था मानो गंगाके तीन प्रवाहोंसे युक्त हिमाचलका शिला-तल हो। आँधी रक्खी हुई चंद्रकलाके समान तथा सिलवटें पड़नेसे शिथिल हुई दोनों भौंओंसे उनकी दृष्टि रुक गई थी। मन्त्राक्षरोंके निरंतर जपनेके कारण खुले रहते अधर-पुटमेंसे

१—प्रणयिनी केश पकड़ लेती है, वृद्धावस्थाने केशोंको सफेद कर दिया था।

२—क्रुद्धा स्त्री भौं चढ़ा लेती है, वृद्धावस्थाने भौंओंमें सिलवटें डाल दी थीं

२—उन्मत्तके पैर सीधे नहीं पड़ते, वृद्धावस्थामें भी मनुष्यके पैर डिगमिगाने लगते हैं।

३—अलंकार युक्त स्त्री माथेमें तिलक लगाती है, वृद्धावस्थाने शरीरमें काले-काले चिन्ह प्रकट कर दिये थे।

४—व्रतधारिणी शरीर पर भस्म लगानेसे श्वेत होती है, वृद्धावस्था शरीर को भस्मके समान श्वेत कर देती है।

दत-किरणे बाहर निकल रही थीं जो सत्यके अकुर, इद्रियोकी निर्मल वृत्ति तथा करुणा-रसके प्रवाहके समान लगती थी। उनसे आगेका हिस्सा श्वेत हो जानेके कारण वे निर्मल गगा-प्रवाहको उगलते जन्हु के समान दीखते थे। निरन्तर सोम पीनेसे सुगंधित हुए श्वाससे आकर्षण किये गये—शरीरधारी शापाक्षर के समान—सर्वदा मुखके पास ही घूमते चचल भौंरे जरा भी उनके पाससे नहीं हटते थे। अत्यन्त कृशता से उनके गाल बैठ गये थे। ठोडी तथा नाक बड़ी ऊँची निकल आई थी। आँखोंकी पुतलियाँ कुछ ऊपर चढ गई थीं। पलकोंमे थोड़े ही बाल रह गये थे। कान के छेद लम्बे रोमोंसे ढक गये थे। दाढी नाभि तक लटक गई थी। अत्यत चचल इद्रिय-रूपी घोडोंको भीतर ही रोकनेकी लगामके समान, लम्बी-लम्बी नाडियोंसे उनका कठ निरन्तर व्याप्त था। शरीरकी अत्यन्त विरल हड्डियाँ ऊपर निकल आई थी। कधे पर सफेद जनेऊ लटक रहा था। उनका शरीर पवनसे पैदा हुई छोटी-छोटी तरगों वाले तथा तैरते हुए मृणालोंसे युक्त मदाकिनीके प्रवाहके समान निर्मल देख पड़ता था। स्वच्छ स्फटिक-मणिके टुकड़ोंकी बनाई हुई और उज्ज्वल तथा बड़े बड़े मोतियोंकी गुथी हुई, सरस्वतीके हारके समान दीखती, रुद्राक्षकी माला वे अपनी हिलती उँगलियोंके बीचमे फेरते थे। उससे दिन-रात घूमते तारामडलवाले दूसरे ध्रुवके समान उनका प्रकाश था। ऊपर उठी हुई नसोंके जालके कारण ऐसे लगते थे मानो लम्बी बढी हुई लताओंसे वेष्टित पुराना कल्पवृक्ष हो। ...ने मानसरोवरमे धुलनेसे सफेद हुआ, रेशमी कपड़ेके समान, निर्मल ... ओढ रक्खा था। वह चद्रमाकी किरणोंका, अमृतके झागका, अथवा ...सतान×के ततुओंका बनाया हो ऐसा, दूसरा बुढापेका जाल सा, लगता ...। उनके पास तिपाई पर एक स्फटिकमय कर्मडल रक्खा था, जिसमे मदा-...कीनीका जल भरा था। उससे वे ऐसे लगते थे जैसे राजहससे मिले हुए कमलों का समूह शोभायमान हो। स्थिरतामें पर्वतोंका, गभीरतामे साग-रोंका, तेजमें सूर्यका, शान्तिमे चंद्रका, और निर्मलतामे आकाशका मानो वे मुकाबला करते थे।

× सतान = देव-वृक्ष।

५१—गरुडकी तरह अपने प्रभावसे उन्हे सब द्विजो[1] पर आधिपत्य मिला था, ब्रह्माके समान वे आश्रम[2] गुरु थे, पुराने चदन-वृक्षकी तरह उनकी जटाएँ सर्प-कचुक धवल थी, प्रशस्त गजके समान उनके कर्ण[4]-बाल लटकते थे, बृहस्पतिके समान उन्होंने जन्मसे ही कचका[5] सवर्धन किया था, दिनके समान उनका मुख[6] अर्कबिंब-भास्कर था शरत्कालकी तरह वे क्षीणवर्ष[7] थे, भीष्म पिताके समान उनकी सत्यव्रत[8] पर प्रीति थी, पार्वतीके हाथकी तरह वे रुद्राक्ष[9] ग्रहण करनेमे निपुण थे, शिशिर समयके सूर्यकी तरह उन्होंने उत्तरासग[10] लिया था, वड़वाग्निके समान वे सदा पय पान[11] करते थे, सूने

१—गरुड पक्षियो के अधिपति थे, जाबालि ब्राह्मणोके।

२—ब्रह्मा चारो आश्रमोके प्रवर्तक है, जाबालि अपने आश्रमके गुरु थे।

३—वृक्षकी जड़ सॉपकी कॉचलीसे श्वेत होती है, जाबालिकी जटा सॉप की कॉचलीके समान श्वेत थी।

४—हाथीके कान तथा पूँछके बाल लटकते है, जाबालिके कानके बाल लटकते थे।

५—बृहस्पतिने अपने पुत्र कचका सवर्धन किया था, जाबालिने बालोको बढाया था।

६—दिनका मुख अर्थात् प्रभात सूर्यसे प्रकाशित होता है, उनका मुख भी सूर्यबिबके समान दीप्त था।

७—शरत्कालमे वर्षा नही रहती, उनको बहुत वय बीत चुका था।

८—भीष्मके पिताकी अपने पुत्र सत्यव्रत पर प्रीति थी, उनके उत्तम आचरण पर।

९—क्रीडामे पार्वती हाथसे शिवजीकी आँखे बद कर लेती है, उनके पास रुद्राक्षकी माला थी।

१०—शिशिरमे सूर्य उत्तरायण होता है, उन्होने दुपटा ओढा था।

११—वड़वाग्नि जल सोखती है, वे दूध पीते थे।

नगरकी तरह वे दीन, अनाथ और विपन्न-शरण[1] थे और शिवकी तरह उनका शरीर भस्म-पाण्डुरोमाश्लिष्ट[2] था।

५२—उनको देखते ही मैंने विचार किया—अहो! तपका कैसा प्रभाव है कि इनकी तपे हुए सुवर्णके समान स्वच्छ और बिजलीके समान चमकती शान्त मूर्ति भी नेत्रोंके तेजको दाब लेती है। सर्वदा उदासीन होने पर भी इनकी मूर्ति, अपने महा प्रभावसे, प्रथम आनेवालेको मानो कुछ डराती सी है। थोड़ा तप करनेवाले तपस्वियोंका भी, शुष्क घास और काश-कुसुममें पड़ी अग्निके समान, चचल वृत्तिका तेज सदा स्वभावसे ही असह्य होता है, फिर ऐसे पाप-क्षयकारी भगवान्‌के तेजकी तो बात ही क्या है कि जिनके चरणोंकी वदना सब ससार करता है, जिनका मल निरतर किये हुए तपसे धुल गया है और जो अपने दिव्य चक्षुसे सब ससारको हथेली पर रक्खे हुए आँवलेकी तरह देख सकते हैं! महामुनियोंके नाम लेने मात्रसे ही पुण्य होता है, फिर साक्षात् दर्शनका तो कहना ही क्या है! यह आश्रम धन्य है जिसे ऐसे अधिपति मिले हैं। अथवा सब भुवनतल ही धन्य है, क्योंकि इन पृथ्वीतलके ब्रह्माने इसे सेवित कर रक्खा है। सब मुनि दिन-रात अन्य काम छोड़ कर दूसरे ब्रह्माके समान इन महापुरुषके मुखकी पवित्र कहानियाँ सुननेमें टकटकी बाँध कर देखते-देखते इनकी सेवा करते हैं। वे सब धन्य हैं! .ती भी सर्वदा अत्यन्त[3] प्रसन्न, करुणा-जल बरसाते, अगाध गभीरता वाले, सुन्दर द्विजकुल[4] परिवृत इनके मानस[5]में मुख-कमलके स्पर्शका अनुभव हुई रहती है। वह भी धन्य है! ब्रह्माके चार मुख रूपी कमलोंमें रहने ले वेदोंको बहुत समय पीछे यह दूसरा उचित स्थान मिला है। जैसे वर्षा

१—शून्य नगरमें शोभाहीन, अनाथ और खाली घर होते हैं, ये दीन, अनाथ और विपन्नोंके आश्रय थे।

२—शिवका शरीर भस्मसे पांडुर और उमासे आश्लिष्ट है, उनका शरीर राखके समान सफेद रोमोंसे युक्त था।

३—सरोवर—मल-रहित, मानस—ईर्षादि-रहित।

४—सरोवर—पक्षियों से परिवृत, मानस—दाँतोंसे परिवृत।

५—मानसरोवर, जाबालिका मन।

ऋतुमे मलीन हुई नदियाँ शरत्काल आने पर निर्मल हो जाती हैं उसी तरह जगत्में कलिकालसे मलीन हुई विद्या इनके संसर्गसे फिर स्वच्छ हुई है। कलियुगके विलासका अपमान करके सर्वात्मासे यहीं बसते भगवान धर्मको सचमुच सतयुगकी याद नहीं आती होगी। इन महामुनिको पृथ्वी पर बैठा देख कर आकाशको अब सप्तर्षि मडलके रहनेसे अभिमानकी जगह नहीं रही है।

२३—अहो। वृद्धावस्था भी बडी जबरदस्त है। प्रलय कालके सूर्यकी किरणोंके समान दुर्निरीक्ष्य और चद्र-किरणोंके समान सफेद इनके बालोंकी जटामें गिरती वह जरा भी नहीं डरी। इस तरह आसानीसे गिर पडी जैसे महादेवकी जटा में गगा और अग्निकी ज्वालामे दूधकी आहुति गिरती हो। इन महर्षि के होमे हुये बहुतसे घीमेसे निकलते धूम से आश्रम मलीन हो गया है, इस कारण इनके प्रभावसे मानो डर कर ही सूर्य की किरणें तपोवन दूरसे त्याग देती हैं। यहाँ हवासे चंचल और ऊपर उठती लपटोंको एक जगह समेट कर अग्नि, मत्रसे पवित्र किये हविको, मानो अजलि बाँध कर स्नेह पूर्वक ग्रहण करता है। दुकूल-रूपी वल्कलों को फडफडाती, आश्रम-लताओंके फूलों की सुगधि लाती, और मद मद बहती यह पवन मानो डरती डरती इनके पास आती है। महाभूत भी प्राय तेजका पराजय नहीं कर सकते। ये महा-पुरुष सब तेजस्वियोंमे धुरधर हैं। इन महात्माके होनेसे जगत् दो सूर्य-युक्त मालूम होता है। इनके आधारसे पृथ्वी मानो निष्कप हो गई है। ये करुण-रस के प्रवाह, ससार सागरसे पार होनेके लिए सेतु, क्षमा-रूपी जलके आधार, तृष्णा-रूप भाड़ीके कुठार, सतोषामृतके सागर, मोक्षमार्गके उपदेशक, अशुभ ग्रहोंके अस्ताचल, शान्ति-वृक्षके मूल, बुद्धि-चक्रके मुख्य आधार, धर्मध्वजाके स्थिति-वंश, सब विद्याओंके अवतरणके तीर्थ हैं। लोभ रूपी समुद्रके बडवानल शास्त्र रूपी रत्नों की कसौटी, प्रेम-रूपी पल्लवोंके दावानल, क्रोध-रूपी सर्पके महामत्र, अज्ञान-रूपी अंधकार के सूर्य, नरक-द्वारके अर्गला, सब आचारोंके कुल-भुवन, मगल वस्तुओंके घर, मद-विकारोंके अस्थान, सन्मार्गके दर्शक, साधुताकी उत्पत्ति, उत्साह चक्रकी नेमि, सत्वके आश्रय, कलियुगके शत्रु, तप के भडार, सत्यके मित्र, सरलताके क्षेत्र, और पुण्य-सचयके उत्पत्ति-स्थान हैं। मत्सरको इन्होंने अवकाश नहीं दिया है। विपत्तिके शत्रु हैं।

अस्थान हैं। अभिमानके प्रतिकूल हैं। दैत्योंके प्रिय नहीं हैं। रोषके अधीन नहीं हैं। विषयोंके वश नहीं हैं। सुखके अभिमुख नहीं है। इन महामुनिके प्रभावसे ही सब तपोवनमें वैर शान्त हो गया है और मत्सरका कहीं नाम भी नहीं।

५४—अहो! महात्माओंका प्रभाव कितना बड़ा होता है! यहाँ पशु पक्षी भी अपना स्वाभाविक विरोध छोड़, शान्त आत्मासे, तपोवनमें रहनेके सुखका अनुभव करते हैं क्योंकि खिले हुए नीले कमलोंकी रचनाका अनुकरण करते, ऊपर उठे सैकड़ो सुन्दर चंद्रकवाले, और हिरन के नेत्रोंकी कान्तिके समान विचित्र मयूरोंके समुदाय में धूपसे सतप्त हुआ यह सर्प इस प्रकार नि शक घुसा जाता है मानो नई नई दूब के खेतमें जाता हो। इस हिरन के बच्चे का सिंहके केशर-रहित बच्चोंके साथ मेल हो गया है। यह अपनी माताको छोड़ सिंहनीके थनमेंसे निकलती दूधकी धार पीता है। ये हाथीके बच्चे सिंह की चन्द्र-किरणोंके समान श्वेत सटाको मृणाल समझ कर खेंचते हैं और वह अपनी आँखें आधी मीच कर प्रसन्न होता है। यहाँ बन्दरोंके झुण्डोंने अपनी स्वाभाविक चपलता छोड़ दी है। वे नहाये हुए मुनि कुमारोंके लिए फल ला देते हैं। मदांध हाथियोंके गण्डस्थल पर बैठे भौंरे भी निश्चल होकर मद-जल पीते हैं। हाथी दयाके कारण कान हिला कर उन्हें नहीं उड़ाते हैं। कहाँ तक कहूँ? निश्चेतन वृक्ष भी व्रत करते हों ऐसे दीखते हैं। तपके अग्नि-.. धूम ऊपर चढ़ा जा रहा है। उसके निरन्तर संसर्गसे, वृक्ष ऐसे लगते मानो उन्होंने कृष्ण चर्मका दुपट्टा ओढ़ा हो, तथा वे फल-मूल और ... धारण करते हैं। जब वृक्षोंका यह हाल है, फिर सचेतन प्राणियों की बात ही क्या है?

५५—इस प्रकार मैं विचार कर रहा था कि इतनेहीमें हारीतने मुझे उसी लाल अशोकके नीचे एक जगह छायामें रक्खा। वह अपने पिताके चरण छूकर तथा वंदना करके उनसे जरा दूर पड़े कुशाके आसन पर बैठ गया। अन्य सब मुनि मुझे देख कर उससे पूछने लगे—यह तोता कहाँसे लाये? उसने कहा—यहाँसे नहाने जाता था तब मैंने देखा कि पद्म सरोवरके तीर पर वृक्षोंके किसी घोंसलेमेंसे गिर कर यह गरम गरम भभकती रेतीमें पड़ा है। तापसे हाँप रहा था। ऊँचेसे गिरनेके कारण इसका शरीर विह्वल हो गया था

और इसमे थोड़ी ही जान बाकी थी। इसे देख कर मुझे दया तो आई, पर उस बड़े वृक्ष पर तपस्वियोंके लिये चढना बहुत कठिन समझ मे इसे घोंसलेमें न रख सका और अपने संग ले आया। इसलिए जब तक इसके पर न आवें और यह अंतरिक्षमें उड न सके तब तक इसी आश्रमके किसी तरु-कोटरमें यह बिचारा भले ही रहे और हमारे तथा सब मुनि-कुमारोंके लाये हुए नीवारकी किनकी तथा फलोंके रससे अपना निर्वाह करे। हमारा धर्म है कि अनाथका पालन करें। जब इसके पर निकल आवें और यह आकाशमे उड़ने लायक हो जाय तब मनमें आवे जहाँ चला जाय अथवा हिल जानेसे भले ही यहाँ बना रहे। ऐसी ऐसी बातें मेरे सबधमें सुननेसे भगवान् जाबालिको भी कुछ कुतूहल उत्पन्न हो गया। वे अपनी गर्दन जरा मोड़ कर, पवित्र जलसे मेरा प्रक्षालन करते हों इस तरह, अत्यन्त शान्त दृष्टिसे मुझे परिचितकी भाँति बहुत समय तक बार बार देखा किये। फिर कहने लगे—यह तो अपने ही अविनयका फल भोग रहा है। जाबालि त्रिकालदर्शी महात्मा थे। तपस्याके बलसे सब जगत्को दिव्य नेत्रोंसे करतल पदार्थकी भाँति देखते थे। पूर्व जन्मोंको जानते थे। होनहार वस्तुको भी बतलाते थे और आँखोंके सामने आये हुए प्राणियोंकी अवस्थाका प्रमाण कह देते थे।। वहाँके सब तपस्वी तो इनका प्रभाव जानते ही थे। इसलिए यह वाक्य सुनते ही उनको कुतूहल हुआ कि इसने क्या अविनय किया होगा? किस लिये किया होगा? कहाँ किया होगा? दूसरे जन्ममें यह कौन था? इन बातोंको जानना चाहिए। वे महामुनिसे प्रार्थना करने लगे—भगवन्, कृपा-पूर्वक कहिये कि यह कैसे अविनयका फल भोगता है? जन्मान्तरमें यह कौन था? पक्षियोंमें यह कैसे पैदा हुआ और इसका नाम क्या है? हमारा कुतूहल आप दूर कीजिए, क्योंकि आपने ही हमारे मनमें आश्चर्य पैदा किया है।

५६—तपस्वियोंकी यह प्रार्थना सुन कर महामुनिने उत्तर दिया—इसकी आश्चर्यजनक कहानी बहुत लम्बी है। दिन थोड़ा ही बाकी है। मुझे नहाना है और तुम लोगोंका भी पूजनका समय निकला जाता है। इसलिए तुम उठो और सब नित्य-कर्म कर लो। सायंकालको जब तुम फल मूलोंका आहार करके निबट कर फिर बैठोगे तब मैं शुरूसे सब कथा कहूँगा कि यह कौन है, अन्य जन्ममें इसने क्या किया और इस लोकमें यह किस रीतिसे पैदा हुआ? अभी

तो इसे आहार देकर आराम करने दो। मैं जैसे जैसे कहता जाऊँगा वैसे ही वैसे इसको भी अपने जन्मान्तरका ठीक ठीक हाल इस प्रकार याद आता जायगा मानो स्वप्नमें हुआ हो। यों कहते कहते जाबालि सब मुनियोंके साथ उठे और फिर उन्होंने स्नानादिक विधि और उचित दिनकृत्य किया।

५७—तब तक दिन ढल गया। नहानेके पीछे अर्घ देते समय मुनियोंने जो लाल चंदन धरती पर डाला था उसीका मानो आकाश-स्थित सूर्यने अंगमें साक्षात् लेप किया। क्षीण तापवाला दिन इस प्रकार कृश हो गया मानो ऊँचा मुँह करके, सूर्य बिंबके सामने दृष्टि रख कर, ऊष्म पान करनेवाले ऋषि उसका तेज पी गये हों। सप्तर्षि मंडलका स्पर्श त्याग करनेकी इच्छासे ही मानो पाद[1] समेट कर, कबूतरके चरणके समान, गुलाबी सूर्य आकाशमेंसे नीचे लटकने लगा। पश्चिम समुद्रमें कुछ कुछ लाल किरणोंवाले सूर्य मंडलका प्रतिबिंब ऐसा दीखने लगा मानो जल-शय्या पर सोये हुए विष्णुके नाभि-कमलमेंसे मधु-धारा निकल रही हो। पृथ्वीतल छोड़ कर तथा कमल-वनका त्याग करके, सन्ध्या-समय, सूर्यकी किरणोंने, पक्षीके समान, तपोवनके वृक्षों और पर्वतोंकी चोटियों पर वास किया। ऊपर कहीं कहीं लाल धूप पड़नेसे थोड़ी देर तक आश्रमके वृक्ष ऐसे दीखने लगे मानो मुनियोंने उन पर लाल वल्कल लटकाए हों। सूर्य अस्त होनेके बाद पश्चिम समुद्रके तट-से निकलती लाल लाल सन्ध्या प्रवाल-लताके समान दीखने लगी। उस समय आश्रममें ध्यान होने लगा, एक ओर होमकी धेनु दुही जाने लगी, उसकी दूधकी धाराकी मनोहर ध्वनिसे आश्रम अत्यन्त मनोहर मालूम होने लगा। अग्निहोत्र की वेदियों पर हरे कुश बिछाये जाने लगे। मुनि कुमारिकाएँ इधर उधर दिग्देवताओंको पके अन्नकी बलि देने लगीं। सूर्य अस्त होनेके बाद विहार करके आती, रक्त-तारकवाली[2], तपोवन धेनुके समान, कपिल सन्ध्या कहीं कहीं मुनियोंको दिखाई दी। थोड़ा ही समय बीता था कि सूर्यका वियोग होनेसे शोकग्रस्त कमलिनीने कली रूपी कमंडल, मृणाल रूपी जनेऊ, मधुकर-रूपी रुद्राक्ष तथा हंस रूपी श्वेत वस्त्र इस प्रकार

१—किरण।

२—धेनुके शरीरमें लाल लाल चिन्ह थे; सन्ध्यामें तारे रक्त थे।

धारण किया जैसे परदेश गये पतिकी प्राप्तिके लिए व्रत करने पर कोई स्त्री कमडल, जनेऊ, रुद्राक्षकी माला और सफेद धोती धारण करती है। इस तरह मानो कमलिनी सूर्यके समागमके लिये अनुष्ठान करने लगी। पश्चिम समुद्रके जलमें सूर्यके गिरनेके वेगसे उछले हुए जलके ठंडे कणोंके समान तारे आकाशमें आये। उसी समय तारोंसे छाया हुआ आकाश ऐसा दीखने लगा मानो सन्ध्या-पूजन करनेमें सिद्ध-कन्याओं द्वारा फेंके गये फूलोंसे चितकबरा हो गया हो। क्षणभरमें ही सन्ध्याका सब रग इस तरह जाता रहा मानो ऊपर मुँह किये हुए मुनियोंके द्वारा, प्रणाम-समय, ऊपरको फेंके अञ्जलिके पानीसे धुल गया हो।

५८—सन्ध्याका क्षय होनेके बाद उसके विनाशसे दु ख पाकर रात्रिने काले मृग चर्मके समान नया अधकार धारण किया। मुनियोंके हृदयको छोड़ सब आश्रममें बिलकुल अंधेरा छा गया। सूक्ष्म-तिमिर-तमाल[1]-वन-लेखा जिसके पर्यन्त भागमें है, सप्तर्षि मडलका[2] जिसमें वास है, अरुन्धतीके[3] चरण-स्पर्शसे जो पवित्र है, आषाढ[4] जिसमें उपस्थित है, मूल[5] जिसमें दृष्टि आता है और जिसके एक स्थानमें चारु तारक[6] मृग हैं ऐसे अमर लोकके आश्रम-के समान आकाशमें, चद्रमाने रविका अस्त हुआ सुन, वैराग्य[7] ग्रहण कर, धौत दुकूल-वल्कल-श्वेत अंबर[8]-युक्त तारान्त पुर[9]-सहित प्रवेश किया। चंद्रमासे

१—आश्रममें सूक्ष्म तिमिरके समान तमालके वृक्षोंकी कतारें थीं, आकाश मे अंधकार-रूपी तमाल वृक्ष थे।

२—आश्रममे सात ऋषि, आकाशमें सात तारे।

३—आश्रममें वसिष्ठ पत्नी, आकाशमें अरुधती नामका तारा।

४—आश्रममें पलाश-दंड, आकाशमें पूर्वाषाढ़ नक्षत्र

५—आश्रममे जड़ें; आकाशमें मूल नक्षत्र।

६—आश्रममें सुन्दर आँखोंवाले हिरन, आकाशमे सु दर मृगशिर नक्षत्र।

७—ससारसे विरक्ति, विशेष राग (रक्तता)।

८—धुले हुए दुकूल रूपी वल्कल के श्वेत वस्त्र से युक्त, धुले हुए दुकूलके समान धवल आकाशसे युक्त।

९—हृदय ब्रह्ममें लीन करके, अश्विनी आदि ताराओंके साथ वर्तमान अन्तःपुरसे युक्त।

भूषित और तारा-रूपी कपालके टुकड़ोंसे अलङ्कृत शिवके मस्तकके समान आकाशमेंसे सागर भर डालती गंगाके समान हंस धवल चाँदनी पृथ्वी पर छिटकी। चंद्रमाके बिंबमें हिरन ऐसा दीखने लगा मानो फूले हुए सफेद कमलोंके तालावमें पानी पीनेके लोभसे उतरा हुआ निश्चल हिरन कीचड़में फँस गया हो। अँधेरा दूर हो जानेके बाद तालावमें चंद्रमाकी किरणें ऐसी शोभायमान हुईं मानो वर्षाऋतुके बाद, सिंधुवारके ताजे फूलके समान सफेद, हंस आकाशसे उतर कर कुमुद-सरोवरोंमें तैरते हों। चंद्रमाके बिंबमेंसे जब उदयकी सब ललाई जाती रही उस समय वह ऐसा दीखने लगा मानो मंदाकिनी में नहानेसे धुले हुए सिंदूरवाला ऐरावतका कुंभस्थल हो।

५६—धीरे धीरे जब चंद्रमाका उदय पूरा हो जानेसे अमृतकी रजके समान चाँदनीसे सब जगत् सफेद हो गया, खिले हुए कुमुद-वनकी सुगंध लाती, रातके पहले पहरकी पवन, ओसकी बूँदोंके कारण, धीरे धीरे चलने लगी, सुखसे बैठे, धीरे धीरे मुँह हिला कर जुगाली करते आश्रमके हिरन—जिनकी आँखें नींदसे भारी थीं और पलक बंद थे—पवनका अभिनंदन करने लगे, और केवल आधे पहर रात बीती तब हारीत, आहार कर चुकनेके पीछे, मुझे लेकर मुनियोंके साथ अपने पिताके पास जा पहुँचा। उसके पिता चाँदनीसे चमकते तपोवनके एक भागमें बेंतके आसन पर बैठे थे। थोड़ी दूर खड़ा जाल-पाद शिष्य दर्भका पवित्र हाथमें लेकर धीरे धीरे उनको हवा कर रहा था। हारीत उनसे कहने पिताजी, सब तपस्वियोंका हृदय आश्चर्यजनक वृत्तान्त सुननेके कुतू- व्याकुल है और वे आपके पास मंडल बाँध कर खड़े हैं। इस तोतेके थकावट भी अब जाती रही है। इसलिए आप कहिये कि इसने जन्ममें क्या किया था? यह कौन था और अब क्या होगा? जब वह प्रकार कह चुका तब मुझे आगे खड़ा देख और सब मुनियोंको एकाग्र चित्तसे सुननेमें तत्पर हुआ जान वे धीरे धीरे बोले—जो कुतूहल है तो सुनो—

६०—अवन्ती[1] में उज्जयिनी नामकी नगरी है। उसने अमरलोककी शोभा को भी जीत लिया है। वह सब भुवनोंका तिलक है। सतयुगकी मानो जन्म-भूमि है। तीनों भुवनोंकी उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाले श्री

१—मध्य-प्रदेशान्तर्गत मालवा।

महाकालेश्वर महादेवने अपने रहनेके योग्य मानो दूसरी पृथ्वी बनाई है। उसके चारों ओर रसातल के समान गहरी पानीकी खाई ऐसी मालूम होती है मानो उज्जयिनीको दूसरी पृथिवी समझ कर समुद्र आया हो। चारों तरफ सफेद चूनेकी शहरपनाह ऐसी मालूम होती है मानो महादेवकी, वहाँ रहने पर प्रीति देख, आकाशको छूते हुए शिखरवाला कैलाश पर्वत आया हो। बाजारकी सड़कें अगस्त्य ने पिए गए जलवाले समुद्र के समान चौड़ी हैं। उनमें सोनेके बुरादे की रेत बिछी है और शख, सीप, मोती, मूँगे, तथा मरकत-मणियोंके ढेर बिकनेके लिए रक्खे हैं। वहाँ देव, दानव, सिद्ध, गधर्व, विद्याधर और नागों से अलकृत चित्रशालाएँ ऐसी मालूम होती हैं मानो दिन-रात होते जलसोंमें शामिल होती स्त्रियोंको देखनेके शौकसे देवताओं के विमानोंकी कतारें आकाशमेंसे उतर आई हों। चौराहों पर देव मदिर हैं। उनकी शोभा, मथनेके समय दूध छलकनेसे सफेद हुए, मन्दराचलके समान है। उनके शिखरों पर सोनेके निर्मल कलश रक्खे हैं जिन पर सफेद ध्वजाएँ हवा से फहराती हैं। वे मदाकिनी सयुक्त हिमालयके शिखरके समान दीखते हैं।

६१—उस नगरीकी सीमा के पास की भूमि केवड़ेकी रजसे धूसर हो गई है। वहाँ कूए बने हैं और हरे हरे बगीचोंके कारण अँधेरा हो रहा है। कूपोंके चबूतरों पर चूने की सफेदी हो रही है और रहटोंसे पानी खींच कर उपवनोंमें सिंचाई की जाती है। मकानोंके साथ बने हुए बगीचोंमें मदसे गुंजार करते भ्रमरोंने अँधेरा कर रक्खा है। चचल उपवन लताओंके फूलोंकी परिमलसे पवन सुगधित हो जाती है। घर घर मदन वृक्षके दंड पर मछलीके निशानवाली ऊँची ध्वजाएँ खड़ी हैं, उनमें मूँगे लटक रहे हैं, सौभाग्य सूचक घंटियाँ बज रही हैं, लाल रेशमी कपड़ेकी पताकाएँ फहरा रही हैं और लाल चमर बँध रहे हैं। इससे मालूम होता है कि वहाँ कामदेव की पूजा होती है। सर्वदा वेदाभ्यास की ध्वनि होनेसे उस नगरीका सब पाप धुल गया है। वहाँ धारा-गृहों में मृदंग का गभीर स्वर हो रहा है, पानीकी छोटी छोटी बूँदोंकी वर्षा हो रही है, सूर्यकी किरणों से भूमि पर इन्द्रधनुष बन रहे हैं और पंख फैला कर नाचते मत्त मयूरोंके शब्दसे कोलाहल हो रहा है। उस नगरीमें हजारों सरोवर हैं। वे खिले हुए कुवलयोंके कारण मनोहर लगते हैं, प्रफुल्लित

कमलोंसे उनका बीचका हिस्सा सफेद हो गया है, और वे इन्द्रके नेत्रोंके समान अनिमिष[1]-दर्शनसे सुहावने मालूम होते हैं। उसकी हर एक दिशामें हाथीदाँतकी चन्द्रशालाएँ बनी हैं। वे केलोंके घने वनसे घिरी हैं और अमृतके झागके समान सफेद हैं। उनसे वह नगरी सफेद हो गई है। उसके चारों तरफ शिप्रा नदी बह रही है। उसका पानी यौवनमदसे मत्त हुई मालवेकी स्त्रियोंके कुच-कलशोंसे क्षुभित हुआ है और भगवान महाकालके मस्तक पर गंगाको देख उसकी ईर्ष्यासे ही मानो वह हमेशा तरग रूप भ्रकुटी चढा कर उससे आकाशको स्पर्श करती है।

६२—वहाँके विलासी जन हर-जटा-चन्द्रके समान सब भुवनोंमें विख्यात [2]यशवाले और [3]कोटिसार हैं। मैनाक पर्वतके समान उनमें भी [4]पक्षपात नहीं होता है। मंदाकिनीके प्रवाहके समान उनमें कनक-पद्म[5] राशि दिखाई देती है। स्मृति-शास्त्रके समान वे सभा, छात्रालय, कूप, प्याऊ, उपवन, मंदिर, पुल तथा यत्रोंके [6]प्रवर्तक हैं। मंदराचलकी तरह उन्होंने सब सागर-रत्न सार-उद्धृत[7] कर लिया है। गारुड़ पास[8] होने पर भी वहाँके लोग भुजंग सगसे डरते हैं। खलोपजीवी[9] होने पर भी उनका धन सज्जन भोगते हैं। वीर होने

१—इन्द्रकी दृष्टि निमेष रहित है, सरोवरमें मछलियाँ हैं।

२—चद्रमाकी कीर्ति, मनुष्योंका सौंदर्य।

३—चद्रमाके गोल किनारे मुख्य हैं; मनुष्य करोड़पती हैं।

४—मैनाकके पंख नहीं काटे गए थे, मनुष्योंमें तरफदारी नहीं होती।

५—मंदाकिनीमें सुनहरी पद्म हैं, मनुष्योंके पास पद्म सख्याकी सुवर्णमुद्राएँ हैं।

६—स्मृतिमें इनका आदेश होता है, मनुष्य इनका स्थापन करते हैं।

७—मंदराचलने समुद्रसे सब रत्न निकाले थे, मनुष्य शरीर पर उत्तम रत्न धारण करते हैं।

८—गरुड़का मंत्र होने पर भी सर्पसे डरते हैं, मणि होने पर शठोंसे डरते हैं। यहाँ विरोधाभास है।

९—शठ अपने यहाँ पैदा हुए धनसे निर्वाह करनेवाले।

पर भी वे विनीत हैं। प्रियंवद होने पर भी सच बोलते हैं। अभिरूप[1] होने पर भी वे अपनी भार्याओंसे सन्तुष्ट हैं। पर[2]-प्रार्थनासे अनभिज्ञ होने पर भी अतिथि जनोंसे अपने यहाँ आनेके लिये प्रार्थना करते हैं। कामार्थ[3]पर होने पर भी धर्मको प्रधान समझते हैं। अत्यंत बलवान् होने पर भी परलोकसे डरते हैं। अनेक प्रकारके विज्ञान और शिल्पशास्त्रका उन्हें ज्ञान है। वे उदार तथा चतुर हैं। मुसकराहटके साथ बातचीत करते हैं। परिहासमें कुशल हैं। साफ कपड़े पहनते हैं। सब देशोंकी भाषाओंमें प्रवीण हैं। वक्रोक्तिमें निपुण हैं। कथा और कहानी कहनेमें चतुर हैं। सब लिपियोंको पहचानते हैं। महाभारत, पुराण और रामायणमें उनका अनुराग है। बृहत्कथामें कुशल हैं। द्यूत आदि कलाओंमें परंगत हैं। वेदसे उन्हें प्रेम है। पढने लिखनेका व्यसन है। स्वभावमें शान्त हैं। वसन्तकी पवनके समान वे सर्वदा दक्षिण[4] हैं। हिमालयके वनके समान वे अन्तःसरल[5] हैं। लक्ष्मणके समान वे रामाराधन[6]में निपुण हैं। शत्रुघ्नके समान वे भरतसे[7] परिचय रखते हैं। दिनकी भाँति वे मित्र[8]का अनुवर्तन करते हैं। बौद्धकी भाँति वे सर्व अस्तिवादमें[9] शूर हैं। साङ्ख्यशास्त्रकी तरह वे प्रधान[10] पुरुष युक्त हैं और जैनधर्मके समान वे जीवों पर

१—सुन्दर, पंडित।

२—अन्य प्रार्थना, शत्रुओंसे प्रार्थना।

३—रति तथा द्रव्यमें आसक्त, वाञ्छित अर्थमें अनुरक्त।

४—वसंत ऋतुमें दक्षिणकी हवा चलती है, मनुष्य त्यागी हैं।

५—वनके बीचमें सरल वृक्ष होते हैं, मनुष्य हृदयमें साफ हैं।

६—लक्ष्मण रामका आराधन करते थे, मनुष्य स्त्रियोंका सम्मान करते हैं।

७—शत्रुघ्नका भरतसे प्रेम था; मनुष्योंको भरत-प्रणीत नाट्यशास्त्रसे परिचय है।

८—दिन सूर्यके पीछे पीछे चलता है, मनुष्य अपने मित्रोंके अनुगामी हैं।

९—बौद्धोंके तीन भेद हैं उनमेंसे एक सर्वास्तिवादी होते हैं, मनुष्य याचकोंसे 'हाँ' कहनेमें शूर हैं।

१०—सांख्यशास्त्रमें प्रकृति और पुरुष हैं, मनुष्य प्रधान

दया रखते हैं। उस नगरीमें पर्वतोंके समान महल हैं, मोहल्लोंके समान घर हैं और कल्पवृक्षके समान सत्पुरुष हैं। वह अपनी चित्रित दीवारोंसे मानो विश्वरूप प्रकट करती है। सन्ध्याके समान पद्मरागानुकारिणी[1] है। इन्द्र मूर्तिके समान शत यज्ञोंकी[2] अग्निके धूमसे पवित्र है। महादेवकी नृत्यक्रीड़ाके समान सुधा-धवल[3] अट्टहास युक्त है। बूढ़ी स्त्रीकी तरह जातरूप[4] च्युत है। गरुड़-मूर्तिके समान अच्युत[5] स्थितिसे रमणीय लगती है। प्रभातके समान वहाँ सब लोग प्रबुद्ध[6] हैं। भीलोंकी वास-भूमिके समान वहाँ चमर[7] युक्त नागदन्तोंसे घर सफेद हो गए हैं। शेषनागकी मूर्तिकी भाँति वह आसन्न[8] वसुधाधर है। समुद्र-मथन वेलाके समान वहा बड़े बड़े घोषोंसे[9] दिगंतर भर गये हैं। प्रस्तुत अभिषेककी भूमिकी भाँति वहाँ हजारों सुवर्ण-कलश हैं। पार्वती की मूर्तिकी तरह वह महा सिंहासनोचित[10] मूर्ति है। अदितिके समान वह देव-कुलोंसे[11] सेव्य है। वाराहावतारकी लीलाके समान वहाँ हिरण्याक्षका[12] पात

१—सन्ध्या पद्मरागोंके समान लाल होती है, वह पद्मरागासे लाल है।

२—इन्द्रकी मूर्ति शत अश्वमेधोंसे पवित्र थी, वह सैकड़ों यज्ञोंसे।

३—महादेवका हास अमृतके समान सफेद होता है, सफेदी की हुई अटारियाँ ही उसका हास है।

४—बुढियाके रूपका नाश हो जाता है, उसमें सुवर्णके मकान हैं।

५—गरुड़की मूर्ति विष्णुके बैठनेसे अच्छी लगती है, वह अपनी पुरुकी ले।

६—प्रात काल लोग सोकर उठते हैं, वहाँके लोग चतुर हैं।

७—भीलोंके यहाँ चमर और हाथी दाँत लटकते रहते हैं, वहाँ खूँटियों पर चमर लटकते हैं।

८—शेषकी मूर्ति शिर पर पृथ्वीको धारण करती है, उसके पास पर्वत है।

९—वेलामें शब्द हुआ था, वहाँ घोषियोंके घर हैं।

१०—पार्वती बड़े सिंह पर बैठती है, वहाँ सुवर्णासनके योग्य मूर्तियाँ हैं।

११—अदिति देवताओंसे, वह मन्दिरोंसे।

१२—हिरण्याक्ष राक्षस, वहाँ सुवर्णके पाँसे फेंके जाते हैं।

दीखता है। कद्रूकी तरह वह भुजगोंको[1] आनंद देती है। हरिवंशकी कथा की भाँति वह बाल-क्रीड़ासे[2] रमणीय लगती है। अगनोपभोग[3] प्रकट होने पर भी उसका चरित्र अखडित है। वर्णरक्त[4] होने पर भी वह चूनेसे सफेद दीखती है। मोतीके हार लटक रहे हैं तथापि वह विहारभूषण[5] है और बहु-प्रकृति[6] होने पर भी वह स्थिर रहती है।

६३—वहाँ ऊँचे ऊँचे महलोंके शिखरों पर गान करती स्त्रियोंके अत्यन्त मधुर गीत स्वरसे आकृष्ट हुए सूर्यके घोड़े मुँह नीचा करके चलते हैं और रथकी ध्वजा सामने फहरानेसे प्रति दिन ऐसा मालूम पड़ता है मानो सूर्य, जाते जाते, महाकालेश्वरको प्रणाम करता हो। वहाँ सूर्यकी किरणें सिंदूर-मणिकी भूमियों पर मानो सध्या रागसे लाल हुई हों, मरकतमणिके चबूतरों पर मानो नील कमलिनीका स्पर्श करती हों, वैडूर्यमणिकी भूमि पर मानो गगन-तलमें फैली हों, काले अगरुके धूमके मडलमें मानो अँधेरेको दूर करनेमें तत्पर हों, मुक्ताहार पर मानो तारोंकी कतारको मात करती हों, स्त्रियोंके मुख पर मानो खिले हुए कमलका चुम्बन करती हों, स्फटिककी दीवारोंकी प्रभामें मानो प्रातःकालकी चाँदनीके बीचमें पड़ी हों, सफेद ध्वजा पर मानो मदाकिनीकी तरगका स्पर्श करती हों, सूर्यमणि पर मानो पल्लवित हुई हों, और इन्द्रनील मणिकी जालियोंके अन्तरालमें ऐसी शोभायमान मालूम होती हैं मानो राहुके मुँहमें पड़ी हों।

६४—उस नगरीमें कामिनियोंके गहनोंकी कान्तिके कारण कभी अँधेरा न होनेसे चकवा चकवीका वियोग नहीं होता, सुरतप्रदीप व्यर्थ होते हैं, और कामिनियोंके गहनोंकी कान्तिके कारण रात्रियाँ ऐसी मालूम होती हैं मानो कामाग्निका दिग्दाह हुआ हो और बाल-सूर्यका पिंगल प्रकाश फैल गया हो।

१—कद्रू सर्पोंको आनद देती है, वह कामुकोंको।
२—बाल राजाकी क्रीड़ा, बालकोंकी क्रीड़ा।
३—स्त्रियोंका भोग, आँगनोंका उपयोग।
४—लाल रग, ब्राह्मणादि वर्ण अनुरक्त।
५—हार भूषण रहित, बहुत से विहारके स्थानोंसे अलकृत।
६—चचल-चित्त, अनेक प्रकारकी प्रजासे युक्त।

दया रखते हैं। उस नगरीमें पर्वतोंके समान महल हैं, मोहल्लोंके समान घर हैं और कल्पवृक्षके समान सत्पुरुष हैं। वह अपनी चित्रित दीवारोंसे मानो विश्वरूप प्रकट करती है। सन्ध्याके समान पद्मरागानुकारिणी[१] है। इन्द्र मूर्तिके समान शत यज्ञोंकी[२] अग्निके धूमसे पवित्र है। महादेवकी नृत्यक्रीडा के समान सुधा-धवल[३] अट्टहास-युक्त है। बूढी स्त्रीकी तरह जातरूप[४] क्षय है। गरुड़-मूर्तिके समान अच्युत[५] स्थितिसे रमणीय लगती है। प्रभातके समान वहाँ सब लोग प्रबुद्ध[६] हैं। भीलोंकी वास-भूमिके समान वहाँ चमर[७] युक्त नाग-दन्तोंसे घर सफेद हो गए हैं। शेषनागकी मूर्तिकी भाँति वह आसन्न[८] वसुधा धर है। समुद्र-मथन वेलाके समान वहां बड़े बड़े घोषोंसे[९] दिगन्तर भर गये हैं। प्रस्तुत अभिषेककी भूमिकी भाँति वहाँ हजारों सुवर्ण-कलश हैं। पार्वती की मूर्तिकी तरह वह महा सिंहासनोचित[१०] मूर्ति है। अदितिके समान वह देव-कुलोंसे[११] सेव्य है। वाराहावतारकी लीलाके समान वहाँ हिरण्याक्षका[१२] पात

१—सन्ध्या पद्मरागोंके समान लाल होती है; वह पद्मरागोंसे लाल है।

२—इन्द्रकी मूर्ति शत अश्वमेधोंसे पवित्र थी, वह सैकड़ों यज्ञोंसे।

३—महादेवका हास अमृतके समान सफेद होता है, सफेदी की हुई अटारियाँ ही उसका हास है।

४—बुढियाके रूपका नाश हो जाता है, उसमें सुवर्णके मकान हैं।

५—गरुड़की मूर्ति विष्णुके बैठनेसे अच्छी लगती है, वह अपनी एकसी दशासे।

६—प्रातःकाल लोग सोकर उठते हैं, वहाँके लोग चतुर हैं।

७—भीलोंके यहाँ चमर और हाथी दाँत लटकते रहते हैं, वहाँ खूँटियों पर चमर लटकते हैं।

८—शेषकी मूर्ति शिर पर पृथ्वीको धारण करती है, उसके पास पर्वत है।

९—वेलामें शब्द हुआ था, वहाँ घोसियोंके घर हैं।

१०—पार्वती बड़े सिंह पर बैठती है, वहाँ सुवर्णासनके योग्य मूर्तियाँ हैं।

११—अदिति देवताओंसे, वह मन्दिरोंसे।

१२—हिरण्याक्ष राक्षस, वहाँ सुवर्णके पाँसे फेंके जाते हैं।

दीखता है। कद्रू की तरह वह भुजगोंको[1] आनंद देती है। हरिवंशकी कथा की भाँति वह बाल-क्रीडासे[2] रमणीय लगती है। अगनोपभोग[3] प्रकट होने पर भी उसका चरित्र अखण्डित है। वर्णरक्त[4] होने पर भी वह चूनेसे सफेद दीखती है। मोतीके हार लटक रहे हैं तथापि वह विहारभूषण[5] है और बहु-प्रकृति[6] होने पर भी वह स्थिर रहती है।

६३—वहाँ ऊँचे ऊँचे महलोंके शिखरों पर गान करती स्त्रियोंके अत्यन्त मधुर गीत स्वरसे आकृष्ट हुए सूर्यके घोड़े मुँह नीचा करके चलते हैं और रथकी ध्वजा सामने फहरानेसे प्रति दिन ऐसा मालूम पड़ता है मानो सूर्य, जाते जाते, महाकालेश्वरको प्रणाम करता हो। वहाँ सूर्यकी किरणें सिंदूर-मणिकी भूमियों पर मानो संध्या रागसे लाल हुई हों, मरकतमणिके चबूतरों पर मानो नील कमलिनीका स्पर्श करती हों, वैडूर्यमणिकी भूमि पर मानो गगन-तलमें फैली हों, काले अगरुके धूमके मण्डलमें मानो अँधेरेको दूर करनेमें तत्पर हों, मुक्ताहार पर मानो तारोंकी कतारको मात करती हों, स्त्रियोंके मुख पर मानो खिले हुए कमलका चुम्बन करती हों, स्फटिककी दीवारोंकी प्रभामें मानो प्रातःकालकी चाँदनीके बीचमें पड़ी हों, सफेद ध्वजा पर मानो मंदाकिनीकी तरंगका स्पर्श करती हों, सूर्यमणि पर मानो पल्लवित हुई हों, और इन्द्रनील मणिकी जालियोंके अन्तरालमें ऐसी शोभायमान मालूम होती हैं मानो राहुके मुँहमें पड़ी हों।

६४—उस नगरीमें कामिनियोंके गहनोंकी कान्तिके कारण कभी अँधेरा न होनेसे चकवा चकवीका वियोग नहीं होता, सुरतप्रदीप व्यर्थ होते हैं, और कामिनियोंके गहनोंकी कान्तिके कारण रात्रियाँ ऐसी मालूम होती हैं मानो सामायिक दिग्दाह हुआ हो और बाल-सूर्यका पिंगल प्रकाश फैल गया हो।

१—कद्रू सर्पोंको आनंद देती है, वह कामुकोंको।

२—बाल राजाकी क्रीडा, बालकोंकी क्रीडा।

३—स्त्रियोंका भोग, आँगनोंका उपयोग।

४—लाल रंग, ब्राह्मणादि वर्ण अनुरक्त।

५—हार भूषण रहित, बहुत से विहारके स्थानोंसे अलंकृत।

६—चंचल-चित्त, अनेक प्रकारकी प्रजासे युक्त।

कामाग्निको पैदा करनेवाला पालतू कलहंसोंका कोलाहल दिन-रात सुनाई देता है । वह ऐसा मालूम होता है मानो महादेवके पास होनेसे कामके दाहके कारण रति प्रलाप कर रही हो । वहाँ दूर तक फैली हुई ऊँची ध्वजा-रूप भुजावाली हवेलियाँ ऐसी मालूम होती हैं मानो वे रात्रिको मालवेकी स्त्रियोंके मुख कमलकी कान्ति देखनेसे लज्जित हुए चद्रके कलंकको पवनसे चचल होकर फहराती हुई वस्त्रकी कोरोंसे मिटाती हों । महलोंके शिखरोंमें सोती हुई वहाँकी सुदरियोंका मुँह देख कर मानो काम-वश हुआ चंद्रमा, अपनी प्रतिमाके बहाने, गाढा चंदन छिड़कनेसे शीतल हुई मणि भूमि पर गिर कर लोटता है । उस नगरीमे पिंजरेमें बैठे हुए तोते और मैना पिछली रात जाग जाग कर अत्यत ऊँचे स्वरसे प्रभातके मगल गीत गाते हैं, पर पालतू सारसोंके शब्दको पराजित करनेवाले—चारों ओर फैले—विलासिनी स्त्रियोंके गहनोंके शब्दमें समा जानेसे वे व्यर्थसे होते हैं ।

६५—वहाँ अनिवृत्ति[1] मणि प्रदीपोंकी है । तरलता[2] हारमे है । अस्थिति[3] संगीत और मृदंगकी ध्वनिमे है । द्वद्व-वियोग चकवाकको है । वर्ण[4]-परीक्षा सुवर्णकी है । अस्थिरता[5] ध्वजामे है । मित्र[6]-द्वेष कुमुदोंमे है । कोप गुप्ति[7] तलवारोंमें है । कहाँ तक कहा जाय—अंधकासुरके शत्रु भगवान् श्री महाकालेश्वर कैलाशवासकी प्रीति छोड़ स्वय वहा आ रहे हैं । देव दानवोंके मुकुट मणियोंकी किरणें उनके चरण-नख-किरणोंका चुबन करती हैं । तीक्ष्ण धारवाले त्रिशूलसे उन्होंने अंधकासुरको चीर डाला था । पार्वतीके पायजेबके सिरेसे

१—मणि दीपकों को बुझनेका अभाव है, लोगोंको सुखका अभाव नहीं।

२—हार मध्यके मणिसे युक्त है, किसीके मनमे चचलता नहीं ।

३—ध्वनिमे विचित्रता है, लोग मर्यादा हीन नहीं हैं ।

४—सुवर्णके रगकी परीक्षा होती है, ब्राह्मणादिकी नहीं, क्योंकि वहाँ सब वर्ण शुद्ध हैं ।

५—चंचलता ।

६—कुमुद ही सूर्यसे द्वेष करते हैं, कोई मित्रोंसे द्वेष नहीं करता ।

७—तलवारें म्यानमें रक्खी जाती हैं, लोगोंको खजाना छुपानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वहाँ चोर नहीं ।

उनके माथेका चन्द्रमाका टुकड़ा घिस गया है। उन्होंने शरीर पर त्रिपुरासुरकी राखका लेप किया है। कामदेवके नाशसे शोकातुर होकर आराधना करती रतिने फैले हुए दोनों हाथोंमेंसे गिरे कंकणोंसे उनके चरणोंकी पूजा की, और प्रलय-कालकी अग्नि-ज्वालाके समान उनकी कपिल जटामें गंगा घूमा करती है।

६६—इस प्रकारकी उस नगरीमें नल, नहुष, ययाति, धुंधुमार, भरत, भगीरथ और दशरथके समान प्रजा की पीड़ा हरनेवाला तारापीड़ नामका राजा था। उसने अपनी भुजाओंके बलसे सब भूमंडलको जीत लिया था। उसकी तीनों शक्तियाँ फलीभूत हुई थीं। वह बुद्धिमान और उत्साही था। नीतिशास्त्रमें उसकी बुद्धि बहुत पैनी थी। उसने धर्मशास्त्र का अध्ययन किया था। वह तेज और कान्तिमें सूर्य-चन्द्रके समान एक तीसरा और था। अनेक यज्ञ करनेसे वह पवित्र हो गया था। सब संसारके संकटोंको उसने दूर कर दिया था। शूरोंके पास रहनेकी शौकीन, तथा हाथमें खिला हुआ कमल धारण करनेवाली लक्ष्मी भी कमल-वन छोड़ और नारायणके वक्षःस्थलमें रहने की परवा न करके निष्कपट होकर उससे आ लिपटी थी। जैसे विष्णुका चरण बड़े बड़े मुनियों द्वारा सेवन किए गए मंदाकिनीके प्रवाहका निर्गम-स्थान है उसी तरह वह सत्यका जन्म हेतु था। समुद्र जैसे चंद्रका उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति वह यशका उत्पत्ति-स्थान था। उसका यश शिशिर होने पर भी शत्रुओंको संताप[1] देता था, स्थिर[2] रहने पर भी दिन-रात भ्रमण करता था, निर्मल होने पर भी शत्रुओंकी विरहिणी स्त्रियोंके मुख कमलकी कांतिको मलिन कर देता था और अत्यन्त धवल होने पर भी सब जनोंको रक्त[3] करनेवाला था। पक्षच्छेद[4]के भयसे क्षितिवर-कुलोंने पातालके समान उसका आश्रय लिया था।

१—दाह, चित्तमें क्षोभ।

२—अचंचल, नाश-रहित।

२—लाल, अनुरक्त।

४—पर्वतोंने पंख कटनेके डरसे पातालका आश्रय लिया था, राजा लोगोंने अपने पक्षके नाशके डरसे उसका सहारा लिया था।

ग्रहगणकी तरह वह बुधानुगत[1] था। कामदेवकी तरह वह विग्रह[2]-रहित था। दशरथके समान सुमित्रोपेत[3] था। महादेवके समान वह महासेनानुगत[4] था। शेषनागके समान वह क्षमा-भार[5] गुरु था। नर्मदा प्रवाहके समान वह महा वंश[6] में उत्पन्न हुआ था। वह धर्मका मानो अवतार और पुरुषोत्तमका मानो प्रतिनिधि था।

६७—अज्ञानके प्रसारसे मलिन शरीरवाले और पापसे भरे कलिकालने धर्मको जड़से हिला दिया था। उसे राजा तारापीड़ने इस तरह फिर स्थापित किया जैसे रावणसे चलायमान किए गए कैलाशको महादेवने रोक कर स्थिर किया था। उसे लोग ऐसा समझते थे मानो रतिका प्रलाप सुन कर हृदयमें दया उत्पन्न होनेसे महादेवने दूसरा कामदेव पैदा किया हो। अपनी भुजाके जोरसे जीते हुए तथा भयसे चकित और चंचल दृष्टिवाले राजा बड़ी-बड़ी दूरसे आकर उसके चरणोंकी आराधना करते थे, जिससे उनके मुकुटों पर बने हुए फूल-पत्रोंके सन्निभाग उसके चरण-नखोंकी किरणोंसे चित्रित हो जाते थे। समुद्रकी तरंगोंसे जिसकी मेखला धुल गई है, पत्तोंके बीच बीचमें विचरते तारोंसे जिसके तटके वृक्षोंके फूल दूने हो गये हैं, उदय होते चंद्रबिंबमेंसे रिसती हुई अमृतकी बूँदोंकी वर्षासे जहाँ चंदनवृक्ष गीले रहते हैं, सूर्यके रथके घोड़ोंके खुरोंकी रगड़से जहाँके लवंग पल्लव खंडित हो गए हैं और ऐरावतकी सूँडसे जहाँ सल्लकीवृक्षके पत्ते तोड़े गए हैं ऐसे उदयाचल तकसे, जहाँ बन्दरोंसे तोड़े जानेके कारण लवली-फल थोड़े ही बचे हैं, समुद्रमेंसे [illegible] हुई जल देवियाँ जहाँ रामचन्द्रके चरणोंकी वन्दना करती हैं, पर्वतों [illegible] नेसे टूटे शखोंके टुकड़ोंसे जहाँ शिलातलों पर तारे से बिखर रहे हैं जो नलके हाथसे इकट्ठे किये गए हजारों पर्वतोंसे बना है ऐसे सेतुबन्ध

१—बुध ग्रह, पंडित।
२—शरीर-रहित, युद्ध-रहित।
३—सुमित्रासे युक्त, उत्तम मित्रोंसे युक्त।
४—कार्तिकेय, बड़ी सेना।
५—पृथ्वी धारण-क्षम, शान्तिके भारसे गौरवान्वित।
६—बाँसोंकी झाड़ी, महा कुल।

तकसे, स्वच्छ झरनोंके जलसे जहाँ तारे धुल जाते हैं, अमृत मथन करते समय नारायणके बाजूबन्दके मकर-चिन्हके सिरे घिसनेमे जिसके पत्थर चिकने हो गये हैं, लिपटे हुए वासुकि नागको सहज बलसे खींचनेमे डिगमिगाते देव-दानवोंके चरणों के भारसे जिसका बीचका हिस्सा छिद गया है और अमृतके फव्वारोंसे जिसके शिखर सींचे गए हैं ऐसे मदराचल तकसे, नर-नारायण के चरणोंसे चिन्हित हुए बद्रिकाश्रमके कारण जो रमणीय लगता है, अलकापुरीकी सुन्दरियोंके गहनोंकी झनझनाहटसे जिसके शिखर गूँज रहे हैं, सतर्षियोंने सध्योपासन करके जिसके झरनोंका पानी पवित्र किया है और भीमसेनके द्वारा तोडे गए सोगन्धिक फूलोंसे जिसकी मेखला सुगधित हुई है ऐसे गधमादन पर्वत तकसे आकर बड़े बडे राजा सेवाञ्जलिरूप कमलकी कलीसे विषम हुए शिरोंसे उसको प्रणाम करते थे। उसके सिंहासनमेंसे अनेक रत्नोंकी किरणें फैल रही थीं और उसमें मोतियोंकी जालियाँ बँध रही थीं। उस पर बैठा हुआ वह ऐसा मालूम होता था जैसे कल्पतरु पर दिग्गज विराजमान हो। उसके सिंहासन पर बैठनेसे सब विस्तीर्ण दिशाएँ भारसे इस प्रकार झुक गईं जैसे भौंरोंके बैठनेसे लता झुक जाती है। मेरे खयालमें इन्द्र भी उसके साथ स्पृहा करता था। उसमेंसे गुण इसी तरह फैलते थे जैसे क्रौंच पर्वतमेंसे हंस निकलते हों। उन गुणोंसे सब भुवन तल धवल हो जाता था और सब लोकोंके हृदयको आनद मिलता था। सुरासुर लोकको धवल करनेवाली उसकी कीर्ति मदराचलसे उछाले गये दूधवाले समुद्रकी फेन लेखाके समान थी और उसकी परिमल अमृतसुगधिके समान उत्तम थी। वह भुवनोंको मुखर करती हुई दशों दिशाओंमें भ्रमण करती थी। उसके प्रतापके दुःसह सतापसे मानो खिन्न हुई राज लक्ष्मी क्षणभर भी उसके छत्रकी छायासे दूर नहीं हटती थी। सब लोग भाग्यके अभ्युदयके समान उसके चरित्र सुनते थे, उपदेशकी तरह उनका ग्रहण करते थे, मगल-कार्यकी भाँति प्रशसा करते थे, मत्रके समान जप करते थे और शास्त्र-वचनके समान दिन रात स्मरण करते थे।

६८—उस राजाके राज्यमे पृथ्वी पर विपक्षता[1] पर्वतोंहीको थी, परत्व[2]

१—पर्वतोंहीके पक्ष काटे गए थे, प्रजामे द्वेष-बुद्धि नहीं थी।

२—प्रत्यय ही शब्दके पीछे आते थे प्रजामें शत्रुता नहीं थी।

जरासंधके समान संधि विग्रह[1] युक्त था, महादेवकी तरह प्रमाथित[2] दुर्ग था, और युधिष्ठिरकी तरह धर्म प्रभव[3] था। सब वेद और वेदांगोंका जानता था। सब राज्यके मंगलका वही एक सार था और उसकी पैनी बुद्धिका प्रवेश सब कामोंमें था। नारायणका वक्षस्थल नरकासुरके शस्त्रोंकी चोटसे मस्कर हो गया था और कंधे भ्रमण करते हुए मंदराचलके निर्दय घर्षणसे कठिन हो गए थे, वहां रहती हुई लक्ष्मीको भी वह अपने बुद्धि-बलसे दुर्लभ नहीं समझता था। अनेक[4] राज्य-रूपी फल दिखलाती लता-रूप बुद्धि उस महावृक्ष रूपी प्रधानके समागमसे असंख्य प्रतानोंसे गहन होकर विस्तार पा गई थी। चारों समुद्रों तक सब पृथ्वी पर उसके हजारों जासूस फिरते थे, जिससे वहांके अनेक राजाओंके साँस लेनेकी खबर भी उसे इस तरह मालूम हुए बिना नहीं रहती थी मानो सब भुवनतल अपना ही घर हो।

१—जरासंधका शरीर जुड़ा हुआ था, शुकनास मेल और लड़ाई करता था। राजा बृहद्रथ के बहुत दिन तक कोई पुत्र नहीं हुआ। उसने कौशिकसे प्रार्थना की। उन्होंने उसे एक आम दिया। राजाने आमके दो भाग करके आधा आधा अपनी दोनों रानियों को दिया। उसे खाकर रानियां गर्भवती हुई और उन्होंने एक पुत्रके आधे आधे शरीरको जन्म दिया। इससे डरकर राजाने उसे श्मशान पर फिंकवा दिया। जरा नामकी राक्षसी भोजनकी तलाश में श्मशान पर घूम रही थी। उसने इन दोनों हिस्सोंको देखा और ले जानेके प्रयोजनसे साथ-साथ रख दिया। पर ज्यों ही दोनों हिस्से आपसमें मिले इनसे एक जीवित बालक हो गया जो रोने लगा। यह देख जराके हृदयमें करुणा उत्पन्न हो गई और उसने बालकको राजाको भेंट किया। इस घटनाके कारण बालक का नाम जरासंध पड़ा।

२—महादेवजी पार्वतीको प्रसन्न करते हैं, शुकनास किलोंको अपने अधिकारमें रखता था।

३—युधिष्ठिर धर्मका पुत्र था, शुकनास नीति धर्म आदिका उत्पत्ति स्थान था।

४—अर्थात् वह अपनी बुद्धिसे राज्यमें ऐसे ऐसे काम करता था जिनसे प्रजाको उत्तम शासनके अनेक लाभोंका अनुभव होता था।

७०—उस राजाका ऐरावतकी सूँडके समान स्थूल भुज-दण्ड राज्यलक्ष्मीकी क्रीडाके तकियेके समान, समग्र जगत्को अभय-प्रदान-रूपी यज्ञदीक्षा देनेमें स्तम्भके समान, चमकते हुए खड्गकी किरणोंके जालसे ढका हुआ और सब शत्रु-कुलके प्रलयकी सूचना देती धूमकेतुकी पूँछके समान मालूम होता था। उससे राजा तारापीडने सप्तद्वीप रूपी कंकणवाली पृथ्वीको बाल्यावस्थामें ही जीत कर तथा शुकनास नामक अपने मित्रके समान मन्त्रीको सब राज्यका भार सौंप कर प्रजाको स्वस्थ किया। सब शत्रुओंके नाशसे चिन्ता दूर हो जानेके कारण उसे अन्य कुछ कर्तव्य बाकी नहीं दीखा, इसलिए पृथिवीके कामको शिथिल कर उसने प्रायः जवानीके सुखका अनुभव किया। कभी कभी वह कामवश होकर सुरत-क्रीड़ा करता था, जो कि प्रियाओंका अधर दश होनेसे काँपते हाथोंमें हिलते हुए मणिमय कंकणोंके कलकलसे रमणीय लगती थी, वेगमें टूटे हुए कर्णभूषणके टुकड़ोंसे शय्या ऊँची नीची हो जाती थी, ऊँचे किये हुए चरणोंमेंसे लगे अलक्तकसे सिर लाल लाल हो जाता था, वेगसे बाल पकड़नेसे मणि-कर्णपूर चूर चूर हो जाता था, स्तनोंका उभार होनेके कारण उन पर काले अगरके लेपसे रची हुई पत्रलतासे ऊपरका वस्त्र अङ्कित हो जाता था, स्वच्छ पसीनेकी महीन महीन बूँदोंसे गोरोचनके तिलक और पत्रभंग बिगड़ जाते थे, गालों पर रोमाञ्च होनेसे जर्जरित हुए कर्णप्रान्तवाली प्रिय युवतियाँ चन्दन जलकी धाराके समान अपनी हास्यामृत कान्तिसे उसका अभिषेक करती थीं, कर्णोत्पलोंके समान नेत्र-किरणोंसे उस पर प्रहार करती थीं, केसर-रजके समान गहनोंकी प्रभासे उसके नेत्र भर देती थीं, अपने हाथकी, श्वेत वस्त्रके समान, नख किरणोंसे उसका ताड़न करती थीं और चम्पाके फूल-पत्तोंकी मालाके समान, अपनी भुजलताओंसे उसे बाँध लेती थीं। कभी कभी वह सुवर्णकी पिचकारियोंमें बहुत देर तक क्रीडा करता था। वहाँ कामिनियोंके कर सम्पुटमेंसे निकलती हुई कामदेवके सुवर्णके बाणोंकी कतारके समान केसरिया जलकी धाराओंसे उसका सिर पीला-पीला हो जाता था। लाक्षा-जलकी धाराके प्रहारसे उसका रेशमी वस्त्र लाल-लाल हो जाता था, और कस्तूरी-युक्त जलकी बूँदोंसे उसका चन्दन-लेप चितकबरा हो जाता था। कभी कभी वह रनवासकी स्त्रियोंके साथ जल-क्रीड़ा करता था। तब गृह-सरोवरों

के जलमें स्तनोंका चंदन धुल जानेसे उनकी तरंगे धवल हो जाती थीं, पायजेब हिलनेसे झनझनाहट करने चरणोंमें लगा अलक्तक रस हंस मिथुन पर छिड़क जाता था, बालोंकी लटोंमेंसे बिखरे फूलोंसे जल विचित्र हो जाता था, कर्णपूरके कमल पत्र तैरने लगते थे, ऊँचे ऊँचे नितम्बोंके क्षोभसे तरगें छिन्न-भिन्न हो जाती थीं, नालसे तोड़ कर फेंके हुए कमलोंकी रज फैल जाती थी और बार बार पानी को हाथसे हिलोडनेसे उड़ती हुई झागकी बूंदोंसे चन्द्राकार बन जाते थे। कभी-कभी सकेतसे ठगी गई प्रियाएँ उसके अपराध करने पर भ्रकुटि टेढी करके, झनझनाते मणि-कङ्कणोंसे शब्दायमान भुज लताओंके द्वारा मालसिरी के फूलोंकी मालासे उसके पैर बाँध कर नख किरणोंसे मिश्रित पुष्प हारोंसे दिनमें ताड़ना करती थीं। कभी कभी स्त्रियोंके मुखमें भरे मदिराके घूँटके स्वादसे आनंदित होकर वह बकुल वृक्षकी तरह विकास[1] पाता था। कभी कभी सुंदरियोंके चरण-तलके प्रहारसे लगे हुए अलक्तक रससे अशोक वृक्षके समान उसे राग[2] उत्पन्न होता था। कभी कभी वह बलरामके समान चदन[3] श्वेत कंठमें हिलती हुई कुसुम-माला पहनकर मद्य पान करता था। कभी कभी मद[4]से लाल हुए गाल पर झूलते कर्णपल्लववाला वह मदमत्त राजा, गंधगजके समान, खिले हुए वन-लता कुसुमोंकी उत्तम सुगंधसे युक्त वनमें फिरता था। कभी कभी वह झनझनाते नूपुर-[5]शब्दसे आनंदित होकर हंसकी तरह कमल-वनमें क्रीड़ा करता था। कभी कभी मृगपतिके समान कंधे पर

१—बकुल खिलता है, राजा मुसकुराता था।

२—अशोकमें लाल फूल निकलते हैं, राजा को अनुराग होता था।

३—बलरामका कंठ चंदन लगानेसे धवल था, राजाका कंठ चंदनके समान धवल था।

४—दानसे मत्त हुए हाथीके दानसे लाल हुए गाल पर उसके तने कान झूलते हैं, मदसे मत्त हुए राजाके मदसे लाल हुए गाल पर कानमें पहना हुआ पल्लव झूलता था।

५—हंस नूपुरकी झनझनाहटके समान शब्दसे आनंदित होता है, राजा नूपुर-शब्दसे।

केसरनाल[1] लटका कर क्रीड़ा-पर्वतों पर विचरता था। कभी-कभी भौंरेकी तरह, खिलती हुई फूलोंकी कलियोंसे भरे लतामडपोंमें भ्रमण करता था। कभी कभी नीले वस्त्रसे मुँह ढक कर कृष्ण-पक्षकी रात्रिके प्रदोषके समयमें संकेत करनेवाली सुंदरियोंसे मिलने जाता था। कभी कभी महलके भीतर सुवर्णके किवाड़ खोल कर खिड़कियाँ खोल लेता था, वहाँ दिन-रात जलते काले अगरुके धूमसे मानो रँगे हुए कबूतर अपने दड्डोंमें रहते थे, वहाँसे कितने ही मित्र मित्रोंके साथ वीणा, वेणु, और मृदंगसे मनोहर—अप्न-पुरका—संगीत देखता था। सारांश यह है कि जो कुछ अत्यंत रमणीय, मनोरंजक और उस समयके तथा भविष्यकालके अनुकूल था उसका सब सुख राजाने भोगा, क्योंकि पृथ्वीके सब काम पूरे हो गए थे। पर उस सुखमें न तो राजाने अपने चित्तको लीन किया और न वह उसका व्यसनी हो गया। महीमंडलके सब कार्य समाप्त कर, प्रजाका रंजन करनेवाले ऐसे राजाकी विषयोपभोग-लीला उसका भूषण है, परंतु अन्य राजाओंकी तो विडंबना है। प्रजाके अनुरागके कारण बीच बीचमें वह स्वयं दर्शन देता था और प्रयोजन होने पर सिंहासन पर विराजमान होता था।

७१—शुकनास भी बड़े भारी राज्यका भार अपने बुद्धि बलसे अनायास ही धारण करता था। जिस प्रकार राजा सब काम करता था उसी तरह वह भी प्रजाके साथ दुगना अनुराग करके करता था। उसे भी चलायमान हुए चूड़ामणियोंकी किरणोंसे भरे हुए मुकुटोंसे राजा लोग जब प्रणाम करते थे तब नीचे झुकाए हुए फूलोंके शेखरोंमेंसे टपकते मधुसे सभाका स्थान गीला हो जाता था और अत्यंत नीचे झुकनेके कारण लटकते मणि कुंडलोंके किनारे उनके बाजूबंदोंसे रगड़ने लगते थे। उसके प्रयाण करने पर दशों दिशाओंमें दौड़ने घोड़ोंकी टापोंकी आवाजसे भुवनोंके अन्तराल बहरे हो जाते थे, सेनाके बोझसे चलायमान हुए पृथ्वीतल पर पर्वत डिगमिगाने लगते थे, मद रिसनेसे अंधे हुए गंध-गजकी दान-धारासे अंधेरा छा जाता था, उड़ती हुई धूलके ढेरसे समुद्रोंका रंग मटियाला हो जाता था, चलते हुए पैदलोंकी ललकारसे कानोंके परदे फट जाते थे, बहुत जोरसे बराबर उच्चारण किया गया

१—सिंह सटा लटका था है, राजा बकुल पुष्पोंकी माला।

जय शब्द सब ओर व्याप्त हो जाता था, हिलते हुए हजारो सफेद चमर पृथ्वीको ढक लेते थे और इकट्ठे हुए राजाओंकी सुवर्णकी छड़ियोंकी छवियोंके पास पास मिड़ जानेसे दिनकी कान्ति नष्ट हो जाती थी।

७२—इस प्रकार मन्त्रीको राज्यका भार सौंप कर वह राजा यौवन सुखके अनुभवमे काल व्यतीत करता था। फिर बहुत समयमें वह अन्य सब सांसारिक सुखोंके प्राय॰ अंतको पहुँच गया परन्तु पुत्रके देखनेका सुख उसको नहीं मिला। ऐसे ऐसे भोगोंके होने पर भी रनवास उसे निष्फल[1] पुष्प-दर्शन-युक्त बाण घासके समान लगने लगा। जैसे जैसे यौवन बीतने लगा वैसे वैसे ही मनोरथ सफल न होनेसे अनपत्यताका संताप भी खूब बढ़ता गया। विषय-भोगके सुखमे उसका मन हटने लगा। हजारों राजा लोगोंसे परिवृत होने पर भी मानो असहाय हो, नेत्र होने पर भी मानो अन्धा हो और सब भुवनोंका आधार होने पर भी मानो निराधार हो—इस भाँति वह अपनेको मानने लगा।

७३—महादेवके जटा कलापको जैसे चन्द्रकला, विष्णुके वक्ष स्थलको जैसे कौस्तुभ प्रभा, बलदेवको जैसे वनमाला, सागरको जैसे वेला, दिग्गजको जैसे मदकी लेखा, वृक्षको जैसे लता, वसन्तको जैसे कुसुमोद्गति, चन्द्रमाको जैसे चाँदनी, सरोवरको जैसे कमलिनी, आकाशको जैसे तारोंकी पंक्ति, मानसरोवरको जैसे हंस-माला, मलयाचलको जैसे चंदन वनकी कतार और शेषनागको जैसे फनको मणिकी ज्योति होती है उसी भाँति सब अन्त पुरमें विलासवती नामकी तारापीड़की मुख्य महिषी थी। वह तीनों भुवनोंमें विस्मय पैदा करती थी और स्त्रियोंके विलासकी मानो पैदा करनेवाली थी।

७४—एक दिन जब राजा रानीके महलमे गया तब क्या देखता है कि वह एक छोटेसे उज्ज्वल पलंग पर बैठ कर रो रही है। उसके आस-पास खड़ी हुई दासियोंकी दृष्टि चिन्तासे जड हो गई थी और शोकके कारण सब चुपचाप थीं। ध्यानसे एकाग्र दृष्टि करके पास खड़े हुए कंचुकी उसकी सेवा करते थे। अन्त-पुरकी बुढ़ियाँ जरा दूर खड़ी होकर उसका आश्वासन करती थी। बराबर आँसू

१—बाण घासमें फूल तो बहुत निकलते है, पर फल नहीं लगते, स्त्रियोंको ऋतुदर्शन तो होता, पर सन्तान नहीं होती थी।

गिरनेसे उसका वस्त्र गीला हो गया था, उसने सब गहने उतार डाले थे, बाईं हथेली पर अपना मुख-कमल रख लिया था और उसके बालोंकी खुली लटें इधर-उधर फहरा रही थीं। राजाको देखते ही उसने उठ कर उनका सत्कार किया, पर राजाने उसे तुरंत उसी पलंग पर फिर बैठा दिया और आप भी वहीं बैठ गया। लेकिन रोनेका कारण न जाननेसे वह जरा घबरा गया और अपने हाथसे ही उसके दोनों गालोंसे आँसू पोंछते पोंछते कहने लगा—देवि, हृदयमें प्रबल शोक दाब कर तुम चुपचाप क्यों रोती हो? देखो, ये तुम्हारे पलक मोतियोंके हारके समान, मानो, अश्रु बिंदुओंका हार गूँथते हैं। कृशोदरि, तुमने आज गहने क्यों नहीं पहने? लाल कमलकी कलियोंके समान चरणों पर प्रातःकालीन सूर्यके प्रकाशके समान महावर क्यों नहीं लगाई? मदन-सरोवरके कलहंसोंके समान मणि-नूपुरों पर आज चरण-स्पर्शका अनुग्रह क्यों नहीं किया? प्रिये, आज तागड़ी उतार कर कमरको चुप क्यों कर रक्खा है? आज तुमने पयोधरों पर, चन्द्रमामें हिरनके समान, काले अगरुकी पत्र-रचना क्यों नहीं की? सुन्दरि, महादेवके मुकुटकी चन्द्रकलाके समान अपनी गर्दनका गंगा-प्रवाहके समान हारसे क्यों शृङ्गार नहीं किया? विलासिनि, आज तुमने आँसू डाल डाल कर गालों परसे कुंकुम-पत्रलता क्यों वृथा धो डाली है? आज तुमने कोमल उँगली रूप पखड़ीवाले लाल कमलके समान करतलको कर्णपूर क्यों बनाया है? माथे मे गोरोचनका तिलक क्यों नहीं लगाया? आज तुमने लटोंको क्यों नहीं गूँथा? देवि, चन्द्रलेखा-रहित कृष्णपक्षके प्रदोषके समान तुम्हारी अत्यंत काली पुष्प विहीन चोटी मेरे नेत्रोंको दुःख देती है। इसलिए, देवि, प्रसन्न होओ, दुःखका कारण कहो; तुम्हारे लंबे लंबे श्वासकी पवन छाती पर पड़े वस्त्रको हिलाती हिलाती मेरे हृदयको कँपाती है। शायद मुझसे या मेरे किसी परिजनसे कुछ अपराध हो गया है। खूब विचार करने पर भी मुझे तो सूझता नहीं कि सचमुच तुम्हारे संबंधमें मुझसे कुछ दोष हुआ है। मेरा जीवन और राज्य तुम्हारे अधीन है। इसलिए, सुन्दरि, शोकका कारण मुझसे कहो। इतना कहने पर भी जब विलासवतीने कुछ उत्तर न दिया तब राजा उसकी दासियोंसे उसके अधिकाधिक आँसू गिरानेका कारण पूछने लगा।

७५—इतनेमें मकरिका नामकी ताम्बूलवाहिनीने राजाको जवाब दिया—महाराज, आपका जरासा भी दोष कैसे हो सकता है? और न आपके सामने कोई परिजन अपराध कर सक्ता है। परंतु किसी महाग्रहसे पीड़ित-की भाँति मेरे साथ राजाका समागम निष्फल है—इस प्रकारकी चिंता ही देवीको हुआ करती है। यह बहुत समयसे संताप भोग रही हैं। असुरश्रीके समान निंदित[1] सुरता रानी पहले भी शयन, स्नान, भोजन, भूषण आदि दिनका उचित व्यापार करनेको परिजनोंके अत्यंत प्रयत्न करने पर किसी तरह तैयार होती थीं और शोकमें व्याकुल सी रहती थीं, परन्तु आपके हृदय-को दुःख न हो इस कारण जरासा भी विकार प्रकट नहीं होने देती थीं। आज चौदस थी, इस कारण यह भगवान् महाकालेश्वरका पूजन करनेके लिए गई थीं। वहाँ महाभारतकी कथा होती थी। उसमें इन्होंने सुना कि पुत्रहीन को स्वर्ग नहीं मिलता, पु नामक नरकसे निकालनेवाला ही पुत्र कहाता है। यह सुन कर आने पर दासियोंके नम्रता-पूर्वक प्रार्थना करने पर भी यह न भोजन करती हैं, न शृङ्गार करती हैं और न कुछ उत्तर देती हैं। केवल अश्रुबिंदुओं की निरंतर वर्षासे मुख पर अंधकार करके रो रही हैं। अब जैसी महाराजकी आज्ञा। इतना कह कर वह चुप हो गई।

७६—उसके कह चुकनेके बाद थोड़ी देर चुप रह कर राजाने लंबी लंबी गरम साँस लेकर कहा—देवि, जो वस्तु दैवके अधीन है उसमें हम क्या कर सकते हैं? बहुत रोना व्यर्थ है। हम इस योग्य नहीं हैं कि देवता हम पर अनुग्रह करें। सचमुच हमारा हृदय पुत्रालिंगन-रूपी अमृतास्वादके सुखका पात्र नहीं है। जन्मान्तरमें हमने पुण्य नहीं किए हैं। पूर्व जन्ममें प्राणी जो काम करते हैं उनका फल उनको इस जन्ममें मिलता है। चाहे जितना यत्न करो, दैव-नियोग नहीं बदला जा सकता, तो भी जो कुछ मनुष्योंसे हो सके वह सब करना चाहिए। देवि, गुरुजनोंकी अधिक भक्ति करो, देवताओंकी दूनी पूजा करो, ऋषियोंकी सेवामें आदर दिखाओ—क्योंकि वे बड़े भारी देवता हैं। यत्नसे उनकी आराधना की जाय तो वे मनोरथ फलके अत्यंत दुर्लभ वर भी देते हैं। कहा जाता है कि पहले चंडकौशिकके प्रसादसे मगधके बृहद्रथ राजाको

१—असुर श्री देवताओंकी निन्दा करती है, रानी सुरता।

जरासन्ध नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। वह शौर्यमें अद्वितीय था, उसकी भुजाओंमें अतुल बल था और उसने विष्णुका पराजय किया था। राजा दशरथ बूढ़े हो गये थे तो भी विभाण्डक महामुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गके प्रसादसे उनको नारायणकी बाहुके समान अजेय और समुद्रके समान क्षोभ-रहित चार पुत्र मिले थे। इसी प्रकार अन्य राजर्षियोंने भी तपस्वियोंकी आराधना करके पुत्र दर्शन रूपी अमृत-स्वादका सुख भोगा है क्योंकि महामुनियोंकी सेवा कभी निष्फल नहीं होती। देवि, प्रफुल्ल गर्भके भारसे मद हुई, फीके मुखवाली और, जिसमें पूर्ण चन्द्र उदय होनेको हो, ऐसी पूनोंकी रात्रिके समान तुमको मैं कब देखूँगा? पुत्र-जन्मके महोत्सवके आनन्दमें मग्न हुए मेरे परिजन कब मुझसे पूर्ण-पात्र[१] ले जायँगे? उदय हुए सूर्य मडलसे युक्त, बालातपसे प्रकाशित आकाशके समान, पीले वस्त्र पहन कर पुत्रको गोदमें लिये तुमको देख कर मैं कब आनन्दित हूँगा? सर्वौषधि लगानेके कारण जिसके बाल उलझ गये हो, जिसके तालु पर मन्त्रित किये हुए घीकी बूँदें डाल कर फिर उस पर सरसों मिली हुई थोड़ी सी विभूति डाली हो, जिसके कठ-सूत्रकी गाँठ गोरोचनसे रँगी गई हो, जो चित्त सोता हो और बिना दाँतके मुँहसे मन्द मन्द मुसकुराता हो ऐसा पुत्र कब मेरे हृदयको प्रसन्न करेगा? गोरोचनके समान पीली कान्तिवाला, रनवासमें एकसे दूसरीके हाथमें बार बार जाता और सब जनोंसे वदित, मंगल-प्रदीपके समान, पुत्र कब मेरे नेत्रोंके शोकान्धकारको मिटावेगा? धरतीकी धूलके लग जानेसे मटियाला होकर वह कब मेरे हृदय और दृष्टिके साथ ही घूमता घूमता महलके आँगनोंको शोभायमान करेगा? घुटनोंके बल चलनेके योग्य होने पर वह कब स्फटिक मणिकी दीवारोंनसे दीखते पालतू हिरनोंके बच्चोंको पकड़नेकी इच्छासे सिंहके बच्चेके समान इधर उधर दौड़ेगा? रनवासकी स्त्रियोंके पायजेबोंको झनझनाहटका अनुसरण करते पालतू कल-हंसोंके पीछे एकसे दूसरी बगलमें दौड़ कर सोनेकी तागड़ीके घोरोके शब्दके पीछे भागती अपनी धात्रीको वह कब कष्ट देगा? काले अगरकी रेखाओंसे

२—उत्सवके समय हर्षके कारण जो अलंकार, वस्त्र आदि हठ-पूर्वक लिये जाते हैं उनको पूर्णपात्र कहते हैं।

७५—इतनेमें मकरिका नामकी ताम्बूलवाहिनीने राजाको जवाब दिया—महाराज, आपका जरासा भी दोष कैसे हो सकता है? और न आपके सामने कोई परिजन अपराध कर सकता है। परंतु किसी महाग्रहसे पीड़ितकी भाँति मेरे साथ राजाका समागम निष्फल है—इस प्रकारकी चिंता ही देवीको हुआ करती है। यह बहुत समयसे सताप भोग रही हैं। असुरश्रीके समान निंदित[1] सुरता रानी पहले भी शयन, स्नान, भोजन, भूषण आदि दिनका उचित व्यापार करनेको परिजनोंके अत्यंत प्रयत्न करने पर किसी तरह तैयार होती थीं और शोकसे व्याकुल सी रहती थीं, परन्तु आपके हृदयको दुःख न हो इस कारण जरासा भी विकार प्रकट नहीं होने देती थीं। आज चौदस थी, इस कारण यह भगवान् महाकालेश्वरका पूजन करनेके लिए गई थीं। वहाँ महाभारतकी कथा होती थी। उसमें इन्होंने सुना कि पुत्रहीनको स्वर्ग नहीं मिलता, पु नामक नरकसे निकालनेवाला ही पुत्र कहाता है। यह सुन घर आने पर दासियोंके नम्रता-पूर्वक प्रार्थना करने पर भी यह न भोजन करती हैं, न शृङ्गार करती हैं और न कुछ उत्तर देती हैं। केवल अश्रुबिंदुओंकी निरंतर वर्षासे मुख पर अंधकार करके रो रही हैं। अब जैसी महाराजकी आज्ञा। इतना कह कर वह चुप हो गई।

७६—उसके कह चुकनेके बाद थोड़ी देर चुप रह कर राजाने लंबी लंबी गरम साँस लेकर कहा—देवि, जो वस्तु दैवके अधीन है उसमें हम क्या कर सकते हैं? बहुत रोना व्यर्थ है। हम इस योग्य नहीं हैं कि देवता हम पर अनुग्रह करें। सचमुच हमारा हृदय पुत्रालिंगन-रूपी अमृतस्वादके सुखका पात्र नहीं है। जन्मान्तरमें हमने पुण्य नहीं किए हैं। पूर्व जन्ममें प्राणी जो काम करते हैं उनका फल उनको इस जन्ममें मिलता है। चाहे जितना यत्न करो, दैव-नियोग नहीं बदला जा सकता, तो भी जो कुछ मनुष्योंसे हो सके वह सब करना चाहिए। देवि, गुरुजनोंकी अधिक भक्ति करो; देवताओंकी दूनी पूजा करो; ऋषियोंकी सेवामें आदर दिखाओ—क्योंकि वे बड़े भारी देवता हैं। यत्नसे उनकी आराधना की जाय तो वे अभीष्ट फलके अत्यन्त दुर्लभ वर भी देदेते हैं। कहा जाता है कि पहले चंडकौशिकके प्रसादसे मगधके बृहद्रथ राजाको

१—असुर श्री देवताओंकी निन्दा करती है, रानी सुरतका।

जरासन्ध नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। वह शौर्यमें अद्वितीय था; उसकी भुजाओंमें अतुल बल था और उसने विष्णुका पराजय किया था। राजा दशरथ बूढे हो गये थे तो भी विभाण्डक महामुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गके प्रसादसे उनको नारायणकी बाहुके समान अजेय और समुद्रके समान क्षोभ-रहित चार पुत्र मिले थे। इसी प्रकार अन्य राजर्षियोंने भी तपस्वियोंकी आराधना करके पुत्र दर्शन रूपी अमृत-स्वादका सुख भोगा है क्योंकि महामुनियोंकी सेवा कभी निष्फल नहीं होती। देवि, प्रफुल्ल गर्भके भारसे मन्द हुई, फीके मुखवाली और, जिसमें पूर्ण चन्द्र उदय होनेको हो, ऐसी पूनोंकी रात्रिके समान तुमको मैं कब देखूँगा? पुत्र-जन्मके महोत्सवके आनन्दमें मग्न हुए मेरे परिजन कब मुझसे पूर्ण-पात्र[1] ले जायँगे? उदय हुए सूर्य मण्डलसे युक्त, बालातपसे प्रकाशित आकाशके समान, पीले वस्त्र पहन कर पुत्रको गोदमें लिये तुमको देख कर मैं कब आनन्दित हूँगा? सर्वौषधि लगानेके कारण जिसके बाल उलझ गये हों, जिसके तालु पर मन्त्रित किये हुए घीकी बूँदें डाल कर फिर उस पर सरसों मिली हुई थोड़ी सी विभूति डाली हो, जिसके कण्ठ-सूत्रकी गाँठ गोरोचनसे रँगी गई हो, जो चित्त सोता हो और बिना दाँतके मुँहसे मन्द मन्द मुसकुराता हो ऐसा पुत्र कब मेरे हृदयको प्रसन्न करेगा? गोरोचनके समान पीली कान्तिवाला, रनवासमें एकसे दूसरीके हाथमें बार बार जाता और सब जनोंसे वन्दित, मंगल-प्रदीपके समान, पुत्र कब मेरे नेत्रोंके शोकान्धकारको मिटावेगा? धरतीकी धूलके लग जानेसे मटियाला होकर वह कब मेरे हृदय और दृष्टिके साथ ही घूमता घूमता महलके आँगनोंको शोभायमान करेगा? घुटनोंके बल चलनेके योग्य होने पर वह कब स्फटिक मणिकी दीवारोंमेंसे दीखते पालतू हिरनोंके बच्चोंको पकड़नेकी इच्छासे सिंहके बच्चेके समान इधर उधर दौड़ेगा? रनवासकी स्त्रियोंके पायजेबोंकी झनझनाहटका अनुसरण करते पालतू कलहंसोंके पीछे एकसे दूसरी बगलमें दौड़ कर सोनेकी तागड़ीके बोरोंके शब्दके पीछे भागती अपनी धात्रीको वह कब कष्ट देगा? काले अगरुकी रेखाओंसे

१—उत्सवके समय हर्षके कारण जो अलंकार, वस्त्र आदि हठ-पूर्वक लिये जाते हैं उनको पूर्णपात्र कहते हैं।

शोभित गंडस्थलवाला, धात्रीके मुखसे निकली हुई डमरूकी-सी आवाजसे प्रीति करता, हाथ ऊपर उठाकर उछाले गये चंदनके बुरादेसे धूसर हुआ, धात्रीके—अपनी उँगलियोंको मोड़ कर—आगे पीछे चलाने पर सिर कँपा कर वह कब लीला दिखावेगा ? माताके चरण रँगनेसे बची हुई महावरको वह कब बूढे कंचुकीके मुँहसे चुपडेगा ? कुतूहलसे चंचल नेत्रोंवाला वह मणि-भूमिकी ओर दृष्टि करके, ठोकर खाता खाता, अपनी परछाईं के पीछे कब दौड़ेगा ? हजारों नरपति हाथ बढा बढा कर जिसके आगमनका अभिनंदन करते हों, और उनके गहनोंकी मणियोंकी किरणोंसे जिसकी चंचल दृष्टि आकुल हो गई हो ऐसा वह सभा-मंडपमें मेरे सामने कब घूमेगा ? ऐसे ऐसे सैकड़ों मनोरथोंकी चिन्तासे हृदयमें खिन्न होकर मैं रात काटता हूँ। यह अनपत्यताका शोक मुझे भी दिन-रात अग्निके समान जलाता है। सब जगत् मुझे सूना लगता है और यह सब राज्य निष्फल देख पड़ता है पर विधाताके सामने अपना कुछ बस नहीं। क्या करूँ ! इसलिए, देवि, यह सब शोक मत करो। धैर्य और धर्ममें बुद्धि लगाओ, क्योंकि धार्मिक मनुष्योंके पास कल्याणकी संपत्ति सर्वदा रहती है। इतना कह कर वह पानी लाया और रानीके आँसू टपकाते हुए तथा खिले हुए कमलके समान मुँहको उसने नये पल्लवके समान हाथसे स्वयं धोया। फिर उसने सैकड़ों प्रिय और मधुर वचनोंसे रानीका शोक निवारण कर बार बार उसे आश्वासन दिया और बहुत देर पीछे वह वहाँसे चला गया।

७७—राजाके जानेके बाद विलासवतीने, शोक कम हो जानेसे, रीतिके अनुसार गहने आदि पहन कर दिनका सब उचित काम किया। तबसे वह सब देवताओंकी आराधना, ब्राह्मणोंकी पूजा और गुरुजनोंकी सेवामें अधिक आदर दिखाने लगी। जो कुछ कहींसे सुननेमें आता उसे ही वह संतानकी इच्छासे करने लगती और अत्यंत श्रमको भी कुछ न गिनती। दिन रात जलती गूगलकी धूपसे जहाँ अँधेरा हो जाता था ऐसे चंडिकाके मंदिरमें सफेद कपड़े पहन कर, शरीरसे शुद्ध हो, उपवास करके, वह मूसलोंकी शैय्या पर, हरे कुश बिछा कर, सोया करती थी। पवित्र जल तथा सब रत्नोंसे सुवर्णके कलशोंमें, अनेक फल-फूल और बड़ आदिके पत्ते डाल कर, उनसे

गायोंके बाड़ेमे बूड़ी गोपियोंके किए हुए कुंकुमादिके चिन्हसे युक्त सुलक्षणी गायोंके नीचे बैठकर वह नहाती थी। प्रति दिन उठ उठ कर सब रत्नों-सहित सुवर्णके तिलपात्रोंका ब्राह्मणोंको दान करती थी। कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिको चौराहे पर बड़े बड़े स्यानोंके बनाये हुए जादूके घेरोंके बीचमे अनेक प्रकारके बलिदानसे दिक्पालोंको प्रसन्न करके, मंगल स्नान करती थी। जहाँ कामना पूरी होने पर देवताओंको विचित्र वस्तु भेट दी जाती थी ऐसे सिद्ध मंदिरोंमे जाया करती थी। जो अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके बहुतसे सबूत दे चुके थे ऐसे, पासके, देवियोंके मंदिरोंमें जाती थी। नागकुलके प्रसिद्ध सरोवरोंमें नहाती थी। पीपल आदि महा वनस्पतियोंकी पूजा और प्रदक्षिणा करके उनकी वंदना करती थी। स्नान करनेके बाद, हिलते हुए मणि-मय कंकणवाले दोनों हाथोंसे, चावलके बिना टूटे दानोंके बनाये गये दही-भातकी बलि, चाँदीके बरतनमे, स्वयं कौओंको देती थी। बहुतसे फूल, धूप, लेप, माल-पुए, तिलकुट, खीर तथा जौके धान लेकर प्रति-दिन अम्बादेवीकी पूजा करती थी। जिनके वचन सदा सच्चे होते थे ऐसे नंगे बौद्ध सन्यासियोंको स्वयं भोजन भरे पात्र भेंट करके श्रद्धा-पूर्वक उनसे प्रश्न करती थी। भविष्य-वक्ताओंके वचन पर बहुत आस्था रखती थी। निमित्त जाननेवालोंका सत्कार करती थी। शकुन जाननेवालोंका आदर करती थी। अनेक वृद्धोंके परंपरागत मंत्रशास्त्रके रहस्योंको अंगीकार करती थी। दर्शनके लिए आए हुए ब्राह्मणोंके द्वारा पुनर्दर्शनकी इच्छासे वेदकी कथा कहलाती थी। दिन रात जिनका प्रचार था ऐसी पवित्र कथाओंको सुनती थी। गोरोचनसे भोजपत्र पर लिखे मंत्रोंसे युक्त तावीज पहनती थी। औषधियोंके गंडे बाँधती थी। उसके परिजन भी देवताओंकी मंशा जाननेके लिए बाहर जाकर सर्वदा शकुन ढूँढा करते थे। वे प्रति-दिन रातको गीदड़ीको मासके बलि पिंड डालते थे, स्वप्नमें देखे हुए आश्चर्यको आचार्योंसे कहते थे और चौराहों पर गीदड़ोंके लिए बलि रखते थे।

७८—इस भाँति कुछ दिन पीछे एक बार, जब रात करीब करीब बीत गई थी, तारे थोड़े थोड़े और मंद मंद दीखते थे, और आकाश बूढ़े कबूतरके पंखके समान धूम्र हो गया था तब, राजाने स्वप्नमें, हथिनीके मुखमें मृणालकी

भाँति, मदलोके शिखर पर सोती हुई विलासवतीके मुखमें सकल कलाओंसे परिपूर्ण चंद्रमंडलको प्रवेश करते देखा। वह शीघ्र जाग उठा। उसके नेत्र हर्षसे प्रफुल्लित होकर शयनागारको धवल करने लगे। उसने शुकनासको तुरत बुलवा कर स्वप्नका हाल कहा। शुकनासने अत्यंत प्रसन्न होकर उत्तर दिया—महाराज, बहुत काल पीछे आज हमारा और प्रजाका मनोरथ सिद्ध हुआ। अब शीघ्र आप पुत्रका मुख-कमल देख आनंदित होंगे। इसमें संदेह नहीं। मैंने भी आज रातको स्वप्नमें देखा है कि किसी शान्तमूर्ति ब्राह्मणने खिला हुआ सफेद कमल मनोरमाकी गोदमें रक्खा है। उस कमलमें चंद्र-कलाके समान सफेद सौ पंखड़ियाँ थीं। उसमेंसे रस टपक रहा था और हजारों केसर हिल रहे थे। वह ब्राह्मण धुले हुए कपड़े पहन रहा था और उसका आकार दिव्य था। पहले दिखाई देनेवाले शुभ लक्षण पास आनेवाले आनंदकी सूचना करते हैं। इससे बढ़कर प्रिय तथा आनंदका विषय और क्या है? रातके अंतमें जो स्वप्न दीख पड़ता है वह प्रायः सत्य होता है। इसलिए कुछ कालमें महारानीको मांधाताके समान सब राजर्षियोंका अग्र-गण्य और लोकानंदकारक पुत्र उत्पन्न होगा। शरद् ऋतुकी कमलिनी कमल-के जन्मसे जैसे गंधगजको आनंद देती है उसी भाँति देवी कुमारके जन्मसे आपको आल्हादित करेगी। उस कुमारकी संतति भी पृथ्वीका भार वहन करनेके योग्य होगी और उससे आपका वंश चलेगा। इस तरह कहते कहते उसका हाथ पकड़ कर राजा भीतर गया और दोनों स्वप्नोंका हाल कह कर उसने विलासवतीको आनंदित किया।

७६—थोड़े ही दिनके बाद देवताओंकी कृपासे विलासवतीमें गर्भने इस तरह प्रवेश किया जैसे सरोवरमें चंद्रबिंब प्रवेश करता है। पारिजातसे जैसे नंदन-वन और कौस्तुभ मणिसे जैसे विष्णुका वक्षःस्थल शोभायमान होता है उसी तरह गर्भसे रानी अत्यंत शोभित हुई। उसने दर्पण-श्रीके समान गर्भके आकारमें राजाका प्रतिबिंब धारण किया। जैसे जैसे प्रति दिन गर्भ धीरे धीरे बढ़ने लगा वैसे वैसे ही समुद्रका बहुतसा पानी लेनेके भारसे मंद हुई मेघ-की भाँति वह धीरे धीरे चलने लगी और बार बार जँभाइयोंके साथ [illegible] मीच मींच कर मंद मंद साँस लेने लगी। उसके स्तनोंका अग्र-

भाग वर्षाऋतुके मेघके समान श्याम हो गया। गर्भके कारण उसका रंग केतकीके समान फीका हो गया और उसे अनेक प्रकारके रसोंके भोज्य और पानकी इच्छा होने लगी। इंगित जाननेमें निपुण दासियाँ उसकी इस अवस्था-को शीघ्र जान गईं।

८०—सब परिजनोंमें प्रधान कुलवर्धना नामकी एक अत्यन्त बूढ़ी रनवास की दासी थी। वह सदा राजकुलमें रहनेसे चतुर और सदा राजाके पास रहनेसे प्रगल्भ हो गई थी तथा सब मंगल-कार्योंको जानती थी। एक अच्छे दिन प्रदोष समय राजा भीतरके सभा मंडपमें बैठा था। उसके आस-पास सुगंधित तेलसे भरे हजारों दीपक जल रहे थे, जिनसे वह नक्षत्रोंके बीचमें विराजमान पूर्ण चन्द्रमाके समान तथा शेषनागके फनकी हजार मणियोंके बीचमें बैठे नारायणके समान मालूम होता था। क्षत्रिय-कुलके कितने ही मुख्य मुख्य नरपति उसके चारों ओर बैठे थे और परिजन जरा दूर खड़े थे। राजाके पास ही बेंतकी कुरसी पर, धुले हुए सफेद कपड़े पहने, सादे वेशसे, समुद्रके समान अगाध गाम्भीर्यवाला शुकनास बैठा था। राजा उसके साथ पूर्ण विश्वाससे बातचीत कर रहा था। उस समय कुलवर्द्धनाने राजाके पास जाकर कानमें धीरे धीरे विलासवतीके गर्भका हाल कहा। यह अश्रुतपूर्व और असंभव वचन सुनते ही राजाके सब अंग मानो अमृत-रससे सिंच गये। उनके शरीर पर रोमाञ्च हो आए और वह आनंदसे विह्वल हो गया। मुसकु-राहटने उसके गाल प्रफुल्लित हो गये और हृदयके ऊपर तक भर जानेसे बाकी बचा हर्ष मानो दंत किरणोंके बहाने बाहर निकलने लगा। इतनेमें ही उसके चंचल पुतलीवाले और आनंदके आँसुओंसे भीगे पलकोंवाले नेत्र शुकनासके मुख पर पड़े।

८१—राजाका ऐसा अदृष्ट-पूर्व हर्षका उभार देख कर, मुसकुराती हुई कुलवर्धनाको आती देख कर, यही बात सर्वदा मनमें रहनेसे और इस वृत्तान्तके न जानने पर भी उस समय अन्य किसी अत्यंत हर्षके कारणको न देख, शुकनास ने तत्काल ताड़ लिया और राजाके पास कुरसी खींच कर धीरे-धीरे पूछा— महाराज, क्यों? क्या वह स्वप्न सच्चा हुआ? कुलवर्धनाके नेत्र अत्यन्त प्रफुल्लित दीखते हैं और प्रिय वचन सुननेके मानो कुतूहलसे, कानोंके पास पहुँच कर,

उनको नीलकमलके कर्णपूरकी शोभा देते हैं। आपके भी आनदाश्रुसे पूर्ण, चंचल पुतलीवाले प्रफुल्ल नेत्र किसी बड़े हर्षके कारणको सूचित करते हैं। इस बड़े भारी महात्मवके सुननेके कुतूहलसे अत्यत उत्सुक हुआ मेरा मन उद्विग्न हो रहा है। इसलिए कहिए कि यह क्या बात है? इस प्रकार पूछने पर राजाने हँस कर जवाब दिया—जो इसका कहना झूठ न हो तो स्वप्न सच्चा हुआ। पर मुझे विश्वास नहीं होता। मेरा भाग्य ऐसा कैसे हो सकता है? हम लोग कैसे ऐसे प्रिय-वचन सुननेके पात्र हो सकते हैं? कुलवर्धनाका कहना सच हो तो भी इस प्रकारके मगलोंका पात्र अपनेको न समझ कर मुझे आज ऐसा लगता है कि यह उलटी बात है। इसलिए चलो, उठो। स्वय देवीके पास जाकर निश्चय कर लें कि क्या यह सच है? यों कह कर उसने सब नरपतियोंको विदा कर दिया और अपने शरीरके सब गहने उतार कर कुलवर्धनाको दे दिये। उनका लाभ होते ही तुरन्त उसने पृथ्वीसे माथा लगाया और शिर झुका कर वदना की।

८२—फिर राजा शुकनासके साथ शीघ्र उठा। विशेष हर्षसे उसका मन भर गया, पवनसे हिलते नीले कमलके पत्तेकी लीलाका तिरस्कार करता दक्षिण नेत्र फड़क फड़क कर उसका अभिनंदन करने लगा। इस भाँति उस समयकी सेवाके योग्य, पीछे चलते, कुछ परिजनोंके साथ-वह रनवासमें आ पहुँचा। हवासे लहराती हुई स्थूल ज्योतिवाली लालटेनें उसके आगे आगे जाती थीं। उनके प्रकाशसे बहुतसे सहनोंका अँधेरा दूर होता जाता था।

८३—वहाँ शयन-गृहमें हिमालयके शिलातलके समान विशाल और गर्भवती स्त्रीके योग्य पलग पर सोती हुई विलासवतीको उसने देखा। वह अत्यन्त सफेद दो नए वस्त्र पहन रही थी, जिनके पल्ले गोरोचनसे चित्रित थे। शयन-गृहमें रक्षाका विधान भली भाँति किया गया था, नए चूनेसे सफेदी की गई थी, मगलप्रदीप जलाए गए थे; पार्श्वद्वारके पास पूर्ण कलश रक्खे गए थे, और उसकी दीवारें तत्काल काढे गये मगल-चित्रोंसे मनोहर लगती थीं। वहाँ सफेद चँदोवा बाँध कर उसकी कोरों पर मोतीकी झालरें लटकाई गई थीं। मणि-प्रदीपोंसे वहाँका अँधेरा दूर हो गया था। पलंगके चारो ओर रक्षाके ...त राग की आड़ बना दी गई थी, सिरहानेकी तरफ सुख-पूर्वक नींद आनेके

प्रयोजनसे धवल मंगल-कलश रक्खे थे, गोरोचनसे भोजपत्र पर लिखे गए मंत्रोंसे युक्त यंत्र बाँध कर उसको पवित्र किया था, कात्यायनी आदिसे रक्षाके निमित्त मोरपंख उसमें उरस दिये थे, इधर उधर सफेद सरसों बखेर दी गई थी, पीपलके चंचल पत्ते, जादूकी गाँठोंसे, बालोंकी लटोंमें गूँथ कर, उसमें लटका दिये थे, नीमके हरे पत्ते बँधे थे, पैर रखनेके लिये एक ऊँची चौकी पास रक्खी थी और चाँदनीके समान सफेद चादर उस पर बिछी थी। वहाँ ऐसे पात्र थे जिनमें सुवर्णकी कटोरियोंमें रक्खे हुए दहीके पूरे पूरे टुकड़े जुदे जुदे दीखते थे, जल तरंगके समान शोभायमान सफेद चावलोंके दाने रक्खे थे; और बिना गूँथे फूल अंजलि भर भर कर बिखेरे थे। ऐसे पात्रोंसे और जिनके ले जानेमें पानीकी धारा नहीं टूटती थी ऐसी—ताजे मांससे मिश्रित—सावित मुख-वाली बहुतसी मछलियोंसे, लाल कपड़ेके घेरेके भीतर जलाए गए कपूर प्रदीपोंसे, गोरोचनमें मिली हुई सफेद सरसोंसे और जलकी अञ्जलियोंसे रनवासकी—आचारमें कुशल-बुढियाँ रानी पर उतारेकी मंगल किया करती थीं। श्वेत-वस्त्रका स्वच्छ वेष धारण कर अच्छी अच्छी बातें करते परिजन आनंदसे उसकी सेवा करते थे। गर्भ प्रफुल्ल होनेसे वह ऐसी शोभायमान मालूम होती थी मानो अन्तर्गत कुल-पर्वतवाली पृथिवी हो, जलमें डूबे ऐरावतवाली मंदाकिनी हो, गुफामें घुसे सिंहवाली हिमालयकी मेखला हो, मेघसे ढके सूर्यवाली दिवस श्री हो, उदयाचलसे ढके चंद्रमंडलवाली रात्रि हो, ब्रह्म-कमलके उत्पत्ति-समयकी विष्णुकी नाभि हो, अगस्त्योदयके समयकी दक्षिण दिशा हो, और झागसे ढके अमृत-कलशवाली क्षीर-सागरकी वेला हो। दासियोंसे शीघ्र लंबे किए गए हाथके सहारे बायें घुटने पर हाथ रख कर, हिलते हुए गहनोंकी मणियोंकी झनझनाहटके साथ उठती विलासवतीसे—बहुत आदर हुआ, बस, देवि, मत उठो—यों कह कर राजा उसके साथ उसी पलँग पर बैठ गया। पास ही एक दूसरा पलँग पड़ा था। उसके सुंदर पाये स्वच्छ सुवर्णके बने थे तथा उस पर सफेद चादर बिछी थी। उस पर शुकनास भी बैठ गया।

८४—रानीको प्रफुल्लित गर्भ-सहित देख कर हर्षके भारसे मंद हुए मनसे परिहास करते करते राजा बोला—देवि, शुकनास पूछते हैं कि कुलवर्धनाका कहना सच है क्या? इतनेमें विलासवतीके गाल, ओठ और आँखों पर मंद

मंद मुसकुराहट चमकी और दंत किरणोंके बहाने मानो वस्त्रसे मुँह ढक कर लज्जासे उसने उसे नीचे झुका लिया। लेकिन जब राजाने बार बार आग्रहसे पूछा तब बोली कि क्यों मुझे अधिक शर्मिन्दा करते हो? मैं कुछ नहीं जानती। इतना कह कर, आँखकी पुतलियोंको जरा तिर्छी करके तथा नीचा मुँह कर, उसने राजाको मानो कुछ क्रोधसे देखा। अस्फुट हास्यसे प्रकाशमान मुखसे राजा फिर बोले,—सुन्दर शरीरवाली, यदि मेरे वचनोंसे तुम्हारी लज्जा बढती है तो, लो, मैं चुप हूँ, परन्तु खिलती हुई पंखडीवाली कलियोंसे स्वच्छ दीखते चंपाके समान कान्तिवाले इस अपने पीले शरीरको किस प्रकार गुप्त रक्खोगी? इसका कुंकुम लेप एकसा होनेके कारण केवल परिमलसे ही पहचाना जाता है। नीलकमल-धारी चकवा-चकवीके समान इन स्तनोंको तुम कैसे छुपाओगी? अग्रभाग श्याम होनेसे ये गर्भ-रूपी अमृतसे सींचे जानेके कारण शान्त होती हृदयकी शोक-रूपी अग्निके धूमको मानो उगलते हैं, तमालके पत्तेसे ढके मुखवाले सुवर्णके कलशके समान दीखते हैं और ऐसा मालूम होता है मानो इन पर सदाके लिए काले अगरुसे फूल-पत्ते काढे गए हैं। प्रति-दिन करधनीके अधिक तंग होनेसे पीडा पाते अपने मध्यभागका तुम क्या उपाय करोगी? इसकी तीनों सिलवटें अदृश्य होती जाती हैं और कृशता कम होती जाती है। इस प्रकार कहते हुए राजासे मुँहके भीतर हँसी छिपा कर शुकनासने कहा—महाराज, रानीको क्यों कष्ट देते हो? वे ऐसी बातोंसे शरमाती हैं। इसलिए कुलवर्धनासे कहे गए वृत्तांतकी बातचीत रहने दो। बहुत देर तक ऐसी ऐसी परिहासकी बातचीत करनेके बाद शुकनास अपने घर गया और राजाने उसी शयन गृहमें रानीके साथ रात बिताई।

८५—इसके कुछ समय बाद इच्छानुसार गर्भ समयके मनोरथोंके पूर्ण होनेसे आल्हादित हुई विलासवतीने प्रसव-काल पूर्ण होने पर एक शुभ दिन शुभ समय पर, सब लोगोंके हृदयको आनंद देनेवाले पुत्रको इस प्रकार जन्म दिया जैसे मेघमाला मेघ-ज्योतिको जन्म देती है। उस समय ज्योतिषी बराबर टपकते पानीकी घडीसे समयकी कलाओंका निश्चय कर रहे थे और बाहर अपनी छाया नाप कर लग्नका निर्णय कर रहे थे। उसके पैदा होते ही नगरमें धूम निराला, उत्सवकी बधाइयोंका बडा भारी कोलाहल राज-कुलमें मच गया।

वेगसे इधर उधर दौड़ते परिजनोंके सैकड़ों चरण पड़नेके क्षोभसे धरातल चलायमान हो गया । राजाके पास जाते हजारों कञ्चुकी चलनेमें हर्षसे गिर कर विकल हो गये, मनुष्योंकी भीड़में कुचल कर कुबड़े, बौने और छोटे शरीरके आदमियोंके झुंड जमीन पर गिर पड़े, रनवासकी स्त्रियोंके गहनोंकी मनोहर झनझनाहट फैल गई और पूर्णपात्र लेनेमें राजासे वस्त्र तथा गहने जबरदस्ती छीन लिए गए। फिर मंदराचलसे मथे गए समुद्रके घोषके समान गंभीर दुंदुभिके नादसे युक्त, कोमल स्वरके मृदंग, शंख, ढोल, नगाड़े आदि बाजोंके शब्दसे पूर्ण, मंगल पटहकी तेज आवाजमें मिले हजारों मनुष्योंके कलकलसे तीनों भुवन भर गए। सब सामंत, रनवासकी सब स्त्रियाँ, सब राजा लोग, सब नौजवान वेश्याएँ तथा बाल वृद्धोंसे लेकर ग्वालबाल तक सब प्रजा हर्षमें मग्न होकर उन्मत्तकी भाँति नाचने लगी। राजकुमारके जन्मका उत्सव कलकलसे प्रति दिन उसी प्रकार बढ़ने लगा जैसे चंद्रोदयसे समुद्र बढ़ता है।

८६—राजाका हृदय पुत्रका मुँह देखनेके लिये तड़प रहा था तो भी अच्छा दिन आने पर ज्योतिषियोंके बताए हुए शुभ मुहूर्तमें उसने सब परिजनोंको हटा कर शुकनासके साथ सूतिका-गृह देखा। उस गृहके द्वार पर बहुतसी पुतलियाँ कढ़ी हुई थीं और दो मणि-मय मंगल-कलश रक्खे थे। अनेक भाँतिके नए नए पत्तोंके ढेर लगे थे। सुवर्णके दो हल मूसल रक्खे थे। दूबकी कोंपलके साथ दूर दूर गुँथे हुए सफेद फूलोंकी मालाएँ शोभायमान थीं। अखंडित व्याघ्रचर्म लटक रहे थे। बंदनवारोंके बीच बीचमें घंटियाँ बँध रही थीं। द्वारके दोनों ओर मर्यादामें निपुण बूढ़ी सौभाग्यवती स्त्रियाँ बैठी थीं। वे गोबरसे बहुतसे चौक बनाती थीं, उन पर चित्त कौड़ियाँ चिपकाती थीं, बीच बीचमें गेरू आदिके सुन्दर रंग भरती थीं, कपासके फूलोंके टुकड़े लगाती थीं, और टेसूके फूलोंकी केसरसे उनको लाल लाल करती थीं। षष्ठीदेवीको काढ़ कर उसे हलदीसे रँगे पीले कपड़े पहनाती थीं। फैले हुए पखोंसे चाड़ी मोरकी पीठ पर शक्ति और दंड फिरानेसे प्रचंड दीखते स्वामिकार्तिककी मूर्ति काटती थीं और वहाँ लाल कपड़ेकी फहराती हुई ध्वजा बनाती थीं। लाखसे बीचका हिस्सा लाल करके सूर्य चन्द्र बनाती थीं। गाढ़ा कुंकुम लगा कर पीली की हुई मट्टीकी गोलियोंकी माला बनाती थीं। सुवर्णके जौ उन गोलियोंके ऊपर निकले रहते

थे और पास पास चिपकी सफेद सरसोंके कारण वे सुवर्णके रससे भरी हुई सी मालूम होती थीं। चन्दनके जलसे धोई गई दीवारोंके ऊपरकी तरफ हलदीकी पिट्ठीसे चित्र काढ कर उन पर पँचरंगे कपड़ोंके टुकड़े चिपकाती थीं। ऐसे ही अन्य बहुतसे मंगल-चिन्ह प्रसव-गृहकी शोभाके लिये काढती थीं। दरवाजेके पास भाँति भाँतिके सुगंधित फूलोंके हार पहना कर एक बूढे बकरेको बाँध रक्खा था। पलँगके सिरहानेके पास सब नाज रक्खे थे, उन पर एक बुढिया बैठी थी। साँपकी काँचली और मैंढेके सींगोंका बुरादा वहाँ घीके साथ दिन रात जला करता था। अग्निमें जलते हुए नीमके पत्तोंमेंसे रक्षा धूमकी गंध फैलती थी। पाठ करनेवाले ब्राह्मण शान्तिके लिये थोड़ा थोड़ा जल छिड़कते थे। धायें कपड़ों पर तत्काल बनाई देवियोंका पूजन करनेमें लग रही थीं। अनेक बुढियाँ प्रसव समयके योग्य मंगल गीत गा रही थीं। स्वस्ति-वाचन हो रहा था। बालककी रक्षाके लिए बलिदान हो रहा था। सफेद फूलोंके सैकडों हार बँधे थे। विष्णुसहस्रनामका पाठ निरंतर हो रहा था। सुवर्णकी स्वच्छ दीवटों पर रक्खे और निश्चल ज्योतिसे मानो हृदयमें सैकड़ों कल्याणोंका ध्यान करते मंगल-दीपकोंसे प्रकाश हो रहा था। नंगी तलवार हाथमें लेकर गारद उस गृहके चारों ओर घूम रही थी। जल और अग्नि छूकर राजा उस गृहके भीतर गया।

८७—जाते ही राजाने प्रसवसे दुबली और फीकी विलासवतीकी गोदमें सोए हुए हर्ष-जनक पुत्रको देखा। उसकी कांतिसे सूतिका गृहके दीपकोंकी प्रभा मंद हो गई थी। गर्भकी ललाई कम न होनेसे वह उदयके समय लाल मंडल-वाले सूर्यके, संध्या-समय लाल बिंब-युक्त चंद्रमाके, कल्पवृक्षके कोमल पत्तेके, खिले हुए लाल कमलोंके समूहके और पृथ्वीको देखनेके लिए नीचे उतरे मंगल ग्रहके समान मालूम होता था। उसके अवयव मानो मूँगेके अंकुरोंके टुकडोंसे, नई धूपके टुकडोंसे और भानुकी किरणोंसे बनाए गए थे। वह छिपे हुए पाँच मुखवाले स्वामिकार्तिकके तथा देवताओंकी स्त्रियोंके हाथमेंसे गिरे हुए अमृतके समान मालूम होता था और तपाए हुए स्वच्छ सुवर्णके समान चमकती शरीर-कांतिसे शयन गृहको मानो भरे देता है। चमकते हुए सहज भूषणोंके समान पुरुषके लक्षण उसमें दिखाई पड़ते थे और—भविष्यमें यह मेरा पालन ।।—यह जानकर हर्षित हुई लक्ष्मीने मानो उसका आलिंगन किया था।

राजाके खूब खुले हुए निमेष-रहित नेत्रोंके पलक निश्चल हो गए थे और पुत-लियाँ, बार बार पोंछने पर भी फिर निकलते, आनंद-जलमें डूब गई थीं। ऐसे प्रीति-मय नेत्रोंसे मानो पीता हो, आलाप करता हो और स्पर्श करता हो इस प्रकार कुमारके मुखको स्पृहासे देख देख कर राजा बड़ा आनंदित हुआ, क्योंकि हजारों मनोरथोंसे पुत्र देखनेको मिला था। वह अपनेको धन्य समझने लगा। शुकनासका मनोरथ भी सफल हो गया था। वह भी प्रीतिके कारण फैले हुए नेत्रोंसे कुमारके प्रत्येक अंगको देखता राजासे धीरे धीरे कहने लगा—देखिए, देखिए, महाराज, गर्भमें सुकड़नेके कारण अभी कुमारके अवयवोंकी शोभा स्फुट तो नहीं हुई है तथापि चक्रवर्ती राजाके लक्षण इसका माहात्म्य प्रकट करते हैं। देखिए, संध्याकी किरणोंसे लाल हुए बाल चंद्रमाकी कलाके समान ललाटमें मृणालमेंसे टूटे तंतुके समान सूक्ष्म रोम शोभायमान हैं, खिले हुए पुंडरीकके समान, कानोंके छोर तक फैले, मुड़े हुए पलकोंवाले नेत्र बार बार खुल कर मानो शयन गृहको सफेद किए डालते हैं, कनक-लेखाके समान लंबी नाक मानो उसके मुखकी—खिलती हुई कमलकी कलीकी परिमलके समान मनोहर—सहज सुगंधको सूँघती है, उसका नीचेका ओठ लाल कमलकी कलीके आकारके समान है, हथेलियाँ लाल कमलकी कलीके समान लाल हैं, हाथ, विष्णुके समान, शंख चक्र-चिह्नित और शुभ रेखाओंसे अंकित हैं, दोनों चरण कल्पवृक्षके नए पत्तोंके समान कोमल हैं, ध्वजा, रथ, अश्व, छत्र और कमलकी रेखाओंसे अलंकृत हैं और हजारों नृपोंकी चूड़ामणियोंसे चुंबन होनेके योग्य हैं। यह दुंदुभीके समान अत्यन्त गंभीर रोनेका स्वर सुनाई देता है।

८८—इस प्रकार वह कह रहा था कि इतनेमें ही मंगल नामका पुरुष जल्दी जल्दी आया। द्वारके पास खड़े राजा लोगोंने झटपट सरक कर उसको रास्ता दिया। हर्षसे उसके शरीर पर रोमांच हो आए थे और नेत्र फैल रहे थे। उसने हँसते हँसते राजाको प्रणाम करके कहा—महाराज, आपकी वृद्धि हो! आपके शत्रुओंका नाश हो! महाराज, आप दीर्घायु हों! पृथ्वीकी विजय करें! आपकी कृपासे आर्य शुकनासकी ज्येष्ठ पत्नी मनोरमाके—रेणुकाके परशुरामके समान—एक पुत्र पैदा हुआ है। यह सुन कर महाराजकी जो इच्छा!

८९—अमृत वृष्टिके समान वचन सुन कर राजाके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित हो

गए और वह बोला—अहो, कल्याण-परंपरा! विपत्ति विपत्तिके और सम्पत्ति सम्पत्तिके पीछे जाती है—यह कहावत सच्ची है। सुख दुःखमें समानता दिखा कर विधाताने भी सर्वथा तुम्हारी ही भाँति हमारे साथ बर्ताव किया है। यों कह कर शुकनासको हर्षसे आलिंगन कर, प्रीतिसे प्रफुल्लित हुए मुखसे हँसते हँसते राजाने आप ही पूर्णपात्रकी जगह उसका दुपट्टा ले लिया। मनमें प्रसन्न होकर मंगलको भी शुभ-समाचारके योग्य अमूल्य पुरस्कार दिया। फिर उसी तरह उठ कर वह शुकनासके घरके लिए रवाना हुआ। उसके पीछे पीछे रनवासकी स्त्रियाँ चलने लगीं। नाचनेमें पैरोंको जोरसे पटकनेके कारण झनझनाते हजारों पायजेबोंसे दिगन्तर गूँज उठे। वेगसे हाथ उछालनेके कारण हिलते मणि-कंकणोंके शब्दसे भुजलताएँ शब्दायमान हो गईं। हथेलियाँ ऊपरकी ओर करके ऊँचे किए करसम्पुटोंसे वे, मानो, पवनके जोरसे चलायमान हुई आकाश-कमलिनीको दिखाने लगीं। उनके कर्ण-पल्लव निकल कर कुचल गये। बाजूबंदोंके सिरोंके आपसमें रगड़नेसे ओढ़नियाँ फट गईं। पसीनेसे धुले अंगरागसे कपड़े रँग गये। तमाल-पत्र कुछ कुछ बच गये। विलासिनी वेश्याओंके हास्यसे खिले हुए कमल-वनके समान रचना होने लगी। वेगसे मुड़नेके कारण खिसकनेसे हिलते हार स्तनों पर टकराने लगे। सिंदूरकी बिंदीमें बालोंकी लटें चिपक गईं, और पटवासका बुरादा उड़नेसे बाल पीले पीले हो गये। गूँगे बहरे, कुबड़े, किरात, बौने, बहरे और मूर्ख उनके आगे आगे नाचते जाते थे। बूढ़े कञ्चुकियोंकी गर्दनमें दुपट्टा डाल कर और उसे खींच कर वे उनकी विडम्बना करती थीं। वीणा, मृदंग, काँसा और मजीरोंकी लयका अनुसरण करती थीं। धीमे स्वरसे मधुर गान करती थीं और हर्षमें मग्न होनेके कारण मदमत्त, उन्मत्त और ग्रहग्रस्तकी तरह उनको योग्य अयोग्य भाषणका ज्ञान नहीं रहा था।

९०—उनके पीछे पीछे राज-परिजन और चारण चल रहे थे। परिजनोंके कुंडल हिल हिल कर सुन्दर गालों पर टकराते थे, कर्णोत्पल पैरोंमें ठुकराते थे, शेखर खिसक खिसक कर नीचे गिर पड़े थे, जनेऊकी तरह छाती पर पहनी गई फूलोंकी मालाएँ दोलायमान हो रही थीं, जोरसे बजते भेरी, मृदंग, ढोल और [illegible] शब्दके साथ बड़े बड़े दोहों और श्लोकोंके स्वरसे उन्होंने बड़ी गड़बड़

मचा दी थी और वे चरण रख रख कर पृथ्वीको मानो फाड़ें डालते थे। चारण भी मुँहसे बजानेके बहुतसे बाजोंसे कोलाहल करते नाचते जाते थे और कुछ पढते तथा गाते जाते थे। इस प्रकार शुकनासके महलमें जाकर राजाने दूना उत्सव कराया।

६१—छठीके रतजगेके बाद जब दष्ठौन हुआ तब अच्छे मुहूर्तमें करोड़ों गाय और सुवर्ण ब्राह्मणोंको दान देकर—स्वप्नमें इसकी माताके मुख कमलमें मैंने पूर्ण चन्द्र-मंडलको प्रवेश करते देखा था—यह विचार कर राजाने स्वप्नके अनुसार कुमारका नाम चंद्रापीड़ रक्खा। दूसरे दिन शुकनासने ब्राह्मणोचित सब क्रिया करके राजाकी अनुमतिसे अपने पुत्रका, ब्राह्मणके योग्य, वैशंपायन नाम रक्खा। फिर क्रम-पूर्वक चद्रापीड़की मुडन आदि बाल क्रियाएँ हुईं और बाल्यावस्था बीत गई।

६२—फिर तारापीड़ने कुमारका मन खेलमें लगनेसे रोकनेके लिये नगरीके बाहर, शिप्रा नदीके तट पर, आधकोस लंबा, देव मदिरके समान एक विद्यालय बनवाया। उसके आस-पास एक बड़ा ऊँचा अहाता खिंचवाया। उस पर सफेदी हो रही थी और वह हिमालयके शिखरोंकी मालाके समान मालूम होता था। उसके पीछे एक बहुत चौड़ी गोल खाई खुदवाई। विद्यालयमें बड़े मजबूत किवाड़ लगवाए और सिर्फ एक ही दरवाजेमेंसे भीतर जानेका रास्ता रक्खा। एक तरफ अस्तबल बनवाई। नीचेकी ओर अखाड़ा बनवाया और सब विद्याओंके आचार्योंको बड़े प्रयत्नसे एकत्रित किया। वहाँ पिंजरेमें रक्खे गए सिंहके बच्चेकी भाँति चद्रापीड़को रक्खा और बाहर आनेका निषेध कर दिया। परिजनोंमें केवल आचार्योंके पुत्रोंको रक्खा और बालकोंके मनका आकर्षण करनेवाली खेलकी सब चीजें वहाँसे हटा दीं। ऐसी युक्ति की जिससे कुमारका मन अन्य वस्तुमें न लगे। फिर सब विद्या प्राप्त करनेके लिए एक अच्छे दिन उसने चद्रापीड़को वैशंपायनके साथ आचार्योंके सुपुर्द किया। राजा विलासवतीके साथ, कुछ परिजनोंको लेकर, रोज वहाँ कुमारको देखने जाया करता था।

६३—इस प्रकार राजाके नियन्त्रणमें रहते चद्रापीड़का हृदय अन्य विषयोंमें नहीं लगने पाया। इससे उसने अपनी अपनी निपुणता दिखानेवाले तथा

सुपात्र शिष्य मिलनेके कारण उत्साहपूर्वक शिक्षा देते हुए आचार्योंके पास थोड़े ही समयमें सब विद्याओंका अभ्यास कर लिया। मणि-दर्पणके समान अत्यत निर्मल राजकुमारमें सम्पूर्ण कला-कलापने प्रवेश किया। व्याकरणमें मीमासामें, न्यायमें, धर्मशास्त्रमें, राजनीतिमें, मल्लविद्यामें, धनुष, चक्र, ढाल, तलवार, शक्ति, भाला, परशु, गदा आदि अनेक प्रकारके आयुधोंमें, रथ हाँकनेमें, हाथी पर चढनेमें, अश्व-विद्यामें, वीणा, वेणु, मृदग, काँसा, मजीरे, तूती, आदि बाजोंमें, भरत आदिके बनाए हुए नृत्य-शास्त्रमें, नारद आदिके सगीत शास्त्रमें, हस्ति शिक्षामें, घोडोंकी उम्र जाननेमें, पुरुषोंके लक्षणोंमें, चित्र-कर्ममें, वस्त्र या दीवार पर चित्र काटनेमें, ग्रन्थ-रचनामें, मूर्ति खोदनेमें, सब द्यूत कलाओंमें, गधर्व शास्त्रोंमें, पक्षियोंका उच्चारण समझनेमें, ज्योति शास्त्रमें, रत्न-परीक्षामें, बढईके काममें, हाथी दाँतके काममें, वास्तु-विद्यामें, वैद्यकमें, यन्त्र-प्रयोगमें, विष उतारनेमें; सुरग फोड़नेमें, तैरनेमें, उलाघनेमें, कूदनेमें, चढनेमें, प्रेम करनेमें, जादूमें, कथाओंमें, नाटकोंमें, कहानियोंमें, काव्योंमें, महाभारतमें, पुराणोंमें, इतिहासमें, रामायणमें, सब लिपियोंमें, सब देशोंकी भाषाओंमें, सब पारिभाषिक सकेतोंमें, दस्तकारीमें, छदोंमें और ऐसी ऐसी अन्य कितनी ही कलाओंमें वह अत्यन्त निपुण हो गया।

६४—प्रति दिन कसरत करनेसे बाल्यावस्थमें ही उसमें सब लोगोंको विस्मय कराती, भीमसेनके समान, स्वाभाविक महावीरता देखनेमें आई। जब वह खेलमें हाथियोंके बच्चोंके कान हाथसे पकड़ कर आसानीसे उन्हे झुका देता था तब वे इस तरह जरा भी नहीं हिल सकते थे जैसे सिंहके बच्चेकी झपटमें आ गए हों, बाल्यावस्थामें तलवारकी एक-एक चोटसे तालवृक्षोंको, मृणाल दण्डके समान, काट डालता था, समस्त क्षत्रियरूपी बाँसोंके वनको अग्निरूप—परशुरामके[1] बाणोंके समान—उसके बाण पर्वतोंकी चट्टानोंको छेद

१—राजा कार्तवीर्य के एक हजार बाहुएँ थीं। एक बार वह जमदग्नि के आश्रम में गया। वहाँ जमदग्नि या उसके पुत्र नहीं थे इस कारण जमदग्नि की पत्नी ने उसका आतिथ्य किया। चलते समय राजा जमदग्नि की गौ ले गया और उसने आश्रमके वृक्ष तोड़ ताड़ डाले। जब यमदग्नि के पुत्र...मने वापिस आकर यह सब देखा तब उनको बड़ा क्रोध आया और

डालते थे। जिसे दस आदमी उठा सकें ऐसे लोहेके मुगदरसे वह कसरत करता था। अत्यंत बलके सिवा अन्य गुणोंमें वैशंपायन उसके बराबर था। वह चंद्रापीड़का ऐसा पूरा विश्वास पात्र और परम-मित्र हो गया मानो दूसरा हृदय हो, क्योंकि दोनों धूलमें साथ साथ खेले थे और दोनोंकी साथ साथ परवरिश हुई थी। इसके अलावा सब कलाओंमें प्रवीण होनेसे चंद्रापीड़ उसका बहुत मान करता था और शुकनासका बड़ा आदर करता था। वह एक क्षण भी वैशंपायनके बिना अकेला नहीं रह सकता था। दिन जैसे सूर्यका अनुसरण करता है उसी प्रकार वैशंपायन भी चंद्रापीड़के पीछे रहता था और एक क्षणके लिए भी उससे अलग नहीं होता था।

९५—जब चंद्रापीड़ इस प्रकार सब विद्याओंके अभ्यासमें लगा था तब उसमें यौवनारंभ दिखाई देने लगा। वह समुद्रके अमृत-रसके समान त्रिभुवन-विलोभनीय, प्रदोषके चन्द्रोदयके समान सब लोगोंके हृदयको आनंद देनेवाला, मेघकालके इन्द्र-धनुषके समान विविध राग[1]-विकार-भंगुर, कल्पवृक्षके कुसुम-प्रसवके समान कामदेवका शस्त्र, कमल-वनके सूर्योदयके समान अभिनव रागसे[2] रमणीय, मयूरके पंखोंके समान विविध नृत्य[3]-क्रीडाके योग्य था। उससे उस रमणीय कुमारकी रमणीयता भी दूनी हो गई। कामदेवको मौका मिलनेसे वह नए सेवकके समान उसके पास आने लगा। सौंदर्यके साथ साथ

उन्होंने कार्तवीर्य की राजधानी में जाकर उसे मार डाला। इसके बदले में कार्तवीर्य के पुत्रो ने, परशुराम नहीं थे तब, जमदग्नि के आश्रम पर हमला किया और जमदग्नि को मार डाला। जब परशुराम ने यह सुना तब उन्होंने प्रतिज्ञाकी कि वे कार्तवीर्यके पुत्रों के साथ सब क्षत्रिय जाति को निर्मूल कर देंगे। उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों को नष्ट किया।

१—इन्द्र-धनुष अनेक प्रकारके रंगोंके विकारसे अस्थिर होता है, यौवनारंभ शृंगारके अनेक भावोंके विकारसे विनाश-शील होता है।

२—उदयकालका सूर्य नई ललाईसे रमणीय होता है; यौवनारंभ नये प्रेमसे रमणीय होता है।

३—मयूरोंके पंख नृत्य क्रीडाके योग्य होते हैं, यौवनारंभ नृत्य तथा अन्य शृंगार-रस संबंधी क्रीडाके योग्य था।

उसकी छाती बढने लगी। बन्धुजनोंके मनोरथोंके साथ साथ जघाएँ भरने लगीं। शत्रुओंके साथ साथ मध्यभाग पतला होने लगा। दानके साथ साथ नितम्ब-भाग पृथु होने लगा। प्रतापके साथ साथ रोम-राजी बढने लगी। शत्रुओंकी स्त्रियोंके बालोंकी लटोंके[1] साथ साथ हाथ नीचेको लटकने लगे। चरित्रके साथ साथ नेत्र धवल होने लगे। आज्ञाके साथ साथ भुजाका ऊपरी भाग भारी होता गया और स्वरके साथ साथ हृदयमें गभीरता आ गई।

६६—इस तरह चंद्रापीड़ जवान हो गया है, उसने सब कलाओंका अभ्यास कर लिया है और सब विद्याएँ पढ ली हैं—यह जब राजाको मालूम हुआ तब आचार्योंकी अनुमतिसे उसे बुलानेके लिए, बलाहक नामक सेनापतिको बुला कर, बहुतसे सवार और पैदलोंके साथ, एक अच्छी घड़ीमें राजाने वहाँ भेजा। बलाहकने विद्यालयके पास पहुँच कर द्वारपालोंसे खबर भिजवाई। फिर वह विद्यालयके भीतर गया और जिसका चूड़ामणि भूतलमें लग गया था ऐसे मस्तकसे प्रणाम करके राजाके पास जिस तरह बैठा करता था उसी तरह विनय पूर्वक अपने पदके योग्य आसन पर राज-कुमारकी अनुमतिसे बैठ गया। फिर थोड़ी देर ठहर कर उसने चंद्रापीड़के पास जाकर विनयपूर्वक कहा—कुमार, महाराजकी आज्ञा है कि हमारे मनोरथ सफल हुए, आपने शास्त्रोंको पढा, सब कलाएँ सीखीं और सब आयुध-विद्याओंमें बड़ी योग्यता प्राप्त की, इसलिए सब आचार्योंने आपको विद्यालयसे बाहर जानेकी अनुमति दे दी है जिससे सब लोग शिक्षा ग्रहण करके बंधन-स्थानमेंसे बाहर निकले गंध-गज-कुमारके तथा पूनोंके तत्क्षण निकले सकल-कला-परिपूर्ण चद्रमाके समान आपको देखें और बहुत कालसे दर्शनके लिये उत्कंठित हुए अपने नेत्र सफल करें। आपको देखनेके लिए सब रनवास अत्यंत उत्सुक है। विद्यालयमें रहते रहते आपको आज दसवाँ वर्ष लगा है। छठे वर्ष आपने इसमें प्रवेश किया था। इन दोनोंके जोड़नेसे आप अब सोलहवें वर्षमें हैं। इसलिए आज यहाँसे बाहर जाओ और दर्शनोत्सुक माताओंको दर्शन देकर तथा बड़े बूढ़ोंको वंदना करके राज्य सुख और नई जवानीके

१—अपने पतियोंके विनाशके डरसे शत्रुओंकी स्त्रियोंने अपनी चोटियाँ छोड़ दिया था; उनकी चोटियाँ नीचेकी तरफ लंबी लटका करती थीं।

विलासका यथारुचि स्वतन्त्रता पूर्वक अनुभव करो, राजा लोगोंका सन्मन करो, ब्राह्मणोंका पूजन करो, प्रजाका पालन करो और बंधुवर्गको आनंद दो। महाराजका भेजा हुआ यह अखिल त्रिभुवनका एक रत्न, इन्द्रायुध नामका घोड़ा दरवाजे पर खड़ा है। यह वेगमें पवन और गरुड़के समान है। इसे तीनो भुवनोंका आश्चर्य समझ कर पारसियोंके राजाने महाराजके पास भेजा था और यह सदेसा कहला दिया था कि समुद्र-जलमेंसे उत्पन्न हुआ यह अयोनि-जन्मा अश्व-रत्न मुझे मिला है। यह महाराजकी सवारीके योग्य है। इसे देख कर लक्षण पहचाननेवालोंने कहा था कि जो लक्षण इन्द्रके घोड़ेमें सुने जाते हैं वे ही इसमें हैं। इसके समान घोड़ा न तो कहीं हुआ और न होगा। इस-लिए आप इस पर सवार होनेकी कृपा करिए। महाराजने क्षत्रिय-राज-कुलोंमें पैदा हुए, विनीत, शूर, रूपवान्, चतुर और कुलीन एक हजार राज-पुत्रोंको आपकी सेवाके लिए भेजा है। वे घोड़ों पर बैठे बैठे आपको प्रणाम करनेको लालसासे बाहर आपकी राह देख रहे हैं। इतना कह कर बलाहकके चुप हो जाने पर चन्द्रापीड़ने पिताकी आज्ञाको सादर स्वीकार किया और बाहर जानेकी इच्छासे, नवीन मेघकी गर्जनाके समान गंभीर स्वरसे, इन्द्रायुधको भीतर लानेकी आज्ञा दी।

६७—आज्ञा होते ही एक बहुत बड़ा घोड़ा सामने आया। लगामके दोनों तरफ लगी हुई सुवर्णकी जंजीरोंको पकड़ पकड़ कर पद पद पर रोकनेकी कोशिश करते दो साईस उसे खींचे लाते थे। उसका कद इतना ऊँचा था कि हाथ ऊँचे करनेसे ही पीठ छुई जा सकती थी। वह सामने आए आकाशका, मानो, पान करता था, उदरको कँपाते और पृथ्वीकी गुफाओंको भरे डालते अत्यन्त कठोर शब्दको बार बार करके वह मिथ्या वेगका व्यर्थ घमंड रखनेवाले गरुड़का मानो तिरस्कार करता था। क्षण क्षणमें कभी उसका मस्तक बहुत ऊँचा और कभी बहुत नीचा हो जाता था और वेग रोकनेसे पैदा हुए अत्यंत रोषसे उसकी घोर नासिका घुर घुर शब्द करती थी, जिससे ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने वेगके गर्वसे संपूर्ण त्रिभुवनका उल्लंघन करनेका विचार कर रहा हो। इन्द्र-धनुषके समान काली, पीली, हरी और लाल रेखाओंसे उसका उच्च शरीर चित्रित था, जिससे वह अनेक रंगोंकी झूलसे ढका हाथीका

बच्चा मालूम होता था। वह कैलाश तटकी टक्करसे लगी धातुकी रजसे लाल हुए महादेवके बैलके और दैत्य रुधिरकी रेखाओंसे लाल हुई सटावाले पार्वतीके सिंहके समान शोभायमान था। वह मानो शरीरधारी वेगका समूह था। बार बार फूलते नथनोंमेंसे सूँ सूँ शब्द निकलनेके कारण वह ऐसा मालूम होता था मानो महावेगसे पी हुई हवा बाहर निकाल रहा हो। मुँहके भीतर लगनेसे खड़-खड़ करते लगामके पैने अग्रभागकी आकुलतासे पैदा हुई लारके झाग उसके मुँहमेंसे इस तरह निकलते थे मानो समुद्रमें निवासके समय पिए हुए अमृतकी घूँट हो। उसका मुँह बहुत लबा और निर्मांस होनेसे उत्कीर्ण सा दिखाई देता था। मुँह पर लटकते पद्मराग मणियोंकी किरणें उसके दोनों कानोंके निश्चल शिखरों पर पड़ती थीं। उनसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो उन पर लाल चमर लटकाए हों। सुवर्णकी उज्वल जंजीरोंमेंसे निकलती हुई किरणों-से और लाखके समान लाल, लबी और फहराती हुई सटासे युक्त गर्दन ऐसी मालूम होती थी मानो समुद्रमें विचरनेसे उस पर प्रवालके पत्ते लग गये हों। जिनके रत्नोंके हार पद पद पर खनखनाते थे, जिनमें बड़े बड़े मोती लगे थे और जो सुवर्णकी पत्रलताकी अत्यंत टेढी और पतली रेखाओंसे मनोहर थे ऐसे लाल आभूषणोंसे वह तारागणसे सध्याकालके समान शोभायमान मालूम होता था। गहनोंमें जड़े मरकत मणियोंकी कातिसे उसका शरीर कुछ कुछ श्याम हो गया था, जिससे उसे देख कर आकाशमेंसे गिरे हुए सूर्यके रथके घोड़ेकी शका होती थी। अत्यत तेजस्विताके कारण वह वेग रुकनेसे उत्पन्न हुए रोषके सबब रोम-रोममेंसे निकलते पसीनेकी बूँदोंकी वर्षा करता था, जो समुद्रके परिचयमें लगे मोतियोंकी वर्षाके समान मालूम होती थी। इन्द्र मणिकी चौकीके समान, काले पत्थरसे मानो बनाए गए और बार बार ऊँचे नीचे उठनेके कारण अग्र-भागसे विषम स्वर करते पोले खुरोंसे पृथ्वीको जर्जरित करके वह मानो मृदगका अभ्यास करता था। उसकी जंघाएँ मानो उत्कीर्ण थीं, छाती बड़ी थी, मुँह पतला था, गर्दन मानो फैली हुई थी, दोनों पार्श्व मानो चित्रित थे और जघन-भाग मानो दूना किया हुआ था। वेगमें वह मानो गरुड़का प्रतिस्पर्धी था, त्रिभुवनमें सचरण करनेमें वह पवनका मानो सहाय था, इन्द्रके घोड़ेका मानो त था, वेगमें मनका साथी था।

६८—वामन-रूप विष्णुके चरणके समान वह संपूर्ण पृथ्वीका उल्लंघन करनेके योग्य था, वरुणके हंसकी तरह उसका मानस-प्रचार[1] था, चैत्र मासके दिनकी तरह वह विकसित अशोक-पाटल[2] था, व्रतधारी पुरुषके समान उसके मुख पर राखका सफेद तिलक लगा था, कमल-वनकी तरह वह मधु-पिंगल[3] केसर-युक्त था, ग्रीष्म ऋतुके दिनकी तरह वह महायाम[4] और प्रबल-[5]तेज था; सर्पके समान वह सदा गतिके[6] अभिमुख रहता था, समुद्र-तटकी तरह वह शंखमाला-भूषित था। भयभीतकी तरह उसके कान सीधे खड़े थे, विद्याधरके राज्यके समान वह चक्रवर्ति नर[7]-वाहन योग्य था और सूर्योदयकी तरह वह सब भुवनोंमें पूजाके[8] योग्य था।

६६—ऐसे अदृष्ट-पूर्व, तीनों भुवनोंके राज्यके योग्य, सर्व-लक्षण-संपन्न, देवलोकके योग्य आकारवाले महान् अश्वका रूप सौंदर्य देखकर अत्यंत धीर प्रकृतिवाले चंद्रापीडको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मनमें विचार करने लगा—वेगसे मुड मुड़ कर सिमटते वासुकि नागके द्वारा जब देव-दानवोंने मंदराचलसे समुद्र-जल मथा तब उन्होंने यह अश्व-रत्न न निकाला तो क्या निकाला? इसकी मेरुके चट्टानके समान विशाल पीठ पर जो इन्द्र नहीं चढ़े तो उनको त्रिलोकीके राज्यसे क्या फल मिला? उच्चैःश्रवासे विस्मित हृदयवाले इन्द्रको समुद्रने जरूर ठगा है। मेरी रायमें तो अभी तक यह भगवान् नारायण के दृष्टि-गोचर नहीं हुआ, क्योंकि अब तक वे गरुड़ पर सवार होना नहीं छोड़ते।

१—हंस मानसरोवरमें विचरते हैं, घोड़ेकी मनके समान तेज गति थी।

२—चैत्रमें अशोक और पाटल से पुष्प खिलते हैं, घोड़ा खिले हुए अशोक के समान पाटल था।

३—कमलके केसर-तन्तु मकरंदसे पिंगल होते हैं, घोड़ेकी सटा मधु युक्त पंकसे पिंगल थी।

४—बड़े बड़े प्रहरवाला, बड़े विस्तारवाला।

५—बड़ी गरमीवाला; बड़े उत्साहवाला।

६—पवन, सदा जानेको तैयार रहता था।

७—नरवाहन नामक चक्रवर्ति राजा, चक्रवर्ति नरकी सवारीके योग्य।

८—अर्घ्य, अर्चा।

बच्चा मालूम होता था। वह कैलाश-तटकी टकरसे लगी धातुकी रजमें लाल हुए महादेवके बैलके और दैत्य रुधिरकी रेखाओंसे लाल हुई सटावाले पार्वतीके सिंहके समान शोभायमान था। वह मानो शरीरधारी वेगका समूह था। बार बार फूलते नथनोंमेंसे सूँ सूँ शब्द निकलनेके कारण वह ऐसा मालूम होता था मानो महावेगसे पी हुई हवा बाहर निकाल रहा हो। मुँहके भीतर लगनेसे खड़-खड़ करते लगामके पैने अग्रभागकी आकुलतासे पैदा हुई लारके झाग उसके मुँहमेंसे इस तरह निकलते थे मानो समुद्रमें निवासके समय पिए हुए अमृतकी घूँट हो। उसका मुँह बहुत लंबा और निर्मांस होनेसे उत्कीर्ण-सा दिखाई देता था। मुँह पर लटकते पद्मराग मणियोंकी किरणें उसके दोनों कानोंके निश्चल शिखरों पर पड़ती थीं। उनसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो उन पर लाल चमर लटकाए हों। सुवर्णकी उज्वल जंजीरोंमेंसे निकलती हुई किरणों-से और लाखके समान लाल, लंबी और फहराती हुई सटासे युक्त गर्दन ऐसी मालूम होती थी मानो समुद्रमें विचरनेसे उस पर प्रवालके पत्ते लग गये हों। जिनके रत्नोंके हार पट पट पर खनखनाते थे, जिनमें बड़े बड़े मोती लगे थे और जो सुवर्णकी पत्रलताकी अत्यंत टेढ़ी और पतली रेखाओंसे मनोहर थे ऐसे लाल आभूषणोंसे वह तारागणसे सन्ध्याकालके समान शोभायमान मालूम होता था। गहनोंमें जड़े मरकत मणियोंकी कांतिसे उसका शरीर कुछ कुछ श्याम हो गया था, जिससे उसे देख कर आकाशमेंसे गिरे हुए सूर्यके रथके घोड़ेकी शंका होती थी। अत्यंत तेजस्विताके कारण वह वेग रुकनेसे उत्पन्न हुए रोषके सबब रोम-रोममेंसे निकलते पसीनेकी बूँदोंकी वर्षा करता था, जो समुद्रके परिचयसे लगे मोतियोंकी वर्षाके समान मालूम होती थी। इन्द्र मणिकी चौकीके समान, काले पत्थरसे मानो बनाए गए और बार बार ऊँचे नीचे उठनेके कारण अग्र-भागसे विषम स्वर करते पोले खुरोंसे पृथ्वीको जर्जरित-करके वह मानो मृदंगका अभ्यास करता था। उसकी जंघाएँ मानो उत्कीर्ण थीं, छाती बड़ी थी, मुँह पतला था, गर्दन मानो फैली हुई थी, दोनों पार्श्व मानो चित्रित थे और जघन-भाग मानो दूना किया हुआ था। वेगमें वह मानो गरुड़का प्रतिस्पर्धा था, त्रिभुवनमें संचरण करनेमें वह पवनका मानो सहाय था, इन्द्रके घोड़ेका मानो

अवतार था, वेगमें मनका साथी था।

९८—वामन-रूप विष्णुके चरणके समान वह संपूर्ण पृथ्वीका उल्लंघन करनेके योग्य था, वरुणके हंसकी तरह उसका मानस-प्रचार[1] था, चैत्र मासके दिनकी तरह वह विकसित अशोक पाटल[2] था, व्रतधारी पुरुषके समान उसके मुख पर राखका सफेद तिलक लगा था, कमल-वनकी तरह वह मधु-पिंगल[3] केसर-युक्त था, ग्रीष्म ऋतुके दिनकी तरह वह महायाम[4] और प्रबल-[5]तेज था; सर्पके समान वह सदा गतिके[6] अभिमुख रहता था, समुद्र तटकी तरह वह शंखमाला-भूषित था। भयभीतकी तरह उसके कान सीधे खड़े थे, विद्याधरके राज्यके समान वह चक्रवर्ति नर[7]-वाहन योग्य था और सूर्योदयकी तरह वह सब भुवनोंमें पूजाके[8] योग्य था।

९९—ऐसे अदृष्ट-पूर्व, तीनो भुवनोंके राज्यके योग्य, सर्व-लक्षण-संपन्न, देवलोकके योग्य आकारवाले महान् अश्वका रूप सौंदर्य देखकर अत्यंत धीर प्रकृतिवाले चंद्रापीड़को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मनमें विचार करने लगा—वेगसे मुड़ मुड़ कर सिमटते वासुकि नागके द्वारा जब देव-दानवोंने मंदराचलसे समुद्र-जल मथा तब उन्होंने यह अश्व रत्न न निकाला तो क्या निकाला? इसकी मेरुके चट्टानके समान विशाल पीठ पर जो इन्द्र नहीं चढे तो उनको त्रिलोकीके राज्यसे क्या फल मिला? उच्चैःश्रवासे विस्मित हृदयवाले इन्द्रको समुद्रने जरूर ठगा है। मेरी रायमें तो अभी तक यह भगवान् नारायण के दृष्टि गोचर नहीं हुआ, क्योंकि अब तक वे गरुड़ पर सवार होना नहीं छोड़ते।

१—हंस मानसरोवरमें विचरते हैं, घोड़ेकी मनके समान तेज गति थी।

२—चैत्रमें अशोक और पाटल में पुष्प खिलते हैं, घोड़ा खिले हुए अशोक के समान पाटल था।

३—कमलके केसर-तन्तु मकरंदसे पिंगल होते हैं, घोड़ेकी सटा मधु-युक्त रकसे पिंगल थी।

४—बड़े बड़े प्रहरवाला, बड़े विस्तारवाला।

५—बड़ी गरमीवाला, बड़े उत्साहवाला।

६—पवन, सदा जानेको तैयार रहता था।

७—नरवाहन नामक चक्रवर्ति राजा, चक्रवर्ति नरकी सवारीके योग्य।

८—अर्घ्य, अर्चा।

श्रद्दा। मेरे पिताकी राज्यलक्ष्मी तो इन्द्रसे भी बढकर है, क्योंकि वे ऐसे ऐसे—संपूर्ण त्रिभुवनके दुर्लभ—रत्नोंका भी उपभोग करते हैं। अत्यत तेजस्विता और बड़े बलसे इस घोड़ेका आकार देवताके समान मालूम होता है इस कारण इस पर चढनेमें मुझे कुछ शंकासी होती है, क्योंकि सुरलोकके योग्य, सपूर्ण त्रिभुवन में विस्मय पैदा करनेवाला ऐसा आकार साधारण घोड़ेका नहीं हो सकता। देवता भी मुनियोंके शापसे अपने पहले शरीरको छोड़ शापके बलसे अन्य शरीर धारण कर लेते हैं। सुना जाता है कि पहले स्थूलशिरा नामक महातपस्वीने संपूर्ण भुवनोंमें अलकाररूपिणी रंभा अप्सराको शाप दिया था, जिससे वह देवलोक छोड़ कर, अश्वहृदयमें आत्माका प्रवेश करके, अश्वहृदया नामकी घोड़ी हुई थी और मृत्युलोकमें मृत्तिकावती नगरीमें शतधन्वा नामके राजाकी सेवामें बहुत काल तक रही थी। अन्य महात्मा भी मुनियोंके शापसे अपना प्रभाव क्षीण हो जानेके कारण अनेक प्रकारके आकारमें इस लोकमें रह गए हैं। इसी भाँति यह भी कोई नि सदेह पापका फल भोग रहा होगा, क्योंकि मेरा अन्त.करण इसके देवत्वकी सूचना करता है।

१००—इस प्रकार सोचते सोचते वह सवार होनेकी इच्छासे आसन परसे उठ खड़ा हुआ। फिर इन्द्रायुधके पास जाकर अपने मनमें कहने लगा—महात्मन् अश्व, तुम चाहे जो हो, तुमको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरे सवार होनेकी अवज्ञा सर्वथा क्षमा करना, क्योंकि पहचाने बिना देवता भी अनुचित तिरस्कारके पात्र हो जाते हैं। मायेकी चंचल सटाके लगनेसे जरा मिचे और तिरछा देखते नेत्रोंकी पुतलियाँ फेर कर इन्द्रायुध इस तरह उसे देखने लगा मानो उसका अभिप्राय समझ गया हो और, जमीन पर बार बार पड़ते दाहिने खुरसे खुदी धूलसे अपनी छातीके दर्पणको मटियाला करके उसे मानो सवार होनेके लिये बुलाता हो इस तरह, फूले हुए नथनोंके फुकारकी ध्वनिसे मिली, मधुर, तथा बार बार हुंकार करनेसे अत्यन्त मनोहर हिनहिनाहट करने लगा। तब चंद्रापीड़ इन्द्रायुध पर इस तरह सवार हुआ मानो मधुर स्वरसे आज्ञा मिल गई हो और सब त्रिभुवनको अंगुलकी बराबर समझता बाहर आया। वहाँ उसने घुड़सवारोंकी एक फौज देखी जिसका अन्त तो देख भी नहीं पड़ता था। वह—

मेघसे बरसते ओले और मेरुके समान कठिन—रसातलको मानो जर्जरित

करता हो ऐसे अत्यंत निष्ठुर खुरोंके शब्दसे और खुरोंसे उड़ती रजसे रुकी नासिकाके घोर घोष-सहित निकलते शब्दसे पृथ्वीकी सब गुफाओंको बहरा करती थी। वह सूर्य-किरणोंके स्पर्शसे चमकते फलकवाले, ऊँचे किए हुए भाले रूपी लता वनसे ऊँचे दंडवाले, नील-कमलकी कलियोंके समूहसे भरे सरोवरके समान आकाशको शोभायमान करती थी। सैनिकोंके ऊँची डंडीवाले मोर पखोंके बने हजारों छत्रोंके कारण आठों दिशाओंके मुँह अंधकारसे व्याप्त हो गए थे जिससे वह फौज चमकते इन्द्र धनुषसे विचित्र मेघ-वृन्दके समान मालूम होती थी। झागका ढेर निकलनेसे सफेद मुँहवाले और पलपलमें बिचकनेसे अस्थिर हुए घोड़ोंसे ऐसा मालूम होता था मानो प्रलयके समय समुद्रमें जलकी तरंगें उठी हों। चंद्रापीड़को देखते ही सब फौजमें इस तरह खलबली मच गई जैसे चंद्रमाको देख समुद्र उमड़ने लगता है। फिर प्रणाम करनेकी जलदीमें छत्र एकदम खिसक जानेसे राजपुत्रोंके सिर खुले रह गये और वे आपसमें भिच जानेसे कुछ घोड़ोंके मोड़नेका यत्न करने लगे। वे सब चंद्रापीड़के आसपास इकट्ठे हो गए और बलाहक जैसे-जैसे एक-एकका नाम बतला कर परिचय कराता गया वैसे-वैसे ही वे खिसके हुए मुकुटोंमेंसे निकलती पद्मराग मणियोंकी किरणोंके आकारमें अनुरागको मानो बाहर दिखाते, सेवाञ्जलि मुकुलके रचनेसे यौवराज्याभिषेकके कलशमेंसे जलके साथ गिरते कमल माना जिनसे चिपक गए हों ऐसे अपने मस्तकोंको दूरसे झुका-झुका कर उसको प्रणाम करते गए।

१०१—उन सबका सन्मान करके पास ही यथोचित घोड़े पर बैठे वैशम्पायनके साथ चंद्रापीड़ नगरीकी ओर चला। धूप रोकनेके लिए उस पर छत्र लगाया गया था। छत्रका आकार राज्य लक्ष्मीके रहनेके पुंडरीकके समान था। सब क्षत्रिय उसे देख कर इस तरह प्रसन्न होते थे जैसे चंद्रमंडलको देख कुमुद प्रफुल्लित हों। वह अश्व-सेना रूप नदीका पुलिन था और क्षीर समुद्रके झागसे सफेद हुई वासुकि सर्पकी सुन्दर फनके समान मालूम होता था। उसकी सुवर्णकी डंडी पर बड़े-बड़े मोतियोंका जाल लग रहा था और सिंहकी मूर्तियां चित्रित थीं। दोनों ओर झलते चमरोंकी हवासे चन्द्रापीड़के कर्ण-पल्लव हिल रहे थे और पैदल चलते परिजनोंमेंसे आगे दौड़ते हजारों जवान

वीर पुरुष—जय हो, चिरञ्जीव हो—ऐसे मधुर शब्दोंसे और वंदीजन मंगल वचनोंसे बार-बार उच्च स्वरसे उसकी प्रशंसा करते जाते थे ।

१०२—फिर शरीर-धारी कामदेवके समान चंद्रापीड़को शहरकी सड़क पर आया देख कर सब लोग अपना-अपना काम छोड़, चंद्रोदयके समय खिलते कुमुद वनके समान, हर्षसे प्रफुल्लित हो गए । चंद्रापीड़के पृथ्वी पर होनेसे तो मुख-समूहोंके कारण विकृत आकारवाले कार्तिकेय कुमार[1] शब्दको लज्जित करते हैं ! अहो ! हमने कैसे पुण्य किये हैं जो हम इसके दिव्य आकारको हृदयमें उभरते प्रीति-रसके सागके कारण विस्तार पाते और कुतूहलसे प्रफुल्लित हुए नेत्रोंसे वेखटके देखते हैं ! आज ही हमारा जन्म सफल हुआ । चंद्रापीड़के आकारमें रूपान्तर धारण करके आए हुए भगवान् नारायणको सर्वथा नमस्कार है । यों कहते कहते शहरके सब लोग हाथ जोड़ कर उसको नमस्कार करने लगे । सब जगह किवाड़ खोल लेनेसे हजारों खिड़कियाँ प्रकट हो जानेके कारण ऐसा मालूम होता था मानो उस शहरने भी चंद्रापीड़के दर्शन करनेके चावसे अपने सब नेत्र खोल लिये हों । सब विद्या समाप्त करके चंद्रापीड़ विद्यालयमेंसे अभी यहाँ आते हैं—यह सुनते ही उनको देखनेके लिये उत्कंठित हुई शहर भरकी सब स्त्रियाँ शृङ्गार करती करती, थोड़े बहुत गहने पहन कर, जैसीकी तैसी, उतावलीमें उठ, महलोंकी चोटियों पर चढ गईं । उनमेंसे कितनी ही स्त्रियोंके बाएँ हाथमें दर्पण थे । उनसे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो प्रकाशित पूर्ण चंद्र मंडल-सहित पूनोंकी रात्रियाँ हों । कितनी ही स्त्रियोंके पैर महावरसे लाल लाल रँगे थे । उनसे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो नई धूपसे व्याप्त कमल-वाली कमलिनियाँ हों । कितनी ही स्त्रियोंके चरण घबराहटमें चलनेसे उतरी हुई तागड़ीसे रुँध गये थे । उनसे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो बाँधनेकी जंजीर लेकर मंद मंद चलती हथिनियाँ हों । कितनी ही स्त्रियाँ वर्षाके दिन इन्द्र श्रीकी भाँति इन्द्रायुध[2] राग-रुचिर रंग-सुन्दर अम्बर-युक्त थीं । कितनी ही स्त्रियोंके चरणोंमेंसे नखोंकी सफेद किरणें फैल रही थीं, जिनसे उनके पैर पायजेबोंकी झनझनाहट सुन कर आकृष्ट हुए पालतू हंसोंके समान

१—पृथ्वी पर कामदेव ।

२—इन्द्र धनुषके रंगोंसे सुन्दर आकाश, इन्द्र-धनुषके समान सुन्दर वस्त्र ।

मालूम होते थे। कितनी ही स्त्रियोंके हाथोंमें बड़े बड़े हार रह गये थे। उनसे वे कामदेवकी मृत्युसे शोकातुर हुई, स्फटिक मणिकी माला लेकर खड़ी, रतिकी विडम्बना करती थीं। कितनी ही स्त्रियोके स्तनोंके बीचमें मोतियोंकी मालाएँ लटक रही थीं। उनसे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो सकड़े और निर्मल जल-प्रवाहसे जुदे किए गए चकवा-चकवीवाली प्रदोपश्रियाँ हों। कितनी ही स्त्रियोंके पायजेबोंकी मणियोंमेंसे इन्द्र-धनुष निकल रहे थे। उनसे वे ऐसी मालूम होती थी मानो पालतू मोरनियाँ परच कर उनके पीछे आ रही हों। कितनी ही स्त्रियोंने मणिमय प्यालोंको आधा पीकर रख दिया था। वे ऐसी मालूम होती थीं मानो फड़कते हुए रंगीन अधर-पल्लवोंमेंसे मधु-रसकी बूँदें टपकाती हों। अन्य कितनी ही स्त्रियाँ मरकत मणिकी खिड़कियोंमेंसे मुख-मंडल बाहर निकाल निकाल कर इस भाँति चंद्रापीड़को देखने लगीं मानो प्रफुल्लित कमल-युक्त कमलिनियाँ आकाशमें फिरती हों।

१०३—उस समय जल्दी-जल्दी चलनेके कारण आपसमें टकरानेसे बहुत तेजीसे झनझनाती हार मणियोंवाली रमणियोंके गहनोंका श्रोत्रहारी शब्द एक साथ उठा। वह मधुर उँगलियोंसे बजती वीणाके शब्दके समान मेखलाओंके शब्दसे आकर्षित हुए पालतू सारसोंकी आवाजसे मिल गया। सीढ़ियों परसे पैर फिसलनेके कारण उत्पन्न होती गभीर ध्वनिसे आनंदित हुए रनवासके मयूर उसे सुन कर केका-ध्वनि करने लगते थे। वह नवीन मेघकी गर्जनासे डर कर चौंक उठते कलहंसोंके कोलाहलके समान कोमल था, कामदेवके विजय-घोषका अनुसरण करता था और महलोंके भीतर प्रतिशब्दसे गभीर हो गया था।

१०४—फिर एक क्षणमें ही स्त्रियोंकी भीड़के कारण महल मानो नारी-मय हो गया, महावर लगे चरण कमलोंसे सब भूतल मानो पल्लव-मय हो गया, स्त्रियोंकी देह कान्तिके प्रवाहसे सब नगर मानो लावण्य मय हो गया, मुख मंडलके समूहने आकाश मानो चंद्रबिम्ब मय हो गया, धूप रोकनेके लिए ऊँचे उठा कर आड़े किए बहुतसे हाथोंने सब दिशाएँ मानो कमल-वन मय हो गईं; गहनोकी किरणोंसे सूर्यका प्रकाश मानो इन्द्र-धनुष मय हो गया और नेत्रोंसे निकलती किरणोंसे दिन मानो नील कमल-पत्र मय हो गया। चावसे नेत्र फैला कर

एकाग्र दृष्टिसे देखती हुई स्त्रियोंके हृदयोंमें चंद्रापीड़की आकृतिने इस प्रकार प्रवेश किया मानों वे दर्पण-मय हों, सलिल-मय हों अथवा स्फटिक-मय हों।

१०५—फिर तो काम-रस प्रकट होनेसे उस क्षण उनमें आपसमें परिहास-युक्त, विश्वास-युक्त, भय-युक्त, ईर्षा-युक्त, हास्य-युक्त, क्रोध-युक्त, विलास-युक्त, काम-युक्त, स्पृहा-युक्त रमणीय आलाप होने लगे, जैसे—अरी दौड़नेवाली, मुझे भी सग लेती जा, अरी तू देखनेके लिए पागल हो गई है, अपना दुपट्टा सँभाल, अरी मूढ, तेरी लटें मुँह पर पड़ी हैं उन्हें तो सुधार, यह अपना चाँद तो लेती जा, अरी कामसे अधी, देख, तू पूजाके फूलों पर ठोकर खाकर गिर पड़ेगी, अरी मदमत्त, अपनी चोटी तो बाँध, अरी तू तो चद्रापीड़के देखनेके लिए तड़प रही है, अपनी तागड़ी तो ऊँची चढा, अरी पापिन, गाल पर हिलते उस कर्ण-पल्लवको तो एक तरफ कर, अरी अज्ञान, तेरी हाथीदाँतकी कंघी गिर पड़ी है उसे तो उठा ले, अरी तू तो जोवनसे उन्मत्त हो गई है, अपनी छाती तो ढक ले, देख, लोग तेरी तरफ देखते हैं, बेशरम, तेरा दुकूल ढीला हो गया है उसे तो ठीक कर ले, अरी तू तो ऊपरी मुग्धता दिखाती है, जलदी आ, तू तो देखनेकी बड़ी शौकीन है, मुझे भी तो देखने दे, अरी तेरा मन नहीं भरा, तू कब तक देखा करेगी, तेरा हृदय बडा चचल है, जरा अपने नौकर-चाकरों-का तो खयाल कर, पिशाचिनी, तेरा दुपट्टा खिसक गया है, लोग तुझ पर हँसते हैं, तू तो प्रेमसे अधी हो गई है, क्या तू अपनी सखियोंको भी नहीं देखती, अरी तू तो कुटिलतासे भरी है, तू हृदयको क्यों वृथा परिताप देकर जीती है; अरी झूठा विनय दिखानेवाली, तू छुपा कर क्यों देखती है, देख न, बेखटके, अरी युवति, क्यों तू अपने स्तनोंके भारसे मुझे दबाती है, अरी गुस्सैल, ले तू आगे जा, अरी मत्सरिणी, क्या तू अकेली ही सब खिड़की घेर लेगी, तू तो कामसे पराधीन हो गई, मेरा दुपट्टा क्यों खींचती है, अरी तू तो प्रेमसे मदमत्त हो गई है, जरा तो अपनेको रोक, अरी अधीर, क्यों बड़े-बूड़ोंके सामने दौड़ी जाती है, ओ उतावली, क्यों इतनी व्याकुल हुई जाती है, अरी मुग्धा, कामज्वरसे उत्पन्न हुए रोमाचको छुपा, अरी [illegible]चारिणी, क्यों ऐसी घबराती है, अरी बहुत विकारवाली, अनेक [illegible]रसे अंग टेढा करके वृथा तू अपनी कमरको कष्ट देती है, अरी शून्य

हृदयवाली क्या तुझे अपने घरमेंसे निकलनेकी भी खबर नहीं है; अरी उत्कंठित हुई, तू तो साँस लेना भी भूल गई, तूने तो सकलित सुरत समागमके सुखसे आँखें मीचली हैं, उन्हें खोल, देख यह तो जाता है, तू तो काम-बाणके प्रहारसे मूर्छित हो गई है, धूप रोकनेके लिये अपने सिर पर कपड़ेका पल्ला डाल, अरी तू तो सतीव्रत-रूपी ग्रहसे पीड़ित है, देखने लायक वस्तु न देख कर तू अपने नेत्रोंको ठगती है, तू बड़ी भाग्य हीन है, पर-पुरुषका मुँह न देखनेकी प्रतिज्ञा करके तूने यह सब सुख खो दिया है, सखि, कृपा कर उठ और इस रति विहीन, मकर-ध्वज-रहित साक्षात् कामदेवके समान कुमारको देख। यह सफेद छत्रके नीचे भौंरोंके झुंडसे काले दीखते सिर पर अँधेरा जान कर घुसे हुए चन्द्रमाकी किरणोंके कलापके समान चमेलीके फूलोंका भार दीखता है। उसके गालों पर कर्ण-भूषणके मरकत मणिकी जरा श्याम चमक पड़ती है। उससे ऐसा मालूम होता है मानो उसने खिले हुए शिरीषके फूलका कनफूल पहना हो। हारमें जड़े हुए पद्मराग-मणियोंकी किरणोंके बहाने मानो नई जवानी का रंग उसके हृदयमें घुसनेकी इच्छासे बाहर फिरता है। यह उसने चमरोंके बीचमें होकर इधर ही देखा। वैशंपायनके साथ बातचीत करनेमें यह दंत किरणोंकी रेखासे दिशाओंको सफेद करके हँसता है। उधर बलाहक घोड़ेके खुरोंमेंसे उड़-उड़ कर आगेके बालों पर पड़ी हुई धूलको तोतेके परके समान हरे कपड़ेकी कोरसे पोंछता है। यह उसने लक्ष्मीके करकमलके समान कोमल तलवाला चरण ऊँचा उठा कर घोड़ेके कंधे पर आड़ा डाला। शैवलका ग्रास लेनेकी इच्छासे जैसे हाथी अपनी सूँड़ लंबी करता है उसी तरह इसने अपने लंबी उँगलीवाले, कुछ कुछ लाल कमल-कोशके समान, हाथको तांबूल लेनेके लिये लीला-सहित फैलाया। धन्य है उस पृथ्वीकी सपत्नीको जो कमलसे भी अधिक कोमल हाथका, लक्ष्मीके समान, ग्रहण करेगी। धन्य है विलासवती देवीको, जिसने सब पृथ्वी मंडलका भार वहन करने योग्य—दिग्गजके समान—इस कुमारको दिशाकी तरह अपने गर्भमें रक्खा।

१०६—ऐसे तथा इसी तरहके वचन कहती हुई युवतियाँ नेत्रोंसे मानो उसका पान करने लगीं, गहनोंके शब्दसे मानो उसे बुलाने लगीं, हृदयसे मानो उसका पीछा करने लगीं, आभूषण-रत्नोंकी किरण-रूपी रस्सीसे मानो उसे

बाँधने लगी, नव यौवन रूपी बलिदानसे मानो उसे पूजने लगी, और विवाहाग्नि के लिए फूल मिली हुई लाजाञ्जलिके समान शिथिल भुज-लताओंमेंसे गिरे सफेद कंकण मानो पद पद पर उसके लिए बिखेरने लगी। फिर धीरे धीरे राजकुमार राज-घर के पास आ पहुँचा। वहाँ गंडस्थलमेंसे बराबर रिसते मदसे काली कीचड़ करनेवाले, काले पर्वतोंकी कतारके समान मलीन, खम्भोंसे बँधे हुए हाथियोंके कारण दिशाओंके मुख पर अँधेरा हो रहा था, जिससे वह वर्षाऋतुके दिनके समान दिखलाई देता था। ऊँचे उठे हजारों छत्रोंसे वह भर गया था और अनेक देशोंसे आए सैकड़ों दूत वहाँ खड़े थे। वहाँ पहुँच कर चन्द्रापीड़ घोड़े परसे उतरा।

१०७—उतर कर वैशम्पायनका हाथ पकड़ उसने राज-गृहमें प्रवेश किया। बलाहक आगे आगे जाकर विनीत-भावसे मार्ग बतलाता जाता था। राज-गृह इतना बड़ा था कि वहाँ तीनों भुवन एकत्र हुए दीखते थे। उसके दरवाजेके पास सोनेकी छड़ीं लिए, सतयुगके पुरुषोंके समान बड़े शरीरवाले और चित्रित वा उत्कीर्ण हो ऐसे निश्चल द्वारपाल उपस्थित थे। वे सफेद कवच, सफेद अंगलेप, सफेद फूलोंका शेखर, सफेद पगड़ीवाले, सफेद वेष करनेके कारण सफेद द्वीपमें ही मानो पैदा हुए हों ऐसे दीखते थे। वे दिन-रात तोरणस्तंभके पास ही बैठे रहते थे। बड़े बड़े महलोंसे वह राजगृह ऐसा मालूम होता था मानो हिमालयसे युक्त हो। महलों की चोटियों पर चौकोन कमरे, चन्द्रशाला, कबूतरोंके दड़बे और बैठनेके ऊँचे चबूतरे बने थे। वे ऊँचाईमें आकाश तक पहुँचते थे, शोभामें कैलास पर भी हँसते थे और निर्मल चूनेसे उन पर सफेदी की गई थी। खिड़कियोंमेंसे युवतियोंके गहनोंकी हजारों किरणें फैलती थीं, जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो वहाँ सुवर्णके तारोंका जाल बिछा दिया गया हो।

१०८—उसके भीतर, सर्प-कुलसे भरी हुई पातालकी गुफाके समान, अत्यंत गंभीर आयुधशालाएँ बनी हुई थीं। उनमें बहुतसे शस्त्र रक्खे थे। वहाँ बहुतसे क्रीड़ा-पर्वत शोभायमान थे। उनमें अबलाओंके चरणों पर लगी हुई महावरके न लाल पद्मराग-मणिके टुकड़े चमकते थे, और उनके शिखरोंमें भरे हुए केका रवसे कल कल किया करते थे। दरवाजेके पास सजी हुई हथिनियाँ

खड़ी थीं जिनके सोनेके जीन पर उज्ज्वल वर्णकी झूलें पड़ी थीं, लटकते हुए चमर जिनके चंचल कर्ण-पल्लवको चूमते थे और कुलीन स्त्रियोंके समान जो शिक्षा[1] तथा विनय[2]के कारण निश्चल थीं। एक तरफ, गंध मादन नामका एक गंध-गज खूँटेके पास बैठा था। वह नवीन बादलकी गर्जनाके समान गम्भीर, वीणा-वेणुके स्वरसे रमणीय और घूँघरियोंके शब्दसे घर्घर करती, संगीत और मृदंगकी बराबर होती ध्वनिको जरा आँख मीच कर और सूँडको बाँए दाँतकी नोक पर रख कर, कर्ण-ताल निश्चल रख, लीला-सहित, सुनता था। उसके दोनों तरफ अनेक रंगोंकी झूल लटकती थी, जिससे वह धातुओंसे विचित्र पखोंवाले विंध्याचलके समान मालूम होता था। महावतके गीतसे खुश होकर वह गम्भीर कण्ठसे गर्जना करता था। मदजलसे रँगे हुए शंखसे उसके कान शोभित थे, जिनसे वह चन्द्रबिम्बसे चुम्बन किए गए प्रलय-मेघका तिरस्कार करता था। कानके पास लटकते सुवर्णमय अंकुशसे ऐसा मालूम होता था मानो उसने मुख पर कर्णफूल पहना हो। उसके गंडस्थलके आसपास घूमता भौंरोंका झुण्ड ऐसा मालूम होता था मानो मदजलसे मलीन हुआ दूसरा कर्ण-चमर हो। उसकी पूर्वकाया बहुत ऊँची थी और जघन-भाग बहुत ही छोटा था, जिससे वह ऐसा मालूम होता था मानो पातालमेंसे निकलता हो।

१०६—निशा-समयके[3] समान वह अर्ध-चन्द्र-सहित नक्षत्र मालासे भूषित था। शरद[4] ऋतुके प्रारंभकी तरह वह प्रकटित अरुण चारु पुष्कर था। वामन[5] अवतारके समान वह त्रिपदी विलास करता था। पर्वतकी

१—संज्ञादि ज्ञान, अध्यापन।

२—अधीनता, नम्रता।

३—रात्रि अर्धचंद्र तथा तारोंके समूहसे युक्त होती है, हाथी हार पहन रहा था जिसमें चाँद लगा हुआ था।

४—शरद्में सुंदर लाल कमल प्रकट होते हैं, हाथीकी सूँड सुन्दर और लाल थी।

५—वामनने तीन पैरोंसे त्रिभुवनको नापा था, हाथी बँधी हुई जंजीरोंसे खेलता था।

स्फटिक[1] मणिमय तलहटीकी तरह वह लम्र सिंह-मुख प्रतिम था ओर अलकृतकी[2] भाँति चचल कर्ण-पल्लव उसके मुख पर टकराते थे। वहाँ अस्तबलसे आए हुए राज-प्रिय घोड़े सुशोभित थे। उनकी पीठ उज्ज्वल कंबलोंसे ढकी थी, मधुर घटियोंके बजनेसे उनके कंठ मुखर हो रहे थे, सटाओंके बाल मजीठसे रँगे हुए थे, जिनसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो जंगली हाथीके लहूसे लाल हुई सटावाले सिंह हों। उनके पास डाली गई घासकी गठरियों पर अस्तबलके जमादार बैठे थे। पाससे आती मगल गीतकी ध्वनिको घोड़े कान लगा कर सुनते थे। हाथसे मधुरसमें साने गये दानेके ग्रास उनके मुखमें भरे थे।

११०—कचहरीमें, अच्छी-अच्छी पोशाक पहन कर, अत्यन्त ऊँची बेंतकी कुरसियों पर बैठे, मानो धर्ममय ही हों ऐसे मालूम होते, बड़े बड़े जज उपस्थित थे। सब गाँवों ओर नगरोंके नाम कंठस्थ होनेसे सब जगतको मानो एक ही घरकी भाँति देखते ओर सब भुवनोंके व्यापार लिखनेसे मानो धर्मराजके नगरके व्यवहारको दिखाते कचहरीके नाजिर वहाँ हजारों परवाने लिखा करते थे। भीतर बैठे राजाके बाहर आनेकी राह देखते, खास करके तिलग, द्राविड़, ओर सिंहल द्वीपके, अनेक सहस्र सेवक वहाँ स्थान स्थान पर झुंड बाँधे खड़े थे। वे सोनेके अर्द्धचन्द्र ओर सैकड़ों तारोंसे विचित्र दीखती हुई चमड़ेकी ढालोंसे मानो निशा समय प्रकट करते थे। चमकती हुई पैनी तलवारोंमसे निकलती किरणोंको धूपमें मिला देते थे। एक एक कानमें उन्होंने सफेद दंतपत्र पहन रक्खा था। साफा ऊँचा बाँध रक्खा था। खवे पर सफेद चन्दनका लेप कर लिया था ओर छुरे बाँध रक्खे थे। सभा-मण्डपमें योग्य आसनों पर हजारों क्षत्रिय सामन्त बैठे थे। उन्होंने अपने बड़े बड़े मणिमय मुकटों पर सफेद पगड़ीकी तह लपेट ली थी जिससे वे निर्झर सहित शिखर पर पड़े हुए बालातप मण्डलवाले कुल पर्वतोंके समान शोभायमान मालूम होते थे। उनमेंसे कोई जुआ खेल रहे थे, कोई शतरंज खेल रहे थे, कोई बीन बजाते

१—स्फटिकमें सिंहका मुँह दीखता है, क्योंकि सिंह वहाँ फिरते हैं, हाथीकी सूँड़ पर सिंह चित्रित था।

२—अलकृत पुरुषके मुख पर कर्णपल्लव लटकता है, हाथीके कान-रूपी मुख पर लटकते थे।

थे, कोई चित्र-फलक पर राजाका चित्र खींचते थे, कोई काव्यालाप करते थे, कोई परिहास करते थे, कोई बिन्दुमती रचते थे, कोई पहेलियाँ हल करते थे, कोई राजाके बनाए हुए काव्य सुभाषित पढ़ते थे, कोई द्विपदी नामक प्राकृत छन्दकी प्रशंसा करते थे, कोई कवियोंके गुणोंका प्रसार करते थे, कोई चित्र बनानेके लिए रेखा खींचते थे, कोई वेश्याओंके साथ बातचीत करते थे और कोई वैतालिकोंके गीत सुनते थे।

१११—सभा-मंडपके पर्यन्त भागमें, राजाओंके राजसभामेंसे उठ जानेके कारण, तह किये हुए बहुतसे गलीचे और जड़ाऊ कुरसियाँ रक्खी थीं, वे विविध रंगके इन्द्र धनुषके समूहके समान मालूम होती थीं। निर्मल मणिभूमिमें पड़े मुखोंके प्रतिबिम्बसे खिले हुए कमल-समूहको मानो उत्पन्न करतीं, चलतेमें झन-झन करते पायजेब, कंगण और तागड़ीका शब्द करतीं, और कंधे पर सोनेकी डंडीके चमर रख कर बारंबार जातीं आतीं वेश्याओंसे वह भर गया था। उसके एक भागमें सोनेकी जंजीरसे बँधे कुत्ते बैठे थे। हजारों पालतू कस्तूरी-मृग इधर उधर फिरते थे। उनकी सुगंधिसे सब दिशाएँ सुगंधमय हो गई थीं। वहाँ अनेक कुब्ज, किरात, नपुंसक, बधिर वामन और मूकजन थे। किन्नरोंके जोड़े और वन मानुष लाकर रक्खे गए थे। मेंढे, मुर्गे, कुरर, चातक, लवा और बतककी लड़ाई हो रही थी। चकोर, कलहंस, हारीत, और कोकिल गान कर रहे थे। तोता मैनाका आलाप हो रहा था। हाथीके मदकी सुगंधसे क्रोध उत्पन्न हो जानेके कारण क्षुब्ध हुए, बड़ी गर्जना करते—मानो पर्वतोंकी गुहाओंमें रहते पर्वतोंके जीवन हों ऐसे—पकड़ कर पिंजरेमें बंद किए गए सिंहोंसे वह शोभायमान था। सुवर्णकी दीवारोंकी चमकको दावानल समझ डरसे चंचल दृष्टिवाले पालतू हिरनोंके नेत्रोंकी प्रभासे वहाँकी सब दिशाएँ विचित्र दिखाई देती थीं। वहाँ मरकतमय धरती पर मयूर खड़े थे। वे अपनी केकासे ही पहिचाने जाते थे। चंद्र इन्द्रोंकी छायामें बैठे पालतू सारस ऊँघने लगते थे। राजगृहके भीतर कन्याएँ लड़कियाँ गेंद और गुड़ियासे खेलती थीं। दिन-रात हिलते मुर्गोंके शिखर पर बंधी घंटियोंका टंकार दिशाओंमें व्याप्त हो जाता था। हारको नवीन चुग्गी जान कर मयूर खींच ले जाते थे। महलोंके शिखरोंसे उतर कर नीचे चलते मयूरोंसे भीतरका हिस्सा ऐसा मालूम होता था मानो स्थल-

कमलिनीका वन हो। वहाँकी स्त्रियाँ राजाके चरित्रका अनुकरण करनेके खेलमे लगी रहती थीं। बंदरोंके झुंड अस्तबलमेंसे वहाँ आकर सबको व्याकुल करते थे। अनारोंके फल कुतर डालते थे, आँगनमें लगे आमोंके पत्ते तोड़ डालते थे और वामन और किरात लोगोंको डरा कर उनके हाथोंमेंसे गहने छीन कर बिखेर डालते थे। वहाँके मैना तोतोंसे रति क्रीड़ाका रहस्य प्रकाशित करते सुन कर अंत:पुरकी स्त्रियाँ लज्जित होती थीं। महलकी सीढ़ियों पर चढ़ती हुई महिलाओंके पैरोंमें पहने हुए—पद-पद पर शब्द करते—मणिमय पायजेबों और कंकणोंसे जिनका स्वर दूना हो गया था ऐसे पालतू कलहंसोंकी पंक्तियोंसे वहाँका आँगन सफेद मालूम होता था। धुले हुए सफेद कपड़े और दुपट्टा धारण कर, पगड़ी बाँध कर, सोनेकी छड़ी हाथमें लेकर, पलितसे सफेद सिरवाले,—मानो आधार-मय, मर्याद मय और मंगल मय हों ऐसे—गंभीर आकृतिवाले, वीर स्वभावके और उम्र पूरी होने पर भी बूढे सिंहके समान सत्वका[1] अवलंबन न छोड़नेवाले, कंचुकी वहाँ फिरते थे। काले अगरके धूमसे वह मानो मेघ युक्त था, तैयार खड़े हाथियोंकी सूँडमेंसे निकलती पानीकी बूँदोंसे मानो वहाँ कुहरा बरस रहा था, तमाल-वृक्षोंकी कुंजोंके अंधकारसे मानो वहाँ रात्रि थी, लाल अशोक वृक्षसे मानो बाल सूर्यका उदय हुआ था, मुक्ताकलापसे मानो तारागण आ गए थे, धारागृहसे मानो वर्षा-समय आ गया था, मोरोंके बैठनेके सुवर्ण मय डंडोंसे मानो वह तड़ित् लता युक्त था और पुतलियोंसे ऐसा मालूम होता था मानो वहाँ गृह देवता ही उपस्थित हों।

११२—महादेवके भवनकी तरह वहाँ दरवाजेके पास हाथोंमें छड़ी लिये प्रतीहार[2]-गण खड़े थे, उत्कृष्ट कविके बनाए हुए गद्यकी तरह वह विविध वर्ण[3] श्रेणि प्रतिपाद्यमान अभिनव अर्थसंचय था, अप्सराओंके मंडलकी तरह

१—सिंह पशुओंका अवलंबन नहीं छोड़ता, कंचुकियोंने साहस नहीं छोड़ा था।

२—शिवके गण, द्वारपाल।

३—गद्यमें विविध अक्षरोंकी श्रेणीसे नया नया आशय प्रकट होता है; वहाँ ब्राह्मणादि वर्णोंको बार बार द्रव्य दिया जाता था।

यह प्रकट मनोरमारभ[1] था, सूर्योदयकी भाँति वहाँ पद्माकरमेंसे[2] कमलकी सुगंधि निकलती थी; सूर्यकी तरह वहाँ कमलोपकार[3] लक्ष्मीकृत था, नाटककी तरह वह पताकाकृते[4] शोभित था; शोणितपुरके समान वहाँ बाणके[5] योग्य आवास था, पुराणकी तरह वहाँ सकल भुवन-कोशकी[6] योग्य व्यवस्था होती थी; पूर्णचन्द्रोदयके समान हजारों मृदुकरोंसे[7] रत्नालयका सवर्धन होता था, दिग्गजकी तरह वहाँ दानका[8] प्रवाह बराबर जारी रहता था; ब्रह्माण्डकी तरह वह सब जीवलोक[9]—व्यवहार—कारणोत्पन्न—हिरण्य गर्भ था, महादेवके बाहु-वनकी तरह उसके प्रकोष्ठोंमें[10] महाभोगियोंके सहस्र मडलका वास था, महाभारतकी तरह वहाँ अनन्त गीत[11] सुन कर नर आनंदित होते थे, यदुवंशके समान

१—मनोरमा और रंभासे युक्त वहाँ मनका रंजन करनेवाले खेल होते थे।

२—पद्म-सरोवरोंमेंसे कमलकी सुगंधि निकलती थी।

३—सूर्य अपनी कान्तिसे कमलोंका उपकार अर्थात् विकाश करता था; राजगृहका यही चिन्ह था कि वहाँ धनसे प्रजाका उपकार हो।

४—नाटकमें पताका (नाटकका अंग) और अंक होते हैं, वहाँ बहुतसी पताकाएँ लगी हुई थीं।

५—बाणासुरके योग्य महल, बाण आदि अस्त्रोंके रखनेके योग्य स्थान।

६—भूमंडल व्यापार, खजाना।

७—किरणोंसे समुद्र बढ़ता था, छोटे-छोटे महसूलोंसे खजानेकी वृद्धि होती थी।

८—मद, त्याग।

९—ब्रह्मांडमें प्राणिमात्रकी स्थितिका कारण हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ था; वहाँ लोगोंके मुकदमोंका फैसला होनेसे फीसका बहुतसा धन इकट्ठा हो गया था।

१०—महादेवकी कलाई पर बड़े बड़े साँप लिपटे रहते हैं, उसके अहातेमें बड़े-बड़े धनी रहते थे।

११—कृष्णकी प्रशंसा सुन कर अर्जुनको आनंद होता था, वहाँ बहुतसे गीत सुनकर मनुष्य आनंदित होते थे।

कुलक्रमागत[1] शूर, भीम, पुरुषोत्तम बलमे उसका पालन होता था; व्याकरणके समान वह प्रथम म यम[2]-उत्तम पुरुष विभक्ति स्थित अनेक आदेश कारकोंसे आख्यात सम्प्रदान-क्रिया व्यय प्रपञ्चमे सुस्थित था, समुद्रकी तरह उसके भीतर डरसे हजारों सपक्ष[3] भूधरोंने प्रवेश किया था, उषा और अनिरुद्धके समागमके समान वहाँ चित्ररेखासे[4] सब त्रिभुवनका विचित्र आकार दिखाया गया था, राजा बलिके वशकी तरह उसके भीतर पुराणपुरुष[5] वामन बैठे थे, शुक्लपक्षके प्रदोष समयके समान वहाँ प्रफुल्ल चन्द्रिका[6] धवल अंबर वितान थे, नरवाहनदत्त राजाके चरितकी तरह वह अंत: संवर्धित[7] प्रियदर्शन राजकुमारिका गंधर्वदत्तोत्कंठ था, महातीर्थके समान वहाँ अनेक पुरुषोंको

१—वसुदेव तथा बड़े वीर कृष्ण बलरामने कुलक्रमके अनुसार यदुवंशका पालन किया था, वहाँ शूर, भयानक तथा उत्तम पुरुषोंकी सेनासे रक्षा होती थी।

२—व्याकरण प्रथम-मध्यम-उत्तम पुरुष, विभक्ति स्थित अनेक आदेश, कारक, भाव-प्रधान, सम्प्रदान, क्रिया, अव्यय इनके प्रपंचसे युक्त है, वहाँ प्रथम, मध्यम तथा उत्तम श्रेणीके पुरुषोंको पहचाननेवाले बहुतसे नाजिर दानके लिये खर्चकी व्यवस्था करते थे।

३—पंख समेत पर्वत, मित्रभाव-युक्त राजा।

४—उषाकी सखी चित्ररेखाने सब त्रिभुवनका चित्र खींच कर दिखाया था, वहाँ दीवार पर नकशा खींच कर सब त्रिभुवनका विचित्र आकार दिखाया गया था।

५—वामन रूपसे विष्णु, बूढ़े और बौने।

६—खिली हुई चाँदनीसे धवल आकाश रूपी वितान, वहाँ खिली हुई चाँदनीके समान सफेद शामियाने तन रहे थे।

७—अन्त पुरमें संवर्धित हुई प्रियदर्शनवाली राजा सागरदत्तकी पुत्री गन्धर्वदत्ताको नरवाहनदत्तके वियोगके कारण उससे मिलनेकी उत्कंठा हुई वहाँ रनवासकी सुन्दर रानियोंको देख कर गन्धर्वोंका भी मन ललचाता था।

अभिषेकका[1] फल तत्काल मिलता था, यज्ञगृहकी तरह वह विविध आसव[2]-पात्रोंसे युक्त था, निशा समयकी तरह वह अनेक नक्षत्रमालाओंसे[3] अलंकृत था, प्रभात-समयके समान उसमें मित्रोदयका[4] अनुमान पूर्वमें दीख पड़ते रागसे होता था, गर्वीके घरके समान वह स्नानके समय उपयोगमें आते धूप, अंग-लेप और चंदनसे उज्ज्वल दीखता था; तमोलीके घरकी तरह वहाँ लवली, लौंग, इलायची और कंकोलके पत्ते इकट्ठे थे, वेश्याके प्रथम समागमके समान वहाँ चेष्टा-विकारसे हृदयका अभिप्राय समझमें नहीं आता था, कामी जनकी तरह वहाँ मधुर आलाप और सुभाषित रसके स्वादसे ताल[5] दिये जाते थे, जुआरियोंके मंडलके समान वहाँ मणिके अगणित अलंकार देनेमें लेख-पत्र[6] होते थे, धर्मारंभके समान वहाँ सब लोगोंका मन प्रसन्न रहता था, महावनकी तरह वहाँ व्याघ्रादि पशुओ और द्विजों[7]का घोष सुनाई देता था, रामायणकी तरह वहाँ वानर-कथा[8] होती थी, माद्रीकुलकी तरह वह नकुलसे[9] अलंकृत था, संगीत शालाकी तरह वहाँ स्थान स्थान पर मृदंग[10] रक्खे थे, रघुकुलके समान वहाँ भरत-गुणसे[11] आनंद प्राप्त होता था, ज्योतिष शास्त्रकी

१—देवताओंकी पूजाकी दक्षिणा, स्नानका फल।

२—सोमरसके पात्र, शराबके प्याले।

३—तारे, हार।

४—सूर्योदयका अनुमान पूर्व दिशामें दीखते हुए रंगसे होता था, वहाँ मित्रताके आरंभमें ही मित्रोंका अभ्युदय होने लगता था।

५—कामी हाथ पीटते हैं, वहाँ आपसकी बातचीतमें अभिमत बात सुनने पर तालियाँ बजाई जाती थीं।

६—जुआरियोंमें जो हारता है वह कागज लिख देता है, वहाँ रानियों-को पहननेके लिए दिए गए मणि-रत्न अलंकार कागज पर लिखे जाते थे।

७—पक्षी, ब्राह्मण।

८—बंदरोंकी कहानी, हनुमानकी कथा।

९—(२) नौले।

१०—(२) मट्टीके खिलौने

११—(२) नाटक।

तरह वह ग्रहण-[१]मोक्ष-कलाभागमें निपुण था, नारद पुराणकी तरह वहाँ राज-धर्मका वर्णन होता था। बाजों की तरह वह विविध शब्द रमसे मधुर मालूम होता था। मृदु काव्यके समान वह अनन्य[२] चिंतितस्वभावाभिप्राय दरसाता था, महानदीके प्रवाहकी तरह वह दुरितका[३] हरण करता था, द्रव्यकी तरह किसीको उसकी अनिच्छा नहीं होती थी, सध्या-समयके समान वहाँ चन्द्रापीड़[४]का उदय दीखता था। नारायणके वक्षःस्थलकी तरह वह श्री रत्न[५]-प्रभासे दिशाओं को प्रकाशित करता था, बलभद्रकी तरह वहाँ कादम्बरीके[६] विशेष रसका वर्णन अत्यत प्रिय था, ब्राह्मणके समान पद्मासनके[७] उद्देशसे वहाँ भूमडल दिखाया गया था, स्वामिकार्तिकके समान वह मयूर-क्रीड़ाके आरभसे चचल था; कुलीन स्त्रीके आचरणके समान वहाँ सर्वदा शका[८] रहती थी; वेश्याकी तरह वह उपचारमें[९] चतुर था, दुर्जनकी तरह उसे परलोकका[१०] भय नहीं था, चाडाल आदिके समान वह अगम्य[११] विषयाभिलाषी था, अगम्य[१२] विषयमें

१—ग्रहण, मोक्ष और १६ कलाओंके भागमें निपुण, शत्रुओंको गिरफ्तार करने और दंड देकर छोड़नेके कानूनमें प्रवीण मंत्री।

२—जिनका साधारण मनुष्य चिंतन न कर सकें ऐसे भावों और प्रकृतियोंका वर्णन, असाधारण प्रकृति और भाव।

३—पाप, दुराचार।

४—सध्याके शिरोभूषणके समान चद्रका उदय, राजकुमार चन्द्रापीड़।

५—लक्ष्मी, कौस्तुभ, शोभायुक्त रत्न।

६—मदिरा, कादम्बरी।

७—ब्राह्मण वेदके अनुसार सब भूमडलका प्रतिपादन करता है, वहाँ पद्मासनके अभ्यासके लिए पृथ्वीका एक भाग निश्चित था।

८—सदेह, सावधानता।

९—प्रसन्न करना, अभ्यागतका सत्कार।

१०—दूसरे लोक, शत्रु।

११—भोगके लिये अगम्य, उसकी दुर्लभ देशकी अभिलाषा कोई जान नहीं सकता था।

१२—अगम्य उपभोग, दुर्लभ देश।

प्रासक्त होनेपर भी वह प्रशंसनीय था; यमदूतकी भाँति वह किए हुए दुष्कृत सुकृत विचारनेमें प्रवीण था; सत्कार्यके समान वह आदि, मध्य और अंतमें कल्याण-कारक था, दिनके आरंभके समान वह प्रकाशित पद्मरागसे[1] निशान्तको रक्त करता था, दिव्य मुनिगणकी तरह वह कलापि सहित[2] श्वेत-केतुसे शोभित था, भारतके रण-क्षेत्रके समान वह कृतवर्म[3] बाण-चक्रके समूहसे भयकर लगता था, पातालके समान वहाँ हजारों महाकंचुकियोंका[4] वास था; वर्ण-पर्वतकी तरह उसके भीतर शृंगी[5] हेमकूट थे, बड़े बड़े द्वार होने पर भी उसमें प्रवेश करना कठिन था; अवन्ति देशमें होने पर भी वहाँ[6] मागध-जन रहते थे और समृद्ध होने पर भी वहाँ नग्न[7] लोग घूमते फिरते थे।

११३—सब स्थानोंसे एकत्रित होकर पहिलेसे उचित स्थान पर खड़े और मुकुटोंको बहुत नीचा करनेसे ढीले चूड़ामणिकी किरणोंसे धरतीका चुम्बन करते राजा लोग, जैसे जैसे प्रतिहार निवेदन करता गया उसी उसी प्रकार, एक एक करके आदर-सहित उसको प्रणाम करने लगे और पद पद पर, आचार में निपुण अन्तःपुरकी बूढ़ी स्त्रियाँ भीतरसे बाहर आ आ कर उसका मांगलिक उतारा करने लगीं। इस रीतिसे एक साथ आकर प्रणाम करते प्रतिहारोंके बताए मार्गसे आगे जाकर और भुवनान्तरके समान अनेक जातिके हजारों मनुष्योंसे भरी सात बड़ी डेवढ़ियाँ पार कर उसने अभ्यन्तरमें स्थित—निर्मल पुलिनसे शोभित मंदाकिनीके जलमें देव-गजकी भाँति—हंसके समान सफेद पलंग पर बैठे पिताको देखा। उनके चारों ओर वंशपरंपरागत, कुलीन तथा उनसे प्रेम करनेवाले शरीर रक्षाके अधिकारी पुरुष खड़े थे। वे हाथ, पैर

१—कमलोंके चमकते रंगसे प्रातःकाल लाल लाल हो जाता है; वहाँ पद्मराग मणियोंसे घर लाल लाल थे।

२—कलापि और श्वेतकेतु मुनि, सफेद ध्वजाएँ, जिन पर मोर चित्रित थे।

३—कृतवर्माके बाणोंके समूहसे, कवच, बाण और चक्र।

४—साँप, खवास।

५—रुद्रसे शिखरवाला हेमकूट, अलंकारोंके लिए सुवर्णके ढेर।

६—मगधके, भाट।

७—नंगे, जैनी।

और नेत्रोंके सिवा सब शरीरको श्याम कवचसे ढँक लेनेके कारण ऐसे दीखते थे मानो हाथीके मदकी सुगंधके लोभमें निरन्तर चिपटे हुए भौरोंसे युक्त हाथी बाँधनेके स्तंभ हों। दिन रात शस्त्र धारण करनेसे उनकी हथेलियाँ काली पड़ गई थीं और महावीरता तथा अति कर्कशताके कारण दानवोंके समान पराक्रम उनके मनके अभिप्राय और आकारसे ही जान लिया जाता था। वेश्या दोनों ओरसे राजाके ऊपर बराबर सफेद चमर डुलाती थीं।

११४—प्रतिहारके—देखिए—कहने पर उसी क्षण चन्द्रापीड़ने माथा बहुत नीचा कर प्रणाम किया जिससे उसका चूड़ामणि चलायमान हो गया। इतनेमें—आओ आओ—यों कहते कहते राजाने दूरसे ही बाहु पसार, पलग परसे कुछ ऊँचा उठ कर, आनन्दके आँसुओंसे भरी आँखोंसे—रोम खड़े हो जानेके कारण—मानो वह विनयसे नम्र हुए चन्द्रापीड़को अपने साथ सी लेता हो या एक कर लेता हो वा पीता हो इस प्रकार आलिंगन किया। मिल कर अलग होनेके बाद ताम्बूल वाहिनीके द्वारा शीघ्र आसनके लिये तै करके रक्खे गए चादरेको ले जानेके लिए धीरेसे कह कर और उसे पैरके अंगूठेसे एक तरफ सरका कर चन्द्रापीड़, पिताके चरणोंके पास, धरती पर ही बैठा और पास रक्खे अपने आसन पर राजासे पुत्रके समान आलिंगन किया गया वैशम्पायन बैठा। चमर झलना भूल कर निश्चल हुई वेश्यायें वहाँ पवनसे हिलते कमल पत्रके हारोंके समान दीर्घ और टेढी फिरती पुतलियोंसे विचित्र मालूम होते अभिलाषा युक्त कटाक्ष चन्द्रापीड़ पर फेंकने लगीं। थोड़ी देर बैठनेके बाद जब राजाने—जाओ, वत्स, अपनी पुत्र-वत्सला माताकी वंदना कर, सब दर्शनो त्सुक माताओंको यथाक्रम दर्शन देकर आनन्द दो—यों कह कर उसे विदा किया तब वह विनय सहित उठ, सेवक-जन छोड़ कर, केवल वैशम्पायनको लेकर, रनवासमें प्रवेश करने योग्य राजपरिजनके बताए मार्गसे अन्तःपुरमें गया।

११५—वहाँ माताके पास जाकर कुमारने प्रणाम किया। वह सफेद चोली धारण करनेवाली अन्तःपुरकी हजारों शुद्ध टहलनियोंके बीचमें होनेसे क्षीरसागर की तरंगोंसे परिवृत लक्ष्मीके समान दीखती थी, अत्यंत शांत आकृतिवाली, [illegible]गिये वस्त्र धारण करनेवाली, संध्याके समान सब लोगोंके नमस्कार करनेके [illegible], लंबे कानवाली, अनेक कथा-वृत्तांत जानती, प्राचीन समयकी पवित्र कथा

कहतीं, इतिहास बाँचतीं, पुस्तकें धारण करतीं, धर्मका उपदेश करतीं, वृद्ध परिव्राजिकाएँ उसका मन बहला रही थीं, स्त्रियोंके वेषमें स्त्रियोंकी ही भाषा बोलते नपुंसक, विकट आभूषण पहन कर, उसकी सेवा करते थे, छोटे छोटे पखे उस पर बराबर हो रहे थे, कपड़े, गहने, फूल, पटवास[1], पान, पखे, अङ्गलेप और झारियाँ लेकर, मडल बना कर, बैठी हुई स्त्रियाँ उसकी सेवा करती थीं। स्तनों पर लटकते मोतियोंके हारसे वह दो पर्वतोंके बीचमे बहते गगा प्रवाहसे युक्त पृथिवीके समान शोभायमान थी, और निकटवर्ती दर्पणमें अपने मुखका प्रतिबिम्ब पडनेसे, सूर्य मडलमें घुसे चन्द्र-बिम्बवाले आकाशके समान प्रकाशित थी।

११६—रानीने झट चन्द्रापीडको उठा कर, आज्ञा पालनेमें चतुर परिजनोंके पास होने पर भी, आप ही उतारा किया, और स्तनोंमेंसे रिसती दूधकी बूँदोके आकारमे, स्नेहाकुल होनेके कारण बह कर मानो बाहर निकलते हुए हृदयसे, वह मनमे सैकड़ों मगलोंका चिन्तन करती उसके माथेको सूँघ कर बहुत समय तक उसका आलिंगन करती करती खडी रही, फिर वैशम्पायन का भी उसी तरह योग्य उपचार करके भेंट कर स्वय बैठी। विनयसे जमीन पर बैठते चन्द्रापीडको खींच कर उसकी इच्छा न होने पर भी हटसे उसने अपनी गोदमे बैठा लिया और दासियोंसे शीघ्र लाई गई बेंतकी कुरसी पर वैशम्पायनके भी बैठने पर चन्द्रापीडको बार बार छातीसे लगा, ललाट, छाती और कधों पर बारम्बार हाथ फेरती फेरती विलासवती कहने लगी—वत्स, तुम्हारे पिताका हृदय कैसा कठोर है कि उन्होंने ऐसी त्रिभुवन-लालनीय आकृतिको इतने समय तक ऐसा बडा क्लेश सहन कराया। तुम इतने अधिक समय तक गुरुओंका नियन्त्रण किस प्रकार सहन कर सके होगे? अहो, बालक होने पर भी तुम्हारा प्रौढके समान महा धैर्य है। अहो, तुम्हारे हृदयने बाल्यावस्थामें ही बाल-क्रीड़ाकी उत्कंठाको छोड़ दिया? अहा, गुरुजन पर तुम्हारी असाधारण भक्ति है। जैसे तुम्हारे पिताके प्रसादसे सर्वथा आज मैं तुमको बाल विद्यासे पूर्ण देख रही हूँ उसी तरह मैं थोड़े ही कालमें अनुरूप बहुओंसे सहित देखूँगी। इतना कह कर लज्जा और मुसकुराहटके

१—वह वस्तु जिससे वस्त्र सुगन्धित किया जाय।

कारण नीचे झुके—अपने मुखको परछाईं पड़नेके कारण जो मानो खिले कमलके कर्ण-पल्लव सहित मालूम होता था ऐसे—चन्द्रापीड़के गाल पर चुम्बन किया। इस तरह वहाँ थोड़ी देर रहनेके पीछे यथाक्रम सब अन्त पुरमें दर्शन देकर चन्द्रापीड़ने सबको आनन्दित किया। फिर वहाँसे बाहर आकर राजगृहके दरवाजेके पास खड़े इन्द्रायुध पर बैठ, पहलेके अनुसार ही, वह राजा लोगोंको साथ लेकर शुकनाससे मिलने गया।

११७—वह शकुनासके घरके दरवाजेके पास आ पहुँचा जहाँ अनेक प्रकारके हाथी तैयार खड़े थे, अनेक सहस्र घोड़े थे और असख्य मनुष्योंके झुण्डकी निरन्तर भीड़ हो रही थी। उसके एक भागमें, अपने-अपने कामोंके लिये आए हुए, दर्शन करनेके उत्सुक, विविध शास्त्रोंके अध्ययनसे प्रबुद्ध बुद्धिवाले, जोगिये कपडोंके बहाने विनयसे अनुराग प्रकट करते, धर्मपटसे मानो आच्छादित हुए, बौद्धमतके मुख्य अनुयायी रक्ताम्बर और शैवी तथा ब्राह्मण चारों ओर हजारों मडल बना कर दिन रात बैठे रहते थे। भीतर गए हुए सामन्तोंकी लाखों हथिनियोंसे वह भरा हुआ था। उनके जघन पर दोहरी लपेटी झूल गोदमें लेकर पुरुष बैठे थे, बहुत देर राह देखनेसे थक कर उनके महावत निद्रा-वश हो गये थे, जीन उन पर पड़ी हुई थी और निश्चल स्थितिमें भी वे ऊँची नीची घूमा करती थीं। वहाँ आकर वह दरवाजेके पास खड़े प्रतिहारोंके मने किए बिना भी अपने आप, राजकुलकी भाँति, बाहर के आँगनमें ही घोड़े परसे उतर पड़ा। फिर घोड़ेको दरवाजेके पास खड़ा कर वैशम्पायनका हाथ पकड़ कर—आगे दौड़ कर परिजनोंको हटाते, सेवार्थ इकट्ठे हुए, चलायमान मुकुटवाले राजाओंके झुडोंसे, पहले ही का भाँति, उठ उठ प्रणाम किया गया—चन्द्रापीड़ प्रतिहारोंकी प्रचड हुंकारके भयसे चुप हुए परिजनवाले और छड़ीदारोंके चलनेसे चकित हुए सामन्तोंके सैकड़ों चरण पडनेसे कंपित हुए भूतलवाले कमरे पहलेकी तरह देखता देखता, प्रथमकी भाँति ही नई सफेदी किए जानेके कारण श्वेत महलोंसे युक्त, दूसरे राजगृहके समान, शुकनासके भवनमें घुसा। प्रवेश करके अनेक सहस्र नरेन्द्रोंके बीचमें विराजते, दूसरे पिताके समान, शुकनासको उसने विनयपूर्वक दूरसे मस्तक नवा कर किया।

११८—तब सब राजा लोग यथाक्रम खड़े हो गए और शुकनासने जल्दी उठ कर आदरसे कितने ही कदम आगे आकर हर्षसे प्रफुल्लित लोचनोंमें भरे आनन्दाश्रु-सहित चन्द्रापीड़का और वैशम्पायनका प्रेम-युक्त गाढ आलिंगन किया। मिलकर अलग होने पर राजपुत्र मान-पूर्वक लाए हुए रत्नासनको छोड़कर भूमि पर ही बैठा और फिर वैशम्पायन भी वैसे ही बैठा। चन्द्रापीडके बैठने पर शुकनासके सिवाय अन्य सब नरेन्द्र भी अपने अपने आसन छोड़ जमीन पर ही बैठे। फिर थोड़ी देर चुप रह कर प्रीतिसे रोमाञ्चित हुए गात्रसे अत्यन्त हर्ष प्रकट कर शुकनास राजकुमारसे इस भाँति कहने लगा।

११६—वत्स चन्द्रापीड़, आपको सब विद्या-सम्पन्न और तरुण हुआ देख बहुत कालके अनन्तर आज महाराज तारापीडको भुवन-राज्यका फल मिला है। आज सब गुरुजनोंका आशीर्वाद सफल हुआ, अनेक जन्मान्तरमें किए अच्छे कर्मोंका फल मिला और कुलदेवता प्रसन्न हुए। जो पुण्यात्मा नहीं है उसके आपके समान त्रिभुवन विस्मय-जनक पुत्र कैसे हो सकता है? कहाँ यह अमानुषी शक्ति? कहाँ यह समस्त विद्या ग्रहण करनेका सामर्थ्य? अहो! धन्य है उन प्रजाओंको जिनके आप भरत, भगीरथके समान शासक पैदा हुए हैं। भूमिने ऐसा क्या पवित्र कर्म किया जिससे उसे आपके समान पति मिला? नारायणके वक्षस्थलमें रहनेका हठ करनेवाली लक्ष्मीका भी यह दुर्भाग्य है कि वह शरीर-सहित आपके निकट नहीं आती। वाराहने जिस प्रकार दन्तमलसे पृथ्वीको उठाया था उसी भाँति आप भी स्वबाहुसे, पिताके साथ, पृथ्वीका भार कोटिकल्प तक वहन करो। इतना कह कर गहने, कपड़े, फूल, अंगराग आदिसे स्वयं ही सत्कार करके उन्हें बिदा किया। वहाँसे उठ कर अन्तःपुरमें जा, वैशम्पायनकी माता मनोरमासे मिल, बाहर आकर इन्द्रायुध पर सवार होकर, वह पिताके पहलेसे ही निश्चित किए गए, राजपदके अभिषेकके समान, महलमें गया। वहाँ दरवाजेके पास जलपूर्ण सफेद कलश रखे थे। हरी वन्दनवारें बँधी थीं। हजारों सफेद पताकाएँ फहरा रही थीं। मांगलिक तुरहीके शब्दसे दिगन्तर व्याप्त हो गए थे। भूमि पर बिखरे हुए फूलोंके ढेर लग रहे थे। थोड़े ही समय पहले होम समाप्त हुआ था। उसके भीतर ब्राह्मण मन्त्र पढ़ते थे। गृहप्रवेशके योग्य सब मंगल

क्रियाएँ की गई थीं। वहाँ जाकर श्रीमडपमें स्थित पलग पर कुछ देर बैठ कर उन्हीं राजपुत्रों सहित उसने स्नान भोजन आदि नित्य क्रिया की और इन्द्रायुधको आवास भीतर, अपने शयनगृहमें ही, रक्खा।

१२०—यों करते करते दिन समाप्त हुआ। आकाशमेसे उतरती दिवसश्रीके पैरमेसे गिरते—अपनी ही प्रभासे भरे छेदवाले—पद्म-रागके नूपुरके समान रवि-मडल किरणें फैला कर नीचे गिर पड़ा। सूर्य्यके रथके पहियेके रास्तेमें होकर, जल-प्रवाहके समान, धूप भी पश्चिम दिशामें गई। दिवसने नये पल्लव सदृश लाल हथेलीवाले हाथके समान नीचे लटकते सूर्य्य-बिम्बसे मानो सब कमल राग पोंछ दिया। कमलिनीकी महकसे आकृष्ट हुए भ्रमरोंसे घिरे कठवाले चक्रवाक मिथुन, कालपाशसे खींचे गएकी भाँति, एक दूसरेसे अलग हो गए और सूर्य्य-बिम्बने कर सम्पुटसे सायकाल तक पिए हुए कमल-मधुरसको, मानो लाल धूपके आकारमें, आकाशके बीचमें चलनेकी थकावटके कारण उगल दिया।

१२१—फिर यथाक्रम जब पश्चिम दिशाका लाल कर्णकमल सूर्यमडल अन्य लोकमें गया, गगन-सरोवरकी विकसित कमलिनीके समान सध्या दीखने लगी, काले अगरुकी पत्र-लताके समान तिमिर रेखाएँ दिशाओंके मुखमें फैलने लगीं, कुवलय-वनके समान अधकार—रक्त कमलाकरके समान—सध्यारागको दूर करने लगा, कमलिनियोंके पिए हुए आतपको निकालनेके लिए, मानो अधकार के पल्लवके समान, भ्रमरोंके झुड लाल कमलके उदरमें घुसने लगे, धीरे धीरे निशा रूपी विलासिनीके मुखका कर्ण-पल्लव रूपी सध्याराग गिर पड़ा, सध्या समय देवपूजामें बलिपिंड प्रत्येक दिशामें रख दिए गए, मोरोंके बैठनेके डंडोंकी चोटियों पर अधकार व्याप्त हो जानेसे मयूरोंके नहीं बैठने पर भी मानो वे उन पर बैठे हों ऐसा मालूम होने लगा, प्रसाद लक्ष्मी के कर्ण कमलके समान कबूतर घोंसलोंमें चले गये, स्त्रियोंके नहीं बैठे होनेसे अत पुरके झूलोंकी सोनेकी पटलियाँ निश्चल और घटियोंकी आवाज बद हो गई, परम लगे आमके पेड़की डालियों पर लटकाए पिंजरोंमें तोता मैनाओंके झुडका बोलना बद हो गया, सगीतकों के स्वर बंद कर वीणाएँ रख दी गईं, महिलाओंके पायजेबोंकी झनझनाहट बद हो जानेके कारण पालतू राजहस निश्चल हो गये, मत्त हाथियोंके कर्ण-ताल, पर, नक्षत्रमाला आदि गहने उतार लिए गए और उनके गडस्थल भौंरोंके

उड़ जानेसे खाली हो गए, राज प्रिय अस्तवलोंमें लप जला दिए गए; पहले प्रहरकी कुंजर-घटा प्रवेश करने लगी, स्वस्तिवाचन करके पुरोहित बाहर निकलने लगे, राजा लोगोंके विदा होनेके कारण थोड़े परिजन रह जानेसे राजगृहके बड़े बड़े कमरे अधिक विस्तृत हुए-से दीखने लगे; हजारों प्रज्वलित दीपकोंके प्रतिबिंबसे चुम्बित हुई मणिमय भूमि पर प्रफुल्ल चम्पकके मानो उपहार रक्खे हो ऐसा मालूम होने लगा, गृह-सरोवरमें दीपकोंका प्रकाश पड़नेसे सूर्यके वियोगसे पीडित नलिनीका मन बहलानेके लिए मानो बाल सूर्य्य आया हो ऐसा मालूम हुआ, पिंजरेमें बद सिंह निद्रा वश हो गए, धनुष चढा कर बाण ले चौकीदारके समान कामदेवने अंत:पुरमें प्रवेश किया, कर्ण-पल्लवके समान सराग[1] युक्त दूतीके वचन सुनाई देने लगे, सूर्यकान्त मणियोंसे अग्नि सक्रान्त हो जानेके कारण मानिनियोंके शोकार्त हृदय मानो जलने लगे और प्रदोष समय हो गया तब चन्द्रापीड़, जलते हुए दीपकोंसे युक्त परिवार-सहित, टहलता ही राजगृहमें गया और पिताके पास थोड़ी देर बैठ कर, विलासवतीसे मिल, अपने महलमें आया और वहाँ अनेक रत्नोंकी प्रभासे विचित्र हुए पलग पर, शेषनागके फण-मडल पर विष्णुके समान, सो गया।

१२२—सवेरा होने पर उठ कर पिताकी आज्ञा लेकर, अभिनव मृगयाके औत्सुक्यसे आकर्षित हृदयवाला कुमार, सूर्योदयसे पहले ही, इन्द्रायुध पर सवार हो, बहुतसे हाथी घोड़े और पैदल सहित वनकी तरफ चला। गधोंके समान बड़े बड़े कुत्तोंको सोनेकी जजीरें बाँध कर खेंच लाते रक्षक, निरंतर कोलाहल करते करते, चन्द्रापीडके आगे दौड़ दौड़ कर गमनके उत्साहको दूना करने लगे। उन्होंने वृद्ध व्याघ्रके चर्म रूपी विचित्र वस्त्रके कंचुक पहने थे, माथे पर विविध वर्णके साफे बाँधे थे, दाढी बढ जानेसे उनके मुँह भर गये थे, एक एक कानमें उन्होंने सोनेके गहने पहने थे, कमर मजबूत बाँध ली थी, दिन रात मिहनत करनेसे उनकी जाँघें मोटी हो गई थी और उन्होंने हाथमें धनुष ले रक्खे थे। वहाँ कान तक खेंच कर छुड़े गए, चलते हुए नील कमलको [illegible] समान लगते नालीक और मदमत्त बालगजकी कुम्भस्थलियोंको [illegible] डालते [illegible] बाणोंसे उसने हजारों जंगली शूकर,

[1]—राग सहित, प्रेम-सहित।

सिंह, शरभ, चमर और हरिण मार डाले। उसके धनुषकी टंकारसे भयभीत वन देवियाँ कटाक्षसे उसे देखने लगीं। अन्य कितने ही प्राणियोंको तो उसने बड़े बलसे बिना मारे ही जाते-जाते पकड़ लिया।

१२३—फिर दुपहर होने पर मानो नहा कर उठा हो इस भाँति पसीनेकी बूँदोंका जो बराबर मेह बरसाता था, बारम्बार दाँत किड़किड़ाकर जो तीक्ष्ण लगामकी खड़खड़ाहट करता था, जिसके थकावटसे शिथिल हुए मुखमेंसे झागके साथ रुधिरकी बूँदें टपकती थीं, पर्याण-पटके किनारे पर झागकी रेखा बँधी थीं और—खिले हुए फूलोंसे विचित्र और गुंजारते भौंरोंके झुण्डोंसे व्याप्त—पल्लव-स्तवकको जो, कर्णाभरणके स्थानमें, वन गमन चिन्हकी तरह धारण करता था, ऐसे इन्द्रायुध पर बैठा भीतर पसीनेसे तर हुआ, और मृग रुधिरकी सैकड़ों बूँदोंसे विचित्र हुए कवचसे दूनी शोभावाला, अनेक मृगोंके पीछे दौड़नेकी गड़बड़में छत्रधारीके अलग हो जानेसे, छत्रके आकारमें रक्खे नव पल्लवसे धूप रोकता, विविध वनलताओंके फूलोंकी रजसे धूसर हुआ—शरीरधारी साक्षात् वसन्तके समान—घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी रजसे मलीन हुए ललाटमें साफ दीखती स्वच्छ पसीनेकी रेखावाला और पैदल दूर रह जानेसे शून्य पुरोभागवाला चन्द्रापीड, तेज घोड़ों पर बैठे, थोड़े बाकी रहे हुए, राजपुत्रोंके साथ—यों सिंह, यों सुअर, यों जंगली महिष, यों शरभ, यों हरिण मारा—ऐसी ऐसी शिकारहीकी बातें करता करता अपने महलको आया।

१२४—वहाँ घोड़े परसे उतर जल्दी दौड़ते परिजनोंके लाए हुए आसन पर बैठ, कवच उतार, घुड़सवारीके सब वस्त्र उसने उतार डाले। इधर उधर पङ्खा हिला कर नौकर उसकी हवा करने लगे जिससे थकावट दूर हो गई और उसने क्षण भर आराम किया। विश्रामके बाद वह मणि, सोने या चाँदीके सैकड़ों कलशोंसे भरी हुई स्नान भूमिमें गया। वहाँ सुवर्णकी एक चौकी रक्खी थी। स्नान करनेके बाद साफ वस्त्रसे शरीर पोंछ, निर्मल वस्त्रको सायें बाँध, अन्य वस्त्र पहन, ठाकुरजीकी पूजा कर जब वह अंगरागशालामें जा बैठा था तब, वहाँ प्रतिहारको आगे कर, राजाके भेजे हुए राजकुल ..., कुल वर्धना सहित विलासवती रानीकी दासियाँ और अंतःपुरकी भेजी

हुई सब टहलनियाँ सदूकोंमे रक्खे हुए अनेक गहने, हार, अंगलेप और वस्त्र लेकर उसके आगे आई और उन्हे उसकी भेंट किया। एक एक वस्तु उनसे लेकर, प्रथम स्वयं वैशम्पायनका लेप कर, फिर अपना अंगराग कर, पास बैठे राजपुत्रोंको यथोचित गहने, कपड़े, अंगलेप और फूल देकर राजकुमार, अनेक मणियोंके हजारों बर्तनोंसे विचित्र और, चमकते तारागणवाले शरद् ऋतुके आकाशके समान शोभित, आहार-मण्डपमे गया। वहाँ दुहरे गलीचे पर बैठे, पास बैठे हुए, उसके गुणोंका वर्णन करते, वैशम्पायनसे यथोचित स्थान पर बैठाए गए और उसके विशेष प्रसन्नता दिखानेसे सेवा करनेमे प्रीतिवाले, राजपुत्रोंके साथ—यह इनको दो, यह उनको दो—इस तरह कह कह कर उसने भोजन किया। भोजनके पीछे आचमन कर, ताम्बूल ले, वहाँ जरा देर बैठ इन्द्रायुधके पास गया। वहाँ जाकर खड़े खड़े ही बातचीतमें उसके गुणोंका वर्णन करता, आज्ञाकी राह देखते परिजन निकट होने पर भी आप ही, उसके गुणों पर मोहित होकर, उसके आगे जाकर घास डाल, बाहर आकर राज-गृहकी ओर चला। वहाँ पहलेके अनुसार ही पितासे मिल, पीछे वापिस आकर रात बिताई।

१२५—दूसरे दिन प्रातःकाल ही उसने सब अन्तःपुरके अधिकारी और राजा तारापीड़के परम सम्मत कैलाश नामक कंचुकी को आते देखा। उसके पीछे पीछे एक अत्यन्त गम्भीर आकृतिकी नौजवान कन्या चली आती थी। राजकुलमें रहनेसे प्रगल्भ होने पर भी उसमें विनयकी कमी नहीं थी। यौवनका उसमें कुछ-कुछ विकास हो गया था। बीर-बहूटीके समान लाल कपड़ा उसने दुपट्टा ओट रक्खा था जिससे वह, बाल सूर्य-सहित मानो पूर्व दिशा हो, ऐसी दीखती थी। हालके टूटे मैनसिलके चूरेके समान रंगवाली शरीरकी लावण्य-प्रभासे, मानो वह अमृत रसकी नदीके प्रवाहसे, सब महलको भरे देती थी। वह ऐसी मालूम होती थी मानो राहु-ग्रासके भयसे चन्द्र मण्डल छोड़ कर धरती पर आई हुई चाँदनी हो, या राज गृहकी [illegible] देवी हो। झन झन करते मणिनूपुर चरणोंमे पहननेके कारण, गुंजार करते हंसोंसे अकुलाए हुए कमलवाली कमलिनीके समान वह देख पड़ती थी। बजती बजती सुवर्णकी तागड़ी उसकी कमरमें पड़ी थी। उसके स्तन कुछ

सिंह, शरभ, चमर और हरिण मार डाले। उसके धनुषकी टंकारसे भयभीत वन-देवियाँ कटाक्षसे उसे देखने लगीं। अन्य कितने ही प्राणियोंको तो उसने बड़े बलसे बिना मारे ही जाते-जाते पकड़ लिया।

१२३—फिर दुपहर होने पर मानो नहा कर उठा हो इस भाँति पसीनेकी बूँदोंका जो बराबर मेह बरसाता था, बारम्बार दाँत किड़किड़ाकर जो तीक्ष्ण लगामकी खड़खड़ाहट करता था, जिसके थकावटसे शिथिल हुए मुखमेंसे भागके साथ रुधिरकी बूँदें टपकती थीं, पर्याण-पटके किनारे पर भागकी रेखा बँधी थीं और—खिले हुए फूलोंसे विचित्र और गुंजारते भौंरोंके झुण्डोंसे व्याप्त—पल्लव-स्तवकको जो, कर्णाभरणके स्थानमें, वन गमन चिन्हकी तरह धारण करता था, ऐसे इन्द्रायुध पर बैठा भीतर पसीनेसे तर हुआ, और मृग रुधिरकी सैकड़ों बूँदोंसे विचित्र हुए कवचसे दूनी शोभावाला, अनेक मृगोंके पीछे दौड़नेकी गड़बड़में छत्रधारीके अलग हो जानेसे, छत्रके बदलेमें रक्खे नव पल्लवसे धूप रोकता, विविध वनलताओंके फूलोंकी रजसे धूसर हुआ—शरीरधारी साक्षात् वसंतके समान—घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी रजसे मलीन हुए ललाटमें साफ दीखती स्वच्छ पसीनेकी रेखावाला और पैदल दूर रह जानेसे शून्य पुरोभागवाला चन्द्रापीड, तेज घोड़ों पर बैठे, थोड़े बाकी रहे हुए, राजपुत्रोंके साथ—यों सिंह, यों सुअर, यों जंगली महिष, यों शरभ, यों हरिण मारा—ऐसी-ऐसी शिकारहीकी बातें करता करता अपने महलको आया।

१२४—वहाँ घोड़े परसे उतर जल्दी दौड़ते परिजनोंके लाए हुए आसन पर बैठ, कवच उतार, घुड़सवारीके सब वस्त्र उसने उतार डाले। इधर उधर पङ्खा हिला कर नौकर उसकी हवा करने लगे जिससे थकावट दूर हो गई और उसने क्षण भर आराम किया। विश्रामके बाद वह मणि, सोने और चाँदीके सैकड़ों कलशोंसे भरी हुई स्नान भूमिमें गया। वहाँ सुवर्णकी एक चौकी रक्खी थी। स्नान करनेके बाद साफ वस्त्रसे शरीर पोंछ, निर्मल वस्त्रका साफा बाँध, अन्य वस्त्र पहन, ठाकुरजीकी पूजा कर जब वह अंगरागशालामें जा बैठा था तब, वहाँ प्रतिहारको आगे कर, राजाके भेजे हुए राजकुलके ..., कुल-वर्धना सहित विलासवती रानीकी दासियाँ और अंतःपुरकी भेजी

हुई सब टहलनियाँ सन्दूकोंमें रक्खे हुए अनेक गहने, हार, अंगलेप और वस्त्र लेकर उसके आगे आई और उन्हें उसकी भेंट किया। एक एक वस्तु उनसे लेकर, प्रथम स्वयं वैशम्पायनका लेप कर, फिर अपना अंगराग कर, पास बैठे राजपुत्रोंको यथोचित गहने, कपड़े, अंगलेप और फूल देकर राजकुमार, अनेक मणियोंके हजारों बर्तनोंसे विचित्र और, चमकते तारागणवाले शरद् ऋतुके आकाशके समान शोभित, आहार-मंडपमें गया। वहाँ दुहरे गलीचे पर बैठे, पास बैठे हुए, उसके गुणोंका वर्णन करते, वैशम्पायनसे यथोचित स्थान पर बैठाए गए और उसके विशेष प्रसन्नता दिखानेसे सेवा करनेमें प्रीतिवाले, राजपुत्रोंके साथ—यह इनको दो, यह उनको दो—इस तरह कह कह कर उसने भोजन किया। भोजनके पीछे आचमन कर, ताम्बूल ले, वहाँ ज़रा देर बैठ इन्द्रायुधके पास गया। वहाँ जाकर खड़े खड़े ही बातचीतमें उसके गुणोंका वर्णन करता, आज्ञाकी राह देखते परिजन निकट होने पर भी आप ही, उसके गुणों पर मोहित होकर, उसके आगे जाकर घास डाल, बाहर आकर राज-गृहकी ओर चला। वहाँ पहलेके अनुसार ही पितासे मिल, पीछे वापिस आकर रात बिताई।

१२५—दूसरे दिन प्रातःकाल ही उसने सब अन्तःपुरके अधिकारी और राजा तारापीड़के परम सम्मत कैलाश नामक कंचुकी को आते देखा। उसके पीछे पीछे एक अत्यन्त गम्भीर आकृतिकी नौजवान कन्या चली आती थी। राजकुलमें रहनेसे प्रगल्भ होने पर भी उसमें विनयकी कमी नहीं थी। यौवनका उसमें कुछ-कुछ विकास हो गया था। बीरबहूटीके समान लाल कपड़ेका उसने दुपट्टा ओढ़ रक्खा था जिससे वह, बाल सूर्य-कान्ति मानो पूर्व दिशा हो, ऐसी दीखती थी। हालके टूटे मैनसिलके चूरेके समान रंगवाली शरीरकी लावण्य प्रभासे, मानो वह अमृत रसकी नदीके प्रवाहसे, सब मकानको भरे देती थी। वह ऐसी मालूम होती थी मानो राहु-ग्रासके डरसे चन्द्रमण्डल छोड़ कर धरती पर आई हुई चाँदनी हो, या राजगृहकी [illegible] देवी हो। झन झन करते मणिनूपुर चरणोंमें पहननेके कारण, गुंजार करते राजहंसोंसे [illegible] हुए कमलवाली कमलिनीके समान वह देख पड़ती थी। नई नागकी सुवर्णकी तागड़ी उसकी कमरसे पड़ी थी। उसके स्तन कुछ

कुछ घने और प्रफुल थे। भुजलताके मंद मंद हिलनेमें निकलती नखकिरणोंके आकारमें दिन-रात वह अपने लावण्य-रसकी मानो धारा बरसाती थी। दिशाओंके मुखमें फैलती हुई हारकी किरणोंमें शरीर डूब जानेसे वह क्षीर-सागरमेंसे ऊँचा बदन करके निकलती लक्ष्मीके समान मालूम होती थी। उसके होठ पर ताम्बूलकी एक श्याम रेखा पड़ गई थी। उसकी नाक सम, गोल और ऊँची थी। खिले हुए पुण्डरीकके समान सफेद उसके नेत्र थे। गाल पर मणि कुंडलोंकी मछलीके किरणोंका प्रकाश पड़नेसे उसका मुख मानो कर्ण-पल्लव सहित हो ऐसा मालूम होता था। उसके ललाट पर सूखा हुआ चंदन-रसका धूसर तिलक शोभायमान था। उसने प्रायः मोतीके ही गहने पहने थे। कर्णकी राज्य लक्ष्मीकी तरह वह अंगराग[1] युक्त थी, अभिनव वन रेखाके समान उसकी तनु लता[2] कोमल थी, त्रयीकी तरह उसके चरण[3] सुप्रतिष्ठित थे, यज्ञशालाके समान वह वेदिमध्या[4] थी और मेरु पर्वतकी वनलताकी तरह वह कनक[5] पत्रसे अलङ्कृत थी।

१२६—कंचुकीने प्रणाम कर, आगे आ, अपना दाहिना हाथ भूमि पर टेक कर कहा—कुमार, महारानी विलासवतीकी आज्ञा है कि महाराजने पहले कुलूतेश्वरकी राजधानीको जीता था तब पत्रलेखा नामकी उसकी लड़कीको, बाल्यावस्थामें ही, बन्दीजनोंके साथ लाकर अंतःपुरकी टहलनियोंमें रक्खा था। इसे अनाथ राजपुत्री जान स्नेह उत्पन्न होनेसे अब तक पुत्रीकी तरह लाड़से पाला है। अब यह तुम्हारी ताम्बूलवाहिनी होनेके योग्य हुई है। यह जान कर मैं इसे भेजती हूँ। इसलिए तुम इसे और परिजनोंके समान न समझ कर, बालाके समान लालन पर अपनी चित्त वृत्तिके समान चपलता करनेसे रोकना। इसे शिष्यके समान जानना और मित्रके समान इस पर पूरा पूरा विश्वास रखना। बहुत कालसे मेरा प्रेम इस पर बढ़ गया है, इससे मेरा हृदय इसको

१—कर्णकी राज्य-लक्ष्मीको अंग देशसे प्रेम था, वह अंगराग युक्त थी।

२—छोटी लता, शरीर-रूपी लता।

३—वेदोंकी शाखाएँ भली भाँति स्थापित हैं, उसकी चाल सुन्दर थी।

४—बीचमें वेदीसे युक्त, वेदीके समान बीचमें पतली।

५—चंपा, कर्णाभूषण।

पुत्रीके समान मानता है और मेरा इस पर बड़ा पक्षपात है। बड़े कुलके राजघरानेमें यह उत्पन्न हुई है इसलिए यह ऐसे सब कामोंके योग्य है। थोड़े ही दिनमें यह अपने अत्यंत विनीत आचरणसे तुमको खूब संतुष्ट करेगी। संदेशा भेजनेका मतलब केवल इतना ही है कि इस पर मेरा प्रेम बहुत कालसे बढ़ता बढ़ता दृढ़ हो गया है और तुमको इसका शील विदित नहीं है। इसलिए सर्वथा तुम ऐसी कोशिश करना कि जिससे यह बहुत काल तक तुम्हारी योग्य टहलनी रहे। इतना कह कर कैलाश चुप हुआ, तब सम्मान-पूर्वक प्रणाम करती पत्रलेखाको एकाग्र दृष्टिसे बहुत देर तक देख कर चन्द्रापीडने—जैसी माताकी आज्ञा—यों कह, कञ्चुकीको लौटा दिया।

१२७—पत्रलेखाको तो उस दिनसे उसके दर्शनसे ही सेवा करनेमें प्रीति उत्पन्न हो गई। इससे, दिन-रात, सोते अथवा बैठते, चलते अथवा राजगृहमें गए हुए चन्द्रापीडके पाससे उसकी छायाके समान वह जरा भी अलग नहीं होती थी। चन्द्रापीडको भी उसे देखते ही प्रीति उत्पन्न हुई और वह प्रत्येक क्षण बढ़ती गई। दिन दिन वह अधिक कृपा करता था और अपने हृदयसे अभिन्नकी भाँति उस पर पूरा विश्वास रखने लगा।

१२८—इस प्रकार कुछ दिन बीत जानेके बाद राजाको चन्द्रापीडका यौवराज्याभिषेक करनेकी इच्छा हुई। इसलिए उसने सब साधन और सामग्री इकट्ठी करनेके लिए प्रतिहारोंको हुक्म दिया। अभिषेकका समय पास आया तब एक दिन दर्शनार्थ आए हुए चन्द्रापीडको, विनीत होने पर भी अधिक विनीत करनेके इरादेसे, शुकनासने विस्तार पूर्वक कहा—

१२९—वत्स चन्द्रापीड, जो कुछ जानना चाहिए वह सब तुम जानते हो और सब शास्त्रोंको तुमने पढ़ा है, इसलिए तुमको जरा भी उपदेशकी आवश्यकता नहीं है। केवल यह कहना है कि यौवनका अन्धकार स्वभावसे ही ऐसा गहरा होता है कि वह सूर्यसे भगाया नहीं जा सकता, रत्न-प्रभासे हटाया नहीं जा सकता और दीपकके प्रकाशसे नष्ट नहीं किया जा सकता। लक्ष्मीका मद ऐसा दारुण होता है कि वह अवस्था दीर्घ होने पर भी शान्त नहीं होता। ऐश्वर्यरूपी [illegible] अंधापन ऐसा दुःखदायक होता है कि

१—युवराजका अभिषेक।

वह अंजनकी सलाईसे भी नहीं मिटता, गर्व-रूपी दाहज्वरकी गरमी ऐसी तीव्र होती है कि वह शीतलोपचारसे भी दूर नहीं हो सकती, विषय रूपी विषके स्वादसे उत्पन्न हुआ मोह ऐसा विषम होता है कि वह जड़ी बूटी और मंत्रोंसे भी नहीं उतरता, अनुराग-रूपी मलका लेप ऐसा प्रबल होता है कि वह नित्य स्नान और शुद्धतासे भी नहीं हटता, राज्य-सुख रूप सन्निपात-निद्रा ऐसी घोर होती है कि रात्रिका अन्त होने पर भी उससे कभी प्रबोध नहीं होता, इसलिए तुमसे जरा विस्तार पूर्वक कहता हूँ।

११०—गर्भसे ही ऐश्वर्य, नव यौवन, असामान्य रूप और अमानुषी शक्ति—यह सब बड़ी अनर्थ-परंपरा है। इसमें एक एक अलग अलग भी सब अविनयोंका स्थान है, फिर सबके समुदायका तो कहना ही क्या है? शास्त्र रूपी जलसे धुलनेके कारण निर्मल होने पर भी यौवनके आरम्भमें बुद्धि प्राय मलीन हो जाती है। युवकोंकी दृष्टि धवल होने पर भी सराग[1] होती है। रजोभ्रांत[2] उत्पन्न करनेवाली आँधी जैसे सूखे पत्तोंको बहुत दूर उड़ा ले जाती है उसी भाँति यौवनमें प्रकृति मनुष्यको अपने आप ही बहुत दूर खींच ले जाती है। इन्द्रिय-रूपी हरिणोंका आकर्षण करनेवाली उपभोग रूप तृष्णाका अन्त सर्वदा दुःखदायी होता है। जब नवयौवनसे कषाय[3] हुई आत्मावाले मनुष्य के मनको विषय-स्वरूपोंका स्वाद आने लगता है तब वे जलकी तरह अधिक मधुर मालूम होते हैं। विषयोंकी अत्यासक्ति, दिङ्मोहकी तरह, मनुष्य को कुपथ में गेर कर नष्ट करदेती है। केवल तुम्हारे समान ही उपदेशोंके पात्र होते हैं क्योंकि, निर्मल स्फटिक मणिमें चन्द्र-किरणोंके समान, निर्मल मनमें ही उपदेश-गुण सुख पूर्वक प्रवेश कर सकते हैं। गुरु वचन, निर्मल होने पर भी, अयोग्य पुरुषके कानमें, जलके समान,

---

१—रंगीन, अनुराग-सहित।

२—आँधी धूल उड़ा उड़ा कर पत्तोंको दूर ले जाती है, जवानीमें रजोगुणके प्रबल होनेसे मनुष्यकी प्रकृतिमें भ्रम हो जाता है।

३—जैसे हड़ आदि खा लेनेसे मुँह कसैला हो जाने पर जल अधिक मीठा मालूम होता है उसी प्रकार जवानीसे आत्मामें विकार पैदा हो जाने अधिक मधुर लगते हैं।

बड़ा शूल उत्पन्न करते हैं परन्तु, हाथीके शंखाभरणकी भाँति, योग्य पुरुषके मुखको अधिक शोभायमान करते हैं। जैसे प्रदोष कालका चंद्रमा सध्या समयके अँधेरेको दूर कर देता है उसी प्रकार गुरुका शान्ति-जनक उपदेश अत्यंत मलीन दोषोंको भी हर लेता है। जैसे वृद्धावस्था मस्तकके केशोंको पलित-रूपसे निर्मल कर देती है उसी तरह वह सब दोषोंको गुणोंके रूपमें बदल देता है। अभी तुमने विषय रसका स्वाद नहीं चाखा है इस लिए उपदेश ग्रहण करनेका तुमको यही उचित समय है। कामदेवके शर-प्रहारसे हृदय चलनी हो जाने पर उसमेंसे उपदेश, जलके समान, बाहर निकल जाता है। जिसकी प्रकृति दुष्ट है उसे कुल या ज्ञान विनयका कारण नहीं होता। क्या चन्दनकी अग्नि जलाती नहीं है? शान्ति-कारक जलसे भी क्या बड़वाग्नि अधिक प्रचंड नहीं होती है? जैसे जलसे नहाने पर सब मैल धुल जाता है उसी प्रकार गुरुके उपदेशसे सब दोष दूर हो जाते हैं, बाल सफेद हुए बिना—बुढ़ापा आए बिना—ही वृद्धोंमें गिनती हो जाती है, मेदो[1]-दोष बिना ही गुरुत्व आ जाता है। गुरुका उपदेश बिना सुवर्णका कर्णाभरण है, उससे बड़ा प्रकाश होता है, उससे मनुष्यकी आँखें खुल जाती हैं। राजाओंको उसकी विशेष आवश्यकता है, क्योंकि उनको उपदेश देनेवाले कम होते हैं। सब मनुष्य, प्रति-शब्दके समान, भयसे राजाके वचनके अनुसार चलते हैं। जैसे सूजनसे कानके छेद बंद हो जाते हैं उसी तरह उत्कट दर्पसे राजाओंके कान बंद हो जाते हैं और वे किसीकी बात नहीं सुनते, और जो कदाचित् सुनें भी तो, हाथीके समान, आँखें बंद कर लेते हैं और उसकी कुछ परवा नहीं करते। हितकी सलाह देनेवाले गुरुओंको दुःख देते हैं। जैसे दाह ज्वरकी मूर्छासे मनुष्य संज्ञा हीन हो जाते हैं उसी प्रकार अहंकारसे राजाओंकी प्रकृतिमें भ्रम हो जाता है, धन झूठे अभिमानसे उन्मत्त कर देता है, जैसे विषके विकारसे तन्द्रा उत्पन्न होती है उसी प्रकार राज-लक्ष्मी, राज्यके विकारसे, सुस्ती पैदा कर देती है।

१३१—प्रत्येक कल्याणकी कामना है पहले लक्ष्मीको ही देखिए। जैसे

१—मेदके विकार हो जानेसे मनुष्य स्थूल हो जाता है, पर गुरुके उपदेशसे बिना किसी दोषके मनुष्य गौरवान्वित हो जाता है।

भ्रमरी कमल-वनमें विहार करती है उसी प्रकार यह योधाओंके खड्ग-मंडल में विलास करती है। यह पारिजातके पत्तोंसे राग[१], चन्द्रमाकी कलासे अत्यन्त वक्रता[२], उच्चैःश्रवासे चंचलता, विषसे मोहन शक्ति[४], मदिरासे मद[५] और कौस्तुभ मणिसे अत्यन्त कठिनता, साथ रहनेसे मेल होनेके कारण, वियोग-के समय विनोद करनेके चिन्हकी भाँति लेकर ही मानो क्षीर-सागरमेंसे बाहर आई है। इस अनर्थके समान अन्य कोई जगत्‌में ऐसा नहीं है जो अपने परिचयकी कुछ परवा न करे। मिलने पर भी यह महा कष्टसे ठहरती है, गुण-रूपी फंदेसे मजबूत बाँध कर निश्चल की जाने पर भी खिसक जाती है, उत्कट दर्पवाले हजारों योद्धाओंसे घुमाई गई खड्ग लताओंके पिंजरेमें रक्खी जाने पर भी चली जाती है, मदजलकी वर्षासे अँधेरा करनेवाले हाथियोंकी घटासे घेरी जाने पर भी भाग जाती है। न यह परिचयकी परवा करती है, न अच्छे कुलको देखती है, न कुल-परंपराका ख्याल करती है, न शील देखती है, न चातुर्यको गिनती है, न शास्त्रके ज्ञानको सुनती है, न धर्मको मानती है; न औदार्यका आदर करती है, न विशेष ज्ञानका विचार करती है, न आचारका पालन करती है, न सत्यको जानती है, न सामुद्रिकके लक्षणोंका प्रमाण मानती है और, दृष्टिके भ्रमसे आकाशमें दीखते गंधर्व-नगर-की तरह, देखते देखते नष्ट हो जाती है। यह इस प्रकार घूमा करती है मानो मंदराचलके भ्रमणसे पैदा हुए भँवरकी भ्रांतिका संस्कार इसमें अब तक बना हो। यह इस प्रकार किसी जगह जमा कर पैर नहीं रखती मानो कम-लिनीमें फिरनेसे कमल दंडके काँटे लग गये हों। बड़े बड़े राजाओंके महलों में बड़े बड़े यत्न करके रक्खी जाती है तो भी वह इस प्रकार स्खलन कर जाती है मानो अनेक गंध गजोंके गंड स्थलका मधु पीनेसे मत्त हो गई हो। कठिनता सीखनेके लिए ही मानो यह खड्ग धाराओंमें निवास करती है।

१—पत्तोंका रंग अस्थिर होता है, लक्ष्मीका अनुराग स्थायी नहीं होता।

२—कुटिलता, प्रतिकूलता।

३—चपलता, अस्थिरता।

४—मूर्च्छित करनेकी शक्ति, वशीकरण करनेकी शक्ति।

—उन्मादकपना, गर्व।

विश्वरूपत्व[1] ग्रहण करने के लिए ही मानो इसने नारायणका आश्रय लिया है। सन्ध्याकालके कमलकी तरह समुपचित मूलदण्ड[2] तथा कोशमण्डलवाले राजाका भी अविश्वाससे त्याग कर देती है। लताकी तरह विटोंसे[3] लिपट जाती है। वसु[4] जननी होने पर भी गंगाके समान तरंग-बुद्बुद[5] चंचल है। सूर्यकी गतिकी तरह विविध संक्रान्ति[6] प्रकट करती है। पातालकी गुफाके समान तमसे[7] व्याप्त है। [8]हैडम्भाकी तरह इसका हृदय केवल भीम[9] साहससे ही हरा जा सकता है। वर्षाऋतुकी तरह क्षण-भंगुर ज्योतिकी[10] उत्पन्न करनेवाली है। पिशाचिनीकी तरह अनेक पुरुषोंकी उन्नति[11] दिखाती है। निर्बल मनुष्योंको उन्मत्त कर देती है। सरस्वती जिन पर कृपा करती है उनका मानो ईर्ष्यासे आलिंगन नहीं करती। गुणवान्का मानो अपवित्र समझ कर स्पर्श नहीं करती। उदारका मानो अमंगल गिन कर बहुत सन्मान नहीं करती। सुजन-को मानो कुलक्षण समझ कर नहीं देखती। कुलीनका सर्पके समान उल्लंघन करती है। शूरको कंटकके समान छोड़ देती है। दाताको दुःस्वप्नके समान

१—अनेक प्रकारके रूप।

२—जिसका कंद, नाल और कलियाँ बढ़ गई हैं, जिसने मूलधन, दण्ड (उपाय भेद) खजाना और देशकी वृद्धि की है।

३—धूर्त, नीच मनुष्य।

४—वसु नामके आठ पुत्र, द्रव्य।

५—तरंगोंसे चपल, तरंगोंके समान चपल।

६—सूर्य एकसे दूसरी राशि पर जाता है लक्ष्मी एकसे दूसरेके पास जाती है।

७—अन्धकार, तमोगुण।

८—भीमकी स्त्री—घटोत्कचकी माता।

९—हिडम्बा भीमसेनके साहसको देख उस पर मोहित हो गई थी, अत्यन्त कठिन साहस।

१०—बिजली, सोना।

११—बड़ाई, अभ्युदय।

याद नहीं करती। विनीतको पातकी समझ उसके पास नहीं फटकती। मनस्वी को उन्मत्त समझ उसका उपहास करती है। यह इन्द्रजालके समान परस्पर विरोध दिखा कर जगत्में अपना चरित्र प्रकट करती है, सर्वदा उष्णता[1] करती हुई भी जाड्य[2] उत्पन्न करती है, उन्नति[3] करती हुई भी नीच[4] स्वभाव दरसाती है, जल-राशिमें उत्पन्न हुई भी तृष्णा[5] बढ़ाती है, ईश्वरता[6] देती हुई भी प्रकृतिको अशिव[7] कर देती है, बल[8] बढ़ाती हुई भी लघुता[9] देती है, अमृतकी सहोदरा होने पर भी परिणाममें कड़वी[10] है, विग्रहवती[11] होने पर भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं देती, पुरुषोत्तममें[12] अनुरक्त होने पर भी खल पुरुषोंसे प्रीति करती है और स्वच्छको[13] इस प्रकार मलीन कर देती है मानो रेणुमय[14] हो। जैसे जैसे यह चपला प्रकाश करती है वैसे वैसे ही इसमेंसे दीपककी लौके समान केवल कज्जल मलीन कर्म ही निकलते हैं, क्योंकि जैसे जल धारासे विष लताओंका पोषण होता है उसी प्रकार यह तृष्णाका पोषण करती है, जैसे व्याधका गीत हिरनोंका आकर्षण करता है उसी तरह यह इन्द्रियोंका आकर्षण करती है, जैसे धुएँसे चित्र मिट जाते हैं उसी प्रकार यह सच्चरित्रको

१—गरमी, धनकी गरमी।

२—शीतलता, मूर्खता।

३—ऊँचाई, उन्नत पद।

४—ठिंगना पन, बुरा स्वभाव।

५—पिपास, इच्छा।

६—शिवत्व, धनिकत्व।

७—अ+शिव (शिव नहीं), अमंगल, दुखहेतु।

८—शक्ति, सेना।

९—निर्बलता; चित्तकी लघुता।

१०—कटु रस वाली, अतमें दुखदायिनी

११—शरीर-युक्त, कलह युक्त।

१२—अच्छे लोग, विष्णु।

१३—साफ, अच्छे मनवाला।

१४—धूलि, रजोगुण।

बिगाड़ देती है, जैसे पलंग पर लेटके खूब नींद आती है उसी प्रकार यह मोहकी विलास-भूमि है, जैसे पिशाचिनियाँ टूटी फूटी अटारीमें रहती हैं उसी तरह यह धनमदका स्थान है, यह शास्त्र दृष्टिकी तिमिरोद्गति[1] है, सब अविनयोंके आगे उड़नेवाली पताका है, क्रोधावेग-रूपी मगरोंको उत्पन्न करनेवाली नदी है, विषय-रूपी मदकी पान भूमि है, भ्रूविकार-रूपी नाट्यकी संगीत शाला है, दोष रूपी सर्पोंके रहनेकी गुफा है, सत्पुरुषोंके उपदेशोंको दूर भगानेवाली बेंतकी छड़ी है, गुण-रूपी कलहंसोंकी अकाल वर्षाऋतु है, लोकापवाद रूपी विस्फोटकके फैलानेवाली भूमि है, कपट नाटककी प्रस्तावना है, काम-रूपी हाथीकी ध्वजा है साधुभावकी वध-शाला है और धर्म-रूपी चंद्र मंडलके लिये राहु जिह्वा है। ऐसा कोई पुरुष मैं नहीं देखता कि जिसे लक्ष्मीने बिना परिचयके ही गाढ आलिंगन कर बादमें धोखा न दिया हो। इसमें संदेह नहीं कि यह चित्रित होनेसे भी जाती रहती है, पुस्तकोंमें भी इन्द्रजाल करती है, उत्कीर्ण होने पर भी धोखा दे जाती है, सुनी गई भी चली जाती है और चिंतित होने पर भी वंचन करती है।

१३२—ऐसी यह दुराचारिणी किसी भाँति दैवयोगसे राजाओंका परिग्रह पर भी ले तो वे किसी कामके नहीं रहते और सब अविनयोंके स्थान हो जाते हैं, क्योंकि अभिषेकके समय ही, मानो मंगल कलशोंके जलसे, उनकी सब चतुरता धुल जाती है, होमादिके धुएँसे मानो उनके हृदय मलीन हो जाते हैं, पुरोहितकी कुश रूप बुहारीसे मानो उनकी क्षमा दूर फेंक दी जाती है, पगड़ीके बाँधनेसे मानो बुढ़ापेके आनेकी स्मृति ढक जाती है, छत्र-मंडलसे मानो परलोक-दर्शनकी रोक हो जाती है, चमरकी पवनसे मानो सत्यवादिता उड़ जाती है, बेंतकी छड़ियोंसे मानो सब गुण बाहर निकाल दिए जाते हैं, जय शब्दकी कल कलसे मानो हितके वचनोंका तिरस्कार हो जाता है और ध्वजाके वस्त्रके पल्लेसे ही मानो यश पोंछ डाला जाता है। मनस्वी लोग सब इसकी निंदा करते हैं। यह श्रमसे शिथिल हुई पक्षियोंकी गर्दनके समान चंचल है और जुगनूके प्रकाशके समान क्षण भर मनोहर मालूम होती है। यह जितने ही मनुष्योंको प्रतारित कर लेती है। ये अपने कामके पहले अपने जन्म ममतकी

1—नेत्र-रोग।

स्थितिको भूल जाते हैं; अनेक [1]दोषोंसे युक्त दुष्ट रुधिरके समान रागके[2] आवेश से पीड़ा पाते हैं, अनेक प्रकारके विषयोंके रसका आस्वादन करनेकी इच्छासे पाँच होने पर अनेक सहस्र सी मालूम होती इन्द्रियोंसे दुःख पाते हैं और प्रकृति चंचल होनेके कारण अवकाश मिलनेसे एक होने पर भी मानो शत-सहस्र हुए मनसे अकुला कर विह्वल हो जाते हैं। ग्रह मानो उनको घेर लेते हैं, भूत मानो उन पर प्रभाव डालते हैं, मन्त्रोंसे मानो उनमें आवेश हो जाता है, विकराल प्राणी मानो हठसे उनको पकड़ लेते हैं, पवन मानो उनका उपहास करती है, पिशाच मानो उनका ग्रास करते हैं, कामके बाणोंसे मानो मर्म स्थान छिद गए हों इस तरह वे हजारों मुख-विकार करते हैं, धनकी गरमी मानो व्याप गई हो इस तरह कुपथसे चलते हैं, अधर्मके कारण गति भग्न होनेसे वे, अपंगकी भाँति, अन्य पुरुषके सहारेसे चलते हैं, असत्य बोलनेसे मानो मुख रोग हुआ हो इस तरह वे बहुत कष्टसे बोलते हैं, सप्तपर्ण[3] वृक्षोंकी तरह कुसुमके रजोविकारसे पास बैठनेवालोंके माथेमें दर्द पैदा करते हैं, मृत्यु मानो पास आ गई हो इस तरह बंधुजनोंको भी नहीं पहचानते, नेत्रोंमें मानो रोग होनेसे तेजस्वी[4] पुरुषोंको नहीं देखते, काले साँपने काट लिया हो इस प्रकार महामन्त्रों[5]से प्रबुद्ध नहीं हो सकते, लाक्षामय हो इस भाँति सोष्ण[6]को देख नहीं सकते, दुष्ट हाथियोंकी तरह महा मानस्तंभसे[7] निश्चल किए जाने पर भी वे उपदेश ग्रहण नहीं करते, तृष्णारूपी विषकी मूर्च्छाके कारण वे सबको कनकमय देखते हैं, बाणों की तरह पानसे[8]

१—वात-पित्त-कफ के विकार, सदाचार का अतिक्रमण।

२—विषयाभिलाष।

३—सप्तपर्णके फूलोंके परागसे दर्द होने लगता है, धनी नेत्रोंके और रजोगुणके विकारसे पास बैठनेवालोंको अप्रसन्न करते हैं।

४—तेजवाले, उद्योगी।

५—मंत्र, सलाह।

६—गरम वस्तु, धनी पुरुष।

७—बड़े परिमाणका स्तंभ, अहङ्काररूपी स्तंभ।

[८—]सान, मदिरा पान।

तीक्ष्णता[1] बढ़ा कर पर[2]-प्रेरणासे औरोंका विनाश करते हैं, दंड-[3]विक्षेपसे दूर रहने पर बड़े बड़े कुलोंको फलकी तरह तोड़ डालते हैं और मनोहर आकारके होने पर भी अकाल कुसुमोंके समान लोगोंके विनाशका हेतु हो जाते हैं। श्मशानकी अग्निकी तरह उनकी विभूति[4] अत्यंत रौद्र होती है, नेत्र-रोगीके समान वे अदूरदर्शी होते हैं, कामी पुरुषोंके समान उनके भवन क्षुद्राधिष्ठित[5] होते हैं, उनकी बात सुन ली जाय तो भी मृत्युके समय बजाए गए बाजेकी भाँति भय पैदा करती है, मनमें उनका खयाल करनेसे भी उसी तरह उपद्रव होता है जैसे महापातकके विचारसे, प्रति दिन बढ़ते पापसे मानो वे फूल जाते हैं और ऐसी दशा में सैकड़ों व्यसनोंमें मगन हो जानेसे, वल्मीकके ऊपरके तृणके अग्रभाग पर पड़ी हुई पानीकी बूँदोंके समान, उनको अपनी पतित[6] आत्माका कुछ अनुसंधान नहीं रहता।

१३३—केवल स्वार्थ साधन रत, धन रूपी मांसका ग्रास करनेको उद्यत, सभा-मंडप-रूप कमलिनीमें बक रूप और ठगनेमें कुशल कितने ही धूर्त राजाओंको इस प्रकार समझाया करते हैं कि जुआ खेलना विनोद है, परस्त्री-गमन चतुरता है, आखेट व्यायाम है, मद्य-पान विलास है, प्रमत्तता शौर्य है, स्वभार्याका त्याग अव्यसनिता है, गुरु वचनका अनादर स्वाधीनता है, सेवक-जनोंको अपराध करने पर दंड न देना सुखपूर्वक सेवा है, नाचना, गाना, बजाना और वेश्याओंमें आसक्त रहना रसिकता है, बड़े बड़े अपराधों पर ध्यान न देना महानुभावता है, अपमान सहन करना क्षमा है, स्वतंत्र आचरण प्रभुत्व है, देवताओंको तुच्छ गिनना महातेजस्विता है, बन्दीजनोंसे की गई प्रशंसा यश है, चंचलता उत्साह है और भले बुरेका भेद न जानना निष्पक्षपात है। इस भाँति धूर्त [illegible] ओंको [illegible] गुण बताते हैं परन्तु मन ही मन हँसते

१—निष्ठुरता, क्रूरता।
२—शत्रु, [illegible]।
३—जल्दी [illegible]।
४—सम्पत्ति, ऐश्वर्य।
५—[illegible] जीवोंसे युक्त, [illegible]।
६—गिरी हुई [illegible]।

हैं और, मनुष्योंके अयोग्य खुशामद करके, राजाओंको ठगते हैं। धन मदसे राजाओंके चित्त मत्त हो जाते हैं और वे, विवेक न होनेसे, यह सब यथार्थ मान कर मिथ्या अभिमान करते हैं, मनुष्य होने पर भी अपनेको देवांशसे उत्पन्न, सदैवत, और अलौकिक मानते हैं तथा दिव्य पुरुषोंके योग्य काम करके अपना माहात्म्य दिखाते हैं, जिससे सब लोग उनका उपहास करते हैं और सेवक जन उनकी विडम्बना करें तो उसका भी वे अभिनंदन करते हैं। मनमें देवताओंकी प्रेरणाके मिथ्या विचारसे ठगाए जानेके कारण असत्य कल्पनामें बुद्धि-हीन हुए वे, मानो उनके दो हाथोंके भीतर दो हाथ और घुस गए हों ऐसा समझ, अपनेको विष्णुके समान मानते हैं। अपने ललाटमें त्वचासे ढका मानो तीसरा नेत्र और हो ऐसी शंका करके शिवके समान समझते हैं। दर्शन देना भी बड़ा अनुग्रह समझते हैं, दृष्टिपातको भी उपकार गिनते हैं, बातचीतको भी पुरस्कार जानते हैं, आज्ञाको भी वरदान विचारते हैं, स्पर्शको भी पवित्र गिनते हैं। मिथ्या माहात्म्यके गर्वसे भरे हुए वे देवताओंको प्रणाम नहीं करते, द्विजातियोंका आदर नहीं करते, मान्योंका सम्मान नहीं करते, पूजनीयकी पूजा नहीं करते, जो नमस्कारके योग्य हैं उनको नमस्कार नहीं करते, गुरुओं को अभ्युत्थान नहीं देते, विद्वानोंको विषय भोगका सुख छोड़ वृथा धर्ममें परिश्रम करनेवाला समझ उनका उपहास करते हैं, बड़े बूढ़ोंके उपदेशको बुढ़ापेकी विकलताके प्रलापके समान देखते हैं, मन्त्रीकी सलाहसे अपनी बुद्धिकी अवज्ञा समझ उनसे द्वेष करते हैं, हितवादी पर कोप करते हैं। जो दिन रात हाथ जोड़, अन्य सब काम छोड़, निरन्तर, देवताओंकी भाँति, उनकी स्तुति करता है अथवा उनका माहात्म्य प्रसिद्ध करता है, उसका ही वे सर्वथा अभिनन्दन करते हैं, उसके साथ ही बातचीत करते हैं, उसको ही पास रखते हैं, उसका ही सवर्धन करते हैं, उसके साथ ही सुखसे रहते हैं, उसको ही दान देते हैं, उससे ही मित्रता करते हैं, उसका ही वचन सुनते हैं, उसको ही खूब धन देते हैं, उसका ही बहुत मान करते हैं और उसको विश्वास-पात्र बना लेते हैं। राजा लोग प्राय अति दुष्ट उपदेश पूर्ण, क्रूर, चाणक्य शास्त्रको ही प्रमाण मानते हैं, मारण प्रयोगसे क्रूर हुई प्रकृतिवाले [illegible] अपना गुरु गिनते हैं, पर-पुरुषोंको ठगनेमें तत्पर मन्त्री उनके

सलाहकार होते हैं, हजारों राजाओंसे भोग कर छोड़ दी गई लक्ष्मीमें वे आसक्त रहते हैं, मारणादि प्रयोगके शास्त्रका अत्यन्त अभ्यास करते हैं और स्वाभाविक प्रेमके कारण हृदयसे अनुराग करनेवाले भाइयोंकी जड़ काटते हैं। उनको योग्य क्या है?

१३४—इसलिए राजकुमार, ऐसी हजारों अति कुटिल और कष्टप्रद चेष्टाओंसे दारुण राज्यशासनके व्यवहारमें और ऐसे महा मोहकारी यौवनमें तुम ऐसा प्रयत्न करो कि जिसमें मनुष्य तुम्हारी हँसी न करें, साधु निन्दा न करें, गुरु लानत न दें, मित्र उलाहना न दें और विद्वान् शोक न करें। कामीजन तुम्हारी बुराई न करें, कुशल तुम्हारा वञ्चन न करें, लम्पट तुमसे धन न ठगें, सेवक तुम्हारे पीछे न पड़ें, धूर्त धोखा न दें, स्त्रियाँ ललचावें नहीं, लक्ष्मी विडम्बना न करे, मद नचावे नहीं, काम उन्मत्त न करे, विषय बुरे मार्गमें न ले जायँ, अनुराग विकार न करे और सुख अपने अधीन न कर ले। तुम स्वभावसे अत्यन्त धैर्यवान् हो और पिताने बड़े बड़े यत्न करके तुमको सब संस्कार कराए हैं। केवल चञ्चल हृदयवाले मूर्खोंको ही धनसे मद हो जाता है, परन्तु तुम्हारे गुणोंसे सन्तुष्ट होकर ही मैंने इतना कहा है और यह मैं फिर बार बार कहता हूँ कि मनुष्य चाहे जैसा विद्वान्, सावधान, धैर्यवान्, कुलीन, धीर और उद्योगी हो उसे भी यह दुराचारिणी लक्ष्मी खल बना देती है। पितासे किए गए माङ्गलिक यौवराज्याभिषेकका तुम सब कल्याणोंके साथ सर्वदा सुख भोगना। अपने पूर्वजोंसे धारण किए गए, कुलक्रमागत, राज्य-भारको वहन करो। शत्रुओंका सिर नीचा करो, बन्धुवर्गकी उन्नति करो, अभिषेक हो जानेके अनन्तर दिग्विजयका आरम्भ कर, सर्वत्र भ्रमण कर, सप्तद्वीपरूपी भूषणवाली, पिताकी जीती हुई पृथ्वी फिर जीतो। यह समय तुम्हारे प्रताप दिखानेका है। जिस राजाका प्रताप स्थिर हो जाता है वह त्रैलोक्यदर्शीकी तरह सिद्धादेश होता है।

हुआ हो इस प्रकार हृदयमें हर्षित होकर वहाँ कुछ देर ठहर अपने महलमें आ गया।

१३६—फिर कुछ दिन बीत जाने पर राजाने स्वयं ही मंगल-कलश उठा कर, एक अच्छे दिन, पुरोहितने राज्याभिषेककी सब मंगल सामग्री तैयार कर दी तब, शुकनास और अनेक सहस्र राजाओंके साथ, सब तीर्थोंसे, सब नदियोंसे और सब समुद्रोंसे लाए हुए—सब ओषधियोंसे, सब फलोंसे, सब मट्टियोंसे और सब रत्नोंसे परिपूर्ण—आनंदाश्रु मिश्रित, मंत्रोंसे पवित्र हुए जलसे कुमारका अभिषेक किया। लता जैसे अपने मूल वृक्षको छोड़े बिना भी दूसरे वृक्षका आसरा ले लेती है उसी प्रकार राज्यलक्ष्मी भी तारापीडको बिना छोड़े ही अभिषेकके जलसे गीले शरीरवाले चन्द्रपीडके पास पहुँच गई। फिर सब अंतःपुर-सहित विलासवतीने प्रेमार्द्र-हृदय होकर स्वयं ही उसके देह पर पैरों तक, चाँदनीके समान सफेद, सुगंध-मय चंदनका लेप किया, ताजे खिले हुए फूलोंका मुकुट पहनाया, शरीर पर कहीं कहीं गोरोचन लगाया, दूर्वा-प्रवालके कर्णपूर पहनाये, चौडी किनारीके—चन्द्रमाके समान सफेद—दो नए वस्त्र पहनाये। पुरोहितने मंगल-सूत्र बाँध कर उसके हाथको अलंकृत किया। नवीन राज्यलक्ष्मी-रूपी कमलिनीके मृणालके समान और अभिषेक देखनेको आए सप्त ऋषियोंके मंडलके समान हार उसने छाती पर पहना। सफेद फूलोंकी गुँथी हुई, जाँघ तक लटकती और चंद्रमाकी किरणोंके समान मनोहर—जनेऊकी तरह पहिनी गई—मालाओंसे शरीर निरंतर व्याप्त हो जाने और वेश श्वेत होनेके कारण वह फैली हुई सटावाले नर-सिंहके समान, झरते हुए नदियोंके प्रवाहवाले कैलासके समान, मंदाकिनीके मृणाल जालसे जटिल हुए ऐरावतके समान और उछलती फेन-रेखासे आकुल हुए क्षीरसमुद्रके समान शोभायमान हुआ। फिर उसका पिता उस क्षणके योग्य बेंतकी छड़ी लेकर स्वयं आगेसे लोगोंको हटाने लगा। इस भाँति सभा-मंडपमें आकर, मेरु शिखर पर चन्द्रमाके समान, चन्द्रापीड काञ्चन मय सिंहासन पर बैठा।

१३७—सिंहासन पर बैठ कर उसने सब राजा लोगोंका यथायोग्य सम्मान । फिर थोड़ी देर बाद दिग्विजयके लिए प्रस्थान करनेके समयका सूचक,

प्रलयकालकी मेघघटाके घोषके समान घर घर शब्द करता, सुवर्णके डंडोंसे बजाया गया प्रस्थान दुंदुभी इस प्रकार गर्जना करने लगा जैसे मदराचलके आघातसे समुद्र, युगान्तमें महाभूतोंके आपसमें टकरानेसे भूतल, विद्युद्दंडके गिरनेसे प्रलयमेघ और महावराहकी नासिकाके प्रहारसे पाताल कुक्षि गंभीर गर्जना करती हो। उसकी ध्वनिसे सब भुवनान्तर मानो भर गए, स्फीत हो गए, पृथक् हो गए, विस्तार पा गए, ढक गए, घिर गए, बहरे हो गए और दिशाओंके आपसके सन्धिबन्ध मानों टूट गए। उसके स्वरको पातालमें, भयसे सहस्र फन निकाल, उन्हें औंधा सीधा फेर और ऊँचा करके, शेषनाग मानो आलिंगन करता हो, बारम्बार सामने दाँतको ऊपर उठा कर दिग्गज मानो दिशाओंमें बुलाते हों, डरसे मंडलाकार भ्रमण करते सूर्य-रथके घोड़े मानो आकाशमें प्रदक्षिणा करते हों, महादेवके अपूर्व हासकी शंकासे हर्षपूर्वक हुंकार करता शिवका नांदिया कैलाशकी चोटी पर मानों आमंत्रण करता हो, गंभीर कंठसे गर्जना करके ऐरावत देवलोकमें मानो उसका सत्कार करता हो और ऐसे अश्रुतपूर्व नादसे रोषसे भर कर, सींग टेढ़े कर, यमके घरमें यममहिष मानो प्रणाम करता हो, ऐसा वह शब्द तीनों भुवनोंमें भर गया। लोकपाल उसे सुन कर भयभीत हो गए। उसे सुन कर सब लोग जय जय शब्द कहने लगे। इतनेमें सिंहासन परसे उठ कर चन्द्रापीड़के चलते ही शत्रुओंकी राजलक्ष्मी भी चलायमान हो गई और आसनसे झटपट उठ कर पीछे चलते, आपसमें टकरानेसे टूटे हारोंके धागोंसे गिरते मोतियोंको, दिग्विजयके लिए प्रस्थानके मंगल-के [illegible] लाजोंकी भाँति, [illegible] बिखेरते राजाओंके साथ—मकरन्द [illegible] गिराते कल्पवृक्षोंके साथ पारिजात, सूँडसे पानीकी बूँदें [illegible] दिग्गजोंके साथ ऐरावत [illegible] दिग्पालोंके साथ [illegible] [illegible] [illegible] के समान—वह [illegible] [illegible] ।

किया । मन्दराचलके भ्रमणसे हिलाए गए क्षीरसागरके आवर्तके समान सफेद, रावणके बाहुदंड पर स्थित कैलाशके[1] समान कान्तिमान्, मोतीकी झालरसे युक्त, सोनालवाले छत्रसे उसकी धूप रोकी गई। चलतेमें हौदे पर बैठे ही उसने देखा कि राजा लोग दरवाजेके पास खड़े होकर उसकी राह देख रहे हैं। परकोटेके कारण वे दीखते नहीं हैं, पर उनके किरण फैलाते मुकुटमणियोंके महावरकी कान्तिको चुरानेवाले, प्रभूत प्रभारूपी बाल सूर्यके प्रकाशसे दशों दिशाएँ—मानों राज्याभिषेकके पीछे फैले हुए प्रताप-की अग्निसे—अत्यंत लाल पीली हो गई हैं, यौवराज्याभिषेकमें उत्पन्न हुए अनुरागसे मानो भूतल लाल हो गया है, शीघ्र होनेवाले रिपु विनाशकी सूचना करते दिग्दाहसे मानो आकाश गुलाबी हो गया है और अभिमुख आई हुई भुवनलक्ष्मीके चरणोंकी महावरसे मानो दिन की नूर रक्त होगई है।

१३६—बाहर निकलते ही राजाओंके झुंड उसको प्रणाम करने लगे। वे तेजीसे हजारों गंधगजोंको चलाते थे, उनके छत्रमंडल एक दूसरेसे टकरानेसे जर्जरित हो गये थे, आदर-पूर्वक माथा नीचा करनेसे उनके मणि-मुकुटोंकी कतार शिथिल हो गई थी, रत्न-कर्णपूर टेढे झुक गये थे, कुंडल खिसक खिसक कर गालों पर आ गए थे, और उनके नाम सेनापति, आज्ञानुसार, बतलाता जाता था। गंधमादन नामक हाथी उसके पीछे पीछे चलता था। वह सिंदूर खूब लगानेसे लाल हो गया था, उसकी लटकती हुई झूलकी मोतियोंकी झालर भूतल पर दोलायमान हो रही थी, सफेद फूलोंकी मालाओंके जालसे उसका सिर विचित्र दीखता था जिससे वह सन्ध्या समयकी धूपसे युक्त टेढे बहते सफेद गंगा प्रवाहवाले और तारागणोंसे छाए शिखरवाले मेरुपर्वतके समान शोभायमान लगता था। इन्द्रायुध आगे आगे चल रहा था। उसके सोनेके

१—एक बार रावण ने कुबेर को जीत कर उसका पुष्पक विमान ले लिया और फिर वह कैलाश की तरफ रवाना हुआ जहाँ शिव पार्वती थे। वहाँ पहुँचने पर, शिवकी शक्ति से, उसके विमान की चाल बंद होगई। तब नंदी ने उससे चले जाने को कहा। रावणने क्रुद्ध होकर कैलाश को उठा लिया। पर शिवने, उसका घमंड तोड़ने के लिए अपने बाएँ चरणके अंगूठे से उसे [दबाया] जिससे रावण को कैलाश छोड़ना पड़ा।

गहनोंकी प्रभासे विचित्र अवयवों पर मानो कुंकुम-तिलक लगाए हों ऐसा मालूम होता था। इस प्रकार चन्द्रापीड धीरे धीरे पहले पूर्व दिशाकी ओर गया और हाथियोंके चलनेके कारण हिलते सफेद छत्रवाली सब सेना भी—असंख्य तरंगों पर पड़े हजारों चन्द्र प्रतिबिंबवाला मानो महा प्रलयकालका समुद्र जल हो इस प्रकार—सब महीतलको डुबाती और अद्भुत कल कल करती चलने लगी।

१४०—चन्द्रापीड़के चलते ही सब प्रस्थानोचित मांगलिक क्रिया हो चुकने पर, सफेद वस्त्र और सफेद फूलोंसे शोभित वैशम्पायन पीछे चलती बड़ी सेना और भूपसमुदाय सहित—सफेद छत्र-सहित दूसरा मानो युवराज हो इस प्रकार—शीघ्रतासे चलती हथिनी पर बैठ कर अपने महलसे उसके पास आ गया। आ कर, सूर्यके पास चन्द्रके समान, उसका आगेवर्ता हो गया। फिर—युवराज निकला—यह सुन कर इधर उधरसे दौड़ी हुई सेनाओंके भारसे उस समय पृथ्वी मानो चलायमान हुए कुलपर्वतोंसे पीड़ित समुद्रकी तरङ्गोंमें घुली हो इस तरह काँपने लगी। कितने ही राजा, सामने आ कर, राजपुत्रको प्रणाम करने लगे। उनके—किरण-जालसे चमकती कलगीवाले—मणि मुकुटोंके प्रकाशसे और खूब चमकते पत्र-भंग-युक्त बाजूबंदकी प्रभासे दशों दिशाएँ ऐसी मालूम होने लगीं मानो कहीं नीलकण्ठके परोंका चूर्ण बिखर रहा हो, कहीं उड़ते मयूरोंके हिलाते हुए चन्द्रकोंसे विचित्र हों, कहीं अकाल मेघकी बिजलीसे चमकने लगी हों, कहीं कल्पवृक्षके पल्लवोंसे, कहीं इन्द्र-धनुषोंसे और कहीं बालसूर्यके प्रकाशसे युक्त हों। राजाओंके छत्र, सफेद होने पर भी, विविध मणियोंसे [illegible] और चूड़ामणियोंसे फैलती हुई किरणोंसे ऐसे दीखने लगे मानो [illegible] हों। उस समय, महीतल मानो [illegible] हो, दिङ्मण्डल गज-मय

उठते—धूलके गुब्बारेसे, वज्रपातके समान कठोर और गम्भीर घोषवाली हाथियोंकी कठ गर्जनासे, रुधिर-कणकी वर्षाके समान हाथियोंके कुंभस्थलसे उड़ती सिंदूरकी रजसे, क्षुभित हुए समुद्र-जलकी तरंगोंके समान चञ्चल—चारों ओर फैलती हुई—तुरंग-पंक्तियोंसे सब दिशाओंमें व्याप्त हुए घोर अन्धकारके, दिन रात होती मदजल धारा रूपी वर्षाके और भुवनान्तरमें व्याप्त हुए कलकलके कारण मानो महा प्रलय-काल आया हो ऐसा दीखने लगा।

१४१—धवल ध्वजाओंके समूहने निरंतर आच्छादित हुई दशों दिशाएँ बड़ी भारी सेनाके कोलाहलसे मानो भयभीत होकर कहां चली गईं, मदमत्त गज घटाओंके हजारों आभरणोंसे व्याप्त हुआ आकाश, मानो, मलीन भूमिकी रज स्पर्श करनेकी शंकासे बहुत दूर सरक गया, घोड़ोंके खुरोंसे उड़ती रजसे मलीन होनेके मानो डरसे सूर्यकी किरणें आगेके हिस्सेको—मानो प्रबल प्रतीहारोंकी बेतकी छड़ियोंसे दूर की गई हों इस प्रकार—छोड़ गईं, छत्रोंसे ढँके हुए आतपवाला दिन, मानो, हाथियोंकी सूँड़ोंमेंसे निकलती पानीकी बूँदोंसे नष्ट हो जानेके भयसे भाग गया, सेनाके भारसे अत्यंत पीड़ित हुई और मदमत्त हाथियोंके सैकड़ों चरणोंसे ताडित हुई पृथ्वी, मानो, दूसरी प्रयाण-भेरीके समान, भयंकर नाद करने लगी, मद रिसाते हाथियोंके टखने तक आते,—अश्व-मुखमेंसे निकले श्वेत फेनसे बढे हुए—मदजलमें पद पद पर पैदल फिसलने लगे, और, हरतालकी गंधके समान बहुत तेज मद सुगंधके भर जानेसे, हाथीकी तरह, मनुष्यकी नाककी अन्य गंध ग्रहण करनेकी सब शक्ति जाती रही। यथाक्रम चली जाती सेनाके आगे दौड़ते जन समूहके कोलाहलसे, नगाड़ोंकी बहुत तेज और ऊँची आवाजसे, खुरोंके शब्दसे, मिले हुए घोड़ोंके हिनहिनाहटसे, बारम्बार होते कर्णतालके स्वरसे मिली हुई हाथियोंकी तेज और भारी गर्जनासे, गलेमें डाली हुई घुंघरियोंकी आवाजके साथ सुनाई देती—चलनेके कारण कभी कभी बजती—घंटालियोंकी टनटनसे, मांगलिक शंखकी ध्वनिसे बढ़ी हुई आवाजवाले प्रस्थान-दुंदुभीके नादसे और बारम्बार इधर-उधर बजते डमरूके स्वरसे लोगोंके कान सुन्न हो जाते थे और उनको मानो मूर्च्छा आ जाती थी।

१४२—धीरे धीरे सेनाके क्षोभसे उत्पन्न हुई धूल उड़ने लगी। वह

पृथ्वीके अनेक वर्ण होनेके कारण, कहीं बूढे मत्स्यकी छालाके समान धुँधली, कहीं ऊँटके बालके समान मटियाली, कहीं बूढे हरिणके रोमके समान मलीन, कहीं धुले हुए रेशमी वस्त्रके तागेके समान पाण्डुर, कहीं पके हुए मृणालकी डंडीके समान धवल, कहीं बूढे वानरके बालोंके समान कपिल और कहीं महादेवके बैलके जुगाली करनेमें पैदा हुए झागके समान श्वेत थी। गंगा-प्रवाहके समान हरि-चरणोंमेंसे¹ निकलती थी, कोपितकी भाँति क्षमाको² त्याग करती थी, परिहास करनेवालीकी भाँति नेत्रोंको बंद³ करती थी, तृषितकी भाँति हाथीकी सूँडमेंसे निकलती हुई पानीकी बूँदोंको⁴ पीती थी, पक्ष-समेतकी भाँति आकाशमें उड़ती थी, भौंरोंकी भाँति मद रेखाका चुंबन करती थी, सिंहके समान हाथियोंके कुंभस्थल पर पद⁵ धरती थी, विजयीके समान ध्वजाओंको ग्रहण करती थी, बुढ़ापेकी तरह माथा सफेद करती थी, पलकोंके आगे रह कर दृष्टिको मानो बंद करती थी, मकरंदके मधुकी बूँदोंसे चिपट कर मानो कर्णोत्पल खींचती थी, मद मत्त हाथियोंके हिलते कानोंसे ताड़ना किए जानेके मानो डरसे उनके कान और कनपटीके भीतर भर जाती थी, सम्मुख आई हुई, राजाओंके मुकुट मणियोंमें बनी हुई मछलियोंसे मानो पानसी गई थी, घोड़ोंके मुँहसेसे गिर कर फैले फेन पल्लव रूपी फूलोंके गुच्छोंसे मानो पूजी गई थी, मत्त हाथियोंकी कुंभ भित्तियोंसे उड़ा सिंदूर मानो उसका अनुसरण करता था, चमर झलनेसे उड़ा हुआ पटवास मानो उसका आलिंगन करता था, और राजाओंके हजारों मुकुटोंसेसे गिरी फूलोंकी रज मानो उसे उल्लसित करती थी, अनुरागक राहुकी भाँति बिना कारण ही सूर्य मंडलको पीती थी, राजाओंके प्रयाणके समय सौंपे गए मंगल रूपी और होने पर गोरोचनके

१—गंगा-प्रवाह विष्णुके चरणोंमेंसे निकला है, धूल घोड़ोंके चरणोंमेंसे उड़ती थी।

चूरेके समान दीखती थी और आरीसे काटे गए चदनके वृक्षमेंसे नीचे गिरे बुरादेके समान शोभायमान लगती थी। वह अमण्ड सेनाकी भिचभिचसे बढती बढती, प्रलय कालके बादलोंके समान श्याम होकर, सब जगतका मानो सहार करती, धीरे धीरे फैलने लगी।

१४३—ऐसा धूलका समूह, जो धीरे धीरे बढकर बहुत बड़ा हो गया था, तीनों भुवनोमें भर गया। वह दिग्विजयका मगल-ध्वज था, शत्रु कुल रूपी कमलोंका नाश करनेके लिए तुषार था, राजलक्ष्मीके विलासका पटवास चूर्ण था, रिपुओंके छत्र-रूपी पुडरीकका तुहिन था, सेनाके भारसे पीडित हुई पृथ्वी की मूर्च्छाका अधकार था, चलती हुई सेना रूप मेघकालमें हुआ कदब-कुसुमोद्गम था, सूर्य किरण-रूपी कमल वनको नष्ट करनेवाला गज समूह था, आकाश और भूतलके बीचकी जगहको डुबानेवाला प्रलय-सागरका प्रवाह था, त्रिभुवन-लक्ष्मीके सिरको ढकनेवाला वस्त्र था, महावराहकी सटाके समान विचित्र था, और प्रलयाग्निकी धूम रेखाके समान स्थूल था। वह मानो पातालमेंसे उठता था, चरणोंमेंसे निकलता था, नेत्रोंमेंसे बाहर आता था, दिशाओंमेंसे आता था; आकाशमेंसे गिरता था, पवनमेंसे उडता था और सूर्यकी किरणोंमेंसे उत्पन्न होता था। चेतनाका न हरनेवाला निद्रागम था, सूर्यको कुछ न गिनने वाला अधकार था, बिना ग्रीष्म-ऋतुके बनाया गया तैखाना था, जिसमें तारे उदय नहीं हुए हों ऐसा कृष्णपक्षका प्रदोष था, वर्षासे रहित मेघ-काल था, फिरते हुए सर्पोंसे रहित पाताल था, और वह वामनके चरणोंकी तरह बढता था।

१४४—नवीन जल पड़नेसे जैसे प्रफुल्लित कुवलय वन दीखता है वैसे ही क्षीरसागरके फेनके समान सफेद पृथ्वीकी रजसे घिरा आकाश दीखने लगा। बहुतसी रजसे धूसर हुआ सूर्य-बिम्ब हाथीके कानमें पड़ने चमरके समान फीका पड़ गया। कपड़ेकी सफेद ध्वजाकी तरह मदाकिनी काली हो गई। राजाओंकी सेनाका बड़ा भार सहन न कर सकनेसे पृथ्वी, उस भारको उतारनेके लिये, इस रजके आकारमें मानो फिर अमर-लोकमें चढी। सूर्यके तापका नि शेष पान करनेसे भीतर मानो जलती हो ऐसी पृथ्वीकी रज सूर्य रथके ध्वज-पटको मटियाला करके समुद्रके जलमें पड़ी। एक क्षणमें ही पृथ्वी मानो
में, प्रलय-कालके समुद्र-जलमें, मृत्युके जठरमें, महाकालके मुखमें और

ब्रह्माण्डमें घुस गई। सब दिन धूलिमय हो गया। दिशाएँ ऐसी दीखने लगीं मानो उन पर कुछ लिख दिया गया हो। आकाशने मानो रेणु-रूप ही धारण कर लिया, और सब त्रिलोकीमें मानो एक ही महाभूत व्याप्त हो गया।

१४५—फिर, अपने मदकी गरमीसे सन्तप्त हुए हाथियोंकी सूँड़के छेदोंमेंसे निकल कर सब दिशाओंमें गिरते—क्षीरसागरके जलके समान—श्वेत कणोंकी वर्षासे, उनके कर्ण पल्लव टकरानेसे गल कर चूते मद जलकी बूँदोंकी वर्षासे और घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे टपकती लारकी बूँदोंसे रजके दब जाने पर दिशाएँ फिर दीखने लगीं, और समुद्र जलमेंसे मानो बाहर आई हो ऐसी उस असंख्य सेनाको देख, विस्मयसे सर्वत्र दृष्टि फेंक कर, वैशम्पायनने चन्द्रापीड़से कहा :—

१४६—युवराज, महाराजाधिराज तारापीड़ने क्या नहीं जीता है जिसे आप जीतेंगे? किन दिशाओंको वशमें नहीं किया जिन्हें आप वश करेंगे? कौनसे किले नहीं लिये जिन्हें आप लेंगे? कौन कौनसे द्वीप स्वाधीन नहीं किये जिन्हें आप स्वाधीन करेंगे? कौन कौनसे रत्न इकट्ठे नहीं किये जिन्हें आप इकट्ठा करेंगे? कौन कौनसे राजा उनके सामने नम्र नहीं हुए? किसने अपने माथे पर कमलकी नई कलीके समान कोमल सेवाञ्जलि नहीं बनाई? कनक-किरीटधारी ललाटसे किसने सभा मण्डपकी भूमिको चिकना नहीं किया? किसने चरणासन पर चूड़ामणि नहीं रगड़े? किसने छड़ियाँ नहीं पकड़ीं? किसने चमर नहीं डुलाये? किसने जय शब्द नहीं कहे? किसने जलधाराके समान निर्मल चरण नखकिरणोंकी राशिका निरीक्षणसे पान नहीं किया? चारों समुद्रोंके जलमें स्नान करनेके लिए हठ करती सेनासे मदमत्त हुए दशरथ, भगीरथ, भरत, दिलीप, अलर्क, और मान्धाताके समान, पृथ्वीके सब कुलाभिमानी, सोमरस पीनेवाले, क्षत्रिय राजा आपकी मंगलकारक चरणरजको, अभिषेक-

उसको उगलती हैं, आकाशमेंसे उसकी वर्षा होती है, और दिवस उसे पैदा करता है।

१४७—मुझे ऐसा मालूम होता है कि ऐसी असंख्य सेनाके भारसे दब कर पृथ्वी आज मानो महाभारतके संग्रामके क्षोभकी याद करती है। ध्वजाओंकी चोटियोंमें प्रतिबिम्बित हुआ यह सूर्य मानो कुतूहलसे उनको गिनता हो इस तरह पताकाओंके वनमें घूमता है। मदजल टपकाते हाथियोंके—इलायचीके समान सुगंधित और महावेगसे बहते—मद-जलमें सर्वत्र निरंतर डूबी हुई पृथिवी गिरे हुए भौरोंके कलकलसे ऐसा शब्द करती है मानो यमुना-जलकी तरंगोंसे भर गई हो। सेनाके भारसे उत्पन्न हुए क्षोभके भयके कारण आकाशमें चढी हुई नदियोंके समान, यह चन्द्र-धवल ध्वजाओंकी कतार सब दिशाओंको ढके लेती है। सर्वथा यह महा आश्चर्य है कि सेनाके भारसे सब कुल-पर्वत रूपी सन्धि बंध टूट कर पृथ्वीके हजारों टुकड़े नहीं होते अथवा सेनाके भारसे पीड़ित हुई पृथ्वीको धारण करनेमें अशक्त होकर शेषनागके फन-रूपी दीवारें नहीं हिलतीं।

१४८—उसके यों कह चुकते ही युवराज डेरेमें आ पहुँचे जहाँ अनेक तोरण लटकाए गए थे, घासके अहाते बना कर हजारों घर बनाए गए थे, स्वच्छ श्वेत वस्त्रके सैकड़ों तंबू शोभायमान थे। वहाँ उतर कर चन्द्रापीडने राजाके योग्य सब क्रियाएँ कीं। सब राजा और प्रधान इकट्ठे होकर अनेक कथाओंसे उसका मनोरंजन करने लगे। वह सब दिन पिताके नए वियोगके कारण उत्पन्न हुए शोकसे हृदयमें खिन्न होकर उसने कठिनतासे बिताया। दिनके बाद रात्रि भी—पास ही एक पलंग पर बैठे हुए—वैशम्पायनके साथ और—दूसरी ओर अपने पास ही जमीन पर बिछे हुए गलीचे पर सोती हुई—पत्रलेखाके साथ, कुछ कुछ देर पिता, माता और शुकनासकी बातचीत करते, उसने निद्रा न आनेसे प्राय जागनेमें ही बिताई।

१४९—फिर सवेरे उठ कर पहलेकी भाँति ही कहीं ठहरे बिना कूच करने लगा और मंजिल मंजिल पर बढती फौजसे वह धरतीको जर्जरित करता गया, पर्वतोंको कँपाता गया, नदियोंको छलकाता गया, तालाबोंको खाली करता गया, वनोंको चूरा करता गया, ऊँचे नीचे स्थानोंको एकसा करता गया, किलोंको दूर कर, गड्ढे भरता गया और टीलोंको नीचा करता गया। इस प्रकार

धीरे धीरे अपनी इच्छानुसार चलते चलते वह उन्नतोंको नीचा करता, नम्रको उन्नत करता, भयभीतोंका आश्वासन करता, शरणागतोंकी रक्षा करता, उद्धतों को निर्मूल करता, कण्टकोंका नाश करता, जगह जगह राजकुमारोंका अभिषेक करता, रत्नोंका उपार्जन करता, भेंट स्वीकार करता, महसूल लेता, देश व्यवस्था के हुक्म देता, अपने चिन्होंको स्थापित करता, स्मृति-चिन्ह बनाता, आज्ञा-पत्र लिखाता, ब्राह्मणोंका पूजन करता, मुनियोंको प्रणाम करता, आश्रमोंका पालन करता, लोगोंमें प्रेम उत्पन्न करता, पराक्रमका प्रकाश करता, प्रतापको फैलाता, यशको बढ़ाता, गुणोंका विस्तार करता, सच्चरित्रको प्रख्यात करता, तटके वनोंको नष्ट करता, सेनाकी रजसे सब समुद्रके जलको मलीन करता, सब पृथ्वीमें फिरा। पहले उसने पूर्व दिशाको जीता। फिर त्रिशङ्कुरूपी तिलकवाली दक्षिण दिशाको जीता। उसके पीछे पश्चिममें और सबसे पीछे सप्त ऋषियोंके तारोंसे चित्रित दीखती उत्तर दिशामें उसने दिग्विजय किया। तीन वर्षमें सब द्वीपान्तरोंमें भ्रमण करके वह चार समुद्ररूपी गोल खाईके प्रमाणवाली पृथ्वीमें फिरता रहा। इस रीतिसे क्रमानुसार सब भुवनतल जीत कर, भूमिकी प्रदक्षिणा कर, फिरते फिरते उसने एक समय कैलासके पास घूमते और देश लूटने रहते किरातोंका—पूर्व जलनिधिके पास स्थित—सुवर्णपुर नामका निवासस्थान जीत लिया। वहाँ सकल पृथ्वीमण्डलमें पर्यटन करनेसे थकी हुई अपनी सेनाको विश्राम देनेके लिए वह वहाँ कुछ दिन तक ठहरा।

दौड़ा था वह तो उसके देखते देखते ही सामनेके ऊँचे पहाड़की चोटी पर चढ गया।

१५१—ऊँचे चढ जाने पर चन्द्रापीड़ने अपनी दृष्टिको उनकी ओरसे फेरा। पर्वतकी चोटी पर जो पत्थर थे उनसे आगेका रास्ता रुका हुआ था इसलिए उसने घोड़ेको खड़ा कर दिया। उस समय घोड़ेके और अपने देहको थकावटसे निकले पसीनेसे तर देख कर, थोडी देर ठहर, आप ही हँस कर सोचने लगा—मैंने क्यों बालकके समान वृथा अपनी आत्माको श्रम दिया? इस किन्नरोंके जोड़ेको पकड़ने वा न पकडनेसे मुझे क्या मतलब था? पकड़ लेता तो क्या होता और न पकड़ा तो क्या हो गया? अहो! यह मैंने क्या मूर्खता की! कैसा अविचारका काम किया। कैसे निरर्थक कार्य्यका प्रयत्न किया! यह कैसा भारी लड़कपनका काम हुआ! जिसका नतीजा अच्छा होता वह वृथा हो गया। अवश्य करने योग्य काम निष्फल हो गया। जो मित्रोंका कार्य्य करना था वह भी नहीं हुआ। राज-धर्मका आरम्भ करके उसे फलीभूत नहीं किया। जिस बड़े भारी कार्य्यका आरम्भ हुआ था वह पूरा नहीं हुआ। विजय करनेका प्रयत्न सिद्ध नहीं हुआ। पिशाचादिसे ग्रस्तके समान क्यों मैं परिवार छोड़ कर इतनी दूर आया? और क्यों मैं इस किन्नर-मिथुनके पीछे वृथा दौड़ा? यों जब सोचता हूँ तब तो मेरी आत्मा ही मुझ पर—अन्य पुरुषके समान—हँसती है। न मालूम मेरे साथ आई हुई सेना यहाँसे कितनी दूर होगी? इन्द्रायुधका तो बड़ा वेग है और निमेष मात्रमें वह बहुत दूर चला जाता है। फिर आते आते मेरी दृष्टि इस किन्नर मिथुन पर ही जम रही थी, इससे—सैकड़ों वृक्षोंकी निरन्तर उलझी हुई डालियोंसे भरे और लगातार गिरते सूखे पत्तोंसे ढकी हुई पृथ्वी वाले—महा वनमें घोड़ेकी तेजीके कारण मैंने रास्ता भी नहीं देखा कि जिससें पीछे लौट जाऊँ। इस प्रदेशमें बड़े बड़े यत्नसे भटकने पर भी कोई मनुष्य नहीं दीखता जो मुझे सुवर्णपुरका रास्ता बतलावे। परन्तु मैंने बहुतसे लोगोंसे कहते सुना है कि सुवर्णपुर पृथ्वीके सब देशोंकी उत्तर दिशाकी अंतिम सीमा है, उसके पीछेके वनमें कोई मनुष्य नहीं रहता और उसके उस पार ही कैलास पर्वत है। अतः यह कैलास होगा। इसलिए अब मुझे ही, देख भाल कर, केवल दक्षिण दिशाकी ओर चलना चाहिए। अपने

किए दोषोंका फल सचमुच अपने आप ही भोगना पड़ता है। यह निश्चय करके बाएँ हाथसे लगाम खेंच कर उसने घोड़ेको मोड़ा।

१५२—घोड़ेको मोड़ कर फिर सोचने लगा कि झलकती प्रभासे दीप्तिमान् सूर्य्य अभी दिवसश्रीके—मेखला मणिके समान—मध्यभागको अलङ्कृत करता है। यह इन्द्रायुध बहुत थक गया है। इसलिए इसको थोड़ीसी घास खिला कर, किसी तालाबमें, पत्थरके झरनेमें, वा नदीके जलमें नहला, पानी पिला, इसकी थकावट दूर कर और स्वयं भी पानी पीकर, किसी वृक्षके नीचे छायामें थोड़ी देर आराम कर फिर चलूँगा। यों विचार कर पानीकी तलाशमें बारम्बार इधर उधर दृष्टि फेंकता वह आगे बढ़ा। इतनेमें सरोवरके जलमें नहा कर थोड़े ही समय पहले गए हुए बड़े बड़े पहाड़ी हाथियोंके चरणोंसे चिह्नित और कीचड़से गीला रास्ता उसे देख पड़ा। वह सूँड़से तोड़े गए मृणाल, मूल और दंड-सहित कमलोंसे चितकबरा हो रहा था, परन्तु गीले शैवल प्रवालसे उसका कुछ भाग श्याम हो गया था, तोड़ कर डाली हुई कमल, कुमुद, कुवलय और कल्हारके फूलोंकी कलियाँ बीच बीचमें बिखरी हुई थीं, तोड़ कर डाले हुए कमल कंद कीचड़-सहित पड़े थे, तोड़ कर डाले हुए फूलोंके गुच्छोंसे युक्त वनके पत्तोंसे आच्छादित था, काट कर गिराई हुई वन लताओंके फूलों पर बैठे भौंरे वहाँ विलास कर रहे थे और ताजे वृक्षोंकी परिमल देता—तमाल पल्लवके रसके समान श्याम—मद जल वहाँ सर्वत्र लगा हुआ था।

से गिरते शिलाजीतके रससे उसकी शिलाएँ चिकनी हो गई हैं। ताँबेके समान कठिन घोड़ोंकी टापोंसे टूटी हरतालके चूरेसे वह मलीन हो गई है। चूहोंके नखोंसे खोदे बिलोंके भीतर वहाँ स्वर्ण-रज बिछी है। उसकी रेतीमें चमर और कस्तूरी मृगोंके पैरोंके निशान हो रहे हैं। रकु और रल्लक जातिके मृगोंके गिरे रोमोंसे वह भरी हुई है। उसकी ऊँची नीची चट्टानों पर चकोर पक्षियोंके जोड़े बैठे हैं। तटकी गुफाओंमें वन मानुषके जोड़े रहते हैं। सुगन्धि-पाषाणकी महक आती है और बेंतकी बेलोंके प्रतानमें बाँस उगे हैं। उस तलहटीमें होकर, कुछ दूर जाकर, कैलाश पर्वतके पूर्व-उत्तरके कोनेमें, जलके भारसे मंद हुई मेघमालाके समान, और कृष्ण-पक्षकी रात्रियोंकी इकट्ठी हुई अंधकार-राशिके समान एक अति विस्तीर्ण वृक्षोंका मंडप देखा। सामनेसे आती, फूलोंके परागसे सुगंधित जलके संसर्गसे ठंडी, पानीके बूँदोंसे युक्त, चंदन रसके समान स्पर्शवाली, जल-तरंगोंकी पवन मानो उसका आलिंगन करती हो, और कमल-मधु पीकर मत्त हुआ कल हंसोंका श्रोत्र-हारी कोलाहल मानो उसको बुलाता हो इस प्रकार उसने उस मंडपमें प्रवेश किया।

१५४—घुसते ही मंडपके बीचमें उसने एक अत्यंत मनोहर—नेत्रोंको प्रसन्न करनेवाला—अच्छोद नामका सरोवर देखा। वह त्रिभुवन लक्ष्मीके मणि-दर्पणके समान, भूमि देवताके स्फटिक-मय तैखानेके समान, सब समुद्रोंके निर्गमन मार्गके समान, दिशाओंके झरनेके समान, गगन तलके अंशावतारके समान, गले हुए कैलाशके समान, विलीन हिमालयके समान, रसताको प्राप्त हुए चन्द्रमाके प्रकाशके समान, महादेवके पिघले हुए हास्यके समान, सरोवरके आकारमें त्रिभुवनके पुण्य समूहके समान, पानीके रूपमें दीखते वैडूर्य मणिके पर्वतके समान, पिघल कर एक जगह गिरे हुए शरद्के मेघ समूहके समान, और वरुणके दर्पणके समान था। स्वच्छताके कारण वह ऐसा लगता था मानो मुनियोंके मनका, सज्जनोंके सद्गुणोंका, हिरणोंकी नेत्र प्रभाका और मोतियोंकी किरणोंका ही बनाया हुआ हो। खूब भरा होने पर भी उसके भीतरकी सब चीजें स्पष्ट दिखलाई देती थीं जिससे वह खाली सा लगता था। हवासे उछलती हुई जल-तरंगोंकी बूँदोंसे उत्पन्न हुए, सब दिशाओंमेंसे इकट्ठे हुए, मानो, इन्द्र-धनुष उसकी रक्षा करते थे। विष्णुकी भाँति उसने भी उद-

तरह उसमें क्रौच स्त्रीका[1] विलाप सुनाई देता था, महाभारतकी तरह उसमें पाण्डु[2]-धार्तराष्ट्र कुलके पक्ष क्षोभ करते थे, अमृत-मथन वेलाके समान तट पर खड़े नीलकण्ठ[3] विष पीते थे, कृष्णके बाल-चरित्रकी तरह तट पर लगे कदंबके पेड़ पर चढ़कर हरि[4] जल-प्रपात-रूप क्रीड़ा करते थे, कामदेवकी ध्वजाके समान वहाँ मगरका वास था; दिव्य पुरुषके समान वह अनिमेष-लोचनसे[5] रमणीय लगता था, वनकी तरह वहाँ पुण्डरीक[6] विजृम्भित होते थे, सर्प-कुलकी तरह वह अनंत शतपत्र[7] पद्मसे शोभित था, कंसकी सेनाकी तरह मधुकर[8]-कुल कुवलयापीड़का गान करते थे, कद्रूके दोनों स्तनोंकी तरह वहाँ हजारों नाग[9] पय पीते थे, मलयाचलके समान वन चंदन-[10]शीतल था और असत् साधनके[11] समान वह अदृष्टान्त था।

१५६—इसके केवल देखनेसे ही चन्द्रापीडकी थकावट जाती रही और उसने मनमें विचार किया—अहो! मेरा किन्नर मिथुनका अनुसरण निष्फल होने पर भी इस तालाबके देखनेसे सफल हुआ। आज ही मेरे नेत्रोंको द्रष्टव्य देखनेका पूरा फल मिला। यह तो सचमुच मैंने रमणीयताका अंत देखा।

१—पर्वत, चक।

२—महाभारतमें दोनों पक्षोंमें युद्ध हुआ था, सरोवरमें सफेद हंस पक्षोंसे लड़ते थे।

३—महादेव विष पीते थे, मोर पानी पीते थे।

४—कृष्ण, बंदर।

५—एकाग्र दृष्टि, मत्स्य।

६—व्याघ्र घूमते थे; कमल खिलते थे।

७—अनंत, शतपत्र तथा पद्म (सर्पोंकी जातियाँ), सैकड़ों पँखड़ीवाले कमल।

८—कंसकृत कुवलयापीड़ हाथीकी प्रशंसा करते थे, नीले कमलोंमें भ्रमर गुंजार करते थे।

९—सर्प दूध पीते थे, हाथी पानी पीते थे।

१०—चंदनसे शीतल, चंदनके समान शीतल।

११—असत् हेतुका दृष्टान्त नहीं होता, सरोवरका अन्त नहीं दीखता था।

आनन्द-दायक वस्तुओंकी सीमा देखी। मनोहर वस्तुओंकी अंतिम हद देखी। प्रीति-जनक पदार्थोंकी परिसमाप्तिका साक्षात्कार किया और प्रदर्शनीयों की अवसान भूमि देखी। इस सरोवरका जल उत्पन्न करके अमृत उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माने, मानो, अपनी सृष्टिको पुनरुक्त किया है। यह भी अमृतकी भाँति सब इन्द्रियोंका आल्हादन करनेके लिये समर्थ है। अत्यन्त निर्मलताके कारण आँखोंको आनन्द देता है। शीतलताके कारण स्पर्श सुख देता है। कमलकी सुगन्धसे नासिकाको तृप्त करता है। हंसके स्वरसे कानोंको सन्तुष्ट करता है और सुस्वादु होनेसे जीभको अच्छा लगता है। यह निश्चय है कि इसीको देखनेकी तृष्णासे भगवान् महादेव कैलाश निवासके व्यसनको नहीं छोड़ते। नारायणको अब जल शयनकी उत्कट इच्छा नहीं रही, क्योंकि वे ऐसे अमृत रसके समान सुगन्धित जलको छोड़ कर लवणरससे कर्कश जलवाले समुद्रमें रहते हैं। यथार्थमें यह तालाब पहले नहीं होगा, क्योंकि प्रलयके समय [illegible] [illegible] भयभीत होकर पृथ्वी—अगस्त्यके पान करनेसे जिसके जलकी थाह मिल गई थी ऐसे—समुद्रमें उतर गई थी, नहीं तो जब यह [illegible] [illegible] और अनेक पातालोंके समान गम्भीर जलसे भरा होता तो एक [illegible] [illegible] महावराह भी उसका थाह न लगा सकते। [illegible] [illegible] लेकर महाप्रलयकालमें प्रलय मेघ [illegible] जलकी वर्षा [illegible] [illegible] सब भुवनोंको भर देते हैं और मेरा विचार है कि सृष्टिके पहले भी [illegible] जलसे [illegible] भुवन भी नहीं एकत्रित होकर इस सरोवरके [illegible] होंगे।

निकले मदके झरनेसे वह गीला हो गया था और वहाँ पैरोंके बड़े बड़े चिह्न बने थे जिनसे अनुमान होता था कि पार्वतीका सिंह उस मार्गसे पानी पीनेको उतरा था। वहाँ पहुँच कर चंद्रापीड घोड़े परसे उतर पड़ा और फिर इन्द्रायुध का जीन उतार ली। घोड़ा भूमि पर जरा लोट कर उठा इतनेमें ही कुछ हरी घास उसको खिला, तालाबमें लेजा कर मन भरके पानी पिला और न्हिला कर, चन्द्रापीड उसको बाहर लाया। फिर लगाम निकाल कर बाँधनेकी सुवर्ण की हलकी जंजीरसे निकटवर्ती वृक्षकी जड़के पासकी डालीसे उसके दोनों पैर बाँध कर, खंजरसे काटे हुए, सरोवरके किनारे पर उगे दूर्वांकुरके कुछ ग्रास उसके पास डाल कर फिर आप जलमें उतरा। उसमें अपने हाथ धोकर, चातककी तरह जल मय आहार कर, चक्रवाककी तरह मृणालके टुकड़ोंका स्वाद चख, चन्द्रके समान कराग्र[1]से कुमुदका स्पर्श कर, सर्पकी भाँति जल तरंगकी पवनका आनंद लेकर, कामदेवके बाणोंके प्रहारसे जर्जरित हुए मनुष्यकी तरह छाती पर कमल-पत्र-रूपी वस्त्र रख कर, जंगली हाथीके समान जल कणसे गीले पुष्कर[2]से शोभित कर-[3]सहित सरोवरमेंसे बाहर निकला। लता मंडपमें पड़ी शिला पर उसी क्षण तोड़े जानेके कारण शीतल और जल कणिका से भरे मृणाल-युक्त कमल पत्रोंका बिछौना बिछा कर, दुपट्टेको लपेट सिराने रख कर, चन्द्रापीड वहाँ लेटा।

१५८—इस भाँति मुहूर्त भर विश्राम करनेके बाद उसने सरोवरके उत्तर तीरकी ओर होते दिव्यगानकी आवाज सुनी। घास चरना छोड़ कर, कान खड़े करके उस तरफ मुँह फेर, ऊँची गरदन कर पहले इन्द्रायुधने उसे सुना था। वह गानोंसे मधुर मालूम होती थी और उसके साथ वीणाके तारोंकी झनकार भी सुनाई देती थी। उसे सुन कर—ऐसे निर्जन वनमें संगीत शब्द कहाँसे आया?—यह सोच उत्कंठित होकर कमलके पत्तोंकी शय्यासे उठ कर वह, जिस दिशामेंसे गीत ध्वनि आती थी, उसीकी ओर देखने लगा। परन्तु वह जगह बहुत दूर थी इसलिए बहुत यत्नसे आँख फेर फेर कर देखनेसे भी उसे कुछ

१—किरण, हाथ।

२—शुंडाग्र, कमल।

[3]—शुंड, हाथ।

दिखलाई नहीं दिया। केवल गीत शब्द ही बराबर सुनाई पड़ता था। गीत-ध्वनि कहाँसे आती है?—यह जाननेकी इच्छासे उसने जानेका इरादा किया। इसलिए इन्द्रायुध पर जीन रख और स्वयं बैठ कर—गीत पर प्रीतिके कारण आगे दौड़ते वन हिरनोंके बिना पूछे बताए हुए—मार्ग पर वह, ध्वनिहीकी खोजमें उस सरोवरके पश्चिम तीरकी वनलेखामें होकर आगे बढ़ा। वह वन लेखा सन-पत्र, बकुल, इलायची, लौंग और लवलीकी लताओं पर खिले हुए फूलोंकी सुगंधसे महक रही थी, भ्रमरोंके गुंजारसे गुंजरित हो गई थी और तमाल वृक्षोंसे काली पड़नेके कारण दिग्गजोंके मदकी रेखाके समान मालूम होती थी।

निकले मदके झरनेसे वह गीला हो गया था और वहाँ पैरोंके बड़े बड़े चिह्न बने थे जिनसे अनुमान होता था कि पार्वतीका सिंह उस मार्गसे पानी पीनेको उतरा था। वहाँ पहुँच कर चन्द्रापीड घोड़े परसे उतर पड़ा और फिर इन्द्रायुध का ज़ीन उतार ली। घोड़ा भूमि पर ज़रा लोट कर उठा इतनेमें ही कुछ हरी घास उसको खिला, तालाबमें लेजा कर मन भरके पानी पिला और नहला कर, चन्द्रापीड उसको बाहर लाया। फिर लगाम निकाल कर बाँधनेकी सुगमताके लिए [illegible] निकलनेवाले वृक्षकी जड़के पासकी डालीसे उसके दोनों पैर बाँध कर, खंजरसे काटे हुए, सरोवरके किनारे पर उगे दूर्वांकुरके कुछ ग्रास उसके पास डाल कर फिर आप जलमें उतरा। उसमें अपने हाथ धोकर, चातककी तरह जल मात्र आहार कर, चक्रवाककी तरह मृणालके टुकड़ोंका स्वाद [illegible], चन्द्रके समान कराग्र[1]से कुमुदका स्पर्श कर, सर्पकी भाँति जल तरंगकी [illegible] आनंद लेकर, कामदेवके बाणोंके प्रहारसे जर्जरित हुए मनुष्यकी तरह छाती पर कमल पत्र-रूपी वस्त्र रख कर, जंगली हाथीके समान [illegible] [illegible] गीले पुष्कर[2]से शोभित कर-उसहित सरोवरमेंसे बाहर निकला। [illegible] [illegible] पत्थर शिला पर उसी क्षण तोड़े जानेके कारण शीतल और जल [illegible] [illegible] मृणाल-युक्त कमल पत्रोंका बिछौना बिछा कर, दुपट्टेको लपेट सिरहाने [illegible] कर, चन्द्रापीड वहाँ लेटा।

१५८—इस भाँति मुहूर्त भर विश्राम करनेके बाद उसने सरोवरके उत्तर [illegible] की ओर होते दिव्यगानकी आवाज़ सुनी। घास चरना छोड़ कर, कान [illegible] करके उस तरफ मुँह फेर, ऊँची गरदन कर पहले इन्द्रायुधने उसे सुना था। [illegible] कानोंको मधुर मालूम होती थी और उसके साथ वीणाके तारोंकी झनकार [illegible] सुनाई देती थी। उसे सुन कर—ऐसे निर्जन वनमें संगीत शब्द [illegible] [illegible]—यह सोच उत्कण्ठित होकर कमलके पत्तोंकी शय्यासे उठ कर [illegible] [illegible] से गीत ध्वनि आती थी, उसीकी ओर देखने लगा। परन्तु वह [illegible] [illegible] थी इसलिए बहुत प्रयत्नसे आँख फेर फेर कर देखनेसे भी उसे [illegible]

१—किरण, हाथ।

२—शुण्डाग्र, कमल।

३—शुण्ड, हाथ।

खलाई नहीं दिया । केवल गीत शब्द ही बराबर सुनाई पड़ता था । गीत-ध्वनि कहाँसे आती है ?—यह जाननेकी इच्छासे उसने जानेका इरादा किया । इसलिए इन्द्रायुध पर जीन रख और स्वयं बैठ कर—गीत पर प्रीतिके कारण आगे दौड़ते वन हिरनोंके बिना पूछे बताए हुए—मार्ग पर वह, ध्वनिहीकी खोजमे उस सरोवरके पश्चिम तीरकी वन लेखामें होकर आगे बढ़ा । वह वन-लेखा सत-पत्र, बकुल, इलायची, लोंग और लवलीकी लताओं पर हिलते हुए फूलोंकी सुगंधसे महक रही थी, भ्रमरोंके गुंजारसे मुखरित हो गई थी और तमाल वृक्षोंसे काली पड़नेके कारण दिग्गजोंके मदकी रेखाके समान मालूम होती थी ।

१५६—क्रमसे सामने आती कैलासकी आल्हादक और पवित्र पवनोंसे संतुष्ट होकर चन्द्रापीड उस प्रदेशके पास आ पहुँचा । कैलासकी पवन स्वच्छ झरनेके जलकी बूँदोंसे शीतल थी, भोजपत्रकी छालको उसने जर्जरित कर दिया था, महादेवके बैलकी जुगालीसे पैदा हुए फेनको लाती थी, कार्तिकेयके मयूरकी शिखाका चुम्बन करती थी, पार्वतीके कर्ण-पल्लवको कँपाती थी, उत्तरकुरु देशोंकी कामनियोंके पहने हुए कर्ण कमलको हिलाती थी, कोष-फल वृक्षको हिलाती थी, सुरपुन्नागके फूलोंमेंसे पराग गिराती थी और हर-जटामें बँधनेसे घबराए वासुकी नागके पीनेसे बची हुई थी । वहाँ, उस सरोवर-के पश्चिमके तीर पर, चन्द्रापीड़ने चाँदनीके समान श्वेत प्रभासे सब प्रदेशको सफेद करती चन्द्रप्रभा नामकी —कैलास पर्वतके एक भागकी—तलहटी पर बना हुआ महादेवका एक शून्य सिद्ध-मंदिर देखा । उसके सब ओर मरकतके समान हरे वृक्ष लगे थे । वे मनोहर हारीत पक्षियोंकी गुञ्जारसे रमणीय लगते थे । उनकी पकी कलियाँ उड़ते हुए भृंगराज पक्षीके नखोंसे जर्जरित हो गई थीं । वहाँ आमोंकी कोमल कोंपलको उन्मत्त कोकिलें खा जाती थीं और खिली हुई आमकी कलियों पर मदमत्त भ्रमरोंके झुंड गुञ्जार करते थे । डरे हुए चकोर पक्षी मिर्चके अंकुर खाते थे । चाकके बहुतसे परागसे पीले पड़े चातक पीपलके फल खाते थे । फलके भारसे लचे पके अनारोंके पेड़ोंके घासलोंमें चिड़ियाने बच्चे दिये थे । खेलते कूदते बंदरोंके करप्रहारसे ताड़के वृक्ष हिलने लगते थे । आपसमें कलह होनेसे कोपित हुए कबूतरोंके पञ्जोंसे उनके फूल झड़ जाते थे ।

पुष्प परागके ढेरके समान विचित्र मैना उनकी चोटी पर बैठी थीं, सैकड़ों तोते अपने मुख और नखसे उनके फलोंके टुकड़े टुकड़े कर डालते थे, मेघ जल जान कर लोभसे आए हुए—पर पीछे धोखा खाए हुए—मुग्ध चातक वहाँ तमाल वृक्षोंकी घटामें कोलाहल करते थे। हाथीके बच्चोंके द्वारा पत्ते तोड़े जानेमें लालीके लता मंडप हिल जाते थे। नव यौवनसे मत्त हुए कबूतरके, पंख फड़फड़ा कर, बैठनेसे गुच्छे गिर पड़ते थे। पवनकी लहरसे काँपते कोमल केलेके पत्ते वहाँ पंखेका काम देते थे। फलोंके बहुत भारसे नारियलके वन झुक गये थे। उनके आस पास कोमल पत्तेवाले सुपारीके वृक्ष लगे थे। कोई रोकता नहीं था इस कारण पक्षी चोंचोंसे पिंडखजूरके पुञ्जको कुतर डालते थे। उनके भीतरसे मदमें शब्द करती मयूरीका मधुर स्वर निकलता था। उनमें अंगूरकी कलियां लग रही थीं। वहाँकी रेतीली भूमि पर इधर उधर कैलासकी नदियोंकी तरंगोंके झकोरे लगते थे। वन देवताओंकी हथेलीके समान—अलक्तकके रसकी बूँदोंमें गीली हुई हो ऐसी—अत्यन्त सुकुमार कोपल वृक्षों पर आ रही थी। अथिति पाकर हिरनियोंके झुंड उनकी जड़के आगे आनन्दसे बैठे थे। वहाँ कपूर और अगरु वृक्ष अधिक थे।

१६०—इन्द्र धनुषकी तरह उनका स्थान वन[१] था, कुमुदके समान सूर्यकी किरणोंको रास्ता न मिलनेसे उनके भीतरका हिस्सा ठंडा रहता था, राजा रामचन्द्रकी सेनाके समान उनके प्रान्त भागमें अञ्जन नील[२] नल थे, प्रासादके समान वहाँ पारावतोंका[३] वास था, महात्माओंकी भाँति उनके पास वेत्रासन[४] थे, रुद्रके समान उनके पाष्कर[५] पर नागलता[६] लिपट रही थी, समुद्रके किनारेके पुलिनोंके समान निरन्तर प्रवाल लताकुर[७] निकले हुए थे, अभिषेककालकी

१—मेघ, गहन।

२—हनुमान, नील, नल, अञ्जनके समान श्याम तृण।

३—कबूतर, बंदर।

४—बेंतके आसन, बेत्र, असन वृक्ष।

५—अनतका भाग, कमर।

६—पानकी बेल, सर्परूप लता।

७—विद्रुमलताके अंकुर, नए पत्ते और कोंपल।

तरह उनमें सर्वोषधि, पुष्प, फल और पल्लव थे, चित्र-सदनके समान वे अनेक वर्णके विचित्र परवाले सैकड़ों पत्रियोंसे शोभित थे, कौरवोंकी तरह भरद्वाज द्विज[1] उनकी सेवा करते थे, महासंग्रामकी तरह वहाँ पुन्नाग[2] शिलीमुखोंका आकर्षण करते थे, महागजकी तरह वहाँ लटकते बाल-पल्लव[3] धरतीको छूते थे, अप्रमत्त राजाओंके समान उनके आसपास बहुतसे गुल्म[4] थे, शस्त्र-सज्जितकी भाँति उनका शरीर भ्रमर कवचमे[5] ढका हुआ था, तोलनेके लिऐ तैयार हुए पुरुषकी भाँति वहाँ वानर[6] करांगुलीसे गुंजाका स्पर्श करते थे, राजाओंकी शैय्याकी तरह उनके तले[7] सिंहपादसे अंकित थे, पञ्चाग्नि साधन करनेवालोंकी तरह उनके आसपास ऊँची शिखावाले शिखी[8] शोभायमान थे, दीक्षितकी तरह वे कृष्णसारके[9] शृंगसे घिसे गए थे, वृद्ध गृह मुनियोंके समान वे जटालवाल[10] कमण्डलुधर थे और जादूगरकी तरह दृष्टि[11] को हर लेते थे ।

१६१—कुमार मंदिरके भीतर गया । पवनसे उड़ कर इधर उधरसे आते केतकीके परागसे शरीर धवल हो जानेके कारण वह ऐसा मालूम होता था

१—द्रोणाचार्य ब्राह्मण, भारद्वाज पक्षी ।

२—संग्राममें हाथियोंकी तरफ बाण फेंके जाते हैं, वहाँ पुन्नाग वृक्ष भ्रमरोंका आकर्षण करते थे ।

३—पूँछके बालोंकी नोक, नए नए पत्ते ।

४—सेना, झाड़ी ।

५—भ्रमरके समान कवच; भ्रमर-रूपी कवच ।

६—मनुष्य हाथसे चिरमिटी उठाते हैं, वहाँ बंदर उँगुलियोंसे चिरमिटी छूते थे ।

७—तला, पाये ।

८—अग्नि, मोर ।

९—दीक्षित हिरनके सींगसे शरीर खुजाते हैं, हिरन वृक्षोंसे सींग खुजाते हैं ।

१०—जटाधारी बालकोंके समूहसे युक्त, जिनकी जड़के पास जटाएँ हैं और थाँवले बने हुए हैं ।

११—देखनेकी शक्तिका हर लेना, दृष्टिका आकर्षण करना ।

मानो महादेवके दर्शनके लिए जबरदस्ती उसने अपने शरीर पर भस्म लगा ली हो और मंदिरमें प्रवेश करनेके पुण्यने मानो उसे घेर लिया हो। वहाँ उसने चराचरके गुरू, सम्पूर्ण त्रिभुवन-वंदित चरण, भगवान् चतुर्मुखी महादेवको देखा। उनका लिंग निर्मल मुक्ता-शिलाका बना था। वह चार स्तम्भवाले छोटेसे स्फटिकके मंडपमें स्थापित किया गया था और तुरन्त तोड़े हुए, अत्यंत गीले, पखड़ीकी कोरोंमें जलकी बूंदें टपकाते, मंदाकिनीके पानीके पुंडरीकोंसे उनकी पूजा की गई थी। वे पुंडरीक ऊपरसे चीरे गए चन्द्रबिंबके टुकड़ोंके समान, शिवके हास्यके अवयवोंके समान, शेषनागके फनके टुकड़ोंके समान, विष्णुके शंखके सहोदरोंके समान, और क्षीरसागरके हृदयके समान थे तथा उनको देख कर मोतीके मुकुटोंकी भ्रांति होती थी।

१६२—उनकी दक्षिण मूर्तिके सामने उसने ब्रह्मासन रच कर और पाशुपत व्रत धारण करके बैठी एक कन्या देखी। वह बहुत विस्तृत, सब दिशाओंको धुला देने, प्रलय कालमें उमड़े क्षीरसमुद्रके प्रवाहके समान श्वेत, बहुत समयसे इकट्ठे हुए तप-समूहके समान फैलते और वृक्षोंके बीच बीचमें, मानो गंगाजलकी तरह इकट्ठे होकर बहते, अपनी देहप्रभाके वितानसे, वन गिरि सहित उस प्रदेशको मानो हाथीदांतका बना हो ऐसा कर देती थी, कैलाश पर्वतको अन्य प्रकारसे ही धवल बना देती थी, देखनेवालेके मनको भी, नेत्रोंमें हो कर उसके भीतर प्रवेश करनेसे, मानो सफेद कर देती थी। शरीरके आसपास अत्यन्त धवल प्रकाश फैलनेसे वह मानो स्फटिक गृहमें बैठी हो, क्षीरसागरमें डूबी हो, निर्मल महीन वस्त्रसे आच्छादित हो, दर्पण-तलमें संक्रान्त हो, शरद्मेघोंसे ढंक गई हो, इस प्रकार उसके अवयव भली भाँति साफ नहीं दीखते थे। वह मानो कैलाश

· शून्यकी अंग उत्पन्न करनेके द्रव्यात्मक भावनोंका छा' वह मानो कैलाशा

हुई मानो ऐरावतके शरीरकी छवि हो, महादेवके दक्षिण मुखकी हास्य छवि मानो बाहर निकल कर बैठी हो, रुद्रके लगानेकी विभूतिने मानो शरीर धारण किया हो, महादेवके कंठके अंधकारके नाश करनेका यत्न करती, मानो, प्रत्यक्ष चाँदनी हो, देह धारण करके आई हुई मानो पार्वतीकी मनःशुद्धि हो, कार्तिकेयकी मानो मूर्तिमती कुमारावस्थाकी तपश्चर्या हो, महादेवके बैलके शरीरकी कांति मानो पृथक् स्थित हो, मंदिरके वृक्षोंकी पुष्प-समृद्धि मानो महादेवकी पूजा करने स्वयं आई हो; ब्रह्माकी तप-सिद्धि मानो भूतल पर उतरी हो, आदि युगके प्रजापतिकी कीर्ति, मानो, सप्त लोकोंमें भ्रमण करनेसे थक कर विश्राम करने आई हो, कलियुगमें धर्म-नाश होनेसे शोकातुर होकर मानो ऋक, यजु और साम वेदोंकी त्रयी वनवासके लिए आई हो, आनेवाले सतयुगके बीजकी कला मानो युवती रूपमें स्थित हो, मुनियोंकी मानो मूर्तिमती ध्यान-संपत्ति हो, देव गज-पंक्ति मानो मंदाकिनीके आनेके वेगसे गिरी हो, रावणके उठानेके क्षोभसे नीचे गिरी हुई मानो कैलासकी लक्ष्मी हो; श्वेत द्वीपकी लक्ष्मी मानो अन्य द्वीप देखनेके कुतूहलसे आई हो, काश-कुसुमोंकी विकास कान्ति मानो शरद् समयकी राह देखती हो; शेषनागके शरीरकी शोभा मानो पाताल छोड़ कर बाहर निकल आई हो, बलरामकी देह-प्रभा मानो मदिराका नशा चढ़नेसे गल कर गिरी हो, और शुक्लपक्षकी परम्परा मानो इकट्ठी हुई हो—ऐसी शोभायमान मालूम होती थी। धवल होनेके कारण हंसाने मानो अपनी धवलता उसे देदी थी; धर्मके हृदयसे मानो वह उत्पन्न हुई थी; शंखमेंसे मानो वह उत्कीर्ण थी, मुक्ता फलमेंसे मानो बनाई गई थी, मृणालोंसे मानो उसके अवयव रचे गये थे, हाथी दाँतसे मानो गढी गई थी, चन्द्रमाकी किरणोंकी कूँचीसे मानो वह साफ की गई थी; चूनेसे मनो पोती गई थी, अमृतके फेनसे मानो धवल की गई थी, पारेकी धारासे मानो धोई गई थी, चाँदीके रसकी मानो उस पर वार्निश की गई थी, चन्द्र मंडलमेंसे मानो वह काट कर निकाली गई थी, कुटुज, कुंद और सिंधुवार-के फूलोंकी कान्तिसे मानो वह चमकाई गई थी, और धवलताकी मानो वह अंतिम सीमा थी। कंधे तक लटकती, उदयाचल पर आये सूर्यबिंबमेंसे निकाली गई लाल किरणोंकी बनाई मानो बनाई गई, चमकती बिजलीके चंचल तेजके

समान लाल और थोडी देर पहले स्नान करनेसे कहीं कहीं लगी हुई पानीकी
बूँदोंके कारण मानो प्रणाम करनेमें महादेवके चरणोंकी भस्म उसमें लगी हो,
ऐसी जटा उसके मस्तकको शोभायमान करती थी। माथेमें जटा कलापके मग
गुथे हुए शिव-नाम युक्त महादेवके दोनो चरणोंके मणिमय चिह्न उसने धारण किए
थे, सूर्यरथके घोड़ोंके खुरोंसे खुदे हुए नक्षत्रोंके चूर्णके समान श्वेत भस्मसे
उसका ललाट अलकृत था, जिससे वह चोटीकी शिखामें जड़ी हुई चंद्रमाकी
कलावाली हिमालयकी मेखलाके समान दीखती थी, अतुल भक्तिसे अलकृत
हुई वह शिवलिंगको लक्ष्य करके—मानो दूसरी पुंडरीक-मालाके समान—
अपनी दृष्टिसे भूतनाथकी पूजा करती थी, निरंतर गान करनेसे हिलते
अधरपुटके कारण मुखमेंसे निकलती, मूर्तिमान् शुद्ध हृदयकी किरणोंके समान,
संगीत गुणोंके समान, स्वरके समान, और स्तुतिके वर्णोंके समान, अत्यंत स्वच्छ
दंत किरणोंसे [illegible], महादेवको, मानो, फिरसे स्नान कराती थी। प्रजापतिके मुख
मेंसे निकल कर आए साक्षात् वेदार्थोंके समान, गुथे हुए गायत्री-वर्णोंके
समान, विष्णुके नाभि-कमलमेंसे निकले बीजोंके समान, कर स्पर्शसे पवित्र होने
को [illegible] तारोंके रूपमें आए सप्तर्षियोंके समान, अति निर्मल आमलेके
बराबर बड़े बड़े मोतीके दानोंका हार उसने कण्ठमें पहन रक्खा था जिससे वह
[illegible] चंद्र-मंडलसे युक्त पूर्णिमाकी रात्रिके समान शोभायमान मालूम
होती थी। अधोमुख किए हुए महादेवके सिर कपालके समान मंडलाकार और
[illegible]-द्वारके पास रक्खे गए कलशोंके समान कांतिमान् स्तनयुगसे वह [illegible]
[illegible] गंगाके समान मालूम होती थी। पानीके [illegible]
मानो [illegible] हो, चामरके समान सुंदर आकृतिवाला—[illegible]
[illegible] लगी हुई थी ऐसे—कल्पवृक्षकी लताके वल्कलको ही उसने [illegible]
[illegible] ओढ रक्खा था। महादेवने प्रसन्न होकर दिए गए चूडामणिके [illegible]
[illegible] मानो [illegible] बना हो ऐसे मालूम होते [illegible] उसका [illegible]
[illegible] हुआ था। [illegible] लटकने और [illegible] भी [illegible]
[illegible]
[illegible] उसने [illegible] रक्खी थी। [illegible]
[illegible] और [illegible] के समान, यौवन जो उसकी सेवा करता था। [illegible]

लावण्यने भी, पुण्यवान्की भाँति, उसका परिग्रह किया था। सुन्दर लोचन-युक्त रूप भी, चपलता-रहित होकर, देवालयके मृगकी तरह, उसकी सेवा करता था। जिसकी उँगलियोंमें सूक्ष्म शंख जड़ी हुई अँगूठियाँ पहनी थी, त्रिपुण्ड लगानेसे बची हुई भस्मसे जो श्वेत हुआ था, जिसकी कलाई पर शंखाभरण बँधा हुआ था, और जो नख किरण फैलनेसे मानो हाथीदाँतके बने वीणा बजानेके मिजराबसे युक्त दीखता था ऐसे दक्षिण हाथसे वह, अपनी पुत्रीके समान, उत्सगमें रक्खी हाथीदाँतकी वीणा बजा रही थी, जिससे वह प्रत्यक्ष गंधर्व-विद्याके समान शोभायमान थी। मणि-मंडपके स्तंभोंमें पड़ी हुई, वीणा लेकर बैठी—उसके सदृश रूपवती—सहचरियोंके समान, अपनी प्रतिमाओंसे वह युक्त थी। स्नान करानेसे गीले शिवलिंगमें प्रति-बिंब पड़नेके कारण वह मानो अति प्रबल भक्तिसे पूजित शिवके हृदयमें प्रविष्ट हो गई थी। वह वीणाके साथ साथ महादेवकी स्तुतिका गान करती थी।

१६३—हार लताके समान कंठ[1] युक्त, ग्रह-पंक्तिके समान ध्रुव बद्ध[2], क्रुद्धा स्त्रीकी भाँति रक्त मुखवर्णवाली[3], मत्त वनिताके समान घूर्णित मंद[4] तारक-वाली, उन्मत्त युवतीके समान ताल[5] करती, और मीमांसाकी तरह असंख्य भावनासे[6] भरी गीत-स्तुतिसे वह महादेवको प्रसन्न करती थी। अत्यन्त मधुर गीतसे आकृष्ट हुए और कान निश्चल करके मानो ध्यान करते हिरन, शूकर, वानर, हाथी, शरभ, सिंह आदि वनचर मंडल बाँध कर गानके साथ साथ वीणाकी ध्वनि सुनते थे। देव-गंगाके समान वह आकाशमेंसे उतरी थी, दीक्षित जनोंकी वाणीके समान वह अप्राकृत[7] थी, शंकरकी बाण-शलाकाके समान वह

१—गला, ध्वनि-जनक शिरा।

२—ध्रुव तारा, टेक।

३—मुखका रंग लाल, अनेक राग-युक्त शब्दोंसे आरंभ होती।

४—पुतली कुछ कुछ फिरती, मंद्र, तारक स्वर बदलती।

५—ताली, ताल।

६—भाव, गान-क्रिया।

७—संस्कार सहित, दिव्य।

समान लाल और थोड़ी देर पहले स्नान करनेसे कहीं कहीं लगी हुई पानीकी बूँदोंके कारण मानो प्रणाम करतेमें महादेवके चरणोंकी भस्म उसमें लगी हो, ऐसी जटा उसके मस्तकको शोभायमान करती थी। माथेमें जटा कलापके संग गुथे हुए शिव-नाम युक्त महादेवके दोनों चरणोंके मणिमय चिह्न उसने धारण किए थे; सूर्य रथके घोड़ोंके खुरोंसे खुदे हुए नक्षत्रोंके चूर्णके समान श्वेत भस्मसे उसका ललाट अलंकृत था, जिससे वह चोटीकी शिलामें जड़ी हुई चंद्रमाकी कलावाली हिमालयकी मेखलाके समान दीखती थी, अतुल भक्तिसे अलंकृत हुई वह शिवलिंगको लक्ष्य करके—मानो दूसरी पुंडरीक-मालाके समान—अपनी दृष्टिसे भूतनाथकी पूजा करती थी, निरंतर गान करनेसे हिलते अधरपुटके कारण मुखमेंसे निकलती, मूर्तिमान् शुद्ध हृदयकी किरणोंके समान, संगीत-गुणोंके समान, स्वरके समान, और स्तुतिके वर्णोंके समान, अत्यंत स्वच्छ दंत-किरणोंसे वह, महादेवको, मानो, फिरसे स्नान कराती थी। प्रजापतिके मुख मेंसे निकल कर आए साक्षात् वेदार्थोंके समान, गुँथे हुए गायत्री-वर्णोंके समान, विष्णुके नाभि-कमलमेंसे निकले बीजोंके समान, कर स्पर्शसे पवित्र होने की इच्छासे तारोंके रूपमें आए सप्तर्षियोंके समान, अति निर्मल आमलेके बराबर बड़े बड़े मोतीके दानोंका हार उसने कण्ठमें पहन रक्खा था जिससे वह परिवेश-सहित चंद्र-मंडलसे युक्त पूर्णिमाकी रात्रिके समान शोभायमान मालूम होती थी। अधोमुख किए हुए महादेवके शिर कपालके समान मंडलाकार और मोक्ष-द्वारके पास रक्खे गए कलशोंके समान कांतिमान् स्तनयुगसे वह हंसोंके एक जोड़े-सहित श्वेत गंगाके समान मालूम होती थी। पार्वतीके सिंहकी सटाका ही मानो बनाया हो, चामरके समान सुंदर आकृतिवाला—जिसकी गाँठ स्तनोंके [illegible] में लगी हुई थी ऐसे—कल्पवृक्षकी लताके वल्कलको ही उसने दुपट्टेके [illegible] में ओढ रक्खा था। महादेवसे प्रसन्न होकर दिए गए चूडामणिके चन्द्रका [illegible] ही मानो मंडल बना हो ऐसे मालूम होते जनेऊसे उसका शरीर पवित्र हुआ था। पैर तक लटकते और स्वभावसे श्वेत होने पर भी ब्रह्मासनकी रचनामें ऊर्ध्व मुख करके रक्खे चरण-तलकी प्रभाके स्पर्शसे लालसे दीखते, रेशमी वस्त्रसे उसने कमर ढक रक्खी थी। अपने समय पर आनेवाले, निर्विकारी और विनीत शिष्यके समान, यौवन भी उसकी सेवा करता था। स्वच्छ

लावण्यने भी, पुण्यवान्की भाँति, उसका परिग्रह किया था। सुन्दर लोचन-युक्त रूप भी, चपलता-रहित होकर, देवालयके मृगकी तरह, उसकी सेवा करता था। जिसकी उँगलियोंमें सूक्ष्म शंख जड़ी हुई अँगूठियाँ पहनी थी, त्रिपुण्ड लगानेसे बची हुई भस्मसे जो श्वेत हुआ था, जिसकी कलाई पर शंखाभरण बँधा हुआ था, और जो नख किरण फैलनेसे मानो हाथीदाँतके बने वीणा बजानेके मिजराबसे युक्त दीखता था ऐसे दक्षिण हाथसे वह, अपनी पुत्रीके समान, उत्सगमें रक्खी हाथीदाँतकी वीणा बजा रही थी, जिससे वह प्रत्यक्ष गधर्व-विद्याके समान शोभायमान थी। मणि-मडपके स्तभोंमें पड़ी हुई, वीणा लेकर बैठीं—उसके सदृश रूपवती—सहचरियोंके समान, अपनी प्रतिमाओंसे वह युक्त थी। स्नान करानेसे गीले शिवलिंगमें प्रतिबिंब पड़नेके कारण वह मानो अति प्रबल भक्तिसे पूजित शिवके हृदयमें प्रविष्ट हो गई थी। वह वीणाके साथ साथ महादेवकी स्तुतिका गान करती थी।

१६३—हार लताके समान कंठ[1] युक्त, ग्रह-पक्तिके समान ध्रुव बद्ध[2], कुद्धा स्त्रीकी भाँति रक्त मुखवर्णवाली[3], मत्त वनिताके समान घूर्णित मंद[4] तारकवाली, उन्मत्त युवतीके समान ताल[5] करती, और मीमांसाकी तरह असख्य भावनासे[6] भरी गीत-स्तुतिसे वह महादेवको प्रसन्न करती थी। अत्यन्त मधुर गीतसे आकृष्ट हुए और कान निश्चल करके मानो ध्यान करते हिरन, शूकर, वानर, हाथी, शरभ, सिंह आदि वनचर मडल बाँध कर गानके साथ साथ वीणाकी ध्वनि सुनते थे। देव-गगाके समान वह आकाशमेंसे उतरी थी, दीक्षित जनोंकी वाणीके समान वह अप्राकृत[7] थी, शंकरकी बाण-शलाकाके समान वह

१—गला, ध्वनि-जनक शिरा।

२—ध्रुव तारा, टेक।

३—मुखका रग लाल, अनेक राग-युक्त शब्दोंसे आरंभ होती।

४—पुतली कुछ कुछ फिरती, मद्र, तारक स्वर बदलती।

५—ताली, ताल।

६—भाव, गान-क्रिया।

७—सस्कार सहित, दिव्य।

तेजोमय[1] थी, अमृत पीनेवालीकी भाँति वह तृष्णा रहित[2] थी, महादेवकी चन्द्र-कलाके समान उसमें राग[3] नहीं था; अमथित समुद्रकी जल सपत्तिके समान वह अन्तः प्रसन्न[4] थी, समास-हीन पद-वृत्तिके समान[5] वह द्वद्व रहित थी, बौद्धोंके शास्त्रके समान वह निरालंबन[6] थी, जानकीकी भाँति उसने ज्योतिमें[7] प्रवेश किया था, जुआ खेलनेमें चतुर स्त्रीकी भाँति उसने अक्षहृदय[8] वशमें कर लिया था; पृथ्वीके समान उसका शरीर जल भृत[9] था; जाड़ेके दिनोंकी प्रभात-लक्ष्मीकी तरह उसने सूर्य-तापका[10] ग्रहण किया था; आर्याके समान उसकी मात्रा यति[11] गणके योग्य थी, चित्रितकी भाँति वह अचलावस्थित[12] थी, किरण-मयकी भाँति वह शरीरकी कान्तिसे भूतलको रंग देती थी; वह ममत्व, अहङ्कार और मत्सर-रहित थी; उसका आकार अलौकिक था और दिव्य स्वरूपके कारण वयका अनुमान नहीं हो सकता था तो भी वह मानो अठारह वर्षकी दीखती थी

१६४—फिर कुमारने उतर कर, एक वृक्षकी डालीसे घोड़ेको बाँध, भगवान् महादेवके पास जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और दिव्य युवतीको

१—अग्निमय, कान्तिमय।

२—पिलास, सांसारिक इच्छा।

३—रग, काम आदिका विकार।

४—तलेमें रत्नोंसे युक्त, भीतर प्रसन्न।

५—द्वंद्व समास-रहित, अकेली।

६—शून्य-वादके अनुसार निराश्रय, स्वतत्र।

७—अग्नि; परब्रह्म।

८—चौपड़के खेलका रहस्य; इन्द्रियाँ और हृदय।

९—जलसे भरा, वह जलसे निर्वाह करती थी।

१०—जाड़ेके दिनोंमें सुबह बरफके सबबसे धूप नहीं दीखती, उसने सूर्यातपका पान किया था।

११—आर्या छंदमें विश्राम और गण मात्राके अनुसार होते हैं, उसके वस्त्र यतियोंके योग्य थे।

१२—स्थिर रहना, पर्वत पर रहना।

टकटकी बाँध कर निश्चल दृष्टिसे वह फिर देखने लगा। उसकी रूप सपत्ति, काति और शातिसे विस्मित हो वह विचारने लगा—अहो! जगत्में प्राणियोंको कैसे कैसे अवसर बिना विचारे मिल जाते हैं। मृगयामें, अकस्मात्, किन्नर-मिथुनका व्यर्थ अनुसरण कर मैंने यह अत्यन्त मनोहर, मनुष्योंकी पहुँचसे बाहर, दिव्य जनोंके फिरने योग्य प्रदेश देखा। फिर यहाँ पानी ढूँढते ढूँढते सिद्ध पुरुष जिसके जलका उपयोग करते हैं ऐसा हृदयहारी सरोवर देखा। उसके तीर पर सोते सोते दिव्य गान सुना और उसका अनुसरण करनेसे यह मनुष्योंको दुर्लभ दर्शनवाली दिव्य कन्या देखी। इसकी दिव्यतामें मुझे जरा भी सशय नहीं है। आकृति ही इसकी अमानुषता प्रकट करती है। फिर गधर्व-गीत-ध्वनि भी मृत्युलोकमें कहाँसे आ सकती है? इसलिए यदि यह मेरे सामनेसे सहसा अंतर्ध्यान न हो जाय, कैलासके शिखर पर न चढ़ जाय अथवा गगनमें न उड़ जाय, तो मैं इसके पास आकर सब पूछ लूँगा कि तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? और क्यों तुमने युवावस्थामें व्रत ग्रहण किया है? यहाँ आश्चर्योंके लिए बहुत जगह है। इस प्रकार निश्चय कर वह उसी छोटे स्फटिक-मडपके भीतर एक स्तम्भके सहारेसे बैठ कर गान समाप्तिकी प्रतीक्षा करने लगा।

१६५—फिर गीतके अतमें वीणा बंद कर,—बंद हुए मधुकरोंके मधुर गुजारवाली कुमुदिनीके समान—वह कन्या उठकर, प्रदक्षिणा कर, महादेवको प्रणाम कर, पीछे फिर, स्वभावसे ही श्वेत और तपके प्रभावसे प्रगल्भ हुई दृष्टिसे मानो आश्वासन करती हो, पुण्योंसे मानो स्पर्श करती हो, तीर्थजलोंसे स्नान करती हो, तपन पावन करती हो, शुद्ध करती हो, वरदान देती हो और पवित्र करती हो, इस भाँति चंद्रापीड़से कहने लगी—अभ्यागत, मैं आपका स्वागत करती हूँ, महाभाग, आप इस भूमिमें कैसे आये? चलिए, उठिए, मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिए। उसके वचन सुनकर और केवल सभाषणसे ही अपनेको अनुगृहीत मान कर चंद्रापीड़ उठा और भक्ति-पूर्वक प्रणाम कर—भगवति, जो आपकी आज्ञा—यों विनीत भावसे प्रत्युत्तर दे, शिष्यकी भाँति, वह चली सो ही उसके पीछे पीछे चला। फिर जाते-जाते उसने विचारा—हर्षकी बात है कि यह मुझे देखकर अतर्ध्यान नहीं हुई। इसलिए अब कुतूहल-सहित प्रश्न

करनेकी आशा मेरे हृदयमें स्थिर हुई। ऐसे तपस्वियोंको दुर्लभ दिव्य रूपसे युक्त होने पर भी इसने जो अत्यंत सम्मान पूर्वक मेरा सत्कार किया इससे मेरा विचार है कि यदि मैं प्रार्थना करूँगा तो यह अपना सब वृत्तांत भी निःसंदेह कह देगी। इस तरह विचारते विचारते लगभग सौ कदम चलने पर ही उसने एक गुफा देखी।

१६६—उसके आगेके भागमें, दिनमें भी मानो रात्रि प्रकट करते, लगातार लगे हुए तमाल वृक्षोंने अंधकार कर रक्खा था, खिले हुए फूलोंसे लदी बेलोंकी कुंजोंमें मंद मंद गुंजार करते मद-मत्त मधुकरोंसे उसका पर्यन्त भाग मुखरित हो रहा था, सफेद चट्टानसे टक्कर खाकर उछलनेसे फेन-मय हुए, अत्यन्त दूर गिरते पानीके प्रस्रवणोंने और ऊँची उठी कोरवाले पत्थरोंकी नोकोंसे जर्जरित, बड़ा शब्द करते, टूक टूक हुई बरफके ठंडे कणोंकी वर्षासे ओस भर रही थी। दोनों ओर झरते हिमके हार और महादेवके हास्यके समान सफेद झरनोंसे उसके द्वार पर मानो चंचल चमर लटकाए हों ऐसा दिखलाई देता था। उसके भीतर बहुतसे मणिमय कमंडल रक्खे थे। एक जगह योगियोंके पहननेका वस्त्र लटका था। एक छींके पर नारियलकी छालके दो साफ जूते रक्खे थे। एक ओर, अंग पर लगी हुई भस्मसे धूसर हुआ, वल्कलका बिछौना बिछा था। टाँकीसे खोदे गए चंद्र-मंडलके समान एक शंखमय भिक्षा कपाल रक्खा था और भस्मसे भरी एक तुंबी उसके पास ही रक्खी थी। गुफाके दरवाजेके पास चंद्रापीड एक शिलातल पर बैठा। वह कन्या वल्कलकी शैय्याके सिराने वीणा रख कर, पत्तोंके दोनेमें झरनेमेंसे अर्घ जल ...। उसे आती देख कुमार कहने लगा—भगवति, बहुत कष्ट मत करो, ...ने बड़ा अनुग्रह किया, मानो, बहुत आदर रहने दो, सब पाप-क्षयकारी ...का केवल दर्शन ही, अघमर्षणकी तरह, पवित्र करनेके लिए काफी है, बस, ...िये। उसके बहुत आग्रह करने पर कुमारने सब अतिथि सत्कार विनय सहित सिर बहुत नीचा करके स्वीकार किया।

१६७—अतिथिका सत्कार करके, एक दूसरे शिलातल पर बैठ, थोड़ी देर चुप रह कर उस देवकन्याने जब राजकुमारसे उसका वृत्तांत क्रमसे पूछा तब उसने दिग्विजयसे आरम्भ कर, किन्नर-मिथुनका अनुसरण और वहाँ आगमन

तकका सब वृतांत उससे कहा। उसे सुन वह कन्या उठी और अपना भिक्षा-कपाल ले, आश्रमके वृक्षोंके नीचे घूमने लगी। वहाँ अल्प कालमें ही अपने आप गिरे फलोंसे उसका पात्र भर गया। लौट कर उसने चन्द्रापीड़से उन फलोंका आहार करनेके लिए कहा। उस समय कुमारने विचार किया—वास्तवमें तपसे कुछ भी असाध्य नहीं है। जब अचेतन वनस्पति भी सचेतनकी तरह इस भगवतीको फल भेट कर अपना अनुग्रह प्रकट करते है फिर इससे अधिक आश्चर्य क्या हो सकता है? यह तो मैंने एक अदृष्ट पूर्व विचित्र बात देखी। यों अत्यन्त विस्मित हो कर वह उठा और बाहर जाकर इन्द्रायुधको वहीं ले आया। उसका जीन उतार, जरा दूर बाँध कर, उसने झरनेके जलमें स्नान किया और अमृत-रसके समान मधुर फल भक्षण कर, बरफके समान ठंडा झरनेका पानी पीकर, आचमन कर—जब तक उस कन्याने भी जल फल मूलका आहार किया तब तक—वह एकान्तमें बैठा रहा।

१६८—इस प्रकार आहार कर जब वह कन्या संध्या कालके योग्य सब किया कर चुकी और एक शिलातल पर निश्चित बैठी तब धीरे धीरे उसके पास जा, थोड़ी दूर बैठ, थोड़ी देर पीछे चन्द्रापीड़ उससे विनय पूर्वक कहने लगा—भगवति, आपके प्रसादसे उत्तेजित हुए कुतूहलसे आकुल, मनुष्य-जाति-सुलभ लघुता, मेरी इच्छा न होने पर भी मुझे बलात्कारसे प्रश्न करनेकी प्रेरणा करती है क्योंकि चंचल प्रकृतिके पुरुषको स्वामीकी कृपाका लेश भी धृष्ट बना देता है। एक जगह थोड़ासा सहवास होनेसे भी परिचय हो जाता है और थोड़ासा सत्कार भी प्रेम उत्पन्न कर देता है। इसलिए जो अत्यन्त खेद न हो तो अपना वृत्तांत कह कर मुझे अनुगृहीत करिए। आपको देखा है तबसे ही मुझे इस बातका बड़ा कुतूहल है। भगवति, आपने जन्म लेकर देव, ऋषि गंधर्व, गुह्यक और अप्सराओंमेंसे किसके कुलको अनुगृहीत किया है? ऐसे कुसुम-सदृश सुकुमार नवयौवनमें आपने क्यों व्रत ग्रहण किया है? कहाँ यह वय? कहाँ यह आकृति? कहाँ यह अत्यन्त लावण्य? और कहाँ यह इन्द्रियोंका निग्रह? यह सब मुझे अद्भुतसा लगता है। क्यों आप अनेक सिद्ध-साध्यों भरे, सुरलोकमें सुलभ, दिव्याश्रम छोड़ कर इस निर्जन वनमें अकेली रहती हो

फिर यह क्या बात है कि प्रसिद्ध पंच महाभूतोंका बना आपका शरीर इतना गोरा है? ऐसा तो मैंने पहले न कहीं देखा, न सुना। इसलिए कृपा कर सब वृत्तात विदित कर मेरा कुतूहल दूर कीजिए। चन्द्रापीड़के वचन सुन कर वह कन्या, कुछ विचारमें मग्न हो, थोड़ी देर चुप रह कर, लम्बी साँस लेकर, आन्तरिक हृदय शुद्धिको लेकर मानो बाहर निकलते, इन्द्रियोंके प्रसादको मानो बरसाते, तप-रूपी रसके झरनेको मानो झराते, और लोचनोंकी धवलताको मानो पिघला कर गिराते, अति स्वच्छ, निर्मल गालों पर टपकते, टूटे हारके मोतियोंके समान शीघ्रतासे गिरते, लड़ीके समान निकलते, वल्कलसे ढँके हुए स्तन-शिखर पर जर्जरित होनेसे कण होकर बिखरते, बड़े बड़े आँसू टपका कर, आँख मींच, चुपचाप रोने लगी।

१६९—उसको रोते देख चन्द्रापीड़ उस समय चिन्ता करने लगा—अहो! विपत्तियोंका आक्रमण भी दुर्निवारणीय होता है, क्योंकि ऐसी दु:खके अयोग्य आकृतिको भी वे अपने वशमें कर लेती हैं। शरीर धारीको सताप-कारी दु:ख अवश्य होते हैं। सुख दु:खादि द्वंद्वकी प्रवृत्ति प्रबल है। इसके रोनेसे मेरे मनमें पहलेसे भी अधिक कुतूहल उत्पन्न हो गया है। ऐसी मूर्ति कुछ छोटे मोटे कारणोंसे शोकके अधीन नहीं हो सकती। जरासे वज्रके आघातसे पृथ्वी चलायमान नहीं होती। इस रीतिसे उसका कुतूहल बढ गया और अपनेको ही शोक-स्मरणका हेतु होनेसे अपराधी समझ, उठ कर, उसका मुँह धुलानेको झरनेमेंसे अंजली भर कर जल ले आया। उस कन्याकी आँखोंसे आँसू बराबर बह रहे थे तो भी राजकुमारके अनुरोधसे, वह भीतरसे जरा लाल हुए अपने नेत्रोंको धोकर, वल्कलके पल्लेसे अपना मुँह पोंछ कर, लंबे और गरम साँस ले, धीरे धीरे बोली—राजकुमार, मेरे समान अतिक्रूर हृदया, मंदभागिनी, पापिनी के वैराग्य ग्रहण करनेके अश्रवणीय वृत्तातके सुननेसे क्या लाभ है? यदि आपको बड़ा कुतूहल है तो कहती हूँ, सुनिए।

१७०—यह तो आप—कल्याणेच्छुक—ने प्राय: सुना ही होगा कि देवलोकमें अप्सरा नामकी कन्याएँ रहती हैं। उनके चौदह कुल हैं। उनमें एक कुल भगवान् ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुआ है, दूसरा वेदोंसे, तीसरा अग्निसे, चौथा पवनसे, पाँचवा मथे हुए अमृतसे, छठा जलसे, सातवाँ सूर्य किरणोंसे, आठवाँ

चन्द्र किरणोंसे, नवाँ भूमिसे, दसवाँ बिजलीसे, ग्यारहवाँ मृत्युसे, बारहवाँ कामदेवसे और शेष दो दक्ष-प्रजापतिकी बहुतसी कन्याओंमेंसे मुनि और अरिष्टा नामकी कन्याओंके गंधर्वोंके साथ समागमसे हुए हैं। इस रीतिसे चौदह कुल हुए। दक्षकन्याओंसे उत्पन्न हुए दोनों कुल गंधर्वोंके हुए। मुनिका, चित्रसेनादि पन्द्रह भाइयोंसे गुणोंमें बडा हुआ, चित्ररथ नामका सोलहवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। तीनों भुवनोंमें प्रख्यात पराक्रमवाले, सब देवताओंकी मुकुटमाला जिनके चरण-कमलोंका पूजन करती है ऐसे इन्द्रने उनको अपना मित्र बना लिया, जिससे उनका प्रभाव अधिक बढ गया और शैशवमें ही उन्होंने खड्गकी किरणोंसे श्याम हुई भुजासे उपार्जित करके सब गंधर्वोंका आधिपत्य प्राप्त किया। यहाँसे थोडी दूर भारतवर्षकी उत्तर दिशाके निकटवर्ती किंपुरुष देशमें हेमकूट नाम स्वर्ण-पर्वत पर वह रहते हैं। उनके भुज-युगसे परिपालित लाखों गंधर्व भी वहाँ रहते हैं। उन्होंने ही यह चित्ररथ नामका अत्यंत मनोहर कानन बनवाया है, अच्छोद नामका यह बडा सरोवर खुदवाया है और भगवान् महादेवको स्थापित किया है।

१५१—दूसरे गंधर्व कुलमें अरिष्टाके पुत्र—तुंबरू आदि छः पुत्रोंमें जेठ—हंस नामके जगद्विख्यात गंधर्व हुए। उन्हें गंधर्वराज चैत्ररथने अभिषिक्त करके शैशवमें ही राजा बनाया। असंख्य गंधर्व परिवारके साथ वह भी उसी पर्वत पर रहते हैं। चन्द्रकिरणोंमेंसे जो अप्सराओंका कुल उत्पन्न हुआ उसमें, किरणोंके साथ ही गले हुए चन्द्रकी सब कलाओंके पूर्ण लावण्यसे हो मानो बनाई गई हो ऐसी, त्रिभुवनके नेत्रोंको आनंद देनेवाली, दूसरी मानो गौरी हो ऐसी गौरी नामकी, चन्द्र किरणके समान ही श्वेत वर्णकी, कन्या उत्पन्न हुई। मन्दाकिनीको जैसे क्षीरसागरने, उसी तरह द्वितीय गंधर्व कुलके अधीश्वर हंसने गौरीको अपनी प्रिया पत्नी बनाया। भगवान् कामदेवसे जैसे रतिको और शरत् समयसे जैसे कमलिनीको, उसी तरह हंसके साथ संयोग होनेसे गौरीको भी, समानके साथ समागम होनेसे, बडा हर्ष हुआ और वह उनके सब रनवासकी स्वामिनी हो गई।

१५२—उन दोनों महात्माओंको केवल शोकातुर करनेके लिए ही मैं ऐसी लक्षण हीन, अनेक-महल दुःखपात्र पुत्री उत्पन्न हुई। अनपत्यताके कारण पिताने मेरे जन्म समय पुत्र-जन्मसे भी अधिक उत्सव मनाया। दस दिन होने

पर यथायोग्य संस्कार करके उन्होंने मेरा महाश्वेता यह यथार्थ नाम रक्खा। फिर मैं बाल्यावस्थामें वीणाके समान मधुर बोलती, एक गंधर्वकी गोदमेंसे दूसरेकी गोदमें जाती थी और स्नेह, शोक और दुःखका ज्ञान न होनेसे मनोहर अपनी बाल्यावस्थाको मैंने पिताके महलमें ही बिताया। पीछे यथाक्रम, वसंतमें जैसे चैत्रमास, चैत्रमासमें जैसे नवपल्लव, नवपल्लवमें जैसे कुसुम, कुसुममें जैसे मधुकर और मधुकरमें जैसे मद प्रवेश करता है उसी भाँति मेरे शरीरमें नव यौवनने प्रवेश किया।

१७३—एक समय, जब सब जीवलोकके हृदयको आनंददायक चैत्र मासके दिनोंमें नये कमल-वन खिल रहे थे, आमकी कोमल कलियोंका कलाप कामुकोंको उत्कंठित कर रहा था, मलयाचलकी ठंडी पवन चलनेसे कामदेवकी ध्वजा फहरा रही थी, मदमत्त कामिनियोंके मुखसे छिड़के गए मधुसे बकुल पुलकित हो रहे थे, मधुकर-कुल-रूपी कलंकसे चमेलीकी कलियाँ काली हो गई थीं, अशोक वृक्षोंको लात मारनेमें युवतियोंके मणिनूपुर हजारों भाँतिसे झन झनाहट कर रहे थे; खिलती कलियोंकी सुगंधसे एकत्रित हुए भ्रमरोंकी मधुर गुंजा से आम्रके वृक्ष मनोहर लग रहे थे, अविरल कुसुम-धूलि रूपी रेतके पुलिनसे धरातल धवल दिखलाई देता था, मधुमदसे मत्त हुए मधुकर लता रूप झूलों पर झूल रहे थे, पल्लवोंमें छाई हुई लवंगी लताओंमें घुसी मत्त कोकिल मधुकण उड़ा उड़ा कर उत्कट दुर्दिन कर रही थी, प्रोषित-पतिकाओंके प्राण लेनेसे हर्षित कामदेवके चढाए हुए धनुषकी टंकारके भयसे फटे प्रवासियोंके हृदयोंमेंसे बहते रुधिरसे सब मार्ग तर हो रहे थे लगातार गिरते कामदेवके शरोंके परोंकी सनसनाहटसे सब दिशाएँ बधिर हो रही थीं, दिनमें भी हृदयमें कामदेवका संचार होनेसे अभिसारिकाएँ अंधी हो रही थीं, और उमड़ते हुए रति-रस रूपी सागरके प्रवाहमें सब डूब रहे थे, तब मैं माताके साथ, वसंतके कारण अधिक शोभायमान, विकसित अभिनव कमल, कुमुद, कुवलय और कल्हार-युक्त अच्छोद सरोवरमें एक बार नहानेके लिए आई।

१७४—वहाँ स्नान करनेके लिए आई हुई भगवती पार्वतीसे तटके शिला तल पर काढी हुई भृंगि और रिटी सहित शिव मूर्तियोंको—जिनके आगेकी रेतीमें बने हुए पैरोंके चिह्नोंसे ऐसा अनुमान होता था कि यहाँ मुनिजन

प्रणाम करके प्रदक्षिणा की थी—नमस्कार करती,—यह भ्रमरोंके भारसे लचके हुए गर्भ-तंतुवाले जर्जरित कुसुमोंसे रमणीय लता मंडप है, यह सुपुष्पित आम्र-वृक्ष है, इसकी खिलती हुई कलीकी डंडीमें कोकिलोंने नखाग्रसे छेद कर दिए हैं और उनमेंसे मधु धारा निकल रही है, यह मदमत्त मयूरोंके कल कलसे डरे हुए साँपोंसे छोड़ी गई शीतल चन्दन वृक्षोंकी कुंज है, यह विकसित पुष्पोंके गिरनेसे वनदेवताओंसे झुलाया जाना सूचित करता, सुन्दर लताओंका हिंडोला है, यह पुष्प परागके ढेरमें पड़े कलहंसके पैरवाला अति रमणीय, तटके वृक्षोंका तल है—यों कहती कहती सुशोभित और अत्यन्त मनोहर प्रदेश देखनेके लोभसे आकृष्ट हो, सखियोंके साथ इधर-उधर घूमती रही।

१७५—मुझे उसी समय एक भागमें वन-पवनसे लाई गई, अखिल वनके प्रफुल्ल होने पर भी अन्य सब पुष्पोंकी परिमलको मात करती, सर्वत्र फैलती, अतिशय सुगंध होनेसे नासिकाको मानो लेपन करती, तृप्त करती, भर देती, उतावलीमें दौड़ते भ्रमरोंके झुंडोंसे अनुगत, अनाघ्रात-पूर्व, मनुष्य-लोकके अयोग्य कुसुम गंध आई। यह कहाँसे आई! ऐसा कुतूहल उत्पन्न होनेसे मैं, जरा जरा आँख मींच कर, भ्रमरीकी तरह उस कुसुम-गंधसे आकृष्ट हो, जिज्ञासासे चंचल हो कर, कितने ही कदम आगे गई। मेरे चलनेसे अधिक हिलते मणिनूपुरकी झंकारसे सरोवरमेंसे कलहंस दौड़ने लगे। फिर मैंने महादेवके नयनमेंसे निकली अग्निसे जलाए गए मदनके शोकसे ग्रस्त होकर तप करते वसंतके समान, संपूर्ण मंडलकी प्राप्तिके लिए व्रत करते शिव मस्तकके चन्द्रके समान, और महादेवके वश करनेके लिए नियम ग्रहण करनेवाले कामदेवके समान, स्नान करनेके लिए आए हुए एक अत्यंत मनोहर मुनिकुमारको देखा। अत्यंत तेजस्विताके कारण वह ऐसा दिखलाई देता था मानो चमकती बिजलियोंके पिंजरेमें हो, ग्रीष्मकालके सूर्य मंडलके उदरमें घुसा हो, या अग्निकी लपटोंके बीचमें खड़ा हो। देहमेंसे निकलती, दीप-प्रकाशके समान पीली, अत्यन्त झलकती प्रभासे वनको पीला करके, उस प्रदेशको मानो वह सुनहरा बना रहा था। उसकी जटा गोरोचनके रसमें डुबाए हुए मंगल-सूत्रके समान सुकुमार और पीली थी। पुण्य पताकाके समान लगते भस्म-पुंडूक—जो सरस्वती समागमकी उत्कंठासे की हुई चंदन रेखाके

समान दीखता था—वह, नई पुलिन रेखासे गगा-प्रवाहके समान, शोभायमान मालूम होता था। उसकी दोनों भ्रूलता अनेक शापसमर्थकी भ्रुकुटियोंके भवन तोरणके समान लगती थीं। नेत्रोंके अति दीर्घ होनेके कारण उसने मानो नेत्रोंकी ही गुँथी माला पहनी थी। सब हिरणोंने मानो उसे नेत्रोंकी शोभाका बराबर भाग दिया था। उसकी नासिका लम्बी और ऊँची थी। नवयौवनका राग उसके हृदयमें प्रवेश नहीं कर सका था इस कारण ही मानो उसका अधर लाल था। दाढी न निकलनेके कारण उसका मुख, चारों ओर फिरती भ्रमरावली-रूपी वलयकी शोभासे हीन, बाल-कमलके समान दिखलाई देता था। मदन धनुषकी कुण्डलाकार की हुई डोरी, अथवा तप रूपी सरोवरकी कमलिनीके मृणालके समान यज्ञोपवीत उसने धारण किया था। एक हाथमें उसने, डंडी सहित बकुल फलके समान, कमंडल लिया था और दूसरेमें कामके विनाशसे शोकातुर हो रुदन करती रतिके मानो अश्रु बिंदुओंकी ही रची हुई एक स्फटिकमय अक्षमालिका ग्रहण की थी। उसकी नाभि-मुद्रा अनेक विद्या-रूपी नदियोंके सगमसे उत्पन्न हुए आवर्तके समान शोभायमान थी। उसके उदर पर, अञ्जनरजकी रेखाके समान कुछ कुछ श्याम और अन्त करणमेंसे ज्ञान रूपी प्रकाशसे निकाले गए मोहान्धकारके बाहर निकलनेके मार्गके समान, महीन रोमराजि निकल रही था। अपने तेजसे सूर्यको जीत कर छीने हुए परिवेष-मण्डलके समान मूँजकी तागड़ीकी डोरी उसके जघन भाग पर पड़ी थी और आकाश गगाके जलमें धोया हुआ, वृद्ध चकोरके लोचनके समान लाल, मंदार वृक्षका वल्कल उसको वस्त्रका काम देता था। ब्रह्मचर्यका वह मानो अलंकार था, धर्मका मानो यौवन था, सरस्वतीका मानो विलास था, सब विद्याओंका मानो स्वयंवरपति था सम्पूर्ण श्रुतियोंका मानो संकेत-स्थान था। ग्रीष्म कालके समान वह आषाढ[1] था, हिम समयके वनकी भाँति वह प्रफुल्ल प्रियंगु[2]-मजरी गौर था, बसंतके [illegible]त उसका मुख कुसुम धवल[3] तिलककी भूतिसे शोभित था और समान का

१—आषाढ मास, दंड।

२—वन, मजरीसे गौर, अपि, मजरीके समान गौर।

३—बसंतके आरंभमें तिलक वृक्ष सफेद फूलोंसे सम्पन्न हो जाते हैं, तपस्वीका मुख कुसुमके समान धवल भस्मके तिलकसे शोभायमान था।

और वयका एक दूसरा ऋषिकुमार देवपूजनके लिए फूल तोड़ता उसके पीछे पीछे था ।

१७६—मुनिकुमारके कानमें उरसी, अमृत-बिन्दु टपकाती, एक अदृष्ट पूर्व कुसुम-मंजरी मैंने देखी । वह वसंत दर्शनसे आनंदित हुई वन श्रीकी स्मित-प्रभाके समान, मलय-पवनके स्वागतके लिए वसंतकी लाजाजलीके समान, कुसुम-लक्ष्मीकी यौवन लीलाके समान, रतिके सुरत-श्रमके पसीनेकी बूँदोंके हारके समान, मदन-रूपी हाथीकी ध्वजाके चिन्ह-रूप चामरके समान, भ्रमर-रूपी कामुककी अभिसारिकाके समान, और कृत्तिका नक्षत्रके तारोंके गुच्छेके समान शोभायमान थी । अन्य सब पुष्पोंकी सुगंधको ढक देती यह परिमल उसकी ही होगी—इस प्रकार मनमें निश्चय कर उस युवा मुनिको देखती देखती मैं विचार करने लगी—अहो ! विधाताके अतिशय रूप सम्पत्ति देनेके साधनोंके भंडारमें कभी कमी नहीं होती ! क्योंकि त्रिभुवनमें अद्भुत रूप-वान् भगवान् कामदेवको उत्पन्न करके भी उसने उससे बढकर मनोहर यह मुनिवेष धारी दूसरा कामदेव बनाया ! मुझे मालूम होता है कि ब्रह्माने सम्पूर्ण जगत्‌के नयनोंको आनंद देनेवाले चन्द्रबिम्बको, और लक्ष्मीके लीला-गृह-कमलोंको उत्पन्न करके इस कुमारके मुखका आकार बनानेमें कुशल होनेके लिए पहले अभ्यास किया था; नहीं तो एकसी वस्तु रचनेका क्या कारण ? फिर यह भी झूठ है कि कृष्णपक्षके क्षीण चन्द्रकी सब कलाओंका सुषुम्न नामकी किरणसे सूर्य पान करता है । वे सब कलाएँ तो सचमुच इसके ही शरीरमें प्रवेश करती हैं; नहीं तो रूपका हरण करते—क्लेशसे परिपूर्ण-तप करनेवालेका ऐसा लावण्य कैसे हो सकता है ? यों मैं चिंतन करती थी कि इतनेमें गुण-दोष न देख, केवल रूपहीका पक्षपात कर, नवयौवन सुलभ कामने, वसन्त-समयका मद जैसे भ्रमरीको परवश कर देता है उसी भाँति, मुझे परवश कर दिया ।

१७७—फिर लम्बे साँस लेती लेती म निमेष शून्य, कुछ कुछ मिची हुई, टेढी और अति चचल पुतलीसे भीतर विचित्र हुई दाँई आँखसे, मानो, उमंगसे उसका पान करती, उससे कुछ माँगती, मैं तेरे अधीन हूँ—यों कहती, उसके सामने हृदयको अर्पण करती, सर्वात्मासे उसमें प्रवेश करती, कन्दर

होनेकी इच्छा करती, मदनसे हार कर रक्षाके निमित्त उसके शरण जाती, हृदयमें मुझे अवकाश दो—ऐसी याचना करती, उसके सामने बहुत देर तक देखती रही। हा हा! मैंने यह क्या अयोग्य, लज्जा जनक, कुलीन कुमारियोंके अनुचित किया?—यह जानती भी मैं इन्द्रियोंको वशमें नहीं रख सकी। मानो स्तब्ध हो गई होऊँ, चित्रित होऊँ, उत्कीर्ण होऊँ, बाँधी गई होऊँ, मूर्छित होऊँ, या किसीसे रोकी गई होऊँ इस भांति तत्काल उत्पन्न हुए अवष्टम्भ से मेरे सब अवयव निश्चल हो गए, और न कहे गए, न सिखाए गए, न कहनेके योग्य, और केवल मुझे ही ज्ञात होते किसी भावसे, या क्या मालूम उसके अतिशय रूपसे या मनसे, या मदनसे, या नवयौवनसे, या अनुरागसे, न मालूम किससे मैं सिखाई गई—यह मेरी समझमें नहीं आया। मेरी इन्द्रियाँ मुझे उठा कर उसके पास मानो ले जाने लगीं, आगेसे हृदय मानो मेरा आकर्षण करने लगा और पीछेसे मदन मानो प्रेरणा करने लगा। इस अवस्थामें मैंने मुक्त प्रयत्न आत्माको भी बड़े कष्टसे धारण किया। फिर तुरन्त ही, काम देवको मानो भीतर अवकाश देनेके लिए, मेरे शरीरमेंसे श्वास पवन बराबर बाहर निकलने लगी, अभिलाषा उत्पन्न होनेसे मानो हृदयसे कुछ कहना चाहते हों—इस भाँति दोनों कुच काँपने लगे, लज्जा, पसीनेकी बूँदोंसे मानो धुल गई हो इस तरह, बहने लगी, कामदेवके पैने शरोंके प्रहारसे मानो डर कर शरीर काँपने लगा, उसका अतिशय रूप देखनेके मानो कुतूहलसे आलिंगनके लिए तड़फते हुए अवयवोंमें रोमांच हो गए और पसीनेसे निःशेष धुल धुल कर मानो चरणोंमेंसे रागने हृदयमें प्रवेश किया।

१७८—फिर मैंने सोचा कि जिसने सुरत व्यापार छोड़ दिया है ऐसे शान्तात्मा जन पर मुझे मोहित करके धृष्ट मदनने कैसा अयोग्य कर्म किया है? [illegible] हृदय निःसंदेह ऐसा अत्यन्त मूढ होता है कि वह अनुरागके विषय [illegible] योग्यताका भी विचार नहीं कर सकता। कहाँ तो यह देदीप्यमान तेज [illegible]र तपका पुंज, और कहाँ प्राकृत जनोंको प्रिय मदनकी चेष्टा! निस्सन्देह यह कुमार मुझे मदन विडम्बित देख कर अपने मनमें हँसता होगा। यह भी विचित्र ही है कि मैं इतना जानने पर भी अपना विकार दूर नहीं कर सकती। अन्य बहुत-सी कन्याएँ भी लज्जा छोड़ कर अपने आप पतिके पास

गई होगी। बहुतसी नारियोंको इस अविनीत कामदेवने उन्मत्त किया होगा। परन्तु मेरे समान एकको भी नहीं किया होगा। केवल आकार ही देखनेसे घबरा कर एक ही क्षणमें मेरा अन्तःकरण क्यों ऐसा पर-वश हो गया! काल और गुण ही सर्वथा मदनको दुर्निवारणीय कर देते हैं। जब तक मैं सचेतन हूँ और जब तक वह मुझमें मदन-दुर्विकारकी लघुता स्पष्ट नहीं देखता तब तक ही इस प्रदेशमेंसे मुझे खिसक जाना उचित है। कहीं अप्रिय मदन-विकार मुझमें देखनेसे कुपित होकर वह मुझे शाप न दे बैठे? मुनिजनोंका कुपित होना कुछ कठिन नहीं है। यों विचार कर मैंने लौटना चाहा और—इस जातिकी तो सब लोग पूजा करते हैं—यों विचार उसके मुखकी तरफ दृष्टि रख, टकटकी बाँध कर, गाल परसे जरा ऊँचे खिसके कर्णपल्लव-सहित, केशोंकी चचल लटोंमें शोभायमान पुष्पों-सहित, और स्कंध पर लटकते मणि-कुंडल सहित, भूमिकी तरफ देखे बिना ही, मैंने उसको प्रणाम किया।

१७६—भगवान् कामदेवके अनुल्लंघनीय शासनसे, चैत्रमासकी मदोत्पादक शक्तिसे, उस प्रदेशकी अति रमणीयतासे, नवयौवनके बहुत अविनय-पूर्ण होनेसे, इंद्रियोंकी चचल प्रकृतिसे, विषयाभिलाषकी दुर्निवारतासे, मनो वृत्तिकी चपलतासे, और ऐसी ऐसी घटनाओंकी भवितव्यतासे—कहाँ तक कहूँ, मेरे मन्दभाग्योंकी कुटिलतासे और उस कुमारको इतना क्लेश अवश्य विदित होनेसे—प्रणाम करते ही मेरा विकार देख कर उसका धैर्य जाता रहा और पवन जैसे प्रदीप को तरल करता है उसी भाँति कामने उसको तरल कर दिया। उस समय उसे भी—नए प्रविष्ट हुए मदनके समान करनेके लिये मानो आगे जाना हो—इस प्रकार रोमाच हो आया। मेरे पास आते हुए मनको मानो मार्ग दिखलाता श्वास आगे आगे चलने लगा। व्रत भंग होनेसे मानो भीत हुई, उसके हाथकी अक्षमाला प्रकम्पगृहीत होकर काँपने लगी। उसके गात पर लगी स्वेद जल-कणकी माला मानो कर्णमें पहनी हुई दूसरी कुसुममंजरी हो ऐसी दीखने लगी। मेरे दर्शनकी प्रीतिसे विलुप्त हुए, ऊँची पुतलीवाले और उस प्रदेशको पुण्डरीकमय दर्शाते उसके दोनों नेत्रोंमेंसे निकलते—अकस्मात् अच्छोद सरोवरके जलको छोड़ कर गगनकी तरफ उड़ते विरचित कुवलयवनके समान शोभित—किरण-समूहसे

दशों दिशाएँ व्याप्त हो गईं। ऐसा उसका विकार स्पष्ट देख कर मुझमे कामावेग दूना हो गया और उस क्षण मेरी अवस्था वर्णन योग्य न रहा। फिर मैंने विचार किया—अनेक सुरत-समागम-रूपी नृत्य-लीलाका उपाध्याय कामदेव ही सब विलासको सिखाता है, नहीं तो विविध रसोंके संसर्गसे ललित मालूम होते ऐसे व्यापारोंमें जिसका मन प्रविष्ट नहीं हुआ ऐसे इस पुरुषकी यह अपरिचित शृंगारानुकूल आकृतिवाली दृष्टि—मानो रतिरस छलकाती, अमृत वर्षाती, मदसे आधी मिची, खेदसे मंद हुई, निद्रासे जड़ हुई, आनन्दके भारसे धीमी और चंचल पुतली-सहित फिरती भ्रूलताको निःशंक नचाती—ऐसी क्यों होती? और इतनी निपुणता इसमें कहाँसे आई कि एक अक्षरके बोले बिना भी केवल नेत्रोंहीसे यह अंतर्गत हृदयकी अभिलाषा कहता है!

१८०—फिर अवसर पाकर उसके सहचारी दूसरे ऋषिकुमारके पास जा कर प्रणाम पूर्वक मैंने पूछा—भगवन्, इन तरुण मुनिका नाम क्या है? यह किसके पुत्र हैं? किस वृक्षकी यह कुसुम मंजरी इन्होंने कानमें उरसी है? इसकी असाधारण सौरभवाली, अनाघ्रात पूर्व, फैली हुई सुगंधिसे मेरे मनमें बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ है! वह कुछ मुसकरा कर मुझसे कहने लगा—बाले, यह पूछनेसे तेरा क्या प्रयोजन? यदि कुतूहल है तो कहता हूँ; सुनोः—

१८१—सकल त्रिभुवनमें जिनका यश विख्यात है, तप जिनका अति उदार है, और देव-दानवों और सिद्धोंके वृंद जिनके चरणोंकी वंदना करते हैं ऐसे श्वेतकेतु नामके एक महामुनि दिव्य लोकमें रहते हैं। उन भगवान्‌का रूप अशेष त्रिभुवनमें सुन्दर, नलकूबरसे भी उत्तम और सुरासुरोंकी सुंदरियों का हृदयानंदक था। वे एक दिन देवपूजाके लिए कमल तोड़ने, ऐरावत , कि मद-जलकी बूँदोंसे बने सैकड़ों चन्द्राकारसे युक्त नीरवाली और ...रसके समान श्वेत प्रवाह-युक्त, मंदाकिनीमें उतरे। उतरतेमें उनको, ...नल-वनमें सर्वदा रहनेवाली, प्रफुल्ल सहस्र पत्रवाले पुंडरीकमें बैठी लक्ष्मीने देखा। उनको देखते ही प्रेम-मदसे आधे मिचे और आनंदाश्रुकी तरंगसे चंचल हुई पुतलीवाले लोचनोंसे उनके रूपका स्वाद लेते लेते और जंभाई आनेके कारण अलस हुए मुख पर हाथ रखते रखते उसके मनमें काम विकार

उत्पन्न हो गया । परन्तु दर्शन मात्रहीसे उसको सुरतसमागमका सुख प्राप्त हुआ और जिस पुंडरीकमें वह बैठी थी उसीमें उसका मनोरथ पूरा हुआ । उससे एक कुमारका जन्म हुआ । उसको गोदमें लेकर लक्ष्मीने—भगवन्, अपने इस पुत्रको ग्रहण करो—यों कह कर उसे श्वेतकेतुको दिया । उन्होंने भी बालकके योग्य सब किया करके उसका नाम पुंडरीक रक्खा, क्योंकि उसकी उत्पत्ति पुंडरीकमें हुई थी । फिर उसका यज्ञोपवीत कराके उसे सब विद्याएँ पढ़ाई । यह वही है ।

१८२—देव-दानवोंके क्षीरसागरको मथन करनेसे जो पारिजात वृक्ष निकला था उसकी यह मंजरी है । यह ब्रह्मचर्यके विरुद्ध कैसे इनके कानमें आई?—सो भी कहता हूँ । आज चतुर्दशी है इसलिए कैलाशवासी भगवान् महादेवकी पूजा करनेके लिए हम दोनों स्वर्गसे नंदनवनके पास हो कर आ रहे थे । इतनेमें, वसंत-लक्ष्मीने जिसको अपने ललित हाथका सहारा दिया था, बकुल-मालाकी जिसने मेखला पहनी थी, पुष्प-पल्लवोंसे गुँथी हुई और जाँघों तक लटकती कंठमालाओंसे जिसका सब शरीर ढक गया था और आमके नए अंकुरका जिसने कर्णपूर पहना था ऐसी—पुष्पोंका आसव पीनेसे मत्त हुई—साक्षात् नंदन-वन-देवीने बाहर आकर पारिजात पुष्पकी इस मंजरीको लेकर प्रणाम पूर्वक इनसे कहा—भगवन्, संपूर्ण त्रिभुवनको दर्शनोंके लिए उत्कंठित करनेवाली आपकी इस आकृतिके समान ही यह अलंकार है । इसलिए कृपा करके इसे ग्रहण कीजिए । कर्णपूर होनेके विलासकी स्पृहा रखती इस मंजरीको कानमें पहनिये और पारिजातका जन्म सफल कीजिए । वनदेवीका यह वचन सुन कर, अपने रूपकी स्तुतिसे लज्जित हो, नीची दृष्टिसे, यह कुमार उनका अनादर करके ही चलने लगे, पर मैंने उसका पीछे आती देख इनसे कहा कि मित्र, इसमें क्या दोष है? जो यह प्रेमसे देती है उसको स्वीकार करो । इतना कह यह मंजरी मैंने इनके कानमें, इनकी बिना इच्छा ही, पहने डाल दी । यह बात है, यह मंजरी किसकी है और कैसे इनके कानमें आई?—यह सब हाल मैंने आपसे कह दिया है ।

१८३—उनके यों कह चुकने पर कुछ मंद मंद हँस कर पुंडरीक स्वयं ही मुझसे बोला—कुतूहलिनि, यह प्रश्न करनेका श्रम तू क्यों उठाती है? जो

तुझको इसकी सुरभि परिमल अच्छी लगती है तो तू इसे ले ले—इतना कह मेरे पास आकर, मधुर मधुकर-गुञ्जारसे मानो रति समागमकी प्रार्थना करती हुई मंजरीको, अपने कानमेंसे निकाल कर, मेरे कानमें पहना दिया। उसके हाथके स्पर्शकी तृष्णासे, उसी क्षण, दूसरे पारिजात पुष्पके समान, अमतस स्थानमें मुझे रोमाञ्च हो आया। मेरे गालके स्पर्श सुखसे उसकी उँगलियाँ काँपने लगीं और हाथमेंसे लज्जाके साथ गिरती अपनी अक्षमालाको भी उसने नहीं देखा। उसे भूमि पर गिरते गिरते रोक कर मैंने ले लिया और उस कुमारकी भुजपाशके ही मानो कंठमें गिरनेका सुख मान कर अपूर्व हार-लताकी लीला दिखाती उस मालाको मैंने लीला सहित गलेमें पहन लिया।

१८४—इतनेमें मेरी छत्रधारिणीने मुझसे कहा—भर्तृदारिके, देवी स्नान कर चुकी और घर चलनेका समय हो गया इसलिए तुम भी स्नान कर लो। अंकुशकी पहली ही चोटसे पकड़ी हुई नई हथिनीके समान मैं उसके वचन सुनकर बिना इच्छा ही, बड़े बड़े प्रयत्नसे, पीछे हटी और लावण्य-रूपी अमृत पंकमें मानो फँस गई हो, गाल पर उठे रोमाञ्च-रूपी काँटोंमें मानो घुस गई हो, मदन बाणकी सलाईसे मानो छिद गई हो, और सौभाग्यकी डोरीसे मानो सिल गई हो ऐसी अपनी दृष्टिको उसके मुखसे बड़े कष्टसे हटा कर नहानेको चली। मेरे चलने पर पुंडरीकका ऐसा धैर्य-स्खलन देख कर, मानो कुछ प्रणयकोप दिखलाता, दूसरा मुनि-पुत्र यों कहने लगा।

१८५—मित्र पुंडरीक, यह आपके योग्य नहीं है। यह तुच्छ मनुष्यके जानेका मार्ग है। साधुओंको तो धैर्य रखना चाहिए। क्यों एक साधारण मनुष्यके समान व्याकुल होकर आप अपनेको नहीं रोकते? कैसे आपमें आज अपूर्व इन्द्रिय-विकार हो आया कि जिससे आपकी यह दशा हो गई है? वह धैर्य कहाँ गया? आपका इंद्रिय विजय कहाँ गया? वह चित्तवश[illegible] कहाँ गया? वह प्रशान्ति कहाँ गई? वह कुल क्रमागत ब्रह्मचर्य कहाँ [illegible]? वह सब विषयोंकी निरुत्सुकता कहाँ गई? गुरुके उपदेश कहाँ गए? वे [illegible] शास्त्र कहाँ गए? वह वैराग्य-बुद्धि कहाँ गई? वह सुखकी अरुचि कहाँ गई? वह तप प्रेम कहाँ गया? वह भोगोंसे निस्पृहता कहाँ गई? वह यौवनका अनुशासन कहाँ गया? प्रज्ञा सर्वथा निष्फल हुई? धर्म-शास्त्राभ्यास निर्गुण

निकला! सत्कार निरर्थक हुआ! गुरुके उपदेशका विवेक निरुपकारक हुआ! प्रबोध निष्प्रयोजन हुआ! ज्ञान निरुपयोगी हुआ! क्योंकि आपके समान भी अनुरागके स्पर्शसे मलीन और प्रमादसे अभिभूत होने लगे। क्या आप अपने हाथमेंसे गिरी हुई और किसीसे ले ली गई अक्षमालाको भी नहीं जानते? अहो मूढ़ता! यह माला तो गई पर आपका हृदय भी यह अनार्या हरे लेती है; उसे तो रोकिए।

१८६—उसके वचन सुन, मानो कुछ लज्जित होकर, पुण्डरीकने प्रत्युत्तर दिया—मित्र कपिंजल, क्यों मेरे विषयमें तुम अन्यथा सम्भावना करते हो? इस दुर्विनीत कन्याका अक्षमाला ग्रहण करनेका अपराध मैं क्षमा नहीं करूँगा। इतना कह कर, असत्य कोपसे सुन्दर लगते, प्रयत्नसे रचे हुए भृकुटीरूपी भूषणसे शोभित और चुम्बनेच्छासे काँपते होठवाले मुख-चन्द्रसे उसने मुझसे कहा—चपले, अक्षमाला दिए विना तुम इस जगहसे एक कदम भी मत सरकना। यह सुन कर, कामदेवके नृत्यारम्भके समय बिखेरनेकी पुष्पाञ्जलीके समान अपनी एक लड़की मालाको कंठमेंसे उतार कर,—भगवन्, लीजिए, अपनी माला—यों कह कर, मेरे ही सामने देखते शून्य-हृदय कुमारके पसारे हुए हाथमें रख, पसीनेसे न्हाई हुई भी मैं फिर स्नान करने चली। नहानेके पीछे बड़े बड़े प्रयत्नसे मेरी सखियाँ मुझे, नदीकी तरह, लौटा लाईं और माताके साथ मैं उस कुमारका ही चिंतन करती जबरदस्ती घर आई। वहाँ आकर कन्यान्तःपुरमें गई तबसे उसके विरहसे शोकातुर रहनेके कारण कुछ भी मेरी समझमें नहीं आया कि क्या मैं आ गई हूँ या वहीं खड़ी हूँ? क्या अकेली हूँ या सखियोंके साथ हूँ? क्या चुप हूँ या बोलती हूँ? क्या जागती हूँ या सोती हूँ? क्या रोती हूँ या नहीं रोती? क्या यह दुःख है या सुख है? क्या यह उत्कंठा है या व्याधि है? क्या यह व्यसन है या उत्सव है? क्या यह दिन है या रात है? क्या अच्छा है और क्या बुरा है,—और मदन-वृत्तान्तसे अपरिचित होनेके कारण—कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, क्या सुनूँ, क्या देखूँ, क्या बालूँ, किससे कहूँ और इसका क्या उपाय करना—यह कुछ भी मुझे नहीं सूझा। इतनेमें कुमारियोंके रहनेके महल पर चढ़ कर, सब सखियोंसे विदा कर, सब परिजनोंको भी आनेसे निषेध कर, सब काम छोड़ कर, मणिमय जाली-

युक्त खिड़कीमें मुँह रख, देखनेमें सुन्दर लगती उसी दिशाकी ओर देखती मैं अकेली सीधी खडी रही। कुमारके उस दिशामें होनेसे मुझे वह मानो अलकृत हो, कुसुमित हो, महारत्नोंके भण्डारसे भरी हो, अमृत रस-सागरके प्रवाहमें डूबी हो और पूर्ण चंद्रोदयसे शोभित हो—ऐसी दीखने लगी। उस ओरसे आती पवनसे भी, वन-पुष्पकी परिमलसे भी, पक्षियोंके स्वरसे भी मैं उसका वृत्तान्त पूछना चाहती। उसे तप अच्छा लगता था इसलिए तपका श्रम उठानेकी भी मैं इच्छुक हुई। उसमें अपनी प्रीतिके कारण ही मानो मैंने मौनव्रत ग्रहण किया। कामदेवके पक्षपात उत्पन्न करनेसे मैं मुनिवेषको, उसके ग्रहण करनेके कारण, अग्राम्य कहने लगी। यौवन उसमें था इसलिए उसको रम्य कहने लगी। पारिजात पुष्पने उसके कर्णका स्पर्श किया था इसलिए उसको मनोहर गिनने लगी। सुरलोकमें उसका वास होनेसे मैं सुरलोकको रमणीय मानने लगी और उसकी रूप-संपत्तिसा साधन होनेके कारण कामको दुर्जय बताने लगी। उसके इतने दूर होने पर भी, कमलिनी जैसे सूर्यके, सागर-वेला जैसे चन्द्रके और मयूरी जैसे मेघके सामने देखा करती है वैसे ही मैं उसीके सामने देखा करती थी। उसके वियोगसे घबरा कर बाहर निकलते प्राणोंकी रत्नावलीके समान वह अक्षमाला वैसीकी वैसी मेरे कंठमें पड़ी थी; उसके विषयकी रहस्य बात करती हो ऐसी कुसुम मजरी कानमें वैसीकी वैसी उरस रही थी, और उसके हस्तके स्पर्श-सुखसे उठे हुए—कदम्बकी कलीके कर्णपूरके समान शोभित—रोमाञ्चसे मेरा एक गाल वैसाका वैसा ही कंटकित हो रहा था।

१८७—इतनेमें मेरी तरलिका नाम ताम्बूल-वाहिनी, जो मेरे साथ ही स्नान करने गई थी, पीछेसे, मानो बहुत देरमें आकर, मुझसे धीरेसे कहने लगी। भर्तृदारिके, जो दिव्य-स्वरूप मुनिकुमार हमने अच्छोद सरोवरके तीर पर देखे थे उनमेंसे एक, जिसने तुम्हारे कानमें देव-तरुकी यह कुसुम मजरी पहनाई थी, दूसरेसे छिप कर, पुष्पसे छाई हुई लता कुंजमें मेरे पास धीरेसे आकर, मैं आती थी तब, पीछेसे मुझसे तुम्हारे विषयमें पूछने लगा—बालिके, यह कन्या कौन है? किसकी पुत्री है? इसका नाम क्या है? और यह कहाँ जाती है? तब मैंने उत्तर दिया—भगवन्, चन्द्रमाकी किरणोंसे

से उत्पन्न हुई गौरी अप्सराकी यह पुत्री है। सब गधर्वोंके मुकुटमणियो-के किनारोंसे घिसे जानेसे कारण जिनके चरण-नख चिकने हो गए हैं, प्रेमसे सोती हुई गधर्व कामिनियोंके गाल पर कढी हुई पत्र-लतासे जिनके भुज-रूपी वृक्ष-शिखर चिन्हित हैं, और जिन्होंने लक्ष्मीके कर-कमलका आसन[1] बनाया है ऐसे गधर्वाधिपति राजा हंस इसके पिता हैं। महाश्वेता इसका नाम है और यह गधर्वोंके वास-स्थान हेमकूटको जाती है। यह सुन कर, वह कुछ विचार कर, क्षणभर चुप रह, मेरे सामने एकाग्र दृष्टिसे बहुत देर तक देखता, मुझसे मानो प्रार्थना करता हो इस भाँति, विनय-पूर्वक फिर कहने लगा—बाले, शैशवमें भी तेरी यह आकृति मगलकरी, निष्कपट और गभीर मालूम होती है इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि क्या तू मेरा एक वचन मानेगी? यह सुन कर मैंने सविनय हाथ जोड़ आदर-पूर्वक उत्तर दिया—महाराज, आप ऐसे क्यों कहते हैं? मैंतो बहुत ही तुच्छ हूँ! सकल त्रिभुवनमें पूजनीय—आपके समान—महात्मा पुण्य बिना मेरे समान पुरुषों पर तो सब पाप हरनेवाली दृष्टि भी नहीं डालते हैं, फिर आज्ञाका तो कहना ही क्या है? इसलिए आपका जो कुछ कार्य हो उसकी निःसदेह आज्ञा दे कर मुझ पर कृपा कीजिए। मेरे यों कहने पर, स्नेह-युक्त दृष्टिसे सखी, उपकारिणी और प्राण-प्रदाके समान मेरा अभिनन्दन कर, निकटवर्ती तमाल वृक्षमेंसे एक पल्लव लाकर, दबा कर पत्थर पर उसका रस निकाल, अपने उत्तरीय वल्कलमेंसे एक पट्टी फाड कर उस पर—गंध-गजके मदके समान सुगधित—रससे, अपने कर-कमलकी कनिष्ठिका उँगलीके नखाग्रसे लिख कर, मुझे उसे दे दिया और कहा कि यह पत्रिका तू उस कन्यासे, जब वह अकेली हो तब, छिपा कर दे दीजो। इतना कह तरलिकाने मुझे पानदानमेंसे निकाल कर वह पत्रिका दिखाई। शब्दमय होने पर भी अंतःकरणमें मानो स्पर्श सुख उत्पन्न करती और कानमें पड़ने पर भी रोमाच होनेसे मानो सर्वांग प्रवेशकी सूचना देती, उसके विषयकी यह बात सुनते ही—मदना-वेश मनने मानो भीतर प्रवेश किया हो इस भाँति—तरलिकाके हाथमेंसे उस पत्रीका लेकर देखा तो उसमें यह आर्या लिखी थी।

१—अर्थात् जो कभी लक्ष्मी को अपने पास से नहीं सरकने देते हैं।

दूरं मुक्तालतया विससितया विप्रलोभ्यमानो मे।
हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीत[1]॥

१८८—मार्ग भूले हुएको जैसे दिङ्मोह भ्रांतिसे, अंधेको जैसे कृष्णपक्ष की रात्रिसे, गूँगेको जैसे जिह्वाच्छेदसे, अयथार्थ-दर्शीको जैसे जादूगरके मोरपंखोंके मोरछलसे, असम्बद्ध वक्ताको जैसे ज्वर-प्रलापकी प्रवृत्तिसे, विष विह्वल को जैसे दोष-जनक निद्रासे, अधर्मीको जैसे जड़वादसे, उन्मत्तको जैसे मदिरासे और पिशाच-ग्रसितको जैसे दुष्ट आवेश-क्रियासे दोष विकारकी वृद्धि होती है उसी भाँति इस आर्याके देखनेसे मेरे कामातुर चित्तमें दोष विकारकी खूब वृद्धि हुई और, नाटसे नदीके समान, मैं इससे आकुल हो विह्वल हो गई। तरलिकाने उस कुमारको दूसरी बार देखा था इससे वह मानो महा पुण्यशालिनी हो, सुरलोकमें रह आई हो, देवताओंसे अधिष्ठित हो, वरदान ली हुई हो, अमृत पी आई हो, त्रैलोक्यका राज्याभिषेक प्राप्त किया हो, इस प्रकार मैं उसे मानने लगी। सर्वदा मेरे पास रहने पर भी मानो उसका दर्शन दुर्लभ हो, और अति परिचित होने पर भी मानो नई आई हो, इस तरह मैं उसको आदर-सहित बुलाने लगी, निकट बैठने पर भी मानो वह सब लोकके ऊपर हो इस तरह मैं उसे देखने लगी। उसके गालका और उसकी घूँघरवाली लटोंका प्रेम-सहित स्पर्श करने लगी। इस प्रकार स्वामि-सेवकके सम्बन्धका मानो व्यतिक्रम दिखाती मैं बार-बार उससे पूछने लगी—कह, तरलिका, तूने उसे कैसे देखा? उसने तुझसे क्या क्या कहा? कितनी देर तू उसके पास खड़ी रही? कहाँ तक हमारे पीछे पीछे वह आया? इसी बातचीतमें उसके साथ, उसी महलमें, सब परिजनोंको भीतर आनेका निषेध कर, मैंने वह दिन बिताया।

१८९—फिर मानो मेरे हृदयके साथ राग[2] बाँट कर गगन-तलके किनारे पर लटकता रवि बिंब जब लाल हो चला, सराग सूर्य देख कर अनुरक्त हुई—

१—जैसे मानसरोवरमें उत्पन्न हुआ हंस मृणालके समान श्वेत मोतियों की मालासे लुभाकर तथा आशा दिखाकर दूर तक लेजाया जाता है उसी तरह मेरी—तुम्हारे साथ संगमकी—अभिलाषाको मृणालके समान श्वेत मुक्तावलीसे ललचाकर आशा दिलानेसे तुमने चरम सीमाको पहुंचा दिया है।

२—राग, प्रेम।

कमलमें सोती—दिवस लक्ष्मी कामातुरके समान पाण्डु हो गई, गेरूके पर्वतके जल प्रपातके समान लाल सूर्य किरणें कमल-वनमेंसे निकल कर वन गजोंके झुंडकी तरह एकत्र होने लगीं, आकाशमें भ्रमणसे विश्राम लेनेके लिए उत्सुक हुए रवि-रथके घोड़ोंके हर्षसे किए हुए हिनहिनाहटके प्रतिशब्दके साथ दिन मेरु पर्वतकी गुफाओंमें प्रवेश करने लगा, बन्द हुए रक्त-कमल-संपुटमें भ्रमरोंके प्रवेश करने से, रवि वियोगमें मूर्छा आनेके कारण जिनके हृदय मानो अंधकारसे व्याप्त हों ऐसी कमलिनियाँ बन्द होने लगीं, और दोनोंकी पकड़ी हुई एक ही मृणाल लताके विवरमें होकर आए हुए, एक दूसरेके हृदयको मानो लेकर, चकवाकके जोड़े वियुक्त होने लगे तब छत्र-धारिणी आकर मुझसे कहने लगी—भर्तृदारिके, उन मुनिकुमारोंमेंसे एक द्वार पर खड़ा है और कहता है कि मैं अक्षमाला लेने आया हूँ।

१९०—मुनिकुमारका नाम सुनते ही मुझे उस स्थान पर बैठी रहने पर भी मानो द्वारके पास गई ऐसा लगा और उसके ही आनेकी शंकासे एक कंचुकीको बुला कर उसे भीतर बुलवाया। क्षण भरमें ही, रूपका जैसा यौवन, यौवन का जैसा मदन, मदनका जैसा वसंत-समय, वसंत समयकी जैसे दक्षिण पवन, ऐसा ही उसका अनुरूप मित्र कपिंजल नामक ऋषिकुमार, वृद्धावस्थासे धवल हुए कंचुकीके पीछे पीछे, चंद्र-प्रकाशके पीछे बाल सूर्य-प्रकाशके समान, आते देख पड़ा। पास आने पर उसकी अंतर्गत अभिप्राय-व्यंजक आकृति आकुल हो, खिन्न हो, शून्य हो, याचना करती हो, इस प्रकार मुझे मालूम हुई। उठ कर आदर-सहित प्रणाम कर मैं स्वयं उसके लिए आसन लाई। बैठ चुकने पर उसकी इच्छाके बिना ही हठसे मैंने उसके चरण धोए और अपनी चद्दरके पल्लेसे पोंछ कर मैं उसके पास बिना कुछ बिछाए ही फर्श पर बैठ गई। थोड़ी देर ठहर कर मानो कुछ कहता हो इस भाँति उसने मेरे पास बैठी तरलिका पर दृष्टि फेंकी। दृष्टिसे उसका अभिप्राय समझ कर मैंने कहा—भगवन्, मुझमें और इनमें कुछ भेद नहीं है इसलिए जो कुछ आपको कहना हो निःशंक कहिए।

१९१—मेरे या कहने पर कपिंजलने कहा—राजपुत्री, मैं क्या कहूँ? लज्जाके कारण मेरी वाणी ही अभिमत कहनेको प्रवृत्त नहीं होती। कहाँ कंद-

मूल फल खानेवाले शांत वनवासी मुनिजन और कहाँ अशान्त जनके योग्य, विषयोपभोगके अभिलाषसे मलीन, मदनके विविध विलाससे व्याप्त यह राग-मय प्रपंच ? देखो, दैवने यह कैसा अनुचित काम आरम्भ किया है ? ईश्वर वास्तवमें बिना यत्नके ही मनुष्य को उपहासास्पद बना देता है । मेरी समझमें नहीं आता है कि यह वल्कलके सदृश है या जटाके उचित है ? तपके अनुरूप है या धर्मोपदेशका अंग है ? यह तो एक अपूर्व विडम्बना हुई है । मगर मुझे तो अवश्य कहना है, क्योंकि अन्य कोई उपाय नहीं, अन्य कोई प्रतिकार नहीं, अन्य कोई आश्रय नहीं, अन्य कोई गति नहीं, जो नहीं कहता हूँ तो बड़ा अनर्थ होता है, और अपने प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु मित्रके प्राणोंकी रक्षा करनी ही चाहिए—इसीलिए कहता हूँ । तुम्हारे सामने ही मैंने उससे कुपित होकर निष्ठुर वचन कहे थे । इसके अनंतर उसे वहीं छोड़ कर और कोपके कारण पुष्प इकट्ठे करना छोड़ मैं वहाँसे दूसरे प्रदेशमें चला गया । तुम्हारे चले आनेके बाद थोड़ी देर ठहर कर,—अकेला वह क्या करता होगा ?—यह जाननेके अभिप्रायसे मैं फिर लौट कर, एक वृक्षके पीछे छुप कर, उस स्थानको देखने लगा । मगर वहाँ मैंने उसको नहीं देखा । तब मुझे ऐसा खयाल हुआ कि कामके वशीभूत हो कर वह कहीं तुम्हारे पीछे तो नहीं गया होगा ? अथवा तुम्हारे चले जानेके बाद चेतना आनेसे लज्जाके कारण उसमें मेरे सामने आनेकी शक्ति नहीं है, या कोपित हो कर मुझे छोड़ कर चला तो नहीं गया होगा, अथवा मुझे ही ढूँढता ढूँढता किसी और जगह तो नहीं चला गया होगा ? ऐसे सङ्कल्प-विकल्प करता करता मैं थोड़ी देर खड़ा रहा । परन्तु जन्मसे एक क्षण भी उससे वियोग न होनेके कारण मुझे दुःख होने लगा । और फिर मैंने विचारा कि कहीं धैर्य स्खलनसे लज्जित हो वह कुछ अनिष्ट कर डाले ! लज्जाके कारण मनुष्य चाहे जो कुछ कर डालता है इसलिए उसको छोड़ना योग्य नहीं है—यह विचार कर मैं ढूँढने लगा । ज्यों ज्यों वह मुझे नहीं मिला त्यों त्यों मित्र स्नेहसे मेरा मन विकल हो गया, और उसके विषयमें अमंगलकी शंका होने लगी । वृक्षों और लताओंकी कुञ्जोंमें, चन्दन वृक्षकी वीथिकाओंमें, लता मण्डपोंमें और सरोवरके तीर पर देखते देखते इधर उधर भली भाँति दृष्टि फेंकता फेंकता मैं बहुत देर भटका किया ।

१६२—इतनेमें सरोवरके समीप स्थित एक अत्यंत रमणीय—वसन्तकी जन्मभूमिके समान—लता कुंजमें, जो घनी होनेसे कुसुम मय, मधुकर मय, अथवा मयूर-मय लगती थी, मैंने उसे बैठे देखा। सब व्यापार छोड़ देनेसे वह मानो चित्रित हो, उत्कीर्ण हो, स्तब्ध हो, मृत हो, निद्रा-वश हो, योग-समाधि-स्थित हो, ऐसा दीखता था। निश्चल होने पर भी वह अपने आचरणसे चलायमान हो गया था, अकेले होने पर भी कामदेव उसके साथ लगा था; सराग[1] होने पर भी वह फीका पड़ गया था, अन्तःकरण-शून्य होने पर भी उसकी प्रियाका उसमें वास था, चुप होने पर भी वह कामदेवकी अत्यंत वेदना प्रकट करता था और शिलातल पर बैठा हुआ भी वह मृत्युकी शरणमें था, आपके मानो डरसे ही अदृष्ट रह कर, मदन उसको संताप देता था, अत्यंत निश्चल होनेसे उसकी इन्द्रियाँ मानो हृदयमें रहती हुई प्रियाको देखनेके लिए अन्दर गई हों, असह्य संतापसे डर कर नष्ट हो गई हों, अथवा मनका क्षोभ देख कुपित होकर छोड़ गई हों इस प्रकार उसका शरीर इन्द्रियोंसे शून्य दीखता था। निश्चल और मिचे हुए—अन्तः प्रज्वलित मदनाग्निके धूमसे अभ्यन्तरमें मानो व्याकुल हुए—उसके नेत्रोंमेंसे निरोनोंके बीचमें होकर असह्य धाराओंसे अश्रुजलकी निरन्तर वर्षा हो रही थी, हृदयको जलाती कामाग्निकी मानो ऊँची उठती ज्वाला हो ऐसी लाल अधरकी प्रभाको लेकर बाहर निकलते उच्छ्वासोंसे पासकी लताओंके कुसुम केशर हिलते थे; बाँए गालके नीचे करतल रख लेनेके कारण फैलती निर्मल नख-किरणोंसे विमल ललाट मानो अति स्वच्छ चन्दन-रसके तिलकसे शोभित था, कानमेंसे पारिजात पुष्पकी मंजरी हटाये थोड़ी ही देर होनेसे उसकी बची हुई सुगंधिके लोभसे आकृष्ट हुए—मधुर गुञ्जारके बहाने मानो मदन-संमोहन मंत्र जपते—भ्रमरोंसे उसके कानमें मानो नील कमल वा तमाल पल्लव रक्खा हो ऐसा दीखता था; उत्कंठाके कारण हुए रोमांचके छलसे, मानो, प्रत्येक रोम-कूपमें पड़े हुए कामदेवके कुसुम बाणोंकी नोक वह अंग पर धारण कर रहा था, नख-किरण छा जानेसे, मानो, करतल स्पर्शके सुखसे कान्ति दीखती—अधिक भीगा हुआ—[illegible] उसने दक्षिण हाथ छाती पर रख लिया था,

१—रागी, प्रेम-सहित।

मदनको वशमें करनेके चूर्णके समान पुष्प-पराग वृक्ष उस पर बिखेरते थे, निकटवर्ती अशोक-पल्लव, अपना राग मानो देते हुए, पवनसे हिल हिल कर उसका स्पर्श करते थे, सुरतके अभिषेकके जलके समान नए पुष्पके गुच्छोंके मधुकणसे वन श्री उसको स्नान कराती थी, भ्रमरोंके झुंड जिनकी परिमल पीते थे, ऐसी चंपक-कलियाँ उसके ऊपर पड़ती थीं, जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो कामदेव तपाई हुई, धूम-समेत, शरकी नोकोंसे उसे प्रहार करता था, वनमेंसे निकलती अतिशय सुगंधसे मत्त हुए मधुकरोंकी गुंजारसे, दक्षिण पवन, मानो हुंकारसे, उसको फटकारती थी। मद-कल कोकिल-कुलके कोलाहलसे, वसंत-जय-शब्दके कल कलके समान, चैत्र मास उसको व्याकुल कर रहा था। प्रभात-चन्द्रके समान वह फीका दीखता था, ग्रीष्म-ऋतुके गंगा-प्रवाहके समान वह कृश हो गया था, अंतर्गत अग्निसे युक्त चंदन वृक्षकी तरह वह कुम्हला गया था, अन्य हो, अदृष्टपूर्व हो, अपरिचित हो, जन्मांतरमें आया हो रूपांतर धारण किए हो, डाकिनी आदि उसके भीतर प्रवेश कर गई हों, महाभूतोंसे अधिष्ठित हो, ग्रहोंसे ग्रसित हो, उन्मत्त हो, ठगाया गया हो, अंधा हो गया हो, बधिर हो गया हो, मूक हो गया हो, विलास-मय हो, मदन-मय हो—ऐसा वह कामावेशकी अंतिम सीमा पर पहुँच गया था, उसकी चित्तवृत्ति पराधीन हो गई थी, और उसका पहलेका आकार जरा भी नहीं पहचाना जाता था।

१९३—ऐसी अवस्थामें उसका एकटक बहुत देर तक देख कर मुझे बड़ा खेद हुआ, मेरा हृदय काँपने लगा, और मैं सोचने लगा—कामदेवका वेग यथार्थमें बड़ा दुःसह है। उसने एक क्षणमें ऐसी दुर्दशा कर डाली है कि इससे बचनेका उपाय भी नहीं! नहीं तो ऐसी ज्ञानराशि एक साथ ऐसा व्यर्थक हो गई! अहा! बड़ा आश्चर्य है! शैशवसे ही इसकी प्रकृति ऐसी धीर, और चरित्र ऐसा अखंडित था कि मैं और अन्य मुनिकुमार इसके चरितकी बराबरी करना चाहते थे। उसे ही आज ज्ञानका पराभव कर, तपके प्रभावका तिरस्कार कर और गांभीर्यका नाश कर कामदेवने साधारण मनुष्यों के समान जड़ बना दिया है! सदा विकार रहित यौवन दुर्लभ है! पीछे पास जाकर, उसी शिलातलके एक किनारे पर बैठ, उसके कंधे पर हाथ रख कर

आँख मिची होने पर भी मैंने पूछा—मित्र पुण्डरीक, कहो तो सही आपको यह क्या हुआ है ? तब वह दीर्घ काल तक बद रहनेसे मानो चिपक गई हों ऐसी, निरतर रुदन करनेसे लाल, अश्रु-जलके प्रवाहमें डूबी हुई, सूजी हों अथवा दुखती हों ऐसी, स्वच्छ वस्त्रसे ढके रक्तकमलवनके समान शोभित, अपनी आँखें अति प्रयत्नसे खोल कर, लंबी साँस लेकर, निश्चल दृष्टिसे मुझे बहुत देर तक देख कर, लज्जाके कारण टूटे फूटे अस्पष्ट अक्षरोंसे धीरे धीरे कष्ट-पूर्वक अस्पष्ट कहने लगा—मित्र कपिंजल, सब वृत्तात जान कर भी तुम मुझसे क्या पूछते हो ? मुझे तो यह सुनते ही उसकी अवस्थासे मालूम पड़ा कि उसका मदन-विकार असाध्य है, तथापि मित्रको चाहिए कि कुमार्ग पर चलनेवाले मित्रको यथाशक्ति प्रयत्न करके रोके । यह विचार मैंने कहा—

१६४—मित्र पुण्डरीक, यह मैं भली भाँति जानता हूँ परन्तु मैं केवल इतना ही पूछता हूँ कि यह जो आपने आरम्भ किया है उसे क्या गुरुने सिखाया है ? या धर्मशास्त्रमें पढ़ा है ? या यह धर्म उपार्जन करनेका साधन है ? या किसी प्रकारका तप है ? या यह स्वर्गके जानेका मार्ग है ? या यह किसी व्रतका रहस्य है ? या मोक्ष प्राप्त करनेकी युक्ति है ? या व्रतचर्याका कोई भेद है ? आपको इसका चिंतन भी अयोग्य है, फिर कहना और देखना कैसा ? क्या, मूर्खके समान, आप यह नहीं समझते कि इस दुष्ट मदनने आपको उपहासास्पद बना दिया है ? काम मूर्खको सताता है । साधुजनोंसे निंदित, साधारण मनुष्योंको प्रिय, ऐसे विषयोंमें आपको क्या सुखकी आशा है ? जो मूढ अन्तमें दुःखदायी विषयोपभोगमें सुखकी इच्छा करते हैं वे, धर्म समझ कर, विष-लताके वनको सींचते हैं, कुवलयमाला समझ कर खड्गलताका आलिंगन करते हैं, काले अगरकी धूमलेखा जान कर कृष्णसर्पको पालते हैं, रत्न जानकर जलते अङ्गारेका स्पर्श करते हैं, और मृणाल समझ कर दुष्ट हाथीके दंतरूपी मूसलको खींचते हैं । सब विषयोंका तत्त्व जान कर भी क्यों आप पटबीजनेके प्रकाशके समान निर्वीर्य ज्ञानको धारण करते हैं, क्योंकि, प्रबल रज[1] प्रसरसे मलीन नदियोंके समान, कुमार्गमें जाती इन्द्रियोंको आप रोकते नहीं

1—धूल, रजोगुण ।

सकते, और क्षुभित मनको नियम-बद्ध नहीं कर सकते? यह कामदेव भी भला कुछ चीज है! धैर्य धारण कर इस दुराचारी का तिरस्कार करिए।

१९५—इतनेमें मेरा वचन काट कर, आँखोंसे रोओंमें होकर गिरते अश्रु-प्रवाहको अपने हाथसे पोछ कर और मेरा हाथ पकड़ कर वह मुझसे कहने लगा—मित्र, बहुत कहनेसे क्या लाभ? तुम सर्वथा स्वस्थ हो, क्योंकि कामदेव के सर्प-विषके वेगके समान विषम बाण अभी तुमको नहीं लगे हैं। दूसरोंको उपदेश देना बहुत सहज है। जिसकी इन्द्रियाँ जाग्रत हों, मन ठिकाने हो, जो देख सकता हो, सुन सकता हो, वा सुन कर विचार सकता हो, या भले बुरेको पहचान सकता हो, उसको ही उपदेश देना चाहिए। परन्तु मेरे पास तो इनमेंसे कुछ भी नहीं रहा। स्थिरता, ज्ञान, धैर्य, और विवेक—सब अब अस्त हो गए, प्राण न जाने कैसे बिना ही यत्न बाकी हैं। उपदेशका समय तो अब बहुत दूर चला गया, धैर्यका अवसर बीत गया, विवेकबेला जाती रही और ज्ञानसे चित्तके धारण करनेका समय भी हो चुका। इस समय, तुम्हारे सिवाय, न कोई मुझे उपदेश कर सकता है, न कुमार्गमें जानेसे रोक सकता है। अन्य किसका वचन मैं मानूँगा? संसारमें तुम्हारे समान मेरा कोई अन्य बन्धु नहीं है। परन्तु क्या करूँ? मैं अपनेको रोक नहीं सकता। मेरी जैसी दुष्ट अवस्था हो गई है उसे इस समय तुम देखते ही हो, शिक्षा देनेका समय तो अब जाता रहा। मैं केवल यही चाहता हूँ कि जब तक मुझमें प्राण हैं तब तक—कल्पान्तमें उदय होते द्वादश सूर्योंकी किरणोंके तापके समान तीव्र—इस मदन सन्तापको दूर करनेके लिए तुम कुछ उपाय करो। मेरे अंग मानो रेंधे जाते हैं, हृदय मानो उबला जाता है, आँखोंमें मानो दाह हो रहा है, शरीर मानो जला जाता है, इसलिए इस समय जो कुछ तुम योग्य समझो करो। इतना कहकर वह चुप हो गया।

१९६—उसके यों कहने पर भी मैं उसको बार बार समझाने लगा, परन्तु जब शास्त्रोपदेशसे निर्मल, दृष्टान्तयुक्त और इतिहाससहित वचनोंसे, विनय और आनन्दके साथ, समझाने पर भी उसने ध्यान नहीं दिया, तब मैंने विचारा कि अब यह अन्तिम सीमा पर पहुँच गया है इसलिए लौटाया नहीं जा सकता। अब सब उपदेश निरर्थक है। इसलिए मुझे इसका प्राण रक्षा

यत्न करना चाहिए। यों निश्चय करके मैं उठकर चला और उस सरोवरमेंसे हरी मृणालिका तोड़ कर, जल बिन्दु युक्त कमलके पत्ते, और भीतरकी रजकी परिमलसे मनोहर लगते कुमुद, कुवलय और कमल लाकर मैंने लता-गृहके शिला तल पर उसके लिये बिछौना बिछा दिया। वहाँ जब वह सुखसे बैठा तब निकटवर्ती चन्दन वृक्षोंके कोमल पत्ते पीस कर मैंने उनका स्वभावसे ही सुगंधित और बरफ के समान ठंडा रस उसके ललाट पर चुपड़ा और चरणोंके तलुओं तक सब शरीरमें लेप किया। पासके वृक्षोंमेंसे फटी हुई छालकी दरारोंमेंसे रिसते कपूरकी हाथ से बुकनी करके, उससे पसीना दूर किया। छाती पर चंदन रसमें भिगोया हुआ वल्कल रख कर, स्वच्छ जल-कण टपकाते केलेके पत्तेसे उसका पंखा किया। यों बार बार कमलके पत्तोंके बिछौनेको एकके पीछे दूसरा बदलते बदलते, बार बार चन्दन चुपड़ते चुपड़ते, बार बार पसीना पोंछते पोंछते, और केलेके पत्तेसे निरन्तर पवन करते करते, मैंने मनमें सोचा—भगवान् कामदेव को वस्तुतः कुछ असाध्य नहीं है! कहाँ यह हिरन सदृश वनवासी, स्वभावसे ही मुग्ध पुंडरीक और कहाँ विविध विलास रसकी राशि गंधर्व-राज-पुत्री महाश्वेता!! जगतमें उसे सर्वथा दुर्घट, दुष्कर, अस्वाधीन, या अकर्तव्य नहीं है! दुःसाध्य कामोंको भी वह अवज्ञा-पूर्वक करता है, और किसी में उसके प्रतिकूल होने की शक्ति नहीं है। सचेतन तो क्या अचेतनों को भी वह जैसा चाहे बना सकता है। कुमुदिनी भी रवि-किरणोंमें अनुरक्त हो जाती है, कमलिनी भी चंद्र किरणोंमें द्वेष छोड़ देती है, रात्रि भी दिनके साथ मिश्रित हो जाती है, चंद्रिका भी अंधकार का अनुकरण करती है, छाया भी प्रदीप के सामने रहती है, बिजली भी मेघमें स्थिर हो जाती है, वृद्धावस्था भी यौवनके साथ संचार करती है। जब उसने ऐसे अगाध गम्भीर—सागरको तृणके समान लघु कर डाला, तब उसे और क्या असाध्य रहा? कहाँ वह तप और कहाँ यह अवस्था? इस आपत्तिसे छूटनेका सर्वथा कोई उपाय नहीं है। अब क्या करना? कैसा आचरण करना? किस दिशा को जाना? किसकी शरण जाना? क्या उपाय करना? किसकी सहायता लेना? किस रीतिसे चलना? क्या युक्ति करना? किसका आश्रय लेना कि जिससे इसके प्राण बच सके? किस चतुराईसे? किस युक्ति से? किस सहारेसे? किस सूझबूझसे? किस बुद्धि से? किस तरह आज इससे

यह जी सकता है ? ऐसे ऐसे सङ्कल्प मेरे खिन्न हृदयमें उठने लगे । विचारा कि ऐसी निरर्थक चिन्ता करनेसे क्या लाभ ? अच्छे या बुरे—चाहे जैसे उपायोंसे इसके प्राणों की रक्षा तो करनी ही चाहिए और रक्षाका इन दोनोंके समागमके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है । बाल-भावसे असाहसिक होनेके कारण, मदन-विकारको तपके विरुद्ध, अनुचित और अपने उपहासके समान मानता हुआ यह अपने आप तो श्वास मात्र प्राण बाकी रहने पर भी वहाँ जा कर उस कन्या की अभिलाषा कदापि पूर्ण नहीं करेगा । अब यह विकार विलंब सहन नहीं कर सकता । साधु पुरुष अति निन्दित, अकर्तव्य कर्मोंसे भी सर्वदा मित्रके प्राणोंकी रक्षा करना अच्छा समझते हैं । इसलिए अब यह बहुत लज्जा-जनक और अकरणीय काम भी मुझे अवश्य करना पड़ेगा । और कुछ हो नहीं सकता, और कोई गति नहीं सूझती, इसलिए उसके पास जाकर इसकी अवस्था जता दूँ । यों विचार कर—शायद मुझे अयोग्य कर्म करने जाता देख कर लज्जासे यह मुझे कहीं रोक न दे—इससे उससे कहे बिना ही वहाँसे मैं रवाना करके यहाँ चला आया हूँ । ऐसेमें जो इस अवसरके अनुकूल हो, अनुरागके सदृश हो, मेरे आगमनके अनुरूप हो, और आपको उचित हो, वही कीजिए । यों कह कर प्रत्युत्तर सुननेकी उत्कंठासे मेरे मुखकी ओर दृष्टि कर वह चुप हो गया ।

१६७—मैं तो यह सुन कर सुधामृत मय सरोवरमें मानो डूब गई होऊँ, रति रस मय समुद्रमें मानो गिरी होऊँ, सब आनन्दोंके ऊपर मानो बैठी होऊँ, सब मनोरथोंके आगे मानो चढ़ी होऊँ, सब उत्सवोंकी चरम सीमाको मानो पहुँची होऊँ, ऐसी हो गई और उस समय लज्जा आनेके कारण मुख कुछ नीचा होनेसे, गालोंको बिना स्पर्श किये ही, गुँथे हुएके समान, एकके ऊपर एक बराबर गिरनेसे मालाका भ्रम दिखाती और रोओंके न छूनेसे नहीं दीखती [illegible] आनंदाश्रुकी बूँदोंके गिरने से हर्ष-प्रसंग प्रकट करती, उस [illegible] [illegible] करने लगी—बड़े भाग्यकी बात है कि मेरी तरह उनको भी काम [illegible] निरंतर सताता है ! मुझे सताते हुए भी उसने कुछ अनुकूलता प्रगट दिखाई । जो वास्तवमें उनकी ऐसी ही दशा हो तो फिर उसके उपकारमें क्या कमी है ? अब क्या बाकी रहा ? इसके समान अन्य कौन बान्धव है ? शान्ताकृति कपिञ्जलके इन मुखमेंसे असत्य वाणी स्वप्नमें भी कैसे निकल

सकती है ? अब मुझे क्या करना और क्या कहना चाहिए ? यों मैं विचार रही थी कि इतनेमें प्रतिहारी दौड़कर मुझसे कहने लगी—भर्तृदारिके, परिजनोंसे आपके शरीरका अस्वास्थ्य सुन कर महारानी आपको देखने आई हैं। यह सुन कर परिजनादिककी बड़ी भीड़के भयसे कपिंजल तुरंत ही उठा और मुझसे कहने लगा—राजपुत्रि, अब देर बहुत हो गई और त्रिभुवन चूड़ामणि भगवान् सूर्य अस्त होनेको हैं, इसलिए मैं तो जाता हूँ, पर हाथ जोड़ कर आपसे विनय करता हूँ कि मेरे प्रिय मित्रकी प्राण-रक्षा रूपी दक्षिणा मुझको देना। हाथ जोड़ने से अधिक और मैं कुछ नहीं कर सकता। इतना कह कर, प्रत्युत्तरकी राह देखे बिना ही वह, सुवर्णकी छड़ी ले कर माताके आगे प्रवेश करती प्रतिहारियोंसे, ताम्बूल, कुसुम, पटवास, और अंगराग लेकर चलते कंचुकियोंसे और कुब्ज, किरात, बधिर, वामन, नपुंसक, कल-मूक जनोंके आगे हाथमें चमर लेकर चलते परिजनों से सब ओरसे रुके द्वार-देशमेंसे किसी तरह निकल कर चला गया। माता मेरे पास आईं और बहुत देर तक बैठ अपने महलमें लौट गईं। परन्तु उन्होंने वहाँ आकर क्या किया, क्या कहा और क्या चेष्टा की ?—यह कुछ भी, शून्य-हृदय होनेसे, मैंने नहीं जाना।

१६८—उसके जानेके बाद जब हारीतके समान हरे अश्ववाले, कमलिनी प्राणनाथ, चक्रवाक मित्र, सूर्य अस्त हुए, पश्चिम दिशाका मुख लाल होने लगा, कमल-वन, फूल बंद होने से, हरा होने लगा, पूर्व दिशाका भाग काला होने लगा और सब जीव-लोकमें—पाताल-पंकके समान मलीन—अन्धकार, महाप्रलय-कालके समुद्र जलके प्रवाहके समान, फैलने लगा तब—क्या करना ?—यह न सूझ पड़ने से मैंने तरलिकासे पूछा—अरी तरलिके, तुम क्या नहीं देखती कि मेरा हृदय अत्यंत व्याकुल हो गया है और इन्द्रियाँ अपने अपने विषयसे शून्य होनेके कारण विह्वल हो गई हैं ? मुझे अपना कर्तव्य जरा भी नहीं समझ पड़ता इसलिए जो उचित हो सो कहो। तुम्हारे सामने ही कपिंजल सब बातें कह गया है। जो न साधारण कन्याकी भाँति लज्जा छोड़ कर, धैर्य त्याग कर, विनय छोड़ कर, जनापवाद का विचार न कर, सदाचारका अतिक्रमण कर, शीलका उल्लंघन कर, कुलकी रक्षा न कर, और बुराई स्वीकार कर, प्रेमसे अंधी होकर, पिताकी आज्ञा बिना और

माताके अनुमोदन बिना, अपने आप जाकर पाणि ग्रहण करार्उ तो गुरुजनका अपमान होनेसे इसमें बड़ा अधर्म होगा, और जो मैं धर्मके आग्रहसे न जाकर प्राणत्याग करूं तो उसमें भी पहले तो अपने आपसे आए हुए और पहली ही प्रार्थना करनेवाले कपिंजलका प्रेम भंग होता है, और दूसरे जो कदाचित् मेरी दी हुई आशाके भंगसे उस पुरुषके प्राण पर कुछ विपत्ति आ जाय तो मुझे मुनिके वधका महापातक लगेगा। यही कहते कहते, पुष्प रजसे वसंत ऋतुकी वनराजिकी भाँति, चंद्रोदयके थोड़े थोड़े प्रकाशसे पूर्व दिशा धूसर होने लगी।

१९९—उस समय चन्द्र प्रकाशसे पूर्व दिगन्तर, शशि रूपी सिंहके कर रूपी नखरसे छेदे गये अंधकार-रूपी गजके गंडस्थलमेंसे निकले हुए मोतीके चूरेसे मानो श्वेत हुआ, उदयाचलकी सिद्ध सुन्दरियोंके स्तनोंसे छूटे हुए चन्दन चूर्णके पुंजसे मानो धवल हुआ और चलायमान हुए समुद्र जलकी तरंगोंको कँपाती हुई पवनसे उड़ाई गई रेतीके किनारेकी धूलके मानो ऊपर उठनेसे शुभ्र हुआ देख पड़ा। धीरे धीरे चन्द्र दर्शन होनेसे मंद स्मित करती निशाकी—दंत-प्रभाके समान गिरती—चंद्रिका उसके मुखको शोभायमान करने लगी, उसके पीछे, रसातलमेंसे पृथ्वीको फाड़ कर बाहर आते शेषनागके फन मंडल के समान, चंद्रबिंबसे रात्रि प्रकाशित होने लगी, और सब जीवलोकका आनन्दकारक, कामिनी-जन-वल्लभ, मदन-बंधु, राग[1]-युक्त, सुरतोत्सवके उपभोगके ही योग्य, अमृत-मय चंद्रमाके धीरे धीरे कुछ कुछ बाल[2]-भाव छोड़ने, यौवनकी तरह, उठनेसे रात रमणीय लगने लगी।

२००—फिर निकलता समुद्रमेंसे आती प्रवाल-प्रभासे मानो रक्त हुआ, उदयाचलमें निकले कर आगे आते हुए अपने हिरनके रुधिरसे, मानो, लाल और रति-कलहमें कुपित हुई रोहिणीके चरणोंकी महावरसे मानो लाल हुआ, नया उदय रागसे रक्त चन्द्रमा उदय हुआ देख मैं मदनाग्निके, भीतर, जलने पर भी अन्धकार[3] युक्त हुई जाती, तरलिकाके उत्संगमें शरीर डाले पड़ी

१—ललाई, अनुराग।

२—लड़ाई, शिशुत्व।

३—यथा (मुझे यह न सूझा कि क्या करूँ।

पर भी मदनके हाथोंमें पड़ी, चन्द्रके सामने दृष्टि रखने पर भी मृत्युको देखती, उस समय विचार करने लगी—एक ओर तो मदन, मधुमास, मलय-पवन आदि सब, और दूसरी ओर यह पापी दुष्ट चन्द्र असहनीय है। फिर मेरा हृदय अति दुःसह मदन वेदनासे विह्वल हो गया है, और इसका उदय मुझे, दाह-ज्वरसे पीड़ित पर अङ्गारोंकी वर्षा, ठंडमें ठिठरे हुए पर हिमपात, और विषैले फोड़ेसे मूर्च्छितको कृष्णसर्पके काटनेके समान है। इस ध्यानमें ही, चन्द्रोदय होनेसे कमल वन सकोच रूपी निद्राके समान, मुझे मूर्च्छा आ गई और मेरी आँखे मिच गई परंतु थोड़ी ही देरमें, तरलिकाकी—घबराहटमें की हुई—चंदन-चर्चा और पत्तोंकी हवासे मुझे चेतना हुई और मैंने देखा तो तरलिका, मानो साक्षात् विषाद ही हो ऐसी, अत्यंत आकुल बैठी थी। मेरे ललाट पर जल गिराती चन्द्रकांत-मणिकी सलाई रख वह रो रही थी, और अविरल अश्रुधारासे उसका मुँह ढक गया था। मेरी आँखें खुली देख उसने मेरे चरणोंमें प्रणाम किया और चन्दन-रससे गीले अपने दोनों हाथ जोड़ कर कहा—भर्तृदारिके, अब लज्जा या गुरुजनोंके भयसे क्या है? कृपा करके मुझे भेजो ताकि मैं तुम्हारे प्राणनाथको बुला लाऊँ, नहीं तो तुम ही स्वयं उठ कर वहाँ जाओ। प्रबल चंद्रोदयसे बढ़ती सैकड़ों उत्कलिकावाले[1] समुद्रके समान इस कामदेवको अब अधिक देर तक तुम सहन नहीं कर सकती हो। तब मैंने उसको प्रत्युत्तर दिया—अरी उन्मत्त, कामदेवकी क्या बात कहती हो? सब विकल्प हरनेवाला, सब उपायोंके दर्शन दूर करनेवाला, सब विघ्नोंको छिपानेवाला, सब संदेहोंको टालनेवाला, सब शंकाओंको मिटानेवाला, लज्जाका विनाश करनेवाला, स्वयं जानेकी लघुताके दोषका ढकनेवाला, विलंबका दूर करनेवाला, मृत्युके या उनके ही पास ले जानेवाला, यह चन्द्रमा आ ही गया है। इसलिए उठो, जब तक मैं जीती हूँ तब तक चल कर आवागमनकारी प्राणप्रियकी संभावना करें—यों कहती कहती मैं मदन-मूर्च्छाके खेदसे विह्वल हुए अङ्गोंसे उसका सहारा लेकर जैसे तैसे उठी, पर मेरे चलते ही अशुभ परिणाम-सूचक दाई आँख फड़कने लगी, उससे मुझे शंका उत्पन्न हुई और विचार हुआ कि दैवने यह कोई दूसरा ही किया।

१—जल-तरंग, उत्कंठा।

२०१—पीछे त्रिभुवन-रूपी प्रासादके महा प्रणालके[१] समान, मानो, सुधा सलिलकी धारा नीचे बहाते, चन्दन-रसके झरनोंको मानो झराते, श्वेत-गंगाके हजारों प्रवाहोंको मानो उगलते, अमृत सागरके प्रवाहोंका मानो वमन करते चन्द्र-मण्डलका थोड़ा थोड़ा उदय होनेसे अन्तरिक्ष जब चाँदनीमें डूब गया था, सब जन मानो श्वेतद्वीपमें निवासका या चन्द्र-लोकके दर्शनका सुख भोगते थे, मही-मंडलको—महावराहके दंष्ट्र-मंडलके समान—चन्द्र क्षीरसागरके उदरसे मानो बाहर निकालता था, घर घरमें युवतियाँ विकसित कुमुदसे सुगंधित किए हुए चन्दन-जलका चन्द्रोदय-समय अर्घ देती थीं, राजमार्ग पर कामिनियों की भेजी हुई हजारों सुरत दूतियाँ आती जाती थीं, नील वस्त्रसे सुख ढक कर चन्द्र-प्रकाशके भयसे चकित होकर—नीलोत्पल-प्रभासे ढँकी हुई कमल-वन-लक्ष्मीके समान—अभिसारिकाएँ जब इधर उधर दौड़ रही थीं, प्रत्येक कुमुदमें जहाँ भ्रमरोंके झुण्ड भरे हुए थे ऐसी गृह सरोवरकी कुमुदिनी खिलने लगी थी, विकसित कुमुद वनकी अतिशय रजसे मध्यभाग श्वेत हो जानेके कारण अंतरिक्ष, निशा-नदीके पुलिनके समान, दिखलाई देता था, सकल तीन लोक, महासागरकी तरह, चंद्रोदयसे आनंदमें मग्न होकर मानो रति-रस मय, उत्सव-मय, विलास-मय, और प्रीति-मय हो गया था, चन्द्रमणि रूपी प्रणालोंमेंसे जल बहने लगा था, ऐसे—आनंदसे गान करते मयूरोंके स्वरसे रमणीय—प्रदोष समयमें, विविध पुष्प, ताम्बूल, अंगराग और पटवास-चूर्ण लेकर पीछे आती तरलिकाके साथ—मूर्च्छाके समय ललाट पर लगाए, कुछ कुछ सूखे, चंदन-रसमें चिपक जानेसे धूसर हुई और बिखरी लटों सहित, चंदन रसकी चर्चा-रूपी अंगरागसे अत्यंत भीगे हुए वेष-सहित, वैसीकी वैसी कंठमें पहनी हुई अक्षमाला सहित, और कानमें उसी पारिजात मंजरी सहित—पद्मराग मणिकी किरणका मानो बना हो ऐसे रक्त वस्त्रका नकाब ओढ़ कर, कोई मित्र भी न देखे ऐसी रीतिसे, प्रासाद शिखर परसे म उतरी।

२०२—वहाँसे नीचे आकर, तब पारिजात मंजरीकी परिमलसे लुब्ध हुए, [illegible] उपवन त्याग कर और कुमुद वन छोड़ कर दौड़ आने, मानो नील वस्त्रके [illegible] भ्रान्ति उत्पन्न करते, भ्रमरोंके झुंड मेरे आस-पास घूम रहे थे, तो

१—पनाला।

प्रमद-वनके एक ओरके द्वारमेंसे बाहर आकर उसके पास जानेको निकली। जाते जाते अपने साथ केवल तरलिकाहीको—अन्य किसी परिजन के बिना—देख मुझे खयाल हुआ कि प्रियतमके पास जानेवालेको बाहरी परिजनोंका क्या काम है? ये ही सब परिजनोंका काम देते हैं—जैसे कामदेव धनुष चढा कर और उस पर बाण रखकर पीछे पीछे चलता है, चंद्रमा अपनी किरणें दूर तक फैलाकर चलनेके लिये उत्साहित करता है, गिरनेके डरसे अनुराग मानो पद पद पर सहारा देता है, लज्जा को पीछे छोड़ इन्द्रियों सहित हृदय आगे आगे दौड़ता है, और प्रिय समागम निश्चित समझ कर उत्कंठा लिए ही जाती है। फिर मैं प्रकट कहने लगी—अरी तरलिका, यह दुष्ट चन्द्र मेरे समान उसको भी करसे[1] केश पकड़ कर कहीं सामने न ले आवे? तरलिकाने हँस कर उत्तर दिया—भर्तृदारिके, तुम तो मुग्ध हो—चन्द्र आप ही कामातुरकी भाँति तुम्हारे साथ विविध चेष्टाएँ करता है। इसलिए उसे कुमारसे क्या प्रयोजन? अपने प्रतिबिम्बके छलसे वह स्वेद-जलकी कणिकासे व्याप्त तुम्हारे गालों का चुम्बन करता है। लावण्य युक्त तुम्हारे भारी पयोधर पर काँपता हुआ कर[1] डालता है, तुम्हारी करधनीके मणियों का स्पर्श करता है, निर्मल नखमें पड़ी हुई मूर्तिसे वह तुम्हारे पैरों पड़ता है और कामातुर जनकी तरह उसका शरीर ऐसा फीका पड़ गया है मानो मदन-संतापसे उस पर सूखे चंदनका लेप किया गया हो। कर[1] उसके मृणाल वलयके समान धवल हैं। प्रतिमाके आकारमें वह स्फटिक मणिकी भूमि पर पड़ता है, केतकीके भीतरकी रजके समान पादोंसे[1] कुमुद-सरोवरमें स्नान करता है, जल कणोंसे गीले चन्द्रमणियोंका अपने करोंसे[1] स्पर्श करता है, और चक्रवाक मिथुन जिनमें अलग हो गये हैं ऐसे कमल-वनोंसे द्वेष करता है, ऐसी कितनी ही उस कालके योग्य बातें करते करते उसके साथ मैं उस प्रदेशमें पहुँच गई। जहाँ कैलाश-तटमेंसे चन्द्रोदयसे रिसते चन्द्रमणिके झरनोंसे, मार्गमें चलनेसे लगे लता पुष्प और धूलसे धूसर हुए अपने चरणोंको धोते धोते, जिस प्रदेशमें वह मुनिकुमार था उसी प्रदेशमें, अच्छोदसरोवरके पश्चिम तट पर, दूर होनेसे कुछ अस्पष्ट सुनाई देता, किसी पुरुषके रोनेका शब्द मेरे कानमें पड़ा। दाहिनी आँखके फड़कनेसे पहले ही

१—किरण।

मेरे मनमें कुछ शंका थी, पर उससे मेरा हृदय मानो बिलकुल फट गया, भीतर कुछ अनिष्ट बताता मेरा अंतःकरण खेद पाने लगा और—ओ तरलिका, यह क्या?—यों भयभीत हो कर पूछती पूछती काँपते शरीरसे मैं बहुत जल्दी जल्दी उस ओर चली।

२०३—चलते चलते मैंने आधी रात होनेके कारण दूरसे ही स्वर पहचान लिया, और आर्तनाद कर रुदन करते कपिंजलका विलाप सुना—हाय! मैं मारा गया, हाय! मैं जल गया, हाय! ठगा गया; अरेरे! यह क्या आ गिरा? क्या हो गया? मेरा सर्वस्व जाता रहा! अरे दुरात्मा पापी क्रूर पिशाच मदन, तूने यह क्या कुकर्म किया? ओ पापिनी दुराचारिणी दुर्विनीत महाश्वेता, इसने तेरा क्या बिगाड़ा था? अरे पापी दुष्ट चन्द्र-चाण्डाल, अब तू कृतार्थ हुआ! दाक्षिण्य हीन दुष्ट दक्षिण पवन, अब तेरे मनोरथ पूरे हुए—तैंने चाहा सो किया, अब जहाँ तुझे जाना हो वहाँ जा! हाय भगवन् श्वेतकेतो, पुत्रवत्सल, तुम्हें खबर नहीं कि तुम्हारे यहाँ चोरी हो गई! हाय धर्म, अब तेरा कोई भी ग्रहण नहीं करेगा! हाय तप, अब तू निराधार हुआ! हा सरस्वती, तू तो आज विधवा हो गई! हा सत्य, तू अनाथ हुआ! हा सुरलोक, तू भी आज शून्य हुआ! प्रियमित्र, मुझे लेते जाओ! मैं भी तुम्हारे पीछे आता हूँ, तुम्हारे बिना एक क्षण भी अकेला नहीं रह सकता। अरे! तुम क्यों अपरिचित और अदृष्ट पुरुषकी भाँति मुझे एकदम छोड़ कर जाते हो? कहाँसे तुम इतने निठुर हो गए? कहो तो सही, तुम्हारे बिना मैं कहाँ जाऊँ? किससे माँगूं? किसकी शरण जाऊँ? अरेरे! मैं तो अन्धा हो गया! मेरी दशों दिशाएँ शून्य हो गईं। जीवन निरर्थक हो गया! तप निष्प्रयोजन हुआ! लोक सुख रहित हुए! हाय, हाय, मैं किसके साथ फिरूँ? किसके साथ बात करूँ? अरे! जरा उठो तो सही? मुझे जरा उत्तर तो दो? मुझ पर तुम्हारा प्रेम था वह कहाँ गया? तुम्हारी मुसकुराहटसे बोलनेकी रीति कहाँ गई?

२०४—यह सुनते ही मेरे प्राण तो मानो उड़ गए, और दूरसे ही मैं आक्रन्दन कर रोने लगी। सरोवरके तीर पर उगी हुई लताओंसे उलझ कर मेरे ऊपर नीचेके कपड़े फटने लगे, और यथाशक्ति जल्दीके कारण ऊँची नीची

भूमि देखे बिना पैर पड़नेसे पद पद पर ठोकर खाती,—मानो मुझे कोई उठा कर ले जाता हो इस प्रकार—मैं उस जगह जा पहुँची, और सरोवरके तीरके पास ठंडे जल-कण रिसते चन्द्रमणिके शिलातल पर बिछाए हुए कुमुद, कुवलय, कमल और विविध वन-कुसुमोंकी सुकुमार मालाओंसे बने हुए, मृणाल-मय,—कामके बाणोंसे ही मानो बने—बिछौने पर सोते, तत्काल मरे उस महाभागको मुझ पापिनी—मदभागिनी—ने देखा। अति निश्चल होनेसे वह मानो मेरे पैरोंका शब्द सुनते थे, अत जोरसे सब मदन संताप नष्ट हो जानेके कारण उस क्षण मानो वह आरामसे सो रहे थे, मनमें उत्पन्न हुए क्षोभके प्रायश्चित्तके लिए वे मानो प्राणायाम कर रहे थे, चमकती प्रभासे युक्त अपने अधरसे—तेरे सबबसे मेरी ऐसी दशा हुई है—यों मानो मुझसे कह रहे थे। चन्द्रके द्वेषके कारण उलटे फिर कर सोनेसे उनकी पीठ पर गिरती चन्द्रमाकी किरणोंने, मदनाग्निसे विह्वल हुए हृदय पर रक्खे हाथके नख-किरणोंके आकारमें, मानो छेद कर दिए थे, सूखी हुई श्वेत रंगकी, स्व विनाशके उत्पातके समान उत्पन्न हुई, मदन चन्द्रकलाके समान, चन्दन रेखा उनके ललाटमें शोभित थी। तुझे अन्य जन मुझसे अधिक प्रिय है।—यों जान मानो कुपित होकर प्राणोंने उन्हें छोड़ दिया था, काम-पीड़ाके साथ प्राणोंको भी मानो अपने आप छोड़ कर वे निश्चेतनताका सुख भोगते थे, अनंग-योगविद्याका मानो वे ध्यान करते थे, अपूर्व प्राणायामका मानो अभ्यास करते थे, कामदेवने मुझे वहाँ लाकर उनसे मानो प्रेम पूर्वक प्राण-रूपी पूर्णपात्र पुरस्कारमें लिया था। उनके ललाट पर चन्दनका तिलक लगा था, सरस बिस सूत्रका उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया था; उनके स्कंध पर कदली गर्भ पत्र-रूपी चारु वस्त्र चिपटा हुआ था, एकावली-रूपी विशाल अक्षमाला उन्होंने पहन रक्खी थी, उनका शरीर निर्मल कपूरके चूरेकी भस्मसे गौर हो गया था, मृणाल-वलय रूपी रक्षा सूत्र बाँधनेसे वे मनोहर लगते थे, मदन-व्रतका वेष बना कर वे मानो मेरे समागमका मंत्र साधते थे, जिनकी फूली हुई पुतली जरा दीखती थी और, निरंतर रोनेसे लाल होनेके कारण, जिनमें मानो मृत्युके कारण आँसुओंका क्षय होनेसे रुधिर आ गया था ऐसे, कामदेवके शरोंकी चोटकी वेदनासे जरा मिंचे हुए नेत्रसे वे मुझे—अरे

कठिन हृदयवाली ? इस अनुरक्त जन पर फिर दर्शन देकर भी अनुग्रह नहीं किया ?—यों मानो प्रेमसे उलाहना देते थे। अधरोंके जरा खुले होनेसे, प्राण हरनेके लिए मानो भीतर घुसी हुई चंद्र किरण बाहर निकलती हो ऐसी दन्त-किरणोंसे उनका आगेका हिस्सा सफेद हो गया था, मदन-अग्निसे फटने हृदय पर रक्खे हुए बाँए हाथसे वे हृदयमें स्थित मुझे—प्राणप्रिये, प्राणोंके साथ तू तो कृपा करके मत चली जाइयो—यों कह कर—मानो धारण करते थे। नख किरणोंसे विषम होनेके कारण मानो चंदन झराते, दूसरे, चित्त रखे हुए, हाथसे वे मानो चंद्रिकाको अपने ऊपर आनेसे रोकते थे। ऊँची गर्दन कर, थोड़ी देर पहले गए हुए उनके प्राणोंका मार्ग मानो देखता हो, ऐसा तपश्चर्या-समयका मित्र, कमण्डलु उनके पास ही रक्खा था। कण्ठमें पहने हुए मृणाल-वलयसे, उनको मानो चन्द्र-किरणकी पाशसे बाँध कर कोई परलोकमें ले जाता हो ऐसा मालूम होता था, और मुझे देख कर ऊँचा हाथ कर—महापाप हुआ, महापाप हुआ—यों दूना रुदन कर चीख मारते कपिञ्जलने उठके कंठमें उनका आलिंगन किया था।

२०५—यह देखते ही मुझे मूर्च्छासे अँधेरा आ गया और, मानो पाताल में धँसी जाती हूँ इस भाँति, उस समय मैं कहाँ गई, मैंने क्या किया, और मैं क्या बोली ?—सो मैंने जरा भी नहीं जाना। उस समय क्या जाने मूढ़ हृदयके अति कठिन होनेसे, या पूर्वजन्ममें किए पापोंका भाजन होनेसे, या इस दैवकी दुःख देनेकी निपुणतासे, या दुरात्मा दुष्ट मदनके अत्यंत प्रतिकूल होनेसे, या अन्य कारणोंसे मेरे प्राण न निकले—यह भी मैंने नहीं जाना। परन्तु बहुत देर पीछे जब मुझे चेतना आई तब मैंने केवल यही देखा कि मानो अग्निमें गिरी, असह्य शोकसे जलती हुई, दुःखिनी मैं भूमि पर तड़प रही थी। उनका यह आकस्मिक मरण और अपना जीवन असंगत [illegible] उठ कर मैं आर्तस्वरसे—हाय, हाय, यह क्या हो गया! हाय माता! [illegible] पिता! अरी सखियो!—यों पुकारती पुकारती—अरे नाथ! प्राणाधार! [illegible] तो सही, यों निर्दय होकर, मुझ अशरणको अकेली छोड़ कर कहाँ [illegible] ते हो? तरलिकासे पूछो तो, तुम्हारे लिए मैंने कितना दुःख भोगा है! सहस्र युगके समान लम्बा दिन कैसे काटते बना है? कृपा करके एक बार

मुझसे बोलो ! भक्त वत्सलता दिखाओ ! जरा तो मेरी ओर देखो ! मेरे मनोरथ पूर्ण करो । मैं पीड़ित हूँ । तुम्हारी दासी हूँ । अनुरक्त हूँ, बाला हूँ, गतिहीन हूँ, दुःखिन हूँ, अनन्य-शरण हूँ, मदनसे हारी हुई हूँ, तो भी क्यों मुझ पर दया नहीं करते ? कहो तो सही मेरा क्या अपराध हुआ है ? मैंने क्या सेवा नहीं की है ? तुम्हारी किस आज्ञाका पालन नहीं किया ? तुम्हारे अनुकूल क्या काम नहीं किया जिससे कुपित होकर दासजनको अकारण छोड़ कर चले जाते हो और लोकापवादसे नहीं डरते ? अथवा असत्य अनुराग दिखा कर धोखा देनेमें कुशल, पापिनी और वामा मुझसे—जो अब तक जीती हूँ—आपको क्या ? अरे ! मैं हतभागिनी विनष्ट हुई, क्या हुआ कि तुम नहीं, विनय नहीं, बन्धुवर्ग नहीं, और परलोक नहीं, कुछ भी मेरा नहीं रहा ? मुझ पापिनीको धिक्कार है जिसके लिए आपकी ऐसी दशा हुई ! हाय हाय ! मेरे समान क्रूर अन्तःकरण-वाली कौन होगी जो मैं आपको ऐसे छोड़ कर घर चली गई ! अरे ! मुझे घरसे क्या काम ? मातासे क्या काम ! बापसे क्या काम ? बधुओंसे क्या काम ? परिजनोंसे भी क्या काम ? अब मैं किसकी शरण जाऊँ ? अरे दैव, करुणा कर, तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरे प्राणनाथको फिर जीवित कर दे । भगवति भवितव्यते, कृपा कर मुझ अनाथ अबलाकी रक्षा कर । अरे भगवति वनदेवि, मुझ पर उपकार कर इनको जीवन दो । अब वसुन्धरे, सकल लोक पर अनुग्रह करनेवाली, रक्षा कर । हे रजनि, क्यों कृपा नहीं करती ? तात कैलाश, अब मैं आपकी शरण आई हूँ, आप दया कीजिये !—इस भाँति चिल्लाती मैं कहाँ तक याद करूँ—ग्रहसे गृहीत, पिशाचसे आविष्ट, उन्मत्त, अथवा भूतसे पीड़ितकी भाँति—विलाप करने लगी । उस क्षण बराबर गिरती अश्रुधाराके आसारसे मानो मैं गली जाती थी, पिघली जाती थी और पानी पानी हुई जाती थी । मेरे प्रलापके अक्षर भी दन्त किरणोंके पीछे आनेसे मानो अश्रुधारा-सहित बाहर निकलते थे, माथेके बाल भी टूटनेसे पुष्प लगातार गिरनेसे मानो आँसूकी बूँदें टपकाते थे, आभूषण भी, नख किरण रूपी आँसू गिरा कर, मानो रुदन करते थे । इस मरनेके समय मैं उनके समान, मरनेकी इच्छासे—मरने पर भी उनके [illegible] प्रवेश करनेके लिये उत्सुक—उनके गात्र पर, दूसरे [illegible] ललाट पर, उरस्थल [illegible] उनके स्कन्ध पर और

चन्दन रसमें डुबाया हुआ कमल पत्र जहाँ रक्खा था ऐसे हृदय पर हाथ फेरती फेरती—पुंडरीक, तुम बड़े निठुर हो, मुझे—ऐसी दुःखनीको—भी कुछ नहीं गिनते—यों उनको उलाहना देती, बारम्बार विनय करने लगी, बारम्बार चुम्बन करने लगी और बारम्बार कंठमें लिपट कर ऊँचे स्वरसे रुदन करने लगी। अरे पापिनी, तैने भी मेरे आने तक इनके प्राणकी रक्षा न की?—इस प्रकार एकावलीकी निन्दा करने लगी। अरे भगवन्, तुम कृपा करके इनको पुनः जीवित करो—यों कह कर कपिंजलके पैरोंमें पड़ने लगी और बारम्बार तरलिका के गलेसे लिपट कर रोने लगी। आज विचार करने पर भी मेरी समझमें नहीं आता कि उस समय ऐसे अचिंतित, अशिक्षित, अनुपदिष्ट, अदृष्टपूर्व, प्राय हजारों प्रिय और दीन वचन मुझ पापिनीमें कहाँसे आ गये, सब प्रलाप कहाँसे आये, और अति करुण और दीन रुदन कैसे हुआ, वह तो कोई दूसरा ही प्रकार था। भीतरसे अश्रु वेगके मानो प्रलय तरंग उठने लगे, अश्रु प्रवाहके मानो फुआरे छूटने लगे, प्रलापके मानो नये नये अंकुर फूटने लगे, दुःखके मानो सैकड़ों शिखर बढ़ने लगे, और एकके पीछे दूसरी मूर्च्छाकी मानो कतार आने लगी।

२०६—यों अपना वृत्तान्त कहते कहते मानो भूतकालकी अति कष्टदायक अवस्था किसी प्रकारसे अनुभव करती महाश्वेता मूर्च्छासे अचेत हो गई और वेगसे शिला तल पर गिरनेको ही थी कि इतने में शोककातर चन्द्रापीडने बड़ा हटसे शीघ्रतासे, सेवकके समान हाथ फैला कर, उसे पकड़ लिया। अनन्तर, [illegible] तर हुए उसीके उत्तरीय वल्कलकी कोरसे धीरे धीरे हवा करके थोड़ी देरमें उसने चेत कराया। करुणासे उसके गालों पर आँसुओंका प्रवाह बहने लगा, और जब महाश्वेताको चेत हुआ तब वह कहने लगा—भगवति, मुझ [illegible]ने आपके शोकको फिर नया कर दिया, जिससे आपकी यह दशा हुई, बस अब इस कथाको रहने दो, यहीं समाप्त करो, अब यह मुझसे सुना भी नहीं जाता। बीते हुए भी मित्रोंके दुःख और प्रियजनोंके वियोग [illegible] फिर कहनेसे अनुभवके समान वेदना उत्पन्न करते हैं। इसलिए किसी [illegible] धारण किए गए इन अनुपम प्राणोंको अब आप बार बार स्मरणकी शोकाग्निमें मत जलाइये।

२०७—कुमारके यों कहने पर महाश्वेता, लंबे और गरम निश्वास लेकर आँखोंमें आँसू डबडबाती हुई दुःखसे बोली—राजपुत्र, जो अति क्रूर प्राण उस अतिदारुण और अशुभ रात्रिमें भी मुझे नहीं छोड़ गए, उनका अब जाना तो बहुत दूरकी बात है। वास्तवमें भगवान् यम भी मुझ दुष्टा और पापिनी-से दूर ही रहता है। मुझ कठिन हृदयाको शोक कैसा? यह तो सब इस दुरात्मा शठ हृदयकी झूठी चाल है। इस निर्लज्जने मुझे सर्वथा सब निर्लज्ज स्त्रियोंकी अग्रगण्य कर दी है और फिर काम-वेदना प्रकट कर, वज्रमयीकी तरह, जो सब दुःख सह सकी उसको केवल कहनेसे क्या हो सकता है? और इससे अधिक कष्टदायक और क्या कहनेको होगा जो न कहा जाय, न सुना जाय। इस वज्रपातके पीछे जो एक आश्चर्य हुआ अब केवल उसे ही मैं आपसे कहती हूँ और प्राण-धारणके एक छोटेसे गुप्त कारणका वर्णन करती हूँ जिसकी दुराशा-रूपी मृगतृष्णामें पड़ी मैं इस मृतप्राय, परायेसे, भारके समान, निष्प्रयोजन, अकृतज्ञ, दुष्ट शरीरको धारण कर रही हूँ। उसे आप सुनिए।

२०८—फिर ऐसी अवस्था होने पर केवल मरनेहीका निश्चय करके और अनेक प्रकारका विलाप कर मैंने तरलिकासे कहा—अरी कठिन-हृदये, अब यों कब तक रोया करेगी? उठ, लकड़ी लाकर चिता तैयार कर, जिसमें मैं अपने प्राणनाथका अनुमरण करूँ! इस बीचमें झट चंद्रमंडलमेंसे निकल कर, कुमुद-सदृश गौर, बड़े प्रमाणका, महापुरुषके लक्षणोंसे युक्त, दिव्य आकृतिवाला एक पुरुष आकाशमेंसे उतरा। वह अपने बाजूबंदके किनारेसे अटके, अमृत-फेनके समान श्वेत, पवनसे चंचल, उत्तरीय को खींचता था, दोनों कानोंमें लटकते मणि-कुंडलोंकी प्रभासे उसके गंडस्थल रक्त दीखते थे, बड़े बड़े मोतियोंके कारण, गुँथे हुए तारागणके समान, अत्यन्त मनोहर हार उसकी छाती पर पड़ा था; श्वेत रेशमी वस्त्र पल्लव का उसने साफा बाँधा था, भ्रमरके समान श्याम और टेढ़े बालोंकी लटें उसके मस्तक पर फैली हुई थीं, प्रफुल्ल कुमुद उसने कानमें पहने थे, कामिनियोंके स्तनोंकी कुंकुम-पत्रलतासे उसका कंधा लाञ्छित था, स्वच्छ जलके समान श्वेत देह-प्रभासे वह दिगन्तरोंका मानो प्रक्षालन करता था, अपने शरीरमेंसे निकलती शीतल कान्तिसे मानो अत्यंत शीत उत्पन्न करता था, हिमके समान

अमृत-कणकी वर्षासे दिगन्तरोंका मानो लेप करता था और गोरोचनका रस मानो छिड़कता था। उसने ऐरावतकी सूँड़के समान मोटी, मृणाल सदृश गोरी उँगलियोंवाली और शीतल स्पर्शवाली अपनी बाहुओंसे उस शवको उठा कर, दुंदुभिके नादके समान गम्भीर स्वरसे, पिताके समान आदरपूर्वक कहा—पुत्री महाश्वेता, प्राण त्याग मत करना, फिर इसके साथ तुम्हारा समागम होगा—और वह उसे लेकर गगनमें उड़ गया। मैं तो इस व्यापारसे भयभीत और विस्मित हो गई, और कुतूहलसे ऊपर देखती देखती कपिंजलसे पूछने लगी कि यह क्या हुआ? परन्तु वह तो घबरा कर उत्तर दिए बिना ही खड़ा होकर—अरे दुष्ट, कहाँ मेरे मित्रको लेकर भागा जाता है?—यों कहता कहता कुपित होकर ऊँचा मुख कर, वेगसे अपने उत्तरीय वल्कलका फेंटा बाँध, उस उड़ते हुएके पीछे पीछे अंतरिक्षमें उड़ गया, और मेरे देखते देखते सब तारागणोंके बीचमें चले गये।

२०६—कपिंजलके जानेसे, मानो दूसरे प्रियतमके मरणसे, मेरा शोक दूना हो गया और मेरा हृदय अत्यंत फट गया। किंकर्तव्यता-विमूढ हो कर मैंने तरलिकासे पूछा—अरी! तू नहीं जानती कि यह क्या हो गया? परन्तु वह स्त्री-स्वभावसे कातर—उस समय शोकसे भी अधिक हुए भयसे डरी हुई—काँपमान गात्रयष्टिवाली, मेरे मर जानेकी शंकासे हृदयमें अत्यंत खिन्न हुई, दीन होकर बोली—भर्तृदारिके, मैं पापिनी कुछ नहीं जानती, परन्तु यह बड़ा आश्चर्य हो गया! उस पुरुषकी आकृति अमानुष थी, और जाते जाते उसने पिताकी तरह आपका अनुकम्पा-सहित आश्वासन किया था। प्राय. ऐसे दिव्य पुरुष स्वप्नमें भी जो कुछ कहते हैं सत्य होता है, फिर साक्षात् कहें तो कहना ही क्या है? विचार करनेसे झूठ कहनेका कारण भी मुझे नहीं दीखता। अब तो यही योग्य है कि आप विचार कर प्राणत्यागके व्यापारको छोड़ दो। ऐसी दशामें यह बड़ा आश्वासन है। फिर कपिंजल उस पुरुषके पीछे गया ही है, उससे आप सब पूछ लेंगी कि वह पुरुष कहाँसे आया था, कौन था, क्यों इस शवको उठा कर ले गया, कहाँ ले गया, और क्यों उसने फिर समागमकी असम्भव आशा दिला कर आपको आश्वासन किया। इसके बाद जीवन या मरणका निश्चय

करना। निश्चय हो जाने पर मरण कुछ भी दुर्लभ नहीं है—यह तो फिर भी होगा। कपिंजल जीता होगा तो आपसे मिले बिना रह नहीं सकेगा। इसलिए वह लौटे तब तक तुम प्राणत्याग मत करो। यों कहती कहती वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी। जीनेकी तृष्णा छोड़नी सबको कठिन होनेसे, स्त्री-स्वभावकी क्षुद्रतासे, उस पुरुषके वचनसे उत्पन्न हुई दुराशारूपी मृग तृष्णासे, और कपिंजलके लौटनेकी आकांक्षासे मुझे भी इस समय यही ठीक लगा और मैंने प्राणत्याग नहीं किया। आशासे क्या नहीं होता? वह पापिनी, काल-रात्रिके समान, सहस्र वर्षके समान लम्बी, मानो यातनामयी, दुःखमयी, नरकमयी वा अग्नि-मयी हो ऐसी, सब रात मैंने निद्राके बिना ही, उसी भाँति भूमि पर लोटते लोटते, सरोवरके उसी किनारे पर, तरलिकाके साथ बिताई। धूलसे धूसर और अश्रुजलसे गीले गाल पर चिपटे हुए छूटे छूटे बिखरे बालोंसे मेरा मुँह ढक गया था, बड़ी बड़ी चीखें मारके रोनेसे स्वर जर्जरित हो गया था और कंठ रुक गया था।

२१०—फिर सवेरे उठ कर, उसी सरोवर में स्नान कर, दृढ निश्चय कर, उन पर प्रीति होनेसे उसी कमण्डलु, उसी वल्कल और उसी अक्षमालाको लेकर, संसारको असार समझ, अपनी अल्पपुण्यता जान, अचिंतित विपत्तिको उपायरहित और दारुण देख कर, शोककी दुर्निवारता विचार कर, दैवकी निर्दयता देख कर, स्नेहको बहुत दुःखोंसे व्याप्त विचार कर, भावोंको अनित्य मान कर, सब सुखोंको क्षणभंगुर जान कर, माता पिताका लिहाज छोड़ कर, परिजनोंके साथ सकल बन्धुवर्गका त्याग कर, विषय सुखोंसे मन हटा कर, इन्द्रियोंका निग्रह कर, और ब्रह्मचर्य ग्रहण कर मैंने, शरणके लिए, अनाथोंके शरण भगवान् त्रैलोक्यनाथ श्री महादेवजीका आसरा लिया। दूसरे दिन [illegible] मेरा वृत्तान्त सुन कर मेरे पिता माता सब बन्धुजनोंको साथ लेकर यहाँ आए। बहुत देर तक उन्होंने शोक किया, और अनेक उपायोंसे, बहुत प्रार्थनासे, अनेक उपदेशोंसे और नाना प्रकारके आश्वासनोंसे मुझे घर ले जानेके लिए बड़े बड़े यत्न किए। परन्तु जब उनको यह निश्चय हो गया कि मैंने भी यह [illegible] से नहीं फिरेगी तब वे निराश हो गये और बार बार घर लौट जानेके लिए कहने पर भी, दुहितृ-स्नेह त्याग कठिन होनेसे, वे कितने ही

दिन यहाँ रह कर दुखित ही, जलते हृदयमे, घर गये। पिताके जाने पर मै उस महापुरुषको केवल आँसू गिरा कर अपनी कृतज्ञता दिखाती, उसके प्रेममे फसे हुए, इस पापसे भरे, निर्लज्ज, अमंगल, अनेक सहस्र क्लेश और श्रम सहते, जले शरीरको विविध नियमोंसे सुखाती, वनमें उत्पन्न हुए फल मूल और जलसे निर्वाह करती, जपके बहाने उसके गुण गणोंको मानो गिनती, तीनों सन्ध्या समय सरोवरमें स्नान करती, प्रति दिवस भगवान् शिवका पूजन करती, तरलिका के साथ, दीर्घ शोकमें इसी गुफामे बहुत दिनसे रहती हूँ। मै ऐसी पापिनी, क्षुद्र, निर्लज्ज, क्रूर, निःस्नेह, नृशंस, निंदनीय, निष्प्रयोजन उत्पन्न हुई, निष्फल जीवन धारण करती, अनाथ, निराधार, और दुखिनी हूँ। ब्राह्मण-वधका महापातक करनेवाली, मेरे देखने वा पूछनेसे आप महाभाग को क्या लाभ? यह कह कर शरद मेघके टुकड़ेके समान श्वेत वल्कलके किनारे से चन्द्रमा के समान मुखको ढक कर, भारी अश्रु वेग रोकनेको अशक्त होनेके कारण, उसने आर्त स्वरसे बहुत ही जोरसे देर तक रुदन किया।

२११—चंद्रापीड़की आदर-बुद्धि तो पहले ही उसके रूप, विनय, दाक्षिण्य, मधुर वाणी, निर्ममता, अति तपस्विता, शांति, निरभिमानता, महानुभावता, और पवित्रतासे बहुत बढ़ गई थी। परन्तु सद्भाव दिखा कर अपना सब वृत्तान्त कहनेसे, और कृतज्ञतासे उसका हृदय मोहित हो गया और अधिक प्रीति उत्पन्न हुई। हृदय आर्द्र हो जानेसे वह उससे धीरे धीरे कहने लगा—भगवति, कष्टसे डरनेवाले, अकृतज्ञ, सुखके लालची पुरुष स्नेहके योग्य कर्म नहीं कर सकते, केवल निष्फल अश्रुपात करके ही अपना स्नेह दिखा कर रोया करते हैं। परन्तु आपने तो कर्ममे ही सब कुछ करके क्या प्रेमके योग्य नहीं किया जिससे रुदन करती हो। जन्मसे ही जिनसे आपका परिचय बढ़ता गया ऐसे प्रिय बान्धव जन आपने उनके लिए ही, अपरिचितके समान, छोड़ दिए हैं। सुलभ होने पर भी अति तुच्छ समझ कर विषयोंका तिरस्कार किया है। इन्द्रसे भी बढ़ कर समृद्धिसे उत्पन्न हुए ऐश्वर्यसुखको त्याग दिया है। मृणालके समान अत्यन्त कोमल शरीरको भी प्रति दिन अनुचित तप सहके सुखा डाला है। ब्रह्मचर्य ग्रहण किया है, तपमे आत्माको नियुक्त किया है, और स्त्री जनको दुष्कर जो

पर भी वनवास अंगीकार किया है। फिर दुःखी जन आत्माका त्याग तो अनायास ही कर सकते हैं, परन्तु बड़े बड़े यत्न करनेसे उसका त्याग न कर वे केवल उसको भारी क्लेशमें ही डालते हैं। मरे हुए प्रियजनके पीछे प्राणत्याग करना बिलकुल व्यर्थ है। यह मूर्खोंके जानेका मार्ग है। पिता, भ्राता, मित्र अथवा पतिके मरनेके पीछे किसीका प्राणत्याग करना मूर्खता, अज्ञान, बिना विचारे काम, क्षुद्र दृष्टि, अति प्रमाद और मूर्खताका स्खलन है। प्राण जो अपने आप ही न जायँ तो उनका त्याग न करना चाहिए। विचार करनेसे मालूम होता है कि प्राण त्याग करना केवल स्वार्थ है क्योंकि यह अपनी असह्य शोकवेदना मिटानेका उपाय है। इससे मरे हुएका कुछ उपकार नहीं होता, वह कुछ फिर नहीं जी उठता, उसका धर्म नहीं बढ़ता, वह अच्छे लोकमें नहीं जाता, नरकमें जानेसे नहीं बचता, दीखता नहीं, अथवा उससे कुछ परस्पर समागम भी नहीं होता। वह अवश जन तो अपने कर्मोंके फलके योग्य स्थानमें जाता है। पीछेसे मरनेवालेको केवल आत्महत्याका पातक लगता है। यदि जीता रहे तो वह जलाञ्जली आदि देकर मृतका और अपना बहुत उपकार कर सकता है परन्तु प्राण त्याग करनेसे तो दोनोंमेंसे एकको भी कुछ लाभ नहीं होता।

२१२—आपको स्मरण होगा कि सकल ललना हृदय-हारी भगवान् काम देवके, महादेवसे उत्पन्न हुई अग्निसे, जलने पर भी उनकी एक मात्र प्रियपत्नी रतिने प्राणका त्याग नहीं किया और तुमसे जीते हुए सब राजाओंके मुकुटोंके कुसुमोंने जिनका चरणागमन सुगंधित हुआ था और सकल भुवनोंमेंसे जिन्होंने [illegible] लिया था ऐसे [illegible] पाण्डु नाम पतिके, किन्दम मुनिकी शापाग्निसे, जलने पर भी यदुवराज शूरसेन राजाकी पुत्री कुन्तीने अपना देह नहीं छोड़ा था। बाल चन्द्रके समान जनानंददायक, विनयवान् और शूर अभिमन्युके मरने पर भी विराट राजाकी पुत्री बाला उत्तराने प्राणत्याग नहीं किए थे और [illegible] धृतराष्ट्रकी पुत्री दुःशला सिन्धुराज जयद्रथ [illegible]—जिसकी महिमा महादेवके वरदानसे

पड़ गई थी—अर्जुनके हाथसे मारे जाने पर भी उसके पीछे कुछ मर नहीं गई थी। इसी तरह अन्य भी राजन, देव दानव, मुनि, मनुष्य और सिद्ध गन्धर्वोंकी हजारों कन्याओंके विषयमें सुना जाता है कि उन्होंने भर्तृ रहित होने पर भी प्राण धारण किए थे। जो अनुमरणमें समागम जरा भी सम्भव हो तो प्राण छोड़ भी दे। परन्तु आपने तो समागमकी वाणीको स्वयं सुना है और जिसका अनुभव हो गया उसमें क्या शंका हो सकती है? ऐसे असाधारण आकृतिवाले सत्यभाषी महात्माओंकी वाणी कैसे जरा भी झूठ हो सकती है? मरे हुएके साथ जीते हुएका समागम नहीं होता—इसलिए वे महात्मा, दया करके, निःसंशय उनको प्रत्युज्जीवित करनेके लिए ही उठा कर सुरलोकमें ले गए हैं। महात्माओंका प्रभाव अचिन्त्य होता है। संसार की वृत्तियाँ अनेक प्रकारकी होती हैं। दैव भी विचित्र है, तपकी सिद्धि अति आश्चर्यकारक है और कर्मोंकी शक्ति भी अनेक प्रकारकी होती है। फिर खूब विचार करने पर भी उनका उठा ले जानेका, जीवन-दानके सिवा, अन्य क्या कारण मालूम होता है? आपको यह असंभव नहीं समझना चाहिए। ऐसा तो पहले कई बार हो चुका है। गन्धर्वराज विश्वावसुसे मेनकामें उत्पन्न हुई प्रमद्वरा नामकी कन्या जब साँपके काटनेसे मर गई तब स्थूलकेशके आश्रममें भार्गव च्यवनके पौत्र और प्रमतिके पुत्र रुरु नामक मुनिकुमारने उसको अपना अर्ध जीवन दिया था। अर्जुन जब अश्वमेधके अश्वके पीछे जाते थे और युद्धमें उनके ही पुत्र बभ्रुवाहनने शर प्रहार करके उनके प्राण हर लिए थे तब उलूपी नामकी कन्याने उनको सजीव किया था। अभिमन्युका पुत्र परीक्षित जब अश्वत्थामाके अग्न्यस्त्रसे उत्तराके गर्भमेंसे मरा हुआ निकला था तब उत्तराके विलापसे दयालु होकर भगवान् वासुदेवने उसे दुर्लभ प्राण दान किया था और उज्जयिनीमें त्रिभुवनवंदित चरण भगवान् सान्दीपनि द्विजके पुत्रको यम गृहसे निकाल कर लाए थे। [illegible]

ऐसा ही होगा, तो भी क्या किया जाय? किसको दोष दें! [illegible]

---

१ भीमने जयद्रथको बहुत तंग किया पर बादमें द्रौपदीके कहनेसे छोड़ दिया। तब जयद्रथने तप करके शिवको प्रसन्न किया और उनसे पाँचों पाण्डवों को मारनेका वर माँगा। शिवने कहा—यह सम्भव नहीं पर तुम, अर्जुनके अतिरिक्त, अन्य पाण्डवोंको युद्ध क्षेत्रमें हरा सकोगे।

बड़ा बलवान् है, भाग्य प्रबल है, अपनी इच्छासे कोई साँस भी नहीं ले सकता। अति निष्ठुर दुष्ट दैवके विलास अति क्रूर होते हैं। निष्कपट होनेके कारण रमणीय प्रेम दीर्घकाल तक नहीं रह सकता। सुख स्वभावसे ही प्रायः क्षण-भंगुर और दुःख चिरस्थायी होता है। प्राणियोंका एक जन्ममें किसी प्रकारसे समागम हो जाता है और सहस्र जन्मान्तर तक विरह रहता है। इसलिए अपनी अनिन्द्य आत्माकी निंदा करना ठीक नहीं है। संसारके अति गहन मार्गमें चलते मनुष्योंको ऐसी ऐसी घटनाएँ होती ही रहती हैं। धीर ही आपत्तिका पार पाते हैं। ऐसे ऐसे अनेक कोमल आश्वासन वाक्योंसे उसको शान्त करके चन्द्रापीड़ने फिर अंजलीमें झरनेका पानी लाकर, इच्छाके बिना भी, हठसे उसका मुँह धुलाया।

२१३—उसी समय सूर्य भी, महाश्वेताका वृत्तान्त सुननेसे मानो शोकातुर होकर, दिवस व्यापार छोड़ अधोमुख हो गया। फिर जब दिन क्षीण हो गया, आकाशमें लटकता हुआ रवि-मंडल पकी हुई प्रियंगु-लताकी मंजरीकी रजके समान पीले रंगसे रँग गया, अस्त समयकी, कुसुमके फूलोंके रससे रँगे हुए वस्त्रके समान कोमल, धूपने दिशाओंके मुखोंको छोड़ दिया, आकाशका नाना रंग दूर होकर चकोरकी पुतलीके समान पिंगल रंग लिए गया, कोकिलके लोचनोंके समान पिंगल सन्ध्याके प्रकाशसे भुवन लाल हो गया, बड़े छोटे तारोंके समूह यथाक्रम दीखने लगे, वन महिषके समान श्याम रंगवाला और आकाशके विस्तारको छुपाता रात्रिका अंधकार उत्तरोत्तर अधिक काला होने लगा, अपना हरा रंग घने अँधेरेमें ढक जानेसे वृक्षोंकी झाड़ियाँ गहन दीखने लगी, ओसकी बूँदोंसे जड़ता उत्पन्न करती—वन कुसुमोंकी अतिशय परिमलसे जिसके चलनेका अनुमान होता था ऐसी—लता और वृक्षोंकी कुंजोंको हिलाती वायु बहने लगी, और रात आनेसे पक्षी [illegible] कारण चुप हो गए, तब महाश्वेता धीरे धीरे उठ कर, पश्चिम [illegible] पर, [illegible] जलसे अपने पैर धोकर, खेद युक्त उष्ण निश्वास लेकर, अपने हाथोंके [illegible] पर आ बैठी। इतनेमें चन्द्रापीड़ने भी उठ कर [illegible] पानीसे अंजली दी और सन्ध्या प्रणाम कर दूसरे [illegible] पर [illegible] बिछौना बिछाया। वहाँ बैठ कर

यह महाश्वेताके वृत्तान्तके विषयमें बार बार मनमें विचार करने लगा। उसने सोचा—वास्तवमें इस कष्टदायक मदनका वेग असहनीय है और प्रतिकार रहित होनेसे बड़ा दारुण है। उससे अभिभूत हुए महापुरुष भी इस भांति मृत्युकी राह न देख, धर्म छोड़, तुरंत प्राणका त्याग कर देते हैं। त्रिभुवना चित शासन भगवान् कुसुमायुध को सर्वथा नमस्कार है! फिर उसने महाश्वेता से पूछा—भगवति, वनवास रूपी आपत्तिके समयकी सखी और दुःख बँटानेवाली आपकी परिचारिका तरलिका कहाँ गई?

२१५—तब महाश्वेता बोली—महाभाग, मैं आपसे कह चुकी हूं कि अमृतसे एक अप्सराओंका कुल उत्पन्न हुआ। उसमें मदिरा नाम एक म... ...नक और बड़ी बड़ी आँखोंवाली कन्या उत्पन्न हुई। सकल गंधर्व कुल के मुकुटाग्र रूपी पाद पीठ पर चरण रखनेवाले देव चित्ररथने उससे विवाह कर लिया और उसके अगणित गुण गणोंसे मोहित होकर महाराजने उसको, अन्य स्त्रियोंको दुर्लभ सब अंतःपुरमें उच्चता दिखानेवाला, हेम पट्टसे लाञ्छित ... छत्र श्वेत-चमर रूपी चिह्न प्राप्त करानेवाला महादेवीका पद परम प्रीतिपूर्वक दिया। फिर उनमें जब अन्योन्य प्रेम बढ़ रहा था और वे यौवन सुख भोग रहे थे तब कुछ कालमें उनको, माता पिताके अथवा सारे गंधर्व कुलके अथवा सकल जीव लोकके ही मानो एक जीवके समान, आश्चर्यकारक एक कादम्बरी नामका कन्यारत्न उत्पन्न हुआ। वह और मैं जन्मसे ही साथ बैठती, साथ सोती, साथ ही पान और भोजन करती थीं, इससे उसके साथ मेरा अत्यन्त प्रेम हो गया। वह मेरे पूर्ण विश्वासका स्थान हुई, और मानो दूसरा हृदय हो इस प्रकार वह मेरी बाल्यावस्थासे ही सखी हुई। हम दोनोंने नृत्य गीतादि कलाओंका साथ ही अभ्यास किया और बालक्रीड़ित ... करते हमारी बाल्यावस्था पूर्ण स्वतंत्रतासे सुखसे बीती। पीछे उसने ... मेरा अनिष्ट वृत्तान्त सुन कर, शोकातुर हो, निश्चय किया कि ... ... शोकमें है तब तक मैं कदापि अपना विवाह नहीं करूँगी और ... ... सामने उसने शपथपूर्वक कहा कि जो मेरी इच्छाके बिना हठसे पिता ... साथ मेरा विवाह करना चाहेंगे तो मैं भूखी रह कर, अथवा अग्निमें ... अथवा फाँसी लगा कर, या विष खाकर निःसन्देह प्राण दे दूंगी ...

२१५—अपनी लड़कीके किए हुए इस निश्चय और निश्चल वचन को परिजनोंके द्वारा गंधर्वराज चित्ररथने कर्णपरम्परासे सुना। फिर कुछ दिन बीतने पर उसे प्रफुल्ल नवयौवनमें आई देख कर उनको अत्यन्त परिताप हुआ और क्षण भर भी चैन नहीं मिला। केवल एक ही अपत्यके और उसपर अत्यन्त प्रेम होनेके कारण वह उससे कुछ भी न कह सके। अन्य कोई उपाय न सूझनेसे यह उचित जान कर, महादेवी मदिराके साथ सलाह कर, आज सबेरे क्षीरोद नामके कंचुकीको मेरे पास भेजा, और उससे संदेशा कहला भेजा—पुत्री महाश्वेते, तुम्हारे वृत्तांतसे ही हमारे हृदय जल रहे हैं। फिर यह एक नया दुःख आ पड़ा है इसलिए अब कादम्बरीको मनाना तुम्हारे ही हाथमें है। इस पर मैंने गुरुवचनके गौरव और सखीके प्रेमके कारण क्षीरोदके साथ तरलिकाको भेजा है और यह कहला भेजा है कि सखी कादम्बरी, क्यों तू दुःखिनीको अधिक दुःख देती है? जो तू चाहती है कि मैं जीती रहूँ तो माता पिताका वचन मान ले। उसके जानेके थोड़ी देर पीछे ही आप इस भूमिमें पधारे। इतना कह कर वह चुप हो गई।

२१६—इस बीचमें, लाञ्छनके बहाने मानो शोकाग्निसे जले हुए मध्यवाले महाश्वेताके हृदयका अनुकरण करता, मुनिकुमारकी हत्याके महापातकको मानो धारण करता, बहुत कालसे लगे हुए दक्ष मुनिके शापाग्निके[1] दाहका चिन्ह मानो प्रकट करता और बहुत भस्म लगानेसे श्वेत हुए और कृष्ण मृग चर्मसे आधे ढके पार्वतीके वाम स्तनके समान, शम्भुके जटा मण्डलके चूड़ामणि भगवान् चन्द्रमाका उदय हुआ। धीरे धीरे जब गगनरूपी महासमुद्रका पुलिन, मर्त्यलोककी निद्राका मंगल कलश, कुमुद-बांधव, कुमुद-वनको विकसित करनेवाला, दश दिशाओंको श्वेत रूप देनेवाला, शंखके समान धवल, मानिनी-योंका मान उतारनेवाला, धवलता फैलानेवाला, चन्द्र-मण्डल उदय होता गया, चन्द्र किरणोंके छा जानेके कारण तारोंकी प्रभा जब कम होती गई, [illegible] चन्द्रकान्तकी शिलाओंके पसीजनेसे जब सब दिशाओंमें धारा बहने

१—चन्द्रमाने अश्विनी आदि—दक्ष की—कन्याओं से विवाह किया पर वह केवल रोहिणी में अनुरक्त रहा। तब दक्ष ने उसे शाप दिया कि [illegible]

लगी, मृणालके अंकुरसे भरे अच्छोद सरोवरमें कमलोंकी शोभा जाती रहनेसे चन्द्रमाकी किरणें मानो विरोधके वश जल पर गिरी हुई दीखने लगीं, मा[illegible] निद्रामें आए, बड़ी बड़ी तरंगोंकी छलकसे काँपते, विरही चकवाकके झुण्ड [illegible] चीखें मारने लगे, चन्द्रोदय जब पूर्ण हो गया, और नयनमेंसे आनन्दा[illegible] रूपी ओस बरसाती, आकाशमें विहार करनेवाली, मनोज्ञ, [illegible] की अभि सारिकाएँ जब दौड़ लगाने लगीं, तब चन्द्रापीड महाश्वेताको निद्रा[illegible] [illegible] अपने पत्तोंके बिछौने पर धीरेसे लेटा और—इस समय मेरे [illegible] वैशम्पायन, विचारी पत्रलेखा, और राजपुत्र लोग क्या विचारते होंगे?—ऐसा चिन्ता करते करते सो गया।

२१७—रात्रिके बीतनेपर प्रातःकाल सन्ध्या करके शिलातल पर बैठ [illegible] महाश्वेता पवित्र अघमर्षण मन्त्रों का जप कर रही थी और चन्द्रापीड प्राभातिक विधि समाप्त कर चुका था कि इतनेहीमें तरलिका आ पहुँची। उसके पीछे एक सोलह वर्षकी उम्रका, साभिमान और अग्राम्य आकारवाला, [illegible] सम्पर्कसे चतुर केयूरक नामका गन्धर्व-पुत्र—मद खेदसे मद [illegible] [illegible] समान भारी भारी पैर रखता हुआ—आया। [illegible] चन्दनके लेपसे उसके [illegible] उरु दंड मटियाले हो रहे थे और कुंकुमके रंगसे [illegible] पीला दीखता था। वह केवल एक धोती पहन रहा था जो सुवर्णकी मेखलासे [illegible] थी, और जिसकी कोर कलाबत्तूको छोड़ और जगह हिल रही था। [illegible] होनेसे उसका मध्यभाग विभक्त हो गया था, छाती विशाल थी, [illegible] गोल और मोटे थे, बाँई कलाई पर मानिकका [illegible] कर्णभूषणमेंसे नीचे फैलते अनेक रंगके किरणसमूहको [illegible] इन्द्रधनुषकी तरह एक कंधे पर धारण करता था। [illegible] [illegible] कोमल और बारम्बार ताम्बूल खानेसे लगे हुए [illegible] ; कानों तक पहुँचने, स्वभावसे ही श्वेत, लोचनों की [illegible] को मानो सफेद करें डालता था, कुमुदवनको मानो [illegible] करता था और दिनको मानो पुण्डरीकमय दरसाता था। उसका [illegible] विशाल था, और उसके केश [illegible] समान [illegible] और [illegible] थे—यह कौन है?—ऐसा कुतूहल उत्पन्न होनेसे [illegible]

देर तक देख कर महाश्वेताके पास जाकर, प्रणाम कर, सविनय बैठ गई । पीछे केयूरक भी मस्तक बहुत झुका कर, प्रणाम करके, महाश्वेताके द्वारा दृष्टिसे बताए हुए एक निकटवर्ती शिला-तल पर बैठ गया । वहाँ बैठे बैठे अदृष्ट पूर्व, कुसुमायुधका भी तिरस्कार करनेवाला, सुर असुर-गंधर्व और विद्याधरोंके रूपका भी उपहास करनेवाला चन्द्रापीड़का उत्कृष्ट सौन्दर्य देख कर वह बहुत विस्मित हुआ ।

२१०—जप समाप्त होने पर महाश्वेताने तरलिकासे पूछा—क्या तूने प्रिय-सखी कादम्बरीको सकुशल देखा ? क्या वह मेरा वचन मानेगी ? इस पर तरलिकाने, जरा नीचे झुके कर्णपाश सहित, विनय-पूर्वक, सिर नीचा करके, अति मधुर वाणीसे विनती की—भर्तृ दारिके, आपकी प्रियसखीको मैंने सब तरह स्वस्थ देखा, और आपका सब संदेश उनसे कहा, परन्तु उन्होंने सुन कर बड़े बड़े आँसू गिरा कर और रोकर जो प्रत्युत्तर कहलाया है उसे, उनका ही भेजा हुआ यह केयूरक नामका वीणा वाहक आपसे कहेगा—इतना कह कर वह चुप हो गई । फिर केयूरक बोला—भर्तृ-दारिके महाश्वेते, देवी कादम्बरी आपको दृढ़ कण्ठालिंगन करके विज्ञापन करती हैं कि तरलिकाने जो मुझसे आकर कहा वह क्या गुरु जनोंका वचन पालने के लिए है, या मेरे चित्तकी परीक्षा लेनेके लिये है, या—मैं घरमें रहती हूँ—इस अपराधका एक मार्मिक उलाहना है, या प्रेम तोड़नेकी अभिलाषा है, या स्नेही जनके त्याग करनेका उपाय है, या प्रकोप है ? मेरा हृदय सहज प्रेमके प्रवाहसे भरा हुआ है—यह तो आप जानती ही हैं । उस पर भी आपको ऐसा अत्यंत निष्ठुर सँदेशा भेजते क्यों जरा भी लाज न आई ? आप तो मधुर-भाषिणी हैं, आपको ऐसा अप्रिय भाषण किसने सिखाया ? स्वस्थ हुआ भी कोई मनुष्य ऐसा नहीं होगा जो ऐसे तुच्छ, परिणाममें विरस कार्यमें मन लगावे, तब फिर मेरे समान—दुःखसे दहकने लगी हुई—की तो बात ही क्या है ? निर-[illegible] [illegible] हुए [illegible] सुखाशा कैसी ? शान्ति कैसी ? सनेह कैसा ? और [illegible] कैसा ? [illegible] मेरी प्रिय सखीकी ऐसी दशा की है उस अविचारक— [illegible] [illegible]—उसको क्या मैं [illegible] करूँगी ? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible]

भी पति-समागमका सुख त्याग देती है, फिर स्त्रियोंका तो कहना ही क्या है ? फिर जहाँ भर्तृविरहसे पीड़ित प्रियसखी दिन रात, परपुरुषका दर्शन त्याग कर, रहती है, उस मेरे हृदयमें अन्य पुरुष कैसे प्रवेश कर सकता है ? जब पति-वियोगसे शोक-ग्रसित प्रियसखी कठिन व्रतोंसे गात्रको कृश करके बड़े बड़े दुःख भोग रही है तब मैं क्या यह सब न गिन कर अपने ही सुखके लिए विवाह करूँ ? मुझको सुख भी कैसे मिलेगा ? आपके प्रेमके कारण मैंने इस विषयमें कुमारियोंके विरुद्ध स्वातंत्र्य लेकर अयश अंगीकार किया, पिताकी कुछ परवा नहीं की, गुरुवचनोंका उल्लंघन किया, लोकापवाद नहीं माना और—स्त्री जनोंके सहज भूषण—लज्जाको भी त्याग दिया, फिर कहिए अब मैं कैसे इसे करूँ ? इसलिए मैं हाथ जोड़ कर, प्रणाम करके, चरण स्पर्श करके, कहती हूँ कि मुझ पर अनुग्रह करिए, आपके साथ मेरे प्राण भी वनमें ही गए हैं। इसलिए अब आप स्वप्नमें भी यह बात फिर मनमें मत लाइए। इतना कह कर केयूरक चुप हो गया।

२१६—महाश्वेताको यह सुन कर बहुत चिन्ता हुई, और—तुम जाओ, मैं स्वयं ही वहाँ आकर जो उचित होगा करूँगी—यों कह कर उसने केयूरकको बिदा दिया। उसके जाने पर वह चन्द्रापीड़से कहने लगी—राजपुत्र, हेमकूट रमणीय है, चित्ररथकी विचित्र राजधानी है, किंपुरुष देश कौतुकपूर्ण है, [illegible] बहुत सुन्दर है, और कादम्बरी सरल-हृदया और महानुभावा है, इसलिए यदि आपको वहाँ चलनेमें बहुत खेद न हो, अथवा कोई बड़ा भारी काम न रुकता हो, अथवा चित्तमें अदृष्टपूर्व देश देखनेका कुतूहल हो, अथवा मेरा [illegible] प्रिय लगता हो, अथवा आश्चर्य दर्शन सुखदायी हो, अथवा [illegible] योग्य हो, अथवा मेरी प्रार्थना न मानना अयोग्य समझते हों, अथवा [illegible] परिचय मुझसे हो गया हो, अथवा मैं अनुग्रहके लायक होऊँ, तो [illegible] आपको निष्फल न करनी चाहिए। यहाँसे मेरे साथ हेमकूट [illegible] और वहाँ मुझसे अभिन्न, अतिशय लावण्यवती, कादम्बरीसे मिल कर [illegible] कुमतिसे उत्पन्न हुए मनामोहका विनाश दूर कर, एक दिन [illegible] दूसरे दिन आप लौट आइएगा। आप [illegible] निष्कारण [illegible] आपने [illegible] कर और अपना वृत्तान्त सुना कर, दुःखान्धकारके [illegible]

चित्त बहुत काल पीछे आज मानो हलका हुआ है और शोक मानो सहनीय हो गया है। साधु-समागमसे दुःखीको भी आराम मिलता है और आपके समान महापुरुषोंका गुणोदय केवल अन्य जनोंको सुखी करनेमें ही लगा रहता है। इस पर चन्द्रापीड़ने उत्तर दिया—भगवति, दर्शन हुआ तबसे ही यह शरीर आपके अधीन है इसलिए जो कार्य आप योग्य समझें उसके लिए निःशंक होकर यथेष्ट आज्ञा दें। यों कह कर वह महाश्वेताके साथ चला।

२०७—क्रमसे हेमकूट पहुँच कर, गन्धर्वराज गृहमें आकर, सुवर्ण तोरण जहाँ बँधे थे ऐसी सात ड्योढ़ी लाँघ कर, चन्द्रापीड़ने, महाश्वेताको देखते ही दौड़ कर आते, दूर से ही प्रणाम करते, हाथमें स्वर्णकी छड़ी लेकर चलते प्रतिहारोंके बताए हुए मार्गमें, कन्याओंके अन्तःपुरके द्वारमें प्रवेश किया और घुसते ही उसने लाखों स्त्रियोंसे भरा दूसरा मानो नारी-मय संसार हो, संख्या जाननेके लिए मानो त्रिलोकीकी स्त्रियाँ एक स्थानमें इकट्ठी की गई हों, पुरुष-हीन मानो दूसरी सृष्टि हो, अपूर्व उत्पन्न हुआ मानो स्त्रियोंका द्वीप हो, पाँचवाँ मानो नारी युगका अवतार हो, पुरुष द्वेषसे प्रजापतिने मानो दूसरा संसार रचा हो, और कल्पोंमें रचनेके लिए उत्पन्न कर तैयार रक्खा हुआ स्त्री जनका मानो कोष हो—ऐसा उस रनवासके भीतरका भाग देखा। दिनको मानो अमृत रसके प्रवाहसे नाचता, अन्तरिक्षको मानो आर्द्र करता, दिशाओंको डुबाता, प्रचुर मरकतमणि मय प्रभा बरसाता, अत्यंत फैलता हुआ, ललनाओंकी लावण्य प्रभा का प्रवाह वहाँ सर्वत्र व्याप्त था, जिससे वह मानो तेजोमय हो, हजारों चन्द्र मण्डलोंसे मानो रचा गया हो, चन्द्रिकासे मानो बनाया गया हो, आभरण प्रभा से मानो उसकी दिशाओंका अवकाश बनाया गया हो, विभ्रमने मानो सब ओरसे संपादित किये हों, यौवन विलाससे मानो सब अवयव बने हों, रति [illegible] मानो संवार किया हो, मदन चरितोंसे ही मानो अवकाश बनाया हो, [illegible] मानो सरस प्रदेश लाया हो, मानो शृङ्गारमय हो, [illegible] हो, [illegible] मय हो, कुसुम शर-मय हो, कुतूहल मय हो, [illegible] हो, आकुलता मय हो, और प्रेम मय हो—ऐसा मालूम होता था।

२११—[illegible] अत्यंत [illegible] होनेके कारण उनका मुख मण्डल मानो इधर उधर [illegible] मानो [illegible] होती थी, [illegible] पृथ्वी मानो [illegible]

कुवलय-वन-मय होती हो, भ्रूलताओंके स्पष्ट विलासमें मानो काम धनु सेना चलती हो, केश कलापके अंधकारसे कृष्णपक्षके प्रदोष मनु म इकट्ठे होते हों, स्मित प्रभासे प्रफुल्ल पुष्पोंसे धवल वसन्त-दिवस स सचार करते हों, श्वास-पवनकी परिमलमें मानो मलयाचलकी वायु चल हो, कपोल मंडलोंके प्रकाशसे मानो हजारों माणिक्य दर्पण जगमगाते हथेलियोंके लाल रंगसे पृथ्वी पर मानो रक्त-कमलोंका मेह बरसता नख किरण चमकनेसे आठों दिशाएँ मानो हजारों मदन बाणोंसे छा हों, भूषण किरणोंके इन्द्र धनुषोंसे मानो पालतू मयूर वृन्द उड़ते हों, यौवन विकारसे मानो अनग उत्पन्न होते हों—ऐसा चन्द्रापीड़ने देख उन कुमारिकाओंके, उचित व्यापारके छलसे, सखियोंके हाथ पकड़ पाणि ग्रहण, वेणु बजानेमें नख-व्यापार, गेंद खेलनेमें करतल-प्रहार, लताओंके सींचनेके लिए कलश कंधे पर रखनेमें भुजालिंगन, हिंडोल झूलनेमें नितम्ब-स्थलका चलन, पानकी बीड़ी चबानेमें दंतोच्चार, व वृक्षोंमें मधु गडूषका प्रचार, अशोक वृक्षोंको ताड़न करनेमें चरणा और उपहार-कुसुम स्खलित होनेमें सीत्कार—यह सब उसने, अनंग गुरु व्यापार मानो करती हों इस तरह, उनको देखा।

के पंखोंका पवन भी आयासकारक होता था। उस अंतःपुरमें सखियोंके मिलने के लिए, हाथका सहारा दिए विना खड़ा होना, कुमारिकाओंको अति साहस लगता था, शृङ्गार करनेमें पहने हारका भार सहन करना स्तनकी कठिनताका ही प्रभाव था, पुष्प तोड़नेमें एकसे दूसरा पुष्प तोड़ना भी युवति-जनके अयोग्य था, कन्याओंके अभ्यासमें माला गूँथना भी असुकुमार जनोंका काम गिना जाता था, और देवताओंको प्रणाम करनेमें (सूक्ष्मता के कारण) मध्यभागका दुहेरा होना कुछ बहुत विस्मयकारक न था।

२२८—इस प्रकारके रनवासमें जरा भीतर जाने पर उसने कादम्बरीके पास रहनेवाली—इधर उधर फिरती—दासियोंके विविध प्रकारके अत्यन्त मनोहर आलाप सुने—अरी लवलिके, केतकीका पराग लेकर लवली लताओंके आस-पास क्यारी बाँध, सागरिके, गंधोदकसे भरे कनकमय सरोवरमें रत्नकी रेती डाल, अरी मृणालिके, कृत्रिम कमलिनियोंमें पेचदार चकवाक पर कुंकुमकी बुकनी मुट्ठी भर भर कर छिड़क, मकरिके, कपूर-पल्लवका रस डाल कर गन्धपात्रोंको सुगंधित कर, रजनिके, तमाल वृक्षोंकी अँधेरी कुंजमें मणिप्रदीप रख, अरी कुमुदिके, पक्षियोंसे बचानेके लिये अनारोंको मोतीकी जालियोंसे ढक दे, अरी निपुणिके, मणि-मय पुतलियोंके स्तन पर कुंकुम-रसके फूल-पत्ते बना, उत्पलिके, सोनेकी बुहारियाँ लेकर कदली-गृहके मरकत-मय चबूतरे झाड़ दे, केसरिके, मदिरा-रस लेकर बकुल-कुसुमोंके मंडपोंमें छिड़क, अरी मालतिके, कामदेव-गृहकी—हाथी दाँत की—अटारी को सिंदूर-रेणुसे गुलाबी कर दे, अरी नलिनिके, गृह-कलहंसोंको कमल मधुका रस पिला, कदलिके, मयूरोंको धारा-गृहमें ले जा, अरी कमलिनिके, चक्रवाकके बच्चोंको

अरी चामरिके, तू यों मिथ्या मुग्धता दिखा कर किसको छलना चाहती है? अरी यौवन विलासोन्मत्ते, स्तन-कलशके भारके कारण शरीरके झुक जानेसे मणि-स्तम्भके मयूरोंका सहारा लेती है—यह हमने जान लिया, अरी परिणामा कादिम्बिनि, तू तो रत्न-मय भीतमें पड़े अपने चित्रके साथ बातचीत करती है, सखि, तेरा दुपट्टा हवामें उड़ गया है, उसको समेटनेके बदले तू तो हाथका ... देकर अपने हारकी प्रभाको पकड़ती है, अरी सखी, तू तो मणि भूमि पर ... पूजा-कमलों पर गिरनेके डरमें अपने प्रतिबिम्बोंहीको तज कर चलती है, ... की जालोंमें पड़े पद्मरागमणिके प्रकाशको लाल सूर्यका प्रकाश जान कर, ... तू अपने करतलमें छत्रीका काम लेती है, अरी, तेरे हाथमें ... गिर पड़ा है—यह तो जानती नहीं है और केवल ... मणिकी किरणको ही दिखाया करती है—ऐसे वचन सुनता सुनता कुमार कादम्बरीके ... पास आया।

२२५—वह मार्ग उपवन लताओंके फूलोंमेंसे पराग गिरनेसे पुलिनके समान लगता था, गुञ्जार करती कोकिलोंके नखमें कुतरे—आंगनोंमें उगे हुए—... फलोंका रस टपकनेसे वहाँ दुर्दिन दीखता था, पवनमें बिखरे हुए—... पर छिड़की गई मधुधाराके-कणोंमें वहाँ मानो नीहार पड़ा मालूम ... था, चम्पक-पत्रके ढेरसे वह मानो काञ्चनद्वीपसा दीखता था, और कुसुम ... गिरे हुए मधुकर-वृन्दके अन्धकारसे वह श्याम ... सा ... था। वहाँ युवतियाँ इधर उधर फिरती थीं, उनके चरणों पर लगी ... राग-सागर हुआ हो, अंगलेपके सुवासमें मानो अमृतकी ... दन्त-पत्रोंके मण्डलमें मानो चन्द्रलोक हो, गोरोचनकी ... प्रियंगु-लताओंका वन हो, ... अंगदके ... मानो ... पहने अशोकपल्लवसे मानो रक्त हो गया हो, शरीर ... बन गया हो, और शरीरपर पुष्पके आभूषणोंसे मानो ... ऐसा दीखता था। सेवाके लिए आई हुई, दासी और ... ... मानो लावण्यमय प्राकार हो ऐसा, चारों ... ... मार्ग उसने देखा। उसके अन्दर पड़ा आभरण ... मालूम होता था मानो जलका प्रवाह नदीके ... ...

े कर, मानो बहावके सामने जाता चन्द्रापीड़ आगे गया तब उसने एक श्रीमंडप देखा जिसके आगे प्रतिहारियोंका मंडल बैठा था।

२२६—उसके बीचमें, चारों ओर मंडल बना कर बैठा,—गहनोंकी चमकसे कल्पलताओंके समान मालूम होतीं—अनेक सहस्र कन्याओंसे परिवृत, नील वस्त्रके चादरेसे ढके हुए—जो बहुत बड़ा न था ऐसे—पलंगके मध्यम, सफेद तकिए पर कुहनी करके रक्खी भुजलताके सहारेसे बैठी हुई, महावराहकी दंष्ट्रामें लटकती पृथ्वीके समान शोभायमान, कादम्बरीको उसने देखा। उसकी देह प्रभाके विस्तीर्ण जलमें, हाथ ऊँचे नीचे करके मानो तैरती, चमरधारिणी हुआ करती थीं, मणि भूमिमें नीचेकी ओर प्रतिबिंब पड़नेसे मानो सर्प उसे नीचे लिए जाते थे, आसपासकी रत्नमय दीवारोंमें प्रतिबिंब पड़नेसे मानो दिक्पाल उसको लिए जाते थे, और ऊपर, मणि मंडपमें, प्रतिबिंब पड़नेके कारण मानो देवता उसे उठा कर ऊपर लिए जाते थे। बड़े बड़े मणिमय खम्भोंने मानो उसको अपने हृदयमें प्रवेश कराया था, भवन दर्पणोंने मानो उसका पान किया था, और श्रीमंडपमें अधोमुखसे उत्तीर्ण हुए विद्याधर मानो उसको गगनमें उठा कर ले जाते थे—उसके दर्शन करनेके कुतूहलसे चित्रके बहाने मानो तीनों भुवन उसके आसपास एकत्रित हुए थे।

चरणोंसे वह मानो प्रवाल रसकी एक नदी बहाती थी, उसके नूपुरोंके मणिगण से निकलतीं किरणें—भारी नितम्बके भारसे खिन्न हुई जंघाओंकी मानो सहायता करनेके लिए—ऊँचे चढ़कर जघन भागका स्पर्श करती थीं, प्रजापति के हाथसे अत्यंत दबाए गए मध्यभागमेंसे गल कर गिरा, जघन शिलातलकी टक्करसे मानो दो टुकड़े हुआ लावण्य जलका प्रवाह हो ऐसा उसका ऊरु-युगल शोभायमान था, सब दिशाओंमें दूर तक किरणें फैला कर, ईर्षासे मानो, पुरुषके दर्शनका प्रतिषेध करते, कुतूहलसे मानो अधिक विस्तृत होते गोरनाश सुखसे मानो रोमाञ्चित होते मेखला कलापने उसके नितम्ब-बिम्बका परिवारण कर रक्खा था। आकृष्ट होकर गिरे हुए सब लोगोंके हृदयके भारसे ही मानो उसके नितम्ब अत्यंत गुरु हो गए थे, उन्नत स्तन होनेके कारण मुखका दर्शन न पाने के दुःखसे ही मानो उसका मध्यभाग क्षीण हो गया था, सुकोमलताके कारण, स्पर्श करते हुए प्रजापतिकी मानो अंगुलि मुद्रा जिसके भीतर घुस गई हो ऐसी आवर्त युक्त गोल नाभि थी, उसकी रोमराजि, कामदेवके द्वारा विजयकी प्रशंसा के लिए लिखी हुई वर्णमाला के समान शोभायमान थी, मदनका ... —उसका सुंदर स्तन युग—इस प्रकार बाहर निकला पड़ता था मानो ... प्रतिबिम्बका अन्त प्रवेश होनेके कारण हृदय, अत्यंत भारके नीचे ... हाथसे उसको सरकाता हो, उसके बाहु स्वर्णभूषणके नीचे फैलती किरणोंके समान और निर्मल लावण्य जलमें उगे मृणालदण्डके समान मालूम होते थे, ... से बरसते किरणोंके मेल्से उसके दोनों हाथ ऐसे दीखते थे मानो ... कंकण पहननेके भारसे थक कर पसीनेकी धारा गिराते हों, ... झुके मुखको मानो ऊँचा करता हो इस भाँति ऊँचे कर ... ठोढ़ीका स्पर्श करता था, उसके विद्रुमलता सदृश लाल होठ, ... क्षोभ पाए हुए राग सागरमेंसे उछली तरंगोंके समान ..., ... गुलाबी कान्तिके होनेसे, मदिरा-रस भरे माणिक्यके ... शोभायमान थे, उसकी नाक रतिके वीणा बजानेके ... सुंदर लगती थी, उसका नेत्रयुगल कुन्दकलियोंके ... जिसके कोने अपनी गतिके मार्गमें ... मानो ...

२—किरण।

लाल हो गए थे, उससे सम्पूर्ण सृष्टिको मानो वह लोचन-मय करनेको तैयार हुई थी, मद-मत्त यौवन कुंजरकी मद-रेखाके समान दोनों भाएँ और राग-युक्त मदनका हृदय मानो वदन पर चिपका हो ऐसा मन:शिलाके लेपका तिलक बिंदु उसके ललाटमें चमकता था, कर्णमें उसने उत्कृष्ट सुवर्णके ताली-पत्र-भूषण मय कर्णपाश पहने थे, जिनमें सोनेके पत्ते हिलते थे ऐसे मरकत और माणिक्यके कुंडल पहने थे—उनसे मानो कमलमेंसे मधुधारा छूटती हो ऐसी शंका होती थी, ललाटको गुलाबी कर देती, सीमन्त पर पहनी चूड़ामणिमेंसे निकलती किरणोंसे उसके लम्बे केश मानो मदिरा रसमें धोए जाते मालूम होते थे, अपनी अर्ध देहमें प्रविष्ट शम्भुसे गर्विष्ट हुई गौरीको हरानेकी इच्छासे वह अंग अंगमें व्यापे हुए अनंगसे अपना अत्यंत सौभाग्य दिखाती थी, छातीमें स्थापित एक ही लक्ष्मीसे आनंदित विष्णुका गर्व हरनेके लिए वह प्रतिबिंबोंसे अपने रूपमेंसे मानो सैकड़ों लक्ष्मियोंको उत्पन्न करती थी, मस्तकमें स्थित एक ही चन्द्रसे विस्मित हुए महादेवका अभिमान तोड़नेके लिए अपने विलास युक्त स्मितसे वह मानो प्रत्येक दिशामें हजारों चंद्र फैंकती थी, महादेवके निदय होकर एक कामको जला डालनेसे मानो कुपित होकर वह प्रत्येक दृष्टिमें लाखों काम उत्पन्न करती थी, वह रात्रि-जागरणसे खिन्न हुए पालतू चकवाक-मिथुनके लानेके लिए क्रीड़ा-नदियोंमें कमल-धूलि रूप रेतीके छोटे-छोटे पुलिन बनवाती थी, परिजनोंके नूपुर शब्द सुनकर दौड़ जाते—अपने प्यारे—हंस-मिथुनको मृणालकी रस्सीसे बाँध लानेकी हंस-पालिकाको आज्ञा दे रही थी, गहनोंमें जड़े हुए मरकत मणियोंकी किरणोंको चाटते पालतू हिरनके बच्चोंको तृणोंके भ्रमसे [illegible] कर [illegible] दूर देती थी, अपनी लगाई लताका प्रथम पुष्पोद्गम निवेदन करनेके लिए आई हुई मालिनको सब गहनोंका दान देकर सम्मान करती थी, [illegible] कुसुमों और पत्तोंसे भरा पत्तोंकी दोनी लेकर आई हुई—[illegible] करनेवाली—[illegible] नाम न समझनेसे हँस-हँसकर उसके

वाहिनीके पयोधर पर मोतीसे भरी चन्द्रलेखाका प्रतिबिम्ब पड़नेसे वहाँ होठ सिकुने भरे नख चिह्न जान कर, पटवासकी मुट्ठी भर कर वह उस पर फेंकती थी, रत्न-कुंडलका प्रतिबिम्ब चमरधारिणीके गाल पर पड़नेसे वहाँ आर्द्र [illegible] जान कर, प्रमादके बहाने दिया हुआ कर्ण-पल्लव रख कर हँसती हँसती, उसको ढक देती थी।

२२८—पृथ्वीकी तरह उसने ऊंचे कुलके भूधरोंका सम्बन्ध तज दिया था और शेष भोग पर स्थित थी। [illegible] लक्ष्मीकी तरह उसका पाद पराग[2] [illegible] की लाई हुई पुष्पकी रजसे धूसर हुआ था। शरद्की तरह उसने मानस[3] जन्म पक्षीका शब्द उत्पन्न करके नीलकंठका गर्व उतारा था। पार्वतीकी तरह उसके उत्तम अंगका आभूषण श्वेतांशुक[4] रचित था। समुद्रके तीर पर उगी हुई वनोंकी कतारकी तरह वह भ्रमरसे श्याम[5] तमाल कानन युक्त थी। चन्द्र मूर्तिके समान उसके गुरु कलत्रका[6] ग्रहण और प्र[illegible] मदन [illegible]

१—पृथ्वीने कुल पर्वतोंको दूर हटा दिया था और वह शेषनागके फण पर स्थित थी, कादम्बरीने उच्च कुलके राजाओंके साथ विवाह करनेसे इनकार कर दिया था और वह विवाहके सिवा अन्य भोग पर स्थित थी।

२—वसंतमें [illegible] रंग फूलोंकी रजसे धूसर हो जाता है, कादम्बरीके चरणोंमें लगा हुआ सुगन्धित रंग भी फूलोंकी रजसे धूसर हो गया था।

३—शरद्में मानसरोवरमें पैदा हुए पक्षियोंके शब्दसे मयूरोंका [illegible] जाता रहता है, कादम्बरीने फिर [illegible] हुए कामदेवके बाणोंके [illegible] महादेवका घमंड तोड़ा था।

४—पार्वतीके मस्तकका आभूषण चन्द्रमाकी किरणोंसे [illegible] [illegible] सफेद रेशमका शिरोभूषण धारण करती थी।

५—श्याम तमालोंके वनोंसे युक्त, कादम्बरीका मुख [illegible] [illegible]ओंसे युक्त था।

६—चन्द्रमाने कामके वश होकर बृहस्पतिकी स्त्री ताराका हरण [illegible] था, कादम्बरीके स्थूल नितम्ब कामके [illegible] [illegible] [illegible] प्रतीत होता था।

हुआ था। वन राजिकी तरह उसका मध्यभाग[1] श्वेत और श्याम लवली-लतासे शोभित था। प्रभात-लक्ष्मीकी तरह उसका शृङ्गार भास्कर मुक्तांशुसे[2] भिन्न पद्मरागका था। आकाश-कमलिनीके समान, उसके स्वच्छ अम्बरमेंसे[3] मृणालके समान कोमल उरुमूल दीखता था। मयूरोंकी श्रेणीकी तरह वह नितम्ब[4] चुम्बि शिखण्ड भार देदीप्यमान चन्द्रकांत थी। कल्पवृक्षकी लताके समान वह काम[5]-फल देनेवाली थी और वह पास ही, सन्मुख बैठ, चन्द्रापीड़की कान्तिका वर्णन करते, केयूरकसे—वह कौन हैं? किसके पुत्र हैं? उनका नाम क्या है? उनका रूप कैसा है? वय कितना है? वे क्या कहते थे? तूने क्या कहा? कहाँ तक उनको तूने देखा? महाश्वेतासे उनका परिचय कहाँसे हुआ? यहाँ वे आवेंगे या नहीं? यों बारम्बार चन्द्रापीड़के सम्बन्धकी ही बातें पूछ रही थी।

२२६—ऐसी कादम्बरी-रूप चन्द्र-रेखाकी शोभा देखते ही चन्द्रापीड़का हृदय समुद्रके जलकी तरह उछलने लगा और वह सोचने लगा कि विधाताने मेरी अन्य इन्द्रियोंको भी नेत्र मय क्यों नहीं बनाया? इन नेत्रोंने ऐसे क्या पुण्य किए हैं जो ये इसको बेरोकटोक देखते हैं? प्रजापतिने सब रमणीयता का यह एक ही कैसा विचित्र भंडार उत्पन्न किया है? ऐसे अतिशय रूपके परिमाणु वह कहाँसे लाया होगा? मुझे मालूम होता है कि इसके बनानेमें, प्रजापतिके हाथ लगनेके दुःखसे, इसके नेत्रोंमेंसे जो आँसूकी बूँदें गिरीं उनसे

१—वनराजिके बीचमें काली और सफेद लवली-लता होती है, कादम्बरीका मध्यभाग श्वेत था और उसमें जरा काली काली सिलवटें थीं।

२—प्रभात, सूर्यकी किरणोंके कारण खिले हुए कमलोंके रंगसे शोभायमान होता है, कादम्बरीके पद्मरागके गहनोंकी चमक मोतियोंकी किरणोंसे बढ़ गई थी।

३—स्वच्छ आकाशमें मूल नक्षत्र दीखता है, कादम्बरीके स्वच्छ कपड़ेमेंसे उसके उरुमूल दीखते थे।

४—मयूर श्रेणी पंखोंमें चमकते हुए चन्द्रकोंसे मनोहर मालूम होती है कादम्बरीकी चोटी कमर तक लटकती थी और वह स्वयं चन्द्रके समान मनोहर थी।

५—इष्ट फल, कामका फल।

वाहिनीके पयोधर पर मोतीसे भरी चंद्रलेखाका प्रतिबिंब पड़नेसे वहाँ स्वेद बिंदुसे भरे नख-चिह्न जान कर, पटवासकी मुट्ठी भर कर वह उस पर फेंकती थी, रत्न-कुंडलका प्रतिबिंब चमरधारिणीके गाल पर पड़नेसे वहाँ आर्द्र दन्त-क्षत जान कर, प्रमादके बहाने दिया हुआ कर्ण-पल्लव रख कर हंसती हंसती, उसको वह ढक देती थी।

२२८—पृथ्वीकी तरह उसने ऊँचे कुलके भूधरोंका सम्बन्ध तज दिया था[1] और शेष भोग पर स्थित थी। वसंत लक्ष्मीकी तरह उसका पाद पराग[2] भ्रमरों की लाई हुई पुष्पकी रजसे धूसर हुआ था। शरद्की तरह उसने मानस[3] जन्म पक्षीका शब्द उत्पन्न करके नीलकंठका गर्व उतारा था। पार्वतीकी तरह उसके उत्तम अंगका आभूषण श्वेतांशुक[4] रचित था। समुद्रके तीर पर उगी हुई वनोंकी कतारकी तरह वह भ्रमरसे श्याम[5] तमाल कानन युक्त थी। चन्द्र-मूर्तिके समान उसके गुरु कलत्रका[6] ग्रहण अति प्रबल मदन विलाससे

१—पृथ्वीने कुल पर्वतोंको दूर हटा दिया था और वह शेषनागके फण पर स्थित थी, कादंबरीने उच्च कुलके राजाओंके साथ विवाह करनेसे इनकार कर दिया था और वह विवाहके सिवा अन्य भोग पर स्थित थी।

२—वसंतमें वृक्षोंका रंग फूलोंकी रजसे धूसर हो जाता है, कादंबरीके चरणोंमें लगा हुआ सुगंधित रंग भी फूलोंकी रजसे धूसर हो गया था।

३—शरद्में मानसरोवरमें पैदा हुए पक्षियोंके शब्दसे मयूरोंका घमंड जाता रहता है, कादंबरीने फिर जिलाए हुए कामदेवके बाणोंके शब्दसे महादेवका घमंड तोड़ा था।

४—पार्वतीके मस्तकका आभूषण चंद्रमाकी किरणोंसे चमकता है, कादंबरी सफेद रेशमका शिरोभूषण धारण करती थी।

५—श्याम तमालोंके वनोंसे युक्त, कादंबरीका मुख अत्यंत श्याम केशोंसे युक्त था।

६—चंद्रमाने कामके वश होकर बृहस्पतिकी स्त्री ताराका हरण किया था, कादंबरीके स्थूल नितंब कामके विलाससे आक्रान्त थे अर्थात् उनको देख कर काम प्रदीप्त होता था।

हुआ था। वनराजिकी तरह उसका मध्यभाग[1] श्वेत और श्याम लवली-लतासे शोभित था। प्रभात लक्ष्मीकी तरह उसका शृङ्गार भास्कर मुक्तांशुसे[2] भिन्न पद्मरागका था। आकाश-कमलिनीके समान, उसके स्वच्छ अम्बरमेंसे[3] मृणालके समान कोमल उरुमूल दीखता था। मयूरोंकी श्रेणीकी तरह वह नितम्ब[4] चुम्बि शिखण्ड और देदीप्यमान चन्द्रकांत थी। कल्पवृक्षकी लताके समान वह काम[5]-फल देनेवाली थी और वह पास ही, सन्मुख बैठे, चन्द्रापीड़की कान्तिका वर्णन करते, केयूरकसे—वह कौन हैं? किसके पुत्र हैं? उनका नाम क्या है? उनका रूप कैसा है? वय कितना है? वे क्या कहते थे? तूने क्या कहा? कहाँ तक उनको तूने देखा? महाश्वेतासे उनका परिचय कहाँसे हुआ? यहाँ वे आवेंगे या नहीं? यों बारम्बार चन्द्रापीड़के सम्बन्धकी ही बातें पूछ रही थी।

२२६—ऐसी कादम्बरी-रूप चन्द्र-रेखाकी शोभा देखते ही चन्द्रापीड़का हृदय समुद्रके जलकी तरह उछलने लगा और वह सोचने लगा कि विधाताने मेरी अन्य इन्द्रियोंको भी नेत्रमय क्यों नहीं बनाया? इन नेत्रोंने ऐसे क्या पुण्य किए हैं जो ये इसको बेरोकटोक देखते हैं? प्रजापतिने सब रमणीयताका यह एक ही कैसा विचित्र भंडार उत्पन्न किया है? ऐसे अतिशय रूपके परिमाणु वह कहाँसे लाया होगा? मुझे मालूम होता है कि इसके बनानेमें, प्रजापतिके हाथ लगनेके दुःखसे, इसके नेत्रोंमेंसे जो आँसूकी बूँदें टपकीं उनसे

१—वनराजिके बीचमें काली और सफेद लवली-लता होती है, कादम्बरीका मध्यभाग श्वेत था और उसमें जरा काली काली सिलवटें थीं।

२—प्रभात, सूर्यकी किरणोंके कारण खिले हुए कमलोंके रंगसे शोभायमान होता है, कादम्बरीके पद्मरागके गहनोंकी चमक मोतियोंकी किरणोंसे बढ़ गई थी।

३—स्वच्छ आकाशमें मूल नक्षत्र दीखता है, कादम्बरीके स्वच्छ कपड़ेसे उसके उरुमूल दीखते थे।

४—मयूर श्रेणी पंखोंमें चमकते हुए चन्द्रकोंसे मनोहर मालूम होती है, कादम्बरीकी चोटी कमर तक लटकती थी और वह स्वयं चन्द्रके समान मनोहर थी।

५—इच्छित, मनका फल।

ही ये कुनद, कमल, कुवलय और कल्हार-युक्त वन उत्पन्न हुए हैं। इस भाँति सोच विचारमे ही उसकी दृष्टि कादम्बरीके नयनों पर पड़ी और उसी क्षण—केयूरक वर्णित राजकुमार यही होंगे—यों विचार करती हुई कादम्बरीकी भी, अतिशय रूपके दर्शनके विस्मयसे विस्तृत, दृष्टि उस पर पड़ी और निश्चल होकर बहुत देर तक अपने लक्ष पर स्थिर रही। उसकी नयन प्रभामे घायल हुआ चन्द्रापीड़, उस क्षण, कादम्बरीको देख विह्वल हो गया और पर्वतके समान निश्चल देख पड़ा। कुमारको देखने पर प्रथम रोमांच हुआ, पीछे गहनों का शब्द हुआ और अंतमें कादम्बरी स्वयं उठ खड़ी हुई। मदन विकारसे ही उसको इस समय पसीना आ गया, परन्तु उतावलीसे उठनेका श्रम उसका बहाना हुआ। उसकी गति रोकनेवाला तो उरु-कम्प ही था, परन्तु उसका अपयश, नूपुर-स्वर सुनकर दौड़ आए, हंस-मंडलको मिला। निःश्वास चलनेमे उसका वस्त्र काँपने लगा, परंतु चमरकी पवन उसका कारण समझी गई। अन्तः प्रविष्ट चन्द्रापीड़का स्पर्श करनेके लोभसे ही उसका हाथ उस क्षण छाती पर पड़ा, परन्तु वह स्तनोंके ढकनेके बहानेसे रक्खा मालूम हुआ। आनन्दमे उसके नेत्रों में आँसू भर आये, परन्तु हिले हुए कर्णपूरकी कुसुम रज उसका बहाना होगई। लज्जासे ही उससे बोला न गया, परंतु मुख कमलकी परिमलसे आए भ्रमर उसको रोकते मालूम हुए। मदन-बाणके प्रथम प्रहारकी वेदनाहीसे उसको सीत्कार होने लगा, परन्तु वह फूलोंके ढेरमेसे केवड़ेका काँटा छिदनेके कारण उत्पन्न हुआ दीखा। कम्पसे ही उसका हाथ काँपने लगा, परंतु समाचार कहने आई प्रतिहारीको निवारण करना उसका बहाना हुआ।

२३०—उस समय कादम्बरीमे प्रवेश करते हुए मदनका भी एक माना दूसरा मदन उत्पन्न हुआ, जो कादम्बरी सहित चन्द्रापीड़के हृदयमे घुसा। उसने [illegible] गंधर्व-राजकुमारीके रत्नाभरणकी प्रभाको तिरोधान[1] समझने लगा, [illegible] में उसके प्रवेशको भी परिग्रह[2] मानने लगा, उसके गहनोंके [illegible] सम्भाषण गिनने लगा, अपनी सब इन्द्रियोंके हरणको भी प्रसाद मानने

[1] दृष्टिको रोकनेवाली, विवाहके समय वर वधूके बीचमे लगाया गया [illegible]। (श्लेष)।

२—स्वीकार, कर-ग्रहण।

लगा और उसकी देह-प्रभाके मध्यमें भी सुरत-समागमके सुखकी कल्पना करने लगा।

२३१—कादम्बरी, मानो बड़े कष्टसे कितने ही कदम आगे आकर, बहुत दिनमें दर्शन होनेसे उत्कंठित हुई महाश्वेताके कंठसे स्नेह और उत्कंठा-पूर्वक लिपट गई। महाश्वेताने भी उसको अत्यंत कंठालिंगन दे कर कहा—सखी कादम्बरी, भारतवर्षमें प्रजा पीड़ा-हारी, तारापीड़ नामक भूपति हैं, उन्होंने असंख्य उत्तम घोड़ोंकी टापोंसे चारों समुद्रों तक अपनी मुहर लगा दी है। उनके यह, निज भुज रूपी शिलास्तम्भों पर विश्रान्त समस्त पृथ्वी रूपी चिन्ह युक्त, चन्द्रापीड नामक पुत्र हैं। दिग्विजयके लिए फिरते यहाँ आ निकले हैं। इनको देखा है तबसे ही यह मेरे प्रकृतिसे निष्कारण मित्र हो गए हैं, और सबका संग छोड़नेसे निठुर हुई मेरी चित्त वृत्तिको भी इन्होंने असाधारण, स्वभाव सरल, गुणोंसे आकर्षण कर लिया है। ऐसे शिष्टाचार युक्त, शुद्ध हृदयके, चतुर, अकारण मित्रका मिलना दुर्लभ है। इसलिए मैं इनको यहाँ हठपूर्वक ले आई हूँ जिससे, इनको देख कर, मेरी तरह तुम भी प्रजापतिका निर्माण कौशल, अद्वितीय रूप, लक्ष्मीका योग्य स्थानमें प्रेम, पृथ्वीको हद् भवाका सुख, मर्त्यलोककी देवलोकसे श्रेष्ठता, मानवीय लोचनोंकी सफलता, सब कलाओंका एक स्थानमें समागम, सौभाग्यका उत्कर्ष और मनुष्योंकी अप्रतिमता [illegible] माना, और तुम्हारे विषयमें मैंने इनसे अनेक प्रकारसे कह दिया है इस लिए—इनको पहले कभी देखा नहीं—यो समझ कर जो लज्जा हो उसे छोड़

माथेसे कहनेके लिये ही मानो उसकी एक भ्रूलता ऊँची चढी, उँगलियोंके बीचमे होकर मरकत मणिकी अँगूठियोंकी किरणें निकलनेके कारण लीला सहित पानकी बीड़ी समेत दीखता उसका हाथ जँभाई आनेको होनेसे मथग मुखकी ओर गया, रिसते हुए पसीनेसे सब लावण्यके धुल जानेके कारण स्वच्छ हुए उसके अवयवोंमे प्रतिबिंब पड़नेसे चन्द्रापीड़ मानो फिरता हुआ कामदेव ही ऐसा दीखने लगा—क्योंकि मणि-भूमि पर कुछ लिखते हुए उसके अंगूठेने, मानो मणिनूपुरोंकी झन्कारसे, उसको बुलाया हो, यों वह चरण-नखमे आ पड़ा था, देखते ही तुरंत दौड़ना हृदय मानो जाकर उसे ले आया हो—यों वह उसके स्तनाभ्यन्तरमे दीखता था, और विकसित कुवलयकी माला जैसी नेत्र दृष्टिसे उसका पान किया हो—यों उसके गाल पर देखनेमे आता था। फिर उस समय वहाँ बैठी सब कन्याओंकी, जो उसको कुतूहलके कारण डाल डाल कर देखती थीं, कोने तक गई हुई तरल पुतलियाँ, बाहर जानेकी इच्छासे ही मानो, कर्णपूरके भ्रमरोंके साथ फिरने लगीं।

२३२—कादम्बरी लीला-सहित प्रणाम करके महाश्वेताके साथ पलंग पर बैठी। शीघ्रतासे परिजनोंके द्वारा सिरानेके पास रक्खी गई, श्वेत अंशुकके प्रच्छद-पटसे युक्त, सुवर्णके पायोंसे चिन्हित, एक छोटी चौकी पर चन्द्रापीड़ बैठे। महाश्वेताके सम्मानके लिए कादम्बरीके चित्तका अभिप्राय समझ कर, प्रतिहारियोंने मुँह बंद करके, उस पर हाथ रख, शब्द बंद करनेका संकेत करके वेणुका स्वर, वीणाका घोष, गीतकी ध्वनि, और मागधियोंका जय शब्द, सब जगह बंद करा दिया। फिर एक दासी शीघ्रतासे पानी ले आई। उससे कादम्बरीने खुद उठ कर महाश्वेताके चरण धोए और अपने दुपट्टेसे उनको पोंछ कर फिर वह पलंग पर जा बैठी। चन्द्रापीड़के चरण भी, कादम्बरीके समान, उसकी विश्वास-पात्र मदलेखा नामक प्राणप्रिया सखीने इच्छा हठसे धोए। फिर कर्णभूषणकी प्रभासे छाए हुए कंधे पर प्रेमसे हाथ फेरती, भ्रमरके भारसे लचे हुए कर्णपल्लवको उछालती, चमरकी पाली जैसी केशोंकी लटोंको सँवारती महाश्वेता कादम्बरीसे कुशल पूछने लगी—परंतु कादम्बरी तो सखीका ऐसा प्रेम देख, अपना घरमें रहना मानो एक बड़ा अपराध जान, कुशल होनेसे ही मानो लज्जित होती हुई कष्टसे अपनी कुशल।

रह गयी। इस समय यद्यपि शोकातुर थी और महाश्वेताके मुखकी ओर देख रही थी तो भी, कटाक्ष फेंकनेसे हिलती चंचल पुतलीसे जिनका मध्यभाग विचित्र दीखता था, ऐसे नेत्रोंको, धनुष चढ़ा कर खड़ा, भगवान् अनंग, बार बार अपने चन्द्रापीडको मानो दुःख देनेहीको, उसकी ओर ले जाता था और वह उन्हें रोक नहीं सकती थी। उसी समय अपने पास बैठी सखियोंके गाल पर चन्द्रापीडका प्रतिबिंब देख कर उसको ईर्ष्या होने लगी, क्योंकि रोमाञ्चित हो जानेके कारण उनमें पड़ा उसका प्रतिबिंब नष्ट होनेसे वह वियोग दुःख भोगने लगी, पसीनेसे तर हुई चन्द्रापीडकी छातीमें पुतलीकी प्रतिमा देख कर उसको पुतली पर रोष आने लगा, निमेषसे दौर्भाग्यका शोक करने लगा और अपना आँखोंमें आनन्द जल भर जानेसे जब उसे देख न सकी तब अपनेको दुःख होने लगा।

अत्यंत वेगसे आगे दौड़ आई हों, बढ गई हों, वा हंसती हों ऐसी दीखती थीं और (कादम्बरी के हाथके) स्पर्शके लोभसे उनमे तत्काल प्रवेश करती—राग-युक्त—पॉचों इन्द्रियोंके कारण, मानो, अन्य प्रकारकी उँगलियाँ धारण करता था। तत्काल सुलभ विलास दर्शनके मानो कुतूहलसे सब रस न जाने कहाँ कहाँ से आ कर कादम्बरीमे बस गए और उसने, लक्ष्य न दीखनेसे शून्यम फैलाए हुए जिसके नख-किरण चंद्रापीड़के हस्तको मानो ढूंढनेके लिए ही आगे आगे दौड़ते थे, और कंपसे हिलते कंकणके शब्दसे जो मानो सम्भाषण करता था ऐसे हाथसे, स्वेद-जल-पात-पूर्वक—अनंगसे अर्पण की हुई इस दासीका ग्रहण करो, यों कह कर मानो अपना ग्रहण कराती, आजसे मेरा जीवन तुम्हारे हाथ है—यों कह कर, मानो अपना जीवन ही रखती हो, यों—उस पानकी बीड़ीको चन्द्रापीड़के हाथमे रक्खा; परन्तु स्पर्श तृष्णासे भुजलताके साथ आया हुआ, काम-बाणसे बीचमें छिदा हुआ अपना मानो हृदय हो ऐसा, रत्न वलय कोमल हाथ खेंचतेमें निकल पड़ा। उसकी भी खबर नहीं पड़ी। फिर दूसरी बीड़ी लेकर उसने महाश्वेताको दी।

२३४—इतनेमे सहसा एक मैना जल्दी-जल्दी आई। उसके चरण कुमुदोंकी केसरके समान पीले थे, मुख चंपाकी कलीके आकारका था और पंख कुवलय-पत्रके समान श्याम थे। इस कारण वह मानो पुष्प-मयी थी। उसके पीछे पीछे एक इन्द्र धनुष सदृश तीन रंगका कठला गर्दनमे पहने, प्रवालांकुर सदृश लाल चोंचवाला और मरकतकी कांतिके समान पक्ष मूलवाला तोता मंद गतिसे चला आता था। वह मैना क्रोधमें बोली—भर्तृदारिके कादम्बरी, क्यों तुम इस, मिथ्या सौभाग्यसे गर्वित, धृष्ट, नीच तोतेको मेरे पीछे पीछे आने से नहीं रोकती हो? जो तुम मेरे परिभवकी परवा न करोगी तो मै अवश्य प्राण दे दूँगी। मै तुम्हारे पाद-पंकजके स्पर्शकी शपथ खाकर सत्य कहती हूँ। यह सुन कर कादम्बरी तो मंद मंद हंसने लगी परन्तु महाश्वेताको इस बातकी खबर नहीं थी इससे उसने मदलेखासे पूछा कि यह मैना क्या कहती है? उसने कहा—भर्तृदारिका कादम्बरीकी सखी यह कालिन्दी सारिका है। उसका इसने परिहास नामके तोतेके साथ इन्होंने पाणि-ग्रहण करा कर ब्याह किया है। परन्तु आज प्रात काल इस मैना ने कादम्बरीको ताम्बूल-वाहिनी तमालिकाको

अकेलेमें इस शुकको कुछ कहते देखा तबसे यह ईर्ष्या करने लगी है और कोपसे रूठ कर अब न उसके पास जाती है, न उससे बोलती है, न उसका स्पर्श करती है और न उसकी ओर देखती है, हम सबने उसको अनेक प्रकारसे मनाया, परन्तु वह नहीं मानती।

२३५—यह सुन कर चन्द्रापीड़, जिसके गालोंके बीचके भागका फड़कना साफ दीखता था, मंद मंद हँस कर बोला—यह बात ठीक है, राजगृहमें कर्ण-परंपरासे सुनी जाती है, परिजन भी ऐसी ही बातें करते हैं, बाहरके लोग भी ऐसे ही कहते हैं, दिगन्तरोंमें भी ऐसी ही कथा सुनी जाती है, और जो हमने भी सुना है कि कादम्बरीकी ताम्बूल वाहिनी तमालिकाके साथ प्रेममें फँसा परिहास नामका तोता कामके वश हो कर यह भी नहीं जानता कि दिन किस तरह बीते जाते हैं। इसलिए यह दुराचारी, निज कलत्र त्यागी, निर्लज्ज इसके साथ रहे, परन्तु कादम्बरीको क्या यह उचित है कि ऐसी चपला हुई दासीको नहीं रोकती है? अथवा देवीने प्रथम ही इस बिचारी कालिन्दीको ऐसे व्यभिचारी तोतेको देकर अपनी निःस्नेहता स्पष्ट कर दी है। अब यह बिचारी क्या करे? क्योंकि सपत्नी होना स्त्रियोंके कोपका प्रधान कारण है, विराग उत्पन्न होनेका मुख्य हेतु है और पराभवका बड़ा स्थान है। इसमें बड़ा धैर्य है, क्योंकि इसने इस [illegible] दुर्भाग्यसे वैराग्य हो जाने पर विष भक्षण नहीं किया, अग्नि प्रवेश नहीं किया अथवा भोजन परित्याग नहीं किया। स्त्रियोंकी लघुताका कारण इसके समान अन्य कोई नहीं है। जो यह इतना बड़ा अपराध होने पर भी कदाचित् [illegible] फिरसे प्रसन्न हो जायगी तो इसको धिक्कार है और सबको इसे तिरस्कार-पूर्वक त्याग कर इससे दूर रहना चाहिए। इससे फिर कौन बात करेगा? कौन इसकी ओर देखेगा? और कौन इसका नाम भी लेगा? कादम्बरी सहित सब [illegible], जो इस नर्म वचनोंको समझ गई थी, चन्द्रापीड़के [illegible] खिलखिला कर हँसने लगी। परन्तु [illegible] कोमल वचन सुन कर परिहास तोता कहने लगा—[illegible] होशियार है। चपल होने पर भी [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] इसको [illegible] है, [illegible] इतना [illegible] है। [illegible] सुन रहो। [illegible] [illegible]

इस पर कुछ प्रभाव नहीं होगा। यह मधुरभाषिणी कौर और प्रसन्नता के समय, कारण, प्रमाण, विषय और प्रसंग सब जानती है।

२३६—इस बीचमें कंचुकीने आकर महाश्वेतासे कहा—आयुष्मती, राजा चित्ररथ और रानी मदिरा तुमको मिलनेके लिए बुलाती हैं। यह सुन कर जानेकी इच्छासे उसने कादम्बरीसे पूछा—सखी, चन्द्रापीड़ कहाँ उतरेंगे? क्या अनेक स्त्रियोंके हृदय रूपी स्थान उनके रहनेके लिए पर्याप्त नहीं हैं?—यों विचार कर, जरा मनमें हँस कर, कादम्बरीने प्रकट कहा—सखी महाश्वेता, तुम ऐसा क्यों कहती हो? जबसे दर्शन हुए तबसे इस शरीरके भी ये ही स्वामी हैं तो फिर महल, विभव और परिजनकी तो बात ही क्या है? जहाँ ये चाहें अथवा तुम्हें अच्छा लगे वहीं सुखसे रहें। यह सुन कर महाश्वेता ने कहा—तब तो तुम्हारे महलके समीपवर्ती प्रमद-वनमें क्रीड़ा पर्वत पर मणि मय महलमें ठहरें—और वह गन्धर्वराजसे मिलने चली गई।

२३६—चन्द्रापीड़ भी उसके साथ ही बाहर निकला, और उसके विनोदके लिए कादम्बरीकी आज्ञासे प्रतिहारी द्वारा भेजी गई—वीणा बजानेवाली, वेणु बजाने में निपुण, संगीत कलामें प्रवीण, जूआ खेलनेमें अनुरक्त, शतरंजमें चतुर, चित्र-कर्ममें श्रम करनेवाली, सुभाषित पढनेवाली—कितनी ही कन्याओंके साथ, पहले देखे हुए तथा केयूरकके बताए हुए मार्गसे, क्रीड़ा पर्वत पर मणि मंदिरमें गया।

२३७—उसके गए पीछे तुरंत ही गन्धर्वराजपुत्री सब सखी जन और परिजनको विदा कर केवल थोड़ीसी दासियोंको ले कर महल पर चढ़ी। [illegible] पलँग पर लेट गई और विनयवती परिचारिकाएँ दूर खड़ी हो कर उसका [illegible] कुछ मनोरंजन करने लगीं परन्तु वह अकेली, उस क्षणमें—चपला, यह क्या करती है? यों कह कर मानो लज्जा उसको पकड़ती हो—गन्धर्वराजपुत्री, [illegible] [illegible] क्या तेरे योग्य है? यों कह कर विनय मानो उसको उलाहना देता [illegible] कहाँ गया तेरा शृंगार रसानभिज्ञ बाल-भाव! यों कह कर मानो मुग्धता [illegible] हँसी करती हो—स्वैरिणि, अकेली यथेष्ट अविनय मत कर! यों मानो [illegible] भाव कहता हो—अरे भीरु, यह कुलीन कन्याओंकी रीति नहीं! यों कह मानो महत्त्व गर्हणा करता हो—दुराचारिणी, अविनय मत कर! [illegible]

आचार मानो फटकारता हो—अरी मूढ़, मदनने तुझे तुच्छ कर डाला! यों कहकर मानो कुलीनता शिक्षा देती हो—तेरा हृदय क्यों ऐसा चञ्चल हो गया? यों कह कर धैर्य मानो लानत देता हो—स्वच्छंदचारिणी, तैंने मुझे भी न गिना! यों कह कर मानो कुलमर्यादा निन्दा करती हो—यों न मालूम क्योंसे ऐसी चेतना आनेसे अत्यन्त लज्जित दीखने लगी।

२३८—फिर वह विचार करने लगी कि मैंने हताश और मोहान्ध हो कर, कुछ शंका बिना, हृदयकी तरलता प्रकट कर यह क्या किया? मेरा और उनका यह पहला ही साक्षात्कार था—इसको भी मैंने हृदयार्पण-रूप साहस करनेमें कुछ शंका नहीं की, लोग मेरे मनको चञ्चल बतलावेंगे—यह भी मैंने निर्लज्जताके कारण नहीं गिना, उनकी चित्तवृत्ति कैसी है—उसकी मुझ मूढ़ाने परीक्षा नहीं की, मैं उनके दर्शन योग्य हूँ या नहीं—यह भी मुझ तरलाने विचार कर नहीं देखा, उनके संग प्रणय स्वीकार न करनेसे जो आकुलता होगी उसका भी भय नहीं हुआ, गुरुजनका कुछ डर न हुआ, लोकापवादका उद्वेग न किया, और फिर महाश्वेता दुखिता है—यह मुझ विवेकहीनाने देखा नहीं, निकटवर्ती सखियोंने भी देखा ही होगी—इसका मुझ मन्दबुद्धिको ज्ञान न रहा, परिजन [illegible] देखते होंगे—यह मुझ नष्टचेतनाने देखा नहीं, मोटी बुद्धिवाले भी ऐसे आचरणको समझ लेंगे, फिर महानुभावका अनुभव करनेवाली महाश्वेता [illegible] कुशल सखियाँ, और राजकुलसंचार चतुर—नित्य चेष्टित आकार समझनेवाली—दासियोंकी तो बात ही क्या है? ऐसी बातोंमें तो राजकुलकी दासियोंकी दृष्टि और भी निपुण होती है। [illegible] होने लगी।

पहले कभी देखा न था, जिनका मुझे अनुभव नहीं था, जिनका नाम भी मैंने सुना नहीं था, जिनका चिन्तन कभी किया न था और जिनका कभी अनुमान भी न किया था, ऐसे यह कोई मेरी विडम्बना करनेके लिये ही आए दीखते हैं कि जिनके केवल देखनेसे ही मेरी इन्द्रियोंने मानो मुझे बाँध कर उनके अधीन कर दिया है; शरपंजरमें डाल कर मदनने मानो मुझे दे दिया है, दासी करके अनुराग मुझे ले गया है; और हृदयने उनके गुणोंके बदलेमें मानो मुझे बेच दिया है; इस भाँति मैं उन्हींकी सेवाकी वस्तु हो गई हूँ। अब मुझे उन चालसे कुछ भी काम नहीं है—ऐसा सकल्प उसने कुछ देर तक किया कि तुरंत ही—मिथ्या विनीते, जो मेरा काम नहीं तो ले मैं यह चला—यों, हृदय काँपनेसे चलायमान हुए अंतर्गत चन्द्रापीड़ने मानो उसका उपहास किया हो; उनके परित्यागके सकल्पके साथ ही बाहर निकलते उसके प्राणने कण्ठ पर आकर मानो आज्ञा माँगी हो, अरी मूर्ख, आँखें धोकर फिर देख कि वह पुरुष परित्यागके योग्य है या नहीं—इस भाँति उस समय आए बाष्पने मानो उससे कहा हो, और तेरा धैर्य मैं प्राणके साथ ही निकाल डालूँगा—यों माना अनंगने उसे फटकारा हो—इस प्रकार फिर पहलेहीकी भाँति उसका हृदय चन्द्रापीड़की ओर झुका। इस तरह सब उपाय निष्फल होनेके कारण प्रेमावेशसे स्वतन्त्रता खोकर, पर-वशकी भाँति उठ कर, खिड़कीकी जालीमेंसे क्रीड़ापर्वतको देखती देखती वह खड़ी रही। वहाँ खड़ी खड़ी आनन्द जलके प्रतिबंधसे मानो उद्विग्न होकर नेत्रोंसे देखनेके बदले वह उसे स्मृतिसे देखने लगी। उँगलियोंमेंसे पसीनेकी बूँदें टपकनेके कारण बिगड़ जानेके माना डरसे कलमसे चित्र काढनेके बदले, केवल भावनासे ही उसकी तसवीर खींचने लगी, रोमोद्गमसे विघ्न होनेकी मानो शंकासे छातीसे लिपटनेके बदले [illegible] आलिंगन करने लगी, और उसके समागममें होता विलम्ब सहन [illegible] मानो अशक्त होकर, दासीके साथ सदेशा भेजनेके बदले, अपने मनहीको उसके पास भेजने लगी।

२३६—चन्द्रापीड़ भी, कादम्बरीका मानो दूसरा हृदय हो ऐसे, [illegible] मणि-गृहमें प्रवेश करके शिलातल पर बिछे गलीचे पर लेट गया। उसके दोनों ओर, एक दूसरे पर बहुतसे तकिए रक्खे थे। [illegible]

केयूरकने उसके चरण गोदमें ले लिए, और वे कन्याएँ निर्दिष्ट स्थान पर उसके आसपास आ बैठीं। तब वह चित्तमें व्याकुल होकर चिंता करने लगा कि गन्धर्वराजपुत्री कादम्बरीके क्या ये ऐसे सर्वलोकहृदयहारी विलास स्वाभाविक हैं या बिना आराधनाके प्रसन्न होकर भगवान् मकरध्वजने मेरे लिए बनाए हैं, जिससे कि वह मुझे अश्रुसे भरी, राग-युक्त, और हृदयके भीतर लगे कामबाणके पुष्पकी रज पड़ी हो इस भाँति जरा मीची हुई आँखोंसे कटाक्ष करके देखती है। मैं जब उसकी ओर देखता हूँ तब वह लज्जा कर वस्त्रके समान श्वेत स्मित प्रभासे अपना आच्छादन कर लेती है। मुझसे शर्मा कर मुँह फेर, मानो मेरे प्रतिबिम्बको प्रवेश करानेके लालचसे, वह अपने गाल रूपी दर्पणको मेरी तरफ कर देती है। मुझे अवकाश देनेवाले हृदयकी प्रथम अविनयकी मानो रेखायें वह अपने नखसे शयन पर लिखती है। मुझे बीड़ी देनेमें खेदसे काँपते अपने हाथसे—जिसको रक्त कमल समझ कर भ्रमरोंके झुण्ड इधर उधर घूमा करते थे—मानो लीलाकमल लेकर वह खिन्न हुए मुझ पर हवा करती है।

२४०—वह फिर विचारने लगा कि प्रायः यह मनुष्य जाति [illegible] हो, ऐसे ऐसे हजारों मिथ्या संकल्प कर कर कर, मुझे छलता है, [illegible] [illegible] [illegible] मद था मदन उन्माद करता है, क्योंकि तिमिर[1] कलुषित हुई पुतलीवालोंको अलग चतुर[2] भी बहुत लगता है, रातें ज्योत्स्ना[3] भी इसके [illegible] बहुत विस्तार कर देता है, स्वयं ही पैदा की हुई मदन [illegible] चतुराई तरलता, [illegible] की तरह, जिनकी उपेक्षा नहीं

१—नेत्र रोग, विचार-शून्यता।

२—चमत्कार, ज्ञान विचार। आशय यह है कि विचारहीन लोग [illegible] [illegible] विचारको बहुत [illegible] देते हैं।

३—[illegible]

४—[illegible]

करती है? चतुर अनंगसे[1] गृहीत तरुण पुरुषोंकी चित्त-वृत्ति, चित्र काढनेकी कूचीकी तरह, कुछ नहीं काढती यो नहीं है, रूपसे गर्वित[2] हुई वेश्याके समान आत्म-संभावना कहीं आत्मार्पण नहीं करती यों नहीं है। मनुष्य का मनोरथ, स्वप्नके समान, अननुभूत वस्तुका भी दर्शन करा देता है। जादूगरके मोम्हलके समान प्रत्याशा असंभावितको भी लाकर आगे रख देती है। फिर विचारने लगा कि यों मनको केवल वृथा खेद देनेसे क्या लाभ? जो कदाचित् उस मदन नयनाकी चित्त-वृत्ति मेरी ओर वस्तुत ऐसी ही हो गई है तो थोड़ी देरमें बिना प्रार्थना ही प्रसन्न होकर भगवान् कामदेव उसे प्रकट कर देगा, और नहीं यह संशय दूर करेगा। ऐसा निश्चय कर, उठ कर बैठ गया, और उन कन्याओंके साथ पासोंसे, गानेसे, वीणा बजानेसे, ढोलकी बजानेसे, निषादादि स्वरके कोमल मंद्रादि सदेहके विवादसे, सुन्दर वार्ताओंसे, और ऐसे ही अन्य आलाप और सुकुमार कला विलाससे विनोद करने लगा। इस प्रकार वहाँ थोड़ी देर ठहर कर, बाहर जाकर उपवन देखनेकी इच्छासे, वह क्रीड़ा पर्वतके शिखर पर चढ़ा।

२४१—कादम्बरी उसे देखते ही, महाश्वेताको आनेमें देर हो जानेसे उसका मार्ग देखनेके बहाने, कामातुर चित्त हो उस खिड़कीको छोड़, अपने महलकी सबसे ऊपरकी अटारी पर, पार्वती जैसे कैलाश पर्वत पर चढ़ती थी उस प्रकार, चढ गई। वहाँ उसके साथ थोड़ी ही दासियाँ थीं, पूर्ण-चन्द्रमंडलके समान श्वेत स्वर्ण दंडकी छत्री उस पर धूप रोकनेके लिए लगाई गई थी—फेनके समान सफेद चार छोटे छोटे पंखे हिला कर दासियाँ उसको पवन करती थीं, और सिर पर फूलोंकी सुगंधसे लपका कर घूमते भ्रमरोंका मानो काला [illegible]

करती है उसी प्रकार कामी लोग अपने आप पैदा की हुई अनेक रूप वस्तुओंकी इच्छासे व्याकुल होकर किस किस वस्तुकी अभिलाषा नहीं करते हैं?

१—चित्रकर्ममें कुशल मदन जैसे कूची हाथमें लेकर चित्र [illegible] [illegible] तरह चतुर कामदेवके वशमें हुए युवकोंकी चित्तवृत्ति भी [illegible] [illegible] लेती है।

२—जैसे वेश्या अपनेको भेट कर देती है, उसी तरह आत्मसंभावना[illegible] कारण लोग सबको अपना समझने लगते हैं। आत्म-संभावना=अपनेको बड़ा समझना।

दिनमें भी अड्ड कर कर चन्द्रापीड़की अभिसारिका होनेके वेषका अभ्यास करती थी। वहाँ बार बार कभी चमर शिखाका सहारा लेकर, कभी छत्रदण्डका अवलम्बन कर, कभी तमालिकाके कंधे पर हाथ धर कर, कभी अपनी सखी मदलेखाका आलिंगन कर, कभी परिजनामें शरीर ढक जानेके कारण केवल आँखकी कोरसे देख कर, कभी इस तरह फिर फिर कर जिसमें ललाट पर तीन सिलवटें पड़ जावें, कभी प्रतिहारीकी छड़ीकी मूठ पर गाल रख कर, कभी निश्चल हाथने ली हुई बीड़ी होठके आगे बार बार कर कर और कभी कमल फेंक कर उसके प्रहार करनेसे दौड़ती दासीके पीछे कितने ही कदम चलकर, हँसती हँसती वह चन्द्रापीड़को देखने लगी और चन्द्रापीड़ उसे देखने लगा। यों करते करते बहुत काल बीत गया, पर मालूम नहीं हुआ।

गई जल किरणोंसे भवनोंको श्वेत रूप देती मदाकिनी पृथ्वी तल पर आ गई।

२४४—जिस दिशामेसे वह प्रकाश आता था उस ओर कुतूहलसे नेत्र फेंके तो बहुतसी कन्याओंके बीचमे मदलेखाको आती देखा। उसके ऊपर सफेद छत्री लग रही थी, और दोनों ओर दो चमर झलते थे। कादम्बरीकी प्रतिहारीने अपने बाएँ हाथमे बेंतकी छड़ी और गीले रूमालसे ढका, चन्दन लेपसे युक्त, नारियलका सपुट ले रक्खा था और दक्षिण हाथसे मदलेखाके हाथको सहारा दिया था। फूँक मारनेसे उड़ जायँ ऐसे, साँपकी काँचलीके समान स्वच्छ, कल्पलताके दो धुले वस्त्र पहने केयूरक मार्ग बताता जाता था। हाथमे चमेलीके फूलोंके गजरे पहने तमालिका उसके पीछे पीछे आ रही थी। उसके पास ही तरलिका चलती थी, जिसके हाथमे सफेद कपड़ेसे ढकी एक छोटीसी टोकरीमें क्षीरसागरकी धवलताका मानो कारण, चन्द्रके सहोदरके समान प्रभा बरसाता अत्यन्त शुद्ध एक हार था। वह नारायणके नाभि-कमलके मृणाल दण्डके समान, मंदरा-चलके द्वारा उत्पन्न हुए क्षोभसे उठे अमृतके फेन पिंडके समान, मथन-श्रम होनेमे छोड़ी हुई वासुकी नागकी काँचलीके समान, पितृ-गृहके वियोगसे गल कर गिरे लक्ष्मीके हास्यके समान, मंदरा-चलके मथन करनेसे कुचली हुई चन्द्रमा की मन्द कलाओंके संचय के समान, सागर-जलमे से उठाए प्रतिबिंबित तारागणके समान, दिग्गजों की सूँडमे से गिरते जल कणके पुंजके समान, मदन गजके नक्षत्रमाला नामक आभरणके समान, शरदके मेघके टुकड़ोंका मानो बनाया गया, कादम्बरी के रूपसे वश हुए मुनिजनोंके हृदयोंका ही मानो रचा गया, सब रत्नोंका शिरोमणि, सब सागरोंका मानो एकत्र किया गया यश-समूह, चन्द्रमाका मानो प्रतिपक्ष और चन्द्रिकाके प्राणके समान था। लक्ष्मीके हृदयके समान, कमल पत्रके ऊपरकी जलकी बूँदके विलासके समान तरल[1] था, [illegible]के समान उसके कर मृणाल वलय चवल[2] थे, शरद् चन्द्रकी [illegible]

१—लक्ष्मीका हृदय जल बूँद के समान चचल है, हारके मणका भी [illegible] बूँदके विलासके समान था।

२—कामातुर के हाथ मृणालके वलयोंसे धवल होते हैं, हारकी [illegible] मृणाल वलयके समान धवल थीं।

गई जल किरणोंसे भवनोंको श्वेत रूप देती मदाकिनी पृथ्वी तल पर आ गई।

२४४—जिस दिशामेसे वह प्रकाश आता था उस ओर कुतूहलसे नेत्र फेंके तो बहुतसी कन्याओंके बीचमे महलेखाको आती देखा। उसके ऊपर सफेद छत्री लग रही थी, और दोनों ओर दो चमर झलते थे। [illegible] प्रतिहारीने अपने बाएँ हाथमे बेंतकी छड़ी और गीले रूमालसे ढका, चन्दन लेपसे युक्त, नारियलका सपुट ले रक्खा था और दक्षिण हाथमे [illegible] लेखाके हाथको सहारा दिया था। फूँक मारनेसे उड़ जायँ ऐसे, [illegible] काँचलीके समान स्वच्छ, कल्पलताके दो धुले वस्त्र पहने [illegible] मार्ग [illegible] जाता था। हाथमे चमेलीके फूलोंके गजरे पहने तमालिका उसके पीछे [illegible] आ रही थी। उसके पास ही तरलिका चलती थी, जिसके [illegible] सफेद कपड़ेसे ढकी एक छोटीसी टोकरीमे क्षीरसागरकी धवलताका मानो कारण, [illegible] के सहोदरके समान प्रभा बरसाता अत्यन्त शुद्ध एक हार था। [illegible] नाभि-कमलके मृणाल दण्डके समान, मंदराचलके द्वारा उत्पन्न हुए [illegible] उठे अमृतके फेनपिंडके समान, मथन-श्रम होनेमे छोड़ी हुई [illegible] काँचलीके समान, पितृ-गृहके वियोगसे गल कर गिरे लक्ष्मीके [illegible] समान, मंदराचलके मथन करनेसे कुचली हुई चन्द्रमाकी [illegible] कलाओंके [illegible] संचय के समान, सागर जलमे से उठाए प्रतिबिंबित तारागणके समान, [illegible] की सूँडमे से गिरते जल कणके पुंजके समान, [illegible] नामक आभरणके समान, शरद्के मेघके टुकड़ोंसे मानो बनाया गया, [illegible] के रूपसे बश हुए मुनिजनोंके हृदयोंका ही मानो रचा गया, [illegible] शिरोमणि, सब सागरोंका मानो एकत्र किया गया यश समूह, चन्द्रमा [illegible] प्रतिपत्त और चन्द्रिकाके प्राणके समान था। लक्ष्मीके हृदय [illegible], [illegible] हार कमल पत्रके ऊपरकी जलकी बूँदके [illegible] समान [illegible], कामातुरके समान उसके कर मृणाल वलय [illegible], [illegible]

१—लक्ष्मीका हृदय जल बूँदके समान चंचल है, [illegible] जलकी बूँदके विलासके समान था।

२—कामातुर के हाथ मृणालके वलयोंसे चंचल होते हैं, [illegible] मृणाल वलयके समान चंचल थी।

न मुक्तांशुसे[1] दिशाओं को श्वेत करता था, और मदाकिनीके प्रवाहकी तरह वह देवांगना-स्तन[2]-परिमलवाही था। उस हारको देख—चन्द्रिकाको मात करनेवाली इस धवलताका कारण यही है—यों निश्चय कर, दूरसे चन्द्रापीड़ने अभ्युत्थानादि योग्य उपचार विधिसे, आती हुई मदलेखाका स्वागत किया। आकर वह उसी मरकत शिलातल पर थोड़ी देर बैठी, परन्तु फिर फौरन उठ कर चन्दन रसका उसने चन्द्रपीड़को लेप किया, दोनों वस्त्र पहनाये, मालती के फूलोंकी मालाओंसे शेखर की रचना की और हार लेकर कहने लगी—राजपुत्र, अहंकार-रहित आपकी मनोहर काँति प्रीति परवश जनसे क्या क्या नहीं करासकती है? आपका विनयही ऐसे प्रीति-परवश जनोंको आपके सन्मुख आनेका अवकाश देता है। आप इस आकृतिसे किसके जीवनके स्वामी नहीं हैं? यह आपका निष्कारण स्नेह-मय चरित्र देख कौन आपका बन्धु न होगा? आपका यह मधुर प्रकृतिका व्यवहार किसको मित्र नहीं करता? स्वभावसे ही सुकुमार वृत्तिवाले आपके गुण किसका समाश्वासन नहीं करते? दोष तो आपकी आकृतिहीका है कि वह प्रथम दर्शनमें ही ऐसा विश्वास उत्पन्न कर देती है, नहीं तो आपके समान-सकल भुवनमें विख्यात महिमावाले-पुरुषोंके साथ चाहे जैसा वर्ताव करना अनुचित सा लगता है—सभाषण से भी मानो लघुत्व होता है; आदरसे भी मानो प्रभुताका गौरव सूचित होता है, स्तुतिसे भी मानो स्वाभिमान प्रकट होता है, उपचारसे भी मानो चपलता दीखती है, प्रीतिसे भी मानो आत्म-ज्ञान का अभाव मालूम पड़ता है, विज्ञापना भी प्रगल्भता के समान मालूम होती है, सेवा भी चपलता-सी दीखती है, और दानसे ऐश्वर्यका तिरस्कार सा होता है—आशय यह है कि जिसने स्वयं हृदयका ही ग्रहण कर लिया उसको क्या दिया जाय? जीवितेश्वर के लिए करने को क्या रह जाता है? यहाँ पधार कर आपने जो प्रथम ही बड़ा उपकार किया उसका बदला क्या हो सकता है? दर्शनसे ही आपने हमारा जीवन सफल किया;

१—चद्रमा मेघोंसे छोड़ी गई किरणोंके समूहसे दिशाओंको सफेद करता है; हार घने मोतियोंकी किरणों से दिशाओं में चांदना कर देता था।

२—मदाकिनीका प्रवाह देवांगनाओं के स्तनोंके लेपकी सुगन्ध धारण करता है, हारका देवांगनाओंके स्तनोंके साथ दृढ़ सयोग रह चुका था।

आपका आगमन हम किस प्रकार सफल कर सकती हैं ? [illegible] कादम्बरी आपको अपना केवल प्रेम दिखाना चाहती है, [illegible] का विभव दूसरों के लिए होता ही है, यह कुछ [illegible] करने की [illegible] है, इसलिए विभवकी बात तो यहाँ है ही नहीं । आपके समान [illegible] दासी होकर रहने से भी वह कुछ अयोग्य काम करती नहीं [illegible], अपनी आत्मा आपको समर्पित करे तो भी वह छली गई [illegible], और जीवनका अर्पण करे तो भी उसको कभी परिताप न होगा, [illegible] सज्जनों की महत्ता प्रणयिजनका निराकरण करनेके पराङ्मुख और [illegible] अधीन रहती है—कुछ देते हुए जितनी हमको शरम [illegible] है [illegible] माँगते हुए भी नहीं आती । इसलिए इस व्यापारसे [illegible] कादम्बरी [illegible] अपनेको आपकी अपराधिनी मानती है । यह हार अमृत मथन करके [illegible] गए सब रत्नोंमें से बचा शेष नामका है इसलिए भगवान् [illegible] बहुत प्रिय है । उन्होंने घर आने पर वरुणको दिया था । उन्होंने [illegible] को, और गन्धर्वराजने कादम्बरी को दिया । उसने यह आभूषण आप [illegible] योग्य देख, चन्द्रका योग्य स्थल आकाश ही है पृथ्वी नहीं, [illegible] पास भेजा है । यद्यपि आप जैसे सत्पुरुष अपने शरीर [illegible] आभूषणोंसे अलङ्कृत गिन कर, अन्य जनोंका प्रिय आभरण, [illegible] कर, नहीं धारण करते तो भी यहाँ कादम्बरीकी प्रीति ही [illegible] है । [illegible] भगवान् नारायणने कौस्तुभ नामक शिलाके [illegible], लक्ष्मीका [illegible] कर, बहुत मानसे अपनी छाती पर नहीं [illegible] ? नारायण कुछ [illegible] नहीं है, [illegible] जरासे गुण-लेशसे [illegible] है, आप की अनुकृति [illegible] कादम्बरीका [illegible] लक्ष्मी [illegible] भी [illegible] [illegible] उसका मान रखना चाहिए—[illegible] प्रीति [illegible]

तट पर तारागणके समान, उसके वक्षःस्थल पर हार धारण कराना।

२४५—फिर चन्द्रापीड़ने विस्मित हो कर उत्तर दिया—मदलेखा, मै क्या कहूँ? तुम बहुत निपुण हो, स्वीकार कराना जानती हो। बोलनेमे ऐसी चतुरता की है कि उत्तर देनेका अवकाश नहीं रक्खा। मुग्धे, अपना मै कौन हूँ? और फिर लेने और न लेनेका ही मै कौन हूँ? इस बातका तो अब अंत हो गया। तुम सब सौजन्यशील कुमारिकाओंने मुझे अपना बना लिया है इसलिए इष्ट अथवा अनिष्ट व्यापारमें जिस तरह चाहो मुझे नियुक्त करो। अत्यंत विनीत कादम्बरीके वशीकरण-शील गुण किसे उनका दास नहीं बना लेते है? इतना कह, कादम्बरीके विषयकी ही बहुत देर तक बातचीत कर, राजपुत्रने मदलेखाको विदा किया। उसके थोड़ी दूर जानेके बाद क्रीड़ा पर्वत पर—उदयाचल पर आए हुए चन्द्रके समान—चन्दन, वस्त्र तथा हारसे धवल दीखते चंद्रापीड़को देखनेके लिए, छड़ी छत्र चमर आदि राजचिह्न छोड़ कर, सब परिजनको दूर कर केवल तमालिकाके साथ कादम्बरी फिर महलके शिखर पर चढी। वहांसे पहलेकी भाँति ही वह विविध भ्रूविलास रूपी तरंगसे भरे उद्दीपक कटाक्षोंसे उसका मन हरने लगी। कितनी ही बार अपना बायाँ कोमल हाथ स्तम्भ पर रख कर, पहने हुए वस्त्रके कोने तक दायाँ हाथ नीचे लटका कर, निश्चल पुतली युक्त, मानो काढी गई हो, कितनी ही बार जँभाई आनेको होनेसे मुँहके आगे धरे चित्त हाथसे मानो उसका नाम ले लेनेके भयसे अपना मुँह बंद करती हो, मॉखकी सुगंधिसे घूमते भ्रमरोको, कितनी ही बार, वस्त्रके किनारेसे झपट मार कर उनकी गुञ्जारसे मानो चन्द्रापीड़को बुलाती हो, कितनी ही बार पवनसे छातीके वस्त्र उड़ जानेकी घबराहटमे अपने दोनो हाथोंको मोड़ और उनसे स्तनोंको ढक कर मानो आलिंगनका इशारा करती हो, कितनी ही बार केशपाश मेंसे फूल ले कर अपनी अंजली भर लीला सहित सूँघनेसे मानो नमस्कार करती हो, कितनी ही बार दोनों हाथोंकी तर्जनियोसे मोतीका हार फिरा कर हृदयमे उत्पन्न होती उत्कण्ठाको मानो सूचित करती हो, कितनी ही बार कुसुमोसे ठोकर खा जानेसे हाथ काँपनेके कारण मानो मदन बाणके प्रहारकी वेदना दिखाती हो, कितनी ही बार तागड़ीकी लड खिसक जानेसे चरण बँध जानेके कारण मानो कामदेवसे बाँध कर अर्पित की गई हो, कभी कभी उत्कंप होनेसे उसका वस्त्र

ढीला हो जाता था और भूमि पर फहराते वस्त्रके केवल एक किनारेहीसे स्तन ढके रहते थे, चकित होकर पीछे मुड़नेसे उसकी त्रिवली-लता टूट जाती थी, उसके हाथ स्कंध पर लटकते केशकलापको इकट्ठे करने और बाँधनेमें लग जाते थे, कटाक्ष फेंकनेसे कर्णकमल धवल हो जाता था और लज्जासे उत्पन्न होते हास्यामृतकी रजसे गाल धूसर हो जाते थे। इस प्रकार सूर्यप्रकाश मंद पड़ कर दिवस लाल लाल दीखने लगा तब तक वह मुँह मोड़ मोड़ कर उसको, अनेक भाव उत्पन्न होनेके कारण, कटाक्षसे देखती देखती खड़ी रही।

२४६—फिर हृदय स्थित कमलिनीके मानो रागसे[1] जब संपूर्ण भुवन मण्डलके चक्रवर्ती, कमलोंके प्राणनाथ, भगवान् भास्कर रक्त होने लगे, दिन नष्ट कर देनेसे कुपित होती कामिनियोंकी लाल लाल दृष्टिसे ही मानो आकाश जब लाल लाल हो गया; वृद्ध हारीतके समान हरित अश्ववाला सूर्य जब अपनी प्रभा थोड़ी थोड़ी कम करने लगा, रविकिरणोंसे रहित हुए जब [illegible] कमलवन जब हरे दीखने लगे, कुमुदसमूह जब सफेद दीखने लगा, दिशाओंके मुख जब लाल लाल होने लगे, प्रदोष जब श्याम होने लगा, दिवस और रात्रिके समागम होनेकी मानो आशासे अनुराग[2]युक्त दिखाई [illegible] जब भगवान् सूर्य धीरे धीरे अस्त हो गये, तत्काल उत्पन्न हुए [illegible] हृदयराग[3]-रस-सागरके समान संध्या रागसे जब सकल भुवन [illegible] गये, कामिनियोंने [illegible] चक्रवाकके हृदयोंमें [illegible] समान—मालिनीके नयनोंमेंसे अश्रु[illegible]—तरुण तमालके समान श्यामल अंधकार जब सब जगह फैलने लगा, [illegible] के समान [illegible] आकाश [illegible] दीखने लगा और [illegible] देख नहीं पड़ने लगा, तब कादम्बरी महलके [illegible] क्रीड़ापर्वतके शिखर परसे चन्द्रापीड़ उतरा।

२४७—फिर तुरन्त ही, पादै[4] [illegible]

१—राग, अनुराग।

२—ललाई, स्नेह।

३—ललाई, स्नेह।

४—किरण, चरण।

करती थीं; श्याम मुख होनेसे कोपित सी दीखती दिशाओं को जो मानो प्रसन्न करता था, सोती हुई कमलिनियो को, जाग पड़ने के डर से जो मानो छोड़ता जाता था, लाँछन के बहाने जो मानो साक्षात् रात्रिको अपने हृदय में धारण करता था, रोहणीके चरण-प्रहारसे लगी हुई महावरके समान उदय-रागसे संयुक्त, जो अभिसारिकाके समान तिमिर नील अम्बर[१] युक्त आकाश के पास जाता था और उसके अतिशय प्रेमके कारण जो मानो सौभाग्य बिखेरता था, ऐसा नेत्रोंको आनन्द देनेवाला-भगवान् चन्द्रमा उदय हुआ। फिर जब काम-देवके साम्राज्यका अद्वितीय छत्र, कुमुदिनी रूपिणी वधूका प्रिय, निशाके विलास-का दंत-पत्र, दिशाएँ श्वेत करता चन्द्रमा उदय हुआ, और अखिल भुवन मानो हाथीदाँतमेंसे उत्कीर्ण किया हो ऐसा दीखने लगा, तब, जिसकी सुधा-सी धवल सीढ़ियाँ जल-तरंगसे धोई जाती थीं; छोटी छोटी तरंग रूपी पंखोंकी जहाँ पवन उड़ती थी, हंसका जोड़ा जहाँ सो रहा था और वियोगसे चक्रवाकके जोड़े जहाँ शब्द कर रहे थे, जो चाँदनीके निरंतर छिटकनेसे कुंद मय दीखती थी ऐसी गृह-कुमुदिनीके किनारे पर चंद्रापीड, कादम्बरीके परिजनोंके बताए हुए, एक चंद्रशीतल मुक्ता-शिला पर लेटा। यह मुक्ता-शिला चारों किनारों पर कुमुद-पत्रोंसे पत्रलता रचनेसे ऊँची नीची हो रही थी, सफेद सिंधुवार पुष्पके हार वहाँ रक्खे थे, और हरि-चन्दनके रससे उसे धोकर स्वच्छ किया गया था। वहाँ वह लेटा ही था कि इतने में केयूरकने आकर कहा—देवी कादम्बरी आपसे मिलने के लिए आई हैं।

२४८—यह सुन कर चन्द्रपीड़ संभ्रममें उठा, और उसने थोड़ीसी सखियों से परिवृत कादम्बरीको, मदलेखाका हाथ पकड़े, आता हुआ देखा। सब राज-चिन्ह उसने दूर कर दिए थे, साधारण स्त्रीके समान केवल एक लड़की माला पहन रक्खी थी, स्वच्छ चंदनके लेपसे तनु-लता श्वेत कर रक्खी थी, एक कान में दंत पत्र पहना था; चन्द्र-कला-रूप कलीके समान कोमल कुमुद पत्र, कर्णपूर की जगह, शोभायमान था और चंद्रिकाके समान श्वेत कल्पवृक्षके दो वस्त्र पहन रक्खे थे। उस कालमें रमणीय लगते वेषसे साक्षात् चंद्रोदय-देवताके समान आकर, प्रीतिकी चारुता दिखाती, परिजनोंके योग्य भूतल पर, प्राकृत

१—तिमिर से नील अन्तरिक्ष, तिमिर के समान नील वस्त्र।

भावता, गंधर्वराज लोककी अतिशय समृद्धि, और उनके देशकी रमणीयताके विषयमें मनमें विचार करता, केयूरक चरण दाबता था इतने में ही, निद्रावश हो गया और सब रात उसको एक क्षणके समान मालूम हुई।

२४६—फिर कादम्बरीके दर्शनार्थ जागनेके कारण थक जानेसे मानो शयन करने जाता हो इस प्रकार, ताल, तमाल, ताली और कदलीकी कोंपलोंसे भरपूर, मृदु जल-तरंगोंकी पवनसे शीतल, किनारेकी वनराजिमें चंद्रमा धीरे धीरे उतर गया। वियोग समयके निकट आनेसे शोकातुर कामिनियोंके मानो उष्ण निश्वाससे ही चंद्रिका फीकी पड़ गई। चन्द्रापीड़को देखनेसे मानो कामातुर हुई लक्ष्मी सारी रात कुमुद-दलके भीतर बिता कर कमलोंमें जा पड़ी। रात बीत जाने पर जब मद हुए शयन-गृहके दीपक कामिनियोंके कर्णोत्पल-प्रहारको याद कर मानो उत्कंठित होते हुए दुर्बल हो गए, निरंतर बाण खेंचनेसे थके अनंगके निश्वास-सदृश विलास-युक्त प्रभातकी पवन, लताओंके पुष्पोंकी सुगंध सहित, चलने लगी, अरुणोदयसे तेजहीन होते तारे मानो डर डर कर मंदराचलके लता-मंडपोंकी झाड़ीमें घुसने लगे, और चक्रवाकके हृदयमें रहनेसे लगे अनुरागसे मानो रक्त हुआ सूर्य मंडल धीरे धीरे उदय होने लगा, तब चंद्रापीड़ने शिलातलसे उठ कर मुँह धोकर, संध्या-वंदन कर, पानकी बीड़ी खा, केयूरकसे कहा—देख आओ, देवी कादम्बरी अभी उठी या नहीं, अथवा इस समय कहाँ हैं? केयूरकने वहाँसे आकर खबर दी—देव, महाश्वेताके साथ वे मंदर-प्रासाद के नीचे आँगनमें बनी हुई बैठकके चबूतरे पर बैठी हैं। यह सुन कर वह गंधर्व-राज-पुत्रीसे मिलने आया।

२५०—पहले उसने महाश्वेताको देखा। जिनके ललाट पर सफेद भस्म लग रही थी, अक्षमालाके फेरनेसे जिनके हाथ चलायमान हो रहे थे, ऐसी शिव-व्रत धारण करनेवाली स्त्रियाँ; गेरूसे रंगे लाल वस्त्रवाली परिव्राजिकाएँ; पके तालफलके वल्कलके समान रक्त वस्त्र पहने रक्त-पट-व्रत-धारिणी; और ब्रह्मचर्य चिन्ह धारण करनेवाली तपस्विनी—श्वेत वस्त्रसे जिन्होंने अपने स्तन-मंडलको दृढ बाँध दिया था, सफेद वस्त्र जिनके चिन्ह थे, और जटा, अजिन, मूँज, वल्कल, पलाशके दंड—ये सब धारण कर रही थीं—जो साक्षात् मंत्र-देवता ही हों यों—सब उमापतिकी, उमाकी, कार्तिकेयकी, विष्णुकी, जिनकी,

स्त्रीके समान, वह बैठी ही थी कि यह देख कर चन्द्रापीड़ भी,—राजकुमार, आप तो शिलातल पर बैठे रहिये—यों मदलेखाके बहुत बार कहने पर भी, भूमि पर ही बैठा और सब कन्याओंके बैठ जानेके बाद, थोड़ी देर ठहर कर कहने लगा—देवि, आपके केवल दृष्टिपातसे ही सन्तुष्ट हुए दास जनको सम्भाषणादि प्रसादका भी अवकाश नहीं रहता, फिर ऐसे बड़े अनुग्रहका तो कहना ही क्या है? बहुत सूक्ष्म विचार करने पर भी मैं अपनेमें ऐसा गुण लेश भी नहीं देखता जो ऐसे महान् अनुग्रहके अनुरूप हो। आपकी सरलता और अभिमान विहीन मधुर सुजनता ही मेरे समान नवीन सेवकका भी ऐसा आदर करती है। आप मुझको कदाचित् ऐसा असभ्य गिनती होंगी जो उपचारसे वशमें हो जाय। धन्य है उस परिजनको जिस पर आपका अधिकार हो! जो सेवक आपकी आज्ञा पालनेके योग्य है उसका इतना आदर कैसा? यह शरीर तो परोपकारके लिए है और जीवन तृणके समान तुच्छ है। आपने यहाँ पधार कर जो बड़ा अनुग्रह किया है उसके बदलेमें इन्हें अर्पण करनेमें मैं शर्माता हूँ। तो भी यह मैं रहा, यह शरीर रहा, यह जीवन, ये इन्द्रियाँ, इनमेंसे जो अच्छा लगे उसका ग्रहण करके मान बढ़ाइए? चन्द्रापीड़ यों कह रहा था कि इतनेमें मदलेखाने बात काट कर जरा हँसते हँसते कहा—राजकुमार, बस—बहुत आग्रह रहने दो। इससे मेरी सखी कादम्बरी को दुःख होता है। आप क्यों ऐसा कहते हैं? कहे बिना भी यह सब उसने अंगीकार कर लिया है। फिर व्यर्थ उपचारसे यों कह कह कर क्यों सन्देहमें डालते हो? इतना कहनेके बाद थोड़ी देर ठहर कर उसने, अवसर देख, पूछा—तारापीड़ राजा कैसे हैं? देवी विलासवती कैसे हैं? आर्य शुकनास कैसे हैं? उज्जयनी कैसी है? यहाँसे वह कितनी दूर होगी? भारतवर्ष कैसा है? मर्त्यलोक रमणीय है या नहीं? इस प्रकार बहुत देर तक बात चीत होनेके पीछे कादम्बरी उठी और चन्द्रापीड़के पास सोने वाले केयूरक और अन्य परिजनको आज्ञा दे कर अपने शयन-सौधके शिखर पर गई। वहाँ जा कर श्वेत वस्त्रके चंदोवेके नीचे बिछे पलंग पर सोई। चन्द्रापीड़ भी उसी शिलातल पर सोकर कादम्बरीकी निरभिमानता, अभिरूपता और गम्भीरता, महाश्वेताकी निष्कारण वत्सलता, मदलेखाकी सुजनता, सब परिजनकी महानु

भावता, गंधर्वराज लोककी अतिशय समृद्धि, और उनके देशकी रमणीयताके विषयमें मनमें विचार करता, केयूरक चरण दाबता था इतने में ही, निद्रा-वश हो गया और सब रात उसको एक क्षणके समान मालूम हुई।

२४९—फिर कादम्बरीके दर्शनार्थ जागनेके कारण थक जानेसे मानो शयन करने जाता हो इस प्रकार, ताल, तमाल, ताली और कदलीकी कोंपलोंसे भरपूर, मृदु जल-तरंगोंकी पवनसे शीतल, किनारेकी वनराजिमें चंद्रमा धीरे धीरे उतर गया। वियोग समयके निकट आनेसे शोकातुर कामिनियोंके मानो उष्ण निश्वाससे ही चंद्रिका फीकी पड़ गई। चन्द्रापीड़को देखनेसे मानो कामातुर हुई लक्ष्मी सारी रात कुमुद-दलके भीतर बिता कर कमलोंमें जा पड़ी। रात बीत जाने पर जब मंद हुए शयन-गृहके दीपक कामिनियोंके कर्णोत्पल-प्रहारको याद कर मानो उत्कंठित होते हुए दुर्बल हो गए, निरंतर बाण खेंचनेसे थके अनंगके निश्वास-सदृश विलास-युक्त प्रभातकी पवन, लताओंके पुष्पोंकी सुगंध सहित, चलने लगी, अरुणोदयसे तेजहीन होते तारे मानो डर डर कर मंदराचलके लता-मंडपोंकी झाड़ीमें घुसने लगे, और चक्रवाकके हृदयमें रहनेसे लगे अनुरागसे मानो रक्त हुआ सूर्य-मंडल धीरे धीरे उदय होने लगा, तब चंद्रापीड़ने शिलातलसे उठ कर मुँह धोकर, संध्या वंदन कर, पानकी बीड़ी खा, केयूरकसे कहा—देख आओ, देवी कादम्बरी अभी उठी या नहीं, अथवा इस समय कहाँ हैं? केयूरकने वहाँसे आकर खबर दी—देव, महाश्वेताके साथ वे मंदर-प्रासादके नीचे आँगनमें बनी हुई बैठकके चबूतरे पर बैठी हैं। यह सुन कर वह गंधर्व-राज-पुत्रीसे मिलने आया।

२५०—पहले उसने महाश्वेताको देखा। जिनके ललाट पर सफेद भस्म लग रही थी, अक्षमालाके फेरनेसे जिनके हाथ चलायमान हो रहे थे, ऐसी शिव-व्रत धारण करनेवाली स्त्रियाँ, गेरूसे रंगे लाल वस्त्रवाली परिव्राजिकाएँ; पक्के तालफलके वल्कलके समान रक्त वस्त्र पहने रक्त-पट-व्रत-धारिणी, और ब्रह्मचर्य चिन्ह धारण करनेवाली तपस्विनी—श्वेत वस्त्रसे जिन्होंने अपने स्तन-मंडलको दृढ बाँध दिया था, सफेद वस्त्र जिनके चिन्ह थे, और जटा, अजिन, मूँज, वल्कल, पलाशके दंड—ये सब धारण कर रही थीं—जो साक्षात् मंत्र-देवता ही हों यों—सब उमापतिकी, उमाकी, कार्तिकेयकी, विष्णुकी, जिनकी,

आर्य विलोकितेश्वरकी, अर्हंतकी और ब्रह्माकी पवित्र स्तुति करतीं करतीं उनकी उपासना कर रही थीं और वह अं।·पुरमें मान पाई हुई, तथा दर्शनार्थ आई हुई गंधर्वराज-कुलकी वृद्ध स्त्रियोंको आदर पूर्वक नमस्कार कर, बातचीत कर, अभ्युत्थान देकर, पासकी चटाई बैठनेको देकर, उनका सत्कार कर रही थी। फिर उसने कादंबरीको देखा। उसके पीछे बैठा किन्नर-मिथुन वेणुओंसे भ्रमरों की झंकारके समान मधुर तान देता था, और मीठे स्वरसे गान करती नारदकी बेटीके सर्व-मंगलकारी महाभारत बाँचनेमें वह ध्यान दे रही थी, सामने रक्खे मणि-दर्पणमें ताम्बूलके रंगसे लगी काली रेखासे श्यामता देते अभ्यतरवाले तथा दन्त-प्रभासे चमकते, मौम लगा कर साफ किए वस्त्र जैस, गुलाबी अधर को देख रही थी, और शैवलकी तृष्णासे गृह कल हंस, उसके कानमें पहने हुए शिरीष-पुष्प पर दृष्टि रख कर, चारों ओर फिरता था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो प्रभातका चन्द्रमा गमन समय होनेसे उसकी प्रणाम-सहित प्रदक्षिणा करता हो। ऐसी कादम्बरीके पास जाकर, नमस्कार कर, राजपुत्र उसी चूनेके चबूतरे पर रक्खे एक आसन पर जा बैठा और थोड़ी देर ठहर कर महाश्वेता के मुखको देख मुसकराया जिससे उसके गाल कुछ फूल गए, इससे ही वह उसका अभिप्राय समझ गई और कादम्बरीसे कहने लगी—सखी, चन्द्रकान्त जैसे चन्द्रमाकी किरणोंसे पिघलने लगता है इसी प्रकार चन्द्रापीड़ तुम्हारे गुणोंसे आर्द्र हो गए हैं; इसलिए बोल नहीं सकते, परन्तु उनकी जानेकी इच्छा हुई है, क्योंकि पीछे सब राजचक्र उनका समाचार न मिलनेसे दु खी होता होगा। फिर दूर रहने पर भी तुम दोनोंकी प्रीति तो अब कमलिनी और सूर्यकी तथा कुमुदिनी और चन्द्रकी प्रीतिकी तरह प्रलय-काल तक स्थिर रहेगी। इसलिए तुम को जानेकी अनुमति दो।

२५१—यह सुन कर कादम्बरीने कहा—सखी, जिस तरह उनका अंतरात्मा सी तरह सब परिजन-सहित यह जन भी कुमारके अधीन है इसलिए इसमें अनुरोध क्या है? इतना कह कर गंधर्वकुमारोंको बुला कर आज्ञा दी कि राजकुमारको इनके देशमें पहुँचा दो। इसके पीछे चन्द्रापीडने उठ कर प्रथम महाश्वेताको और फिर कादम्बरीको प्रणाम किया। उस समय कादम्बरी—प्रेमसे स्निग्ध—नेत्र और मन अपनी ओर आकृष्ट होनेसे वह कहने लगा—देवि,

क्या कहूँ, बहु-भाषीका लोग विश्वास नहीं करते, इसलिए थोड़ेमें इतना ही कहता हूँ कि परिजन-कथामें आप मुझे भी याद करना। इतना कह कर वह कन्याओंके अत पुरमेंसे बाहर निकला। उसके गुण गौरवसे आकृष्ट हुई, कादम्बरीके सिवाय, अन्य सब कन्याएँ, मानो परवश हो इस प्रकार, उसे पहुँचाने बाहरके बड़े दरवाजे तक आई। उनके लौटने पर राजपुत्र केयूरकके लाए हुए घोड़े पर सवार हो कर, पीछे आते गधर्वकुमारों सहित, हेमकूटमेंसे चल निकला—चलतेमें चित्ररथ-तनया केवल अभ्यन्तरमें ही नहीं, बल्कि बाहर भी सब आशाओंका निबधन[1]-रूप हो गई, क्योंकि मन तन्मय होनेसे वह मानो असह्य विरह वेदनाके सतापके कारण उसके पीछे आती हो, आगे आकर मानो मार्ग रोकती हो, वियोगसे व्याकुल हुए हृदयमें उत्पन्न होती उत्कंठाओंके द्वारा मानो आकाशमें फेंक दी गई हो, और विरहातुर चित्तसे वदन बराबर देखनेके लिए मानो उर-स्थलमें आ बैठी हो—यों वह उसीको देखने लगा।

२५२—फिर धीरे धीरे जब वह महाश्वेताके आश्रमके पास आ पहुँचा तब उसने देखा कि इन्द्रायुधके टापोंके अनुसार आई हुई उसकी सेना अच्छोद सरोवरके तट पर पड़ी है। वहाँसे गधर्वकुमारोंको उसने विदा किया और सेनाके आदमियोंने उसको देख, आनन्द-सहित, कुतूहल सहित, विस्मय-सहित, प्रणाम किया। इस रीतिसे वह अपने भवनमें घुसा और वहाँ सब राज लोगोंका सन्मान कर, दिनका बहुत कुछ भाग उसने ऐसी महाश्वेता है, ऐसी कादम्बरी है, ऐसी मदलेखा है, ऐसी तमालिका है, ऐसा केयूरक है—ऐसी ऐसी बातें वैशम्पायन तथा पत्रलेखाके साथ करनेमें बिताया। कादम्बरीका रूप देखने पर राज्य-लक्ष्मीसे मानो निद्वेष हो गया हो यों पहलेके समान वह उसको अब प्रिय नहीं लगी और उत्कंठित चित्तमें उसी श्वेत-लोचनाका चिन्तन करते करते सब रात उसने जागनेमें ही बिताई।

२५३—दूसरे दिन सूर्योदय होने पर स्वयं उसी विचारमें सभा-मडपमें बैठा था कि इतनेमें अकस्मात् उसने प्रतीहारके साथ केयूरकको आता देखा। केयूरकने दूरसे ही मस्तकसे भूमिका स्पर्श कर प्रणाम किया इतनेमें—आओ,

---

१—सब आशाओं—अभिलाषाओं—का केन्द्र हो गई, सब दिशाओंमें उसे कादम्बरी ही दीखने लगी।

आओ—कह कर चन्द्रापीडने प्रथम हर्षसे विस्तृत चक्षुमे, फिर हृदयसे, फिर रोमोद्गमसे और पीछे बाहुओंसे दौड़ कर उसका अत्यन्तमें गाढ आलिंगन किया और अपने समीप ही बैठाया। फिर मानो रिसते हुए स्नेह रससे बने, हास्यामृतसे श्वेत अक्षरोंमें, आदर-सहित पूछने लगा—केयूरक, कहो, देवी कादम्बरी सखीजन-परिजन सहित और भगवती महाश्वेता सब कुशली हैं? तब राजपुत्रकी अतिशय प्रीतिसे उत्पन्न हुए मद हास्यसे ही मानो न्हा गया हो और अनुलिप्त हुआ हो, इस प्रकार तुरन्त ही केयूरकका मार्ग-श्रम जाता रहा और प्रणाम पूर्वक बड़े आदरसे उसने उत्तर दिया—आज वे कुशलिनी हुई कि आपने ऐसा प्रश्न किया! इतना कह कर नीले रूमालमें लिपटे, मृणाल-सूत्रसे मुख पर बँधे, ताजे चन्दन-रसमें लगी हुई बाल-मृणाल वलय रूप मुहरवाले, कमलके पत्तोंके एक संपुटको निकाल कर उसने दिखाया, और रूमाल उठा कर उसने कादम्बरीके भेजे कितने ही अभिज्ञान दिखाये। उनमें मरकतके समान हरी, छिली हुई, सुन्दर मजरीवाली दूधिया सुपारियाँ थीं, तोतेके गाल जैसे श्वेत कितने ही पान थे, शिव-मस्तक पर शोभायमान चद्र खडके बराबर बड़ा कपूरका टुकड़ा था, और कस्तूरीकी बहुत तेज महकसे मनोहर लगता चदनका लेप था। इनको दिखाकर केयूरकने कहा—कोमल उँगलियोंके विवरमेंसे निकलती रक्त किरणोंसे छाई हुई अजलीसे चूड़ामणिका स्पर्श करके देवी कादम्बरी आपको वदना करती है, महाश्वेता कठालिंगन-सहित कुशल-समाचार पूर्वक वदना करती है, केश-कलापके माणिक्यकी प्रभासे रँगे ललाटसे मदलेखा नमस्कार करती है और तमालिका तथा सब कन्याओंने सीमतकी मकरिकाके अग्रभागका कोण पर रख कर और चरण-रज स्पर्श सहित आपको पाद-प्रणाम कहलाया है।

।२५०। आपके पास सदेसा भेजा है कि जिन्होंने आपको कभी नहीं ... वे धन्य हैं, कारण कि समक्षमें जो आपके गुण हिम-शीतल और चन्द्रमयसे लगते हैं, वे ही विरहमें मानो रवि-मय हो गए हैं। सब जन दैवयोगसे आए पिछले दिनको अमृतकी उत्पत्तिके दिनके समान किसी प्रकार फिर देखनेके इच्छुक हैं। आपके वियोगसे सब गधर्व राजनगर ऐसा मालूम होता है मानो उत्सव होनेके पीछे मद हो गया हो। आप जानते तो हैं कि मैंने सब वस्तुओंका त्याग कर दिया है; तो भी—मेरी इच्छा बिना भी—मेरा हृदय मानो इसमें

आप—निष्कारण मित्र—से मिलनेकी इच्छा करता है, और कादम्बरीका शरीर भी बहुत अस्वस्थ है। वह आप—स्मर-कल्प और स्मेरानन—की याद करती है, इसलिए पुनरागमन रूपी गौरवसे आपको उसे गुणोंमें अभिमान-युक्त कराना योग्य है। उदार पुरुषोंके किए हुए आदरसे बहुत मान मिलता है। आपको हमारे जैसोंके परिचयकी पीड़ा तो अवश्य उठानी चाहिए। आपकी सुजनता देख कर ही ऐसा अनुचित सदेशा भेजनेकी प्रगल्भता हुई है। आपके बिछौने पर पड़ा यह शेष हार भेजा जाता है। यों कह कर उत्तरीय वस्त्रके पल्लेमें बँधा हुआ, महीन सूतोंकी बुनावटमेंसे निकलती किरण-रेखाओंसे पहचान लिया जाता, वह हार निकाल कर उसने चामर-ग्राहिणीके हाथमें दे दिया।

२५४—यह महाश्वेताकी चरणाराधना रूपी तपका फल है कि परिजन पर भी देवी कादम्बरीने ऐसा स्मरणादिका भारी अनुग्रह किया।—इतना कह कर चन्द्रापीड़ने उन सब वस्तुओंको शिरोधार्य कर आपहीने लिया। कादम्बरीके पिघले हुए कपोल लावण्यके समान, रसनाको प्राप्त हुए स्मित-प्रकाशके समान, द्रवत्व पाए हुए हृदयके समान, झरे हुए गुण-गणके समान,—शीतल स्पर्शवाले, मनोहर और सुगंधित—लेपका उसने लेप किया और हार कण्ठमें पहना। फिर पानकी बीड़ी खाकर, थोड़ी देर बाद उठ कर और बाएँ हाथसे केयूरकके कंधे पर सहारा दे कर, खड़े खड़े ही, यथायोग्य सन्मान देनेसे आनंदित हुए प्रधान राजा लोगोंको बिदा कर, धीरे धीरे वह गंधमादन हाथीको देखने चला। वहाँ थोड़ी देर ठहर कर, नख-किरणोंसे जटिल होनेसे मृणाल-सहित दीखती थोड़ीसी घास उसे अपने आप ही डाल कर, वहाँसे अपने प्रिय घोड़ेके अस्तबलकी ओर चला। जानेमें दोनों तरफ जरा जरा मुँह फेर कर परिजनोंको देखने लगा। उसका अभिप्राय जाननेवाले प्रतीहारने परिजनोंको आनेका निषेध करके दूर कर दिया तब वह अकेले केयूरकको ही लेकर अस्तबलमें गया। निकाल दिये जानेके डरसे सभ्रांत लोचनवाले वहाँके साईस प्रणाम कर करके खिसक गये तब इन्द्रायुधकी पीठ परसे एक तरफ खिसका हुआ जीन ठीक करता करता, जरा मिची हुई आँख पर आकर दृष्टिको रोकती—कुंकुमके समान कपिल—केसर-छटाको हटाया, खुरधारिणी पर चरण रख, अश्वशालाके खूँटे पर शरीरको सहारा दे कर, वह कुतूहल सहित लीलासे मंद मंद कहने लगा—

केयूरक, मेरे आनेके पीछे गंधर्वराज-कुलमें क्या वृत्तान्त हुआ? गंधर्व-राजपुत्री ने किस व्यापारमें दिन बिताया? महाश्वेताने क्या किया? मदलेखाने क्या कहा? परिजनोंमें क्या बातचीत हुई? तुमने क्या किया? मेरे सम्बन्धमें कुछ बात हुई या नहीं?

२५५—केयूरकने सब प्रश्नोंका प्रत्युत्तर दिया—देव, सुनो, आपके बाहर निकलते ही तुरन्त कन्याओंके अन्तःपुरमें नूपुरोंके रणरणाहटसे हजारों हृदयोंके प्रस्थान-दुन्दुभीका मानो कल कल हुआ। इतनेमें देवी कादम्बरी परिजन सहित सौधशिखर पर चढ कर घोड़ोंकी उड़ाई हुई धूलसे धूसर दीखते आपके जानेके मार्गको देखती रहीं। पीछे जब आप दृष्टिके बाहर हो गये तब मदलेखाके कंधे पर अपना मुँह रख कर, श्वेत छत्रके आकारमें मानो चन्द्र ही आकर ईर्ष्यासे सूर्य-किरणोंका स्पर्श न होने देता हो यों प्रकट करतीं, क्षीरसागरके समान धवल दृष्टिपातसे प्रीति पूर्वक दिशाके उस भागको मानो भरतीं, बहुत देर तक वहीं रहीं। अंतमें खिन्न हो कर, वहाँसे महावृष्टसे नीचे उतर कर, थोड़ी देर सभा-मंडपमें बैठ कर उठीं और शायद उपहार-पुष्पों पर गिर न पड़ें—ऐसे मानो डरसे गुञ्जार करते भ्रमर उन्हें फूलोंको बताने लगे; जलधाराके समान श्वेत नख किरणोंकी तरफ देखते गृह-मयूरोंकी केकासे उद्वेग पा कर निकले कंकणसे प्रत्येक मयूरके गलेमें मानो कंठ-बंध बाँधने लगीं, कदम कदम पर पुष्प-धवल गृह-लताओंके पल्लवोंका हाथसे और आपके गुण-गणोंका मनसे ग्रहण करतीं, जिस क्रीड़ा पर्वत पर आप रहे थे वहीं आ पहुँचीं। वहाँ आने पर परिजन उनको सूचना देने लगा कि—मरकत-शिलाकी मकराकार मोरीके प्रस्रवणसे ` हुए हरे लता-मंडपवाले इस, जल कणसे छाए हुए, शिलातल पर कुमार थे, गंधोदककी परिमलसे इकट्ठे हुए भ्रमरोंके टोलोंसे भरे इस शिलातल कुमारने स्नान किया था, पुष्प-पराग रूप रेतीसे भरे क्रीड़ा पर्वतकी इस नदीके तट पर भगवान् पशुपतिका पूजन किया था, चंद्रकी भी कांतिको हरनेवाले इस सुन्दर स्फटिक शिलातल पर भोजन किया था, और चिपके हुए चन्दन रसके चिह्नवाली इस—मोती जड़ी हुई—भारी शिला पर शयन किया था। बार बार दिखाए हुए आपके ही स्थानके चिन्होंके देखनेमें उन्होंने सब दिन बिताया।

२५६—दिनका अन्त हुआ तब महाश्वेताके बहुत कहने पर इच्छाके बिना

भी उन्होंने उसी स्फटिकमणि-गृहमें भोजन किया। सूर्यास्त होनेके पीछे जब चन्द्रमाका उदय हुआ तब वे कुछ देर तक वहाँ रहीं। फिर मानो चन्द्रकान्तमय हो इस प्रकार चन्द्रोदयसे उनका शरीर गीला हो गया, और शायद चन्द्रबिम्बके प्रवेश करनेके मानो भयसे गाल पर हाथ रख कर, जरा आँखें मान्द कर, कुछ विचार ही विचारमें वहाँ क्षण मात्र बैठी रहीं। फिर उठ कर निर्मल फर्शमें पड़ी चन्द्र-प्रतिमाका मानो भार लगता हो यों महाकष्टसे पैर धर धर कर, लीला युक्त मंद गतिसे चल कर, शयन गृहमें गईं और पलंग पर लेट गईं। तबसे ही अति प्रबल शिरोवेदनासे करवटें बदलने लगीं और दाहक अग्निके समान ज्वर पीड़ा देने लगा। उससे सब रात उन्होंने न जाने किस प्रकार मंगल-प्रदीप, कुमुद-समूह और चक्रवाकके साथ ही खुली आँखोंसे महा महा दुःखमें बिताई। फिर प्रभात हुआ तब मुझे बुला कर आपके समाचार जानेके वास्ते जानेकी, ताना देकर, आज्ञा दी।

२५७—यह सुन चन्द्रापीड़ जानेकी इच्छासे—घोड़ा लाओ—यों कहता भवनसे बाहर निकला और जीन कस कर साईसके द्वारा शीघ्र लाए गए इन्द्रायुध पर सवार हो, पीछे पत्रलेखाको बैठा कर, सेना पर वैशम्पायनको नियत कर, सब परिजनोंको पीछे लौटा कर, दूसरे घोड़े पर बैठ कर पीछे पीछे आते केयूरकके साथ हेमकूटकी ओर चला। कादम्बरीके महलके द्वार पर पहुँच कर घोड़े परसे उतरा, उतर कर अश्वको द्वारपालके सुपुर्द कर कादम्बरीका प्रथम दर्शन करनेकी उत्सुक पत्रलेखाको पीछे कर, अंदर जाकर, सामने आते एक नपुंसकसे पूछने लगा—देवी कादम्बरी कहाँ है? उसने प्रणाम कर उत्तर दिया—देव, देवी मत्तमयूर नामक क्रीड़ा पर्वतके नीचे, कमल-सरोवरके तीर पर, हिमगृहमें विराजती हैं। यह सुन केयूरकके बताए मार्गसे प्रमद-वनमें होकर वह कुछ दूर गया था कि इतनेमें ही मरकतके समान हरे केलेके पत्तोंकी प्रभासे—हरी घासके समान—रवि-किरणोंसे युक्त दिवस हरा-सा दीखने लगा और उनके बीचमें कमलके पत्तोंसे निरंतर ढके हिमगृहको उसने देखा। उसमेंसे बाहर निकलती हुई, शिशिर उपचारमें कुशल, कादम्बरीके शरीरकी सेवा करनेवाली, भूषण-रहित दासियोंको उसने देखा। वे गीले वस्त्रके बहाने मानो अच्छोद सरोवरके जलसे ढकी गई हो

ऐसी दीखती थीं; बाहुलताओं पर धारण किए मृणाल-वलयोंसे, क्या मानो आभूषणोंसे ही, उनके अवयव श्वेत मालूम होते थे, उनके एक कानमें पहने हुए अच्छे श्वेत रंगके केतकी गर्भपत्रके ताटंक दन्तपत्रकी शोभाकी भी हँसी करते थे; उनके मुखारविंद पर मानो सौभाग्य पट्ट हों ऐसे चन्दन तिलक लगे थे, गाल पर चन्दन-बिंदुका तिलक लगानेसे दिनमें भी मानो स्पर्श-लोभसे चन्द्र-प्रतिबिंब वहाँ स्थित हो—इस प्रकार दीखता था, शिरीषकी समग्र शोभा भी जिन्होंने चुरा ली थी ऐसी शैवल-मंजरियोंके उन्होंने कर्णपूर पहन रक्खे थे, कपूरकी रजसे धूसर हुए, चन्दन-रस चुपड़े, बकुलावली-रूपी वलयवाले स्तनों पर उन्होंने कमल पत्र-रूपी वस्त्र रख लिए थे, बारम्बार चन्दन-रस चुपड़नेसे श्वेत हुए—मानो संताप और रोषसे चन्द्र-किरण मसल डाली हों ऐसे दीखते—हाथोंमें उन्होंने मृणाल-दंड लगा कर बिसतन्तु मय चमर ले लिए थे। ऊँचे दंड करके कमल, कुमुद, कुवलय, कदली पत्र, कमलिनी-पत्र और पुष्पके गुच्छे छत्रके आकारमें रख कर उन्होंने छाया कर रक्खी थी और वे जल-देवताओंका मानो समूह हो, वरुण-श्रियोंकी मानो मंडली हो, शरद् ऋतुका मानो समाज हो, और सरसियोंका मानो एकत्र निवास हो—ऐसी शोभायमान थीं।

२५८—परिजनने प्रणाम कर पद-नखों पर प्रतिबिंब गिरनेके मानो भयसे तुरन्त सरक कर उसको मार्ग दिया। इतनेमें ही उसने केलेके तोरणोंके वनमें प्रवेश किया। वहाँ चंदन-पंककी वेदियाँ बनाई गई थीं, पुण्डरीककी कलियोंकी घंटालियाँ बाँधी गई थीं, विकसित सिंधुवार पुष्पकी मंजरीके चामर थे; मल्लिकाकी बड़ी बड़ी कलियोंके हार लटकाए गए थे, लौंगके पल्लवोंसे युक्त चंदनकी मालाएँ बाँधी गई थीं, कुमुदके पुष्पोंके हारोंकी ध्वजाएँ फहरा रही और मृणालकी छड़ी हाथमें लेकर, फूलोंके सुन्दर गहने धारण करके, लक्ष्मीकी प्रतिमाके समान द्वारिपालिकाएँ खड़ी थीं। सब तरफ देखते देखते चला तो क्या देखता है कि कहीं दोनों किनारों पर तमाल-पल्लव लगा कर बनाई हुई वन लेखावाली तथा कुमुद धूलि रूपी रेतसे युक्त पुलिनवाली चन्दन-रस बहातीं गृह-नदियाँ हैं, कहीं निचुल वृक्षकी मंजरीके बने हुए फल चामरवाले, जलसे गीले, चँदोवेके नीचे, सिंदूरसे रंगे भूतल पर, लाल कमलोंके बिछौने बिछे हैं; कहीं—स्पर्शसे ही जिनका अनुमान हो ऐसी—सुन्दर दीवारों-

वाले स्फटिक-गृहोंमें इलायचीका रस छिड़का जाता है; कहीं गिलोयके [illegible] केसरसे युक्त नव तृण मय भूमिवाले, मृणाल-प्रचुर फव्वारोंके शिखर पर [illegible] जल-धाराके फेनसे धूसर हुए यन्त्र मयूरोंके मुण्ड हैं, कहीं आमके [illegible] हुए जतु-पल्लवोंसे भीतर ढकी हुई पर्ण-कुटियाँ हैं; कहीं यन्त्र द्वारा फिरते [illegible] बच्चोंकी क्रीड़ासे आकुल होतीं सोनेकी कमलिनियाँ हैं, कहीं सुनहरी चूनेके सुन्दर चबूतरेवाले, सुगंधित जल भरे, कूओंमें पत्र पुटके रहँट पड़े हैं—उनके [illegible] आरे स्थूल मृणाल-लता-रूपी दंडके बनाए गए थे, डोल केतकीके [illegible] के थे, और वे कुवलयावली-रूप रस्सियोंसे बँधे थे, कहीं स्फटिक [illegible] मुखमेंसे निकलती जलधारावाली, और चित्रित इन्द्र धनुषवाली, कृत्रिम [illegible] मालाएँ गिर रही हैं, जिनके तीर पर सफेद यवांकुर उगे थे और जिनकी लहरों तैरती हुई मालती-पुष्पोंकी नई नई कलियोंसे विषम दीखती थीं ऐसी हरिचन्दन रसकी बावलियोंमें कहीं हारलता ठंडी की जा रही थी; कहीं कृत्रिम [illegible] रहे थे—उनके आसपास मोतीके चूरे की क्यारियाँ बनाई गई थीं, और उनमेंसे बड़ी बड़ी पानी की बूँदें निरन्तर टपक रही थीं, कहीं फड़-फड़ाते पंखोंमेंसे उड़ते जलकणोंसे नीहार फैला कर भ्रमण करते पत्तोंके बने यन्त्र-मय पक्षियोंकी कतारें हैं, कहीं पुष्पहारके हिंडोले टपक रहे हैं—वे भ्रमर-रूप घंटियोंकी पंक्तिसे अत्यन्त व्याप्त हैं, कहीं कोई स्वर्ण कलश भीतर ले जा रहा है—उनके मुख, अन्दर उग कर बाहर निकले ऊँचे दंडवाले कमलके पत्तोंसे छा गये हैं, कहीं केलेके भीतरके-सुन्दर बाँसके आकारवाले-स्तम्भके बने दंडोंवाले पुष्पके गुच्छों के छत्र बँधे हैं, कहीं मृणाल तन्तु मय वस्त्र, हाथमें कपूरके पत्ते मसल कर, उनके रससे सुगंधित किए जा रहे हैं, कहीं लवली-फलके रसमें भीगे मल्लिका-मञ्जरी रूप कर्णपूर हैं, और कहीं पत्थरकी कूँडीमें भरे शीतल ओषधी रसकी कमल-पत्रके पखेसे पवन की जा रही है, इस प्रकारके शिशिरोपचारके साधन परिजनोंने तैयार किए थे और किए जा रहे थे।

२५६—उन सबको देखता राजपुत्र हिमगृहके बीचमें आ पहुँचा। वह बीचका हिस्सा मानो हिमालयका हृदय था; वरुण देवका मानो जल-क्रीडा-गृह था, चन्दनवनके सब देवताओंका मानो जन्म-स्थान था, सब चन्द्रमणियोंका मानो उत्पत्ति-स्थान था; माघ मासकी सब रात्रियोंका मानो निवास था; सब वर्षा

ऋतुओंका मानो सकेत गृह था, सब नदियोंके ग्रीष्मका ताप दूर करनेका मानो स्थल था, सब सागरोंका, बड़वाग्निका सताप दूर करनेका, मानो स्थान था, सब जलधरोंका वैद्युत अग्निका दाह शात करनेका मानो स्थल था, कुमुदिनियोंको चन्द्र-वियोगसे दुःसह हो जाते दिन काटनेका मानो स्थान था, और कामदेवका हर-हुताशन बुझानेका मानो क्षेत्र था। वहाँ फव्वारोंमेसे निकलती हजारों धाराओंसे दूर हुई सूर्यकी किरणें भी मानो अति शीत स्पर्शके डरसे निवृत्त हुई हों इस भाँति आती नहीं थीं, कदम्ब केसर-सहित पवन भी मानो रोमाचित होकर चलती थी, चारों ओर लगे कदली-वनके पत्ते पवनसे हिलनेके कारण ऐसे मालूम होते थे मानो शीतलतासे कांपते हों, पुष्पोंकी सुगन्धसे मदमत्त होकर गुञ्जार करते भ्रमर भी वहाँ मानो दाँत किडकिड़ाते थे; और निरतर घुमे हुए भ्रमरोंसे ढकी लताएँ भी ऐसी मालूम होती थीं मानो उन्होंने श्याम वस्त्र ओढ लिया हो। क्रमसे भीतर तथा बाहर—जो हाथमे भी थाम लिया जाय ऐसे—अति दृढ शीतल स्पर्शसे अनुलिप्त होनेके कारण राजकुमार अपने मनको चन्द्र-मय, इन्द्रियोंको कुमुद-मय, अवयवोंको चन्द्रिका-मय और बुद्धिको मृणालिका मय समझने लगा, और वह सूर्य किरणोंको मुक्ताहार मय, तापको चंदन मय, पवनको कपूर-मय, कालको जल मय और त्रिभुवनको तुषार-मय समझने लगा।

२६०—इस प्रकारके हिमगृहके बीचमे एक तरफ सखियोंके झुण्डसे घिरी हुई कादम्बरीको उसने देखा। वह ऐसी मालूम होती थी मानो भगवती गगा सब नदियोंके साथ हिमालयकी गुहाकी तलहटीमे पहुँच गई हो। वहाँ मृणाल दंडकी एक मडपिका बनी हुई थी। उसके सब ओर कपूर-रसका प्रवाह, छोटीसी कृत्रिम नदीकी तरह, बह रहा था। कादम्बरी उस मडपिकाके नीचे फूलोंके बिछौने पर सो रही थी। हार, बाजूबद, कंकण, मेखला और नूपुरके बहाने कामदेवने ईर्ष्यासे मानो उसे मृणालकी जंजीरोसे बाँध लिया था। चदनसे श्वेत ललाटमे मानो चंद्रने उसका स्पर्श किया था। आँसू बहाते नेत्र पर मानो वरुणने चुम्बन किया था। अधिकाधिक श्वास छोड़ते मुख पर मानो वायुने दंश किया था। सतापसे तपे अगोंमे मानो सूर्यने वास किया था। कामाग्निसे प्रज्वलित हृदयमें मानो अग्निने प्रवेश किया था। स्वेद युक्त शरीर पर मानो जलने आलिंगन किया था। इस प्रकार मानो देवताओंने आज ही उसका

सौभाग्य सब तरहसे लूट लिया था। इनके साथ उसके मन मानो प्रियतमके पास चले गए हों इस भाँति वह दुर्बल दीखती थी। नख चन्दन-लेपसे श्वेत हुआ उसका रोमाञ्च ऐसा मालूम होता था मानो हारके निरन्तर स्पर्शसे मोतियोंकी किरणें लग गई हों। पसीनेकी बूँदोंसे व्याप्त गालों पर पंखोंसे पवन करके भूषणोंसे आकृष्ट हुए मधुकर मानो अपना अनुराग प्रकट करते थे। कर्णभूषणसे आकृष्ट हुए मधुकरोंकी गुञ्जार रूपी आगसे मानो कान दग्ध हुआ हो इस तरह वह उस पर आँखके कोनेमसे निकलते अश्रु-प्रवाहसे सिंचन करती थी। कानमें सफेद केतकीकी कली पहन कर वह मानो वेगसे बहते अश्रु-प्रवाहके लिए प्रणालिका बनाती थी। संतापके मानो भागता मानो देह-प्रभाका समूह हो ऐसा उसका वस्त्र लंबे आँसुओंके गिरनेके कारण चंचल होकर स्तन-कलशके ऊपरसे खिसक जाता था। हिलते हुए चामरके प्रतिबिंबसे प्राणनाथके पास जानेके औत्सुक्यसे मानो पंख उगा लिए हों ऐसे मालूम होते दोनों कुच-कलशोंको उसने अपने हाथसे दाब रक्खा था। बरफकी शिलाकी पुतलियोंका भुजलतासे बार बार आलिंगन करती थी। कर्पूरकी पुतलियोंको बार बार गालसे लगाती थी। चरणारविंदोंसे बार बार चन्दन-पंककी प्रतिमाका स्पर्श करती थी। स्तनमें प्रतिबिम्बित हुआ मुख भी मानो कुतूहल-सहित हुआ हो इस प्रकार फिर फिर उसको देखता था। कर्णपूर पल्लव भी मानो उत्कंठित हुआ हो इस प्रकार अपने प्रतिबिंब-रूपी पल्लवमें रह कर उसके गाल पर चुम्बन करता था। मुक्तात्म[1] हार भी मानो मदन-परवश हुआ हो इस प्रकार कर[2] पसार कर उसका आलिंगन करता था। मणि-दर्पण छातीके ऊपर रखनेसे उसीके समान आकारवाले चन्द्रमाको मानो वह अपने जीवनकी शपथ दिलाती थी कि आज उदय मत होना। वह सामने आते प्रमद-वनके गन्धवारणके[3] लिए, हथिनीके समान, कर

१—मोतियोंका हार, निःसत्व, म्लान।

२—किरण, हाथ।

३—वनके मदोत्कट गन्ध-गजके सामने आने पर हथिनी सूँड लंबी कर देती है, कादम्बरीने सामनेसे आती प्रमद-वनकी गन्धको रोकनेके लिए हाथ फैला दिए थे।

पसारती थी। मानो प्रस्थान करती हो इस प्रकार उसको दक्षिण भागमें वात मृगका[1] आगमन अशुभ लगता था। मदनके स्नान करनेकी मानो चौकी हो इस प्रकार उसके पार्श्व पर कमलावृत और चंदनसे धवल हुए पयोधर[2]-कलश शोभायमान थे। आकाश कमलिनीकी तरह उसमें स्वच्छ अम्बरके[3] तलमेंसे मृणालके समान कोमल उरुमूल[4] दिखाई देता था। कुसुम धनुष लेखाके समान वह मदनारोपित[5] गुणकोटिकान्ततर थी। वसंत देवताके समान वह शिशिर[6]-हारिणी थी। भ्रमरीकी तरह वह कुसुम-मार्गणाकुल[7] थी। चन्दनके लेपसे युक्त होने पर भी वह अनंगरागणी[8] थी। बाला होने पर भी वह मन्मथजननी[9] थी और मृणालिनी[10] होने पर भी हिम-स्पर्शकी इच्छा रखती थी।

२६१—जैसे जैसे एकके पीछे एक परिजन चन्द्रापीड़को देख कर उसका आगमन निवेदन करनेके लिए आता था तैसे तैसे वह प्रत्येकके मुंह पर

१—वातप्रमी एक प्रकारका मृग। उसका आना अशुभ होता है, कादम्बरीको दक्षिण पवन-रूप मृगका आगमन अच्छा नहीं लगता था।

२—कलश चंदनसे धवल हुए पानीसे भरे होते हैं और उनके मुख कमलोंसे ढके होते हैं, कादम्बरीके कलशके समान पयोधरों पर चंदन लगा हुआ था और वे शोभायुक्त थे।

३—साफ आसमान, स्वच्छ वस्त्र।

४—मूल नक्षत्र, उरुदंडकी जड़।

५—कामदेवकी लगाई हुई डोरीकी कोटिसे वह अधिक शोभायमान मालूम होती थी, कादम्बरी जवानीके कारण बढ़े हुए बहुतसे गुणोंसे अत्यंत शोभायमान मालूम होती थी।

६—शिशिर ऋतुका अपहरण करनेवाली, शीतलोपचारसे मनोहर लू होती।

७—फूलोंके अन्वेषणमें व्याकुल, फूलरूपी बाणोंसे व्याकुल।

८—अंगराग रहित, कामदेवमें अनुरागवाली।

९—कामदेव, काम विकार।

१०—कमलिनी; मृणाल धारण करनेवाली।

पडते, चचल पुतलीवाले, नेत्रसे बिना ओके ही पूछती कि क्यो क्या ये चन्द्रापीड आये हैं? तुमने उनको देखा है? वे कितनी दूर हैं? कहाँ हैं? इतनेमें जब उतने अधिक धवल होती अपनी आँखसे चन्द्रापीडको दूरसे ही सन्मुख आता देखा तब वह फूलोंके बिछोने परसे उठी। वह तुरंत पकड़ कर लाई हुई वरारोहा[1] हथिनीके समान उरुस्तम्भ[2] विधुत थी, अग-चेष्टा कर रही थी, कुसुम शैयाकी सुगधके कारण आए मुखर मधुकरोंसे मानो जबरदस्ती उठाई गई थी, सभ्रममें खिसके उत्तरीयके बदले हारकी किरणोंसे छाती ढक रही थी, मणि-भूमि पर रक्खे वाम करतलसे अपनी प्रतिमासे मानो हाथका सहारा माँग रही थी, खुले हुए बालोंकी चोटी बाँधनेसे थके दाहिने हाथमेंसे टपकते पसीनेसे मानो प्रोक्षण कर अपना दान करती थी, पीठ मुड़नेसे त्रिवली सिकुड़नेके कारण रोमराजिके तरगित होनेसे ऐसा मालूम होता था मानो कामदेव उसे निचोड़ कर सब रस बाहर निकल रहा हो, तिलकोंमेंसे अन्दर पहुँचे चन्दन-रससे मानो मिश्रित हुआ शीतल आनंद-जल आँखोंमेंसे टपक रही थी; आनन्द जलकी बूंदोंके प्रवाहसे—चलायमान कर्णपूरकी रजसे मलिन हुए—गालको प्रियतम की प्रतिमाके प्रवेश करानेके मानो लोभसे धो रही थी, चंदन-तिलकके भारसे मानो कुछ नीचे देख रही थी, उस क्षण कोनेकी ओर गई पुतलीवाली और राजपुत्रके मुख पर ही लगी लगी दृष्टि मानो उसका आकर्षण कर रही थी। चन्द्रापीड़ने तो पास आकर पहलेकी भाँति प्रथम महाश्वेताको प्रणाम किया, पीछे विनय पूर्वक उसको नमस्कार किया। बदलेमें प्रणाम करके फिर वह उसी कुसुम-शयन पर बैठी थी कि इतनेमें प्रतीहारीने एक सुवर्ण मय कुरसी लाकर रक्खी जिसके पायोंमें चमकते हुए रत्न जड़ रहे थे। उसे पैरसे हटा कर राजपुत्र भूमि पर ही बैठा।

२६२—फिर केयूरकने कहा कि देवी, यह महाराज चंद्रापीड़की स्नेह भाजन पत्रलेखा नामकी ताम्बूल वाहनी है—और पत्रलेखाको दिखाया। उसको देखते

१—हथिनी पर चढना अच्छा मालूम होता है, कादम्बरीका नितंब भाग सुन्दर था।

२—मोटे स्तनसे रँगी हुई (हथिनी), सात्विक भावसे रोकी गई (कादम्बरी)।

की कादम्बरी सोचने लगी कि अहो! मनुष्य-जाति की स्त्रियोंमें प्रजापतिका बड़ा पक्षपात! फिर पत्रलेखाके प्रणाम करते ही उसने आदर-सहित—आओ, आओ—कह कर उसे अपने पास पीछे ही बैठा लिया और सब दासियाँ चकित होकर उसे देखने लगीं। देखते ही अत्यंत प्रेम उत्पन्न होनेके कारण वह बार बार स्नेह पूर्वक अपने कर-पल्लवसे उसका स्पर्श करने लगी।

२६३—थोड़ी देरमें आगमनके योग्य सब उपचार हो चुके तब चन्द्रापीड़ कादम्बरीको ऐसी अवस्थामें देख कर विचार करने लगा—मेरा अत्यन्त मूढ़ हृदय अब भी नहीं मानता है! खैर, इससे युक्ति पूर्वक कुछ पूछूँ। यों विचार कर उसने कहा—देवी, मैं जानता हूँ कि तुम किस अनुरंजक[1] पदार्थके अभाव के कारण यह अविचल संतापाधीन व्याधि सहन करती हो। सुतनु, सच सच हमको जितनी उससे पीड़ा होती है उतनी तुमको नहीं होती होगी—इसलिए देह-दानसे भी तुमको मैं स्वस्थ करनेकी इच्छा करता हूँ—तुमको काँपते देख अनुकम्पा[2] करता और कुसुमोंमें[3] पीड़ासे पड़ी तुमको देखता मेरा हृदय मानो निकला पड़ता है—तुम्हारी कृश भुजलता अनगद[4] हुई है—गाढ संतापसे तुम्हारी दृष्टिमें स्थल-कमलिनीके समान रक्तातामरस[5] दीखता है। तुम्हारे दुखित होनेसे बार बार अश्रु बिन्दु टपका कर परिजनोंने भी मुक्ताभरणता[6] धारण की है, तो अब स्वयंवर[7] योग्य मंगल-भूषण ग्रहण करो, क्योंकि नवालता[8] तो कुसुम[9]—शिलीमुखके साथ ही शोभायमान मालूम होती है। बाल्यावस्थाके

१—दूसरा अर्थ—कन्दर्प जनित अनुरागके कारण।

२—कृपा करता, काँपना।

३—दूसरा अर्थ—कामकी पीड़ासे।

४—बाजूबन्द-विहीन, कामको पैदा करनेवाली।

५—कठोर रक्तता, विरस अनुराग।

६—अर्थात मोतियोंके गहनोंके स्थानमें आँसू गिराती है।

७—स्वय (अपने आप) अच्छे और योग्य मंगल भूषण, स्वयंवरके योग्य।

८—नई लता, युवती।

९—फूल तथा भ्रमर, कामदेव।

कारण कादम्बरी मुग्धा अवश्य थी, तो भी, मानो कामदेवने बुद्धिका उपदेश दिया हो इस प्रकार, राजकुमारके अस्फुटार्थ भाषणसे जो अर्थ सूचित हुआ उसे समझ गई। परन्तु अपने मनोरथोंकी इतनी सफलता सम्भव न समझ, लज्जित होकर, चुप रही। उस समय मुखकी सुगन्धिसे आकृष्ट हुए भ्रमरोंके गुंजारसे दांत चन्द्रापीड़को मानो देखनेके लिए किसी बहानेसे स्मित प्रकाश करने लगी।

२६४—फिर मदलेखाने प्रत्युत्तर दिया—कुमार, क्या कहूं ? यह संताप अत्यन्त दारुण और अकथनीय है, जिसमें फिर देवी कुमार[1] भाव युक्त हैं इसलिए उनको किससे पीड़ा न हो ? कमलिनीका ठंडा पत्ता भी अग्निदाहके समान और चाँदनी भी तापके समान मालूम होती है। किसलयोंके पंखेकी पवनसे भी उनके मनमें जो खेद होता है उसे क्या आप देखते नहीं ? इनके प्राण धारण करनेका कारण केवल धैर्य है। मदलेखाके कहनेको ही कादम्बरीने हृदयसे चन्द्रापीड़को प्रत्युत्तर दिया। इस भाषणके दो अर्थ होनेसे चन्द्रापीड़का चित्त संदेहमें रहा तो भी बहुत देर तक महाश्वेताके साथ प्रीति युक्त बातचीत करनेके पीछे, बड़े बड़े प्रयत्नसे अपना पीछा छुड़ा कर, डेरेको जानेके लिए कादम्बरीके भवनमेंसे निकला।

२६५—बाहर निकल कर घोड़े पर सवार होता ही था कि इतनेमें केयूरकने पीछेसे आकर कहा—महाराज, मदलेखा विनय करती है कि पत्रलेखाके प्रथम दर्शनसे ही देवी स्नेह करने लगी हैं इसलिए उनकी इच्छा है कि इसे आप यहाँ छोड़ दें, वे इसे पीछे भेज देंगी, महाराजकी क्या आज्ञा है ? चन्द्रापीड़ने यह सुन कर उत्तर दिया—केयूरक, पत्रलेखा धन्य और स्पृहणीय है कि उस पर देवीकी दुर्लभ कृपा हुई ? इसे रहने दो। इतना कहकर वह सेनाके पास आ पहुँचा और वहाँ पिताके पाससे आए हुए एक अत्यन्त परिचित पत्र-वाहकको देखा। घोड़ेको खड़ा करके प्रीतिसे फैले हुए नेत्र-सहित दूरसे ही पूछने लगा—क्यों ? क्या सब परिजनोंके साथ पिता और सब अन्तःपुरके साथ माता कुशलपूर्वक हैं ? यह सुन उस दूतने पास

१—सुकुमारता, संताप देनेवाले कामदेवके भावसे युक्त अथवा आप कामसे भी अधिक सुन्दर हैं, आपके भावसे युक्त।

आकर प्रणाम किया और कहा—हाँ महाराज, जैसे आप कहते हो वैसे ही हैं। फिर दो पत्र दिये। राजकुमार उनको सिरसे लगा कर, और आपही खोल कर क्रमसे पढने लगा—

२६६—स्वस्ति। उज्जयिनीसे सकल भूपाल-मौलि शेखरीकृत चरणारविंद, परम शैव, महाराजाधिराज देव तारापीड सब सम्पत्तियोंके निधान चद्रापीड़के ऊपर फैलते हुए, सुंदर चूड़ामणिके किरण जालसे चुम्बित मस्तक पर चुम्बन-पूर्वक अभिनन्दन करके लिखता है। प्रजा कुशल पूर्वक है, परतु तुमको बिना देखे बहुत दिन हो गए। हमारा हृदय बहुत उत्कंठित है। सब अंतःपुरके साथ देवी भी उदास रहती हैं। इसलिए पत्रको बाँचते ही कूच करना। फिर शुकनासके भेजे हुए दूसरे पत्रमें भी वही लिखा हुआ बाँचा। इतनेमें वैशम्पायनने पास आकर अपने पास आए हुए इसी मजमूनके दो पत्र दिखाए। तब—जैसी पिताजीकी आज्ञा—इतना कह कर, यों का यों ही घोड़े पर बैठे, उसने कूचका नक्कारा बजवा दिया और अपने पास बहुतसे घोड़ोंके बीचमें खड़े बलाहक के पुत्र, मेघनाद नामके, फौजके बड़े अफसरको आज्ञा दी—तुम पत्रलेखाके साथ आना। केयूरक उसे लेकर यहाँ तक जरूर आवेगा इसलिए तुम मेरी तरफसे उसके द्वारा देवी कादंबरीको प्रणाम सहित यह विज्ञप्ति कहला भेजना कि सचमुच मनुष्योंकी यह त्रिभुवन निन्दनीय, अनुरोध न माननेवाली, परिचयकी परवा न करनेवाली और दुर्ज्ञेय प्रकृति है कि उनकी प्रीति एक साथ धोखा दे जाती है और निष्कारण वत्सलताको भी नहीं गिनती। इस तरह चले जानेसे मेरा स्नेह तुमको कपटका मिथ्या प्रपंच मालूम होगा; भक्ति मिथ्या वक्रोक्ति कहनेकी कुशलता गिनी जायगी, केवल ऊपरी विनयसे मधुर दीखता आत्मार्पण धूर्तता होगी, तथा मेरी वाणी और मनमें भिन्नार्थ प्रकट ...। अब मेरी बात तो रहने दो। अयोग्य मनुष्यमें प्रसाद अर्पण करने ने दिया योग्य देवोंको भी निंदनीय किया है, क्योंकि अयोग्य स्थानमें डाली हुई प्रसादामृत दृष्टियाँ पीछेसे महानुभावोंको लज्जा उत्पन्न करती हैं। देवीकी अपेक्षा महाश्वेताका विचार करके मेरा हृदय लज्जाके मारने अधिक जड़ होता है क्योंकि जो गुण मुझमें नहीं हैं उनको बतला कर, मेरी प्रशंसा करने और अस्थानमें पक्षपात करनेके कारण, देवी सचमुच महाश्वेताको बार बार

उलाहना देगी। परतु अब मे क्या करूँ ? पिताकी अनुल्लघनीय आज्ञाका केवल मेरे शरीर पर ही अधिकार है, परन्तु हृदयने तो हेमकूटमे रहनेके शौकसे सात जन्मान्तर तक देवीका गुलाम रहनेके लिए बैनामा लिख दिया है। जैसे भारी वाला प्रदेश जगली आदमीको नहीं निकलने देता उसी भाँति हृदयको देवीका प्रसाद नहीं हटने देता। सर्वथा पिताकी आज्ञासे उज्जैन जाता हूँ। प्रसगसे जन-कथा-कीर्तनमें चन्द्रापीड़-चाडालको भी आप याद करना। परन्तु यह मत समझना कि चद्रापीड़ जीता रहेगा तो देवीके चरणारविंदोंकी वदना करनेके आनन्दका अनुभव किए बिना रह सकेगा। प्रदक्षिणा-सहित सिरसे महाश्वेताके चरणोंका वदन करना, मदलेखासे प्रणाम-पूर्वक दृढ आलिंगन करना, तमालिका का गाढ आलिगन करना। हमारी तरफसे कादम्बरीके सब परिजनोंसे कुशल पूछना और हाथ जोड़ कर भगवान् हेमकूटको आमत्रण करना।

२६७—इस प्रकार आज्ञा देकर वह वैशम्पायनसे कहने लगा—तुम, अपने पक्षके राजाओंकी सेनाको क्लेश न पहुँचे इस प्रकार, धीरे धीरे आना। यों कह कर वैशपायनको सेनाके ऊपर नियत किया और आप भी उसी तरह घोड़े पर बैठा बैठा, कादम्बरीके नये वियोगके कारण हृदय शून्य होने पर भी, अपने पर्याणके पास चलते पत्र वाहकसे उज्जैनका रास्ता पूछता पूछता चल निकला। गमन-रूपी विलासके हर्षसे हिनहिनाहट करके कैलाशको कँपाता, टापोंके आघात से पृथ्वीको खडित करता, मनोहर भल्ल-रूप लता-वनको ले जाता, बहुतसे तरुण तुरंगवाला अश्व-सैन्य उसके पीछे पीछे चला आता था। चलते चलते एक शून्य वन आया जिसमें प्रायः अत्यत ऊँचे तनेके वृक्ष लगे थे; वृक्षोंके झुरमुटोंमें मालिती लताओंके मडप बने थे, हाथियोंके गिराए हुए वृक्षोंके पड़े रहनेके कारण पगडडी टेढी हो गई थी, मनुष्योंके द्वारा बहुतसे घास-पत्ते और काठके ढेर लगानेसे वीर पुरुषोंके घातके स्थानकी सूचना होती थी; एक बड़े वृक्षकी जड़में वन दुर्गाकी मूर्ति खुदी थी, तृषित पथिकोंके द्वारा गूदा उतार कर फेंके गए आँवले पड़े थे, वहाँ कितने ही पुराने कूप थे; उनके तट पर खिले हुए करज नामक वनस्पतिकी मजरीकी रज बिखरी हुई थी, किनारों पर लगे वृक्षोंमें पुराने वस्त्रों और चिथड़ोंकी ध्वजाओंके चिन्ह बँधे थे, ईंटों पर बने सूखे पत्तोंके बिछौनेसे वहाँ पथिक जनोंके विश्राम करनेका अनुमान होता था, उनके किनारों

के पासके स्थान विश्रामके लिए बैठे रक्ताम्बर यात्रियोंके चरणोंकी धूलके उड़ने से मलिन हुए किसलयोंसे लाञ्छित थे, उनका जल अनेक प्रकारके पत्तोंके पड़ने से दुर्गन्ध, गरम, पंकमय, गदला और अस्वादु हो गया था, चारो ओर गाँठे लगा कर बनाए पत्तोंके पात्र और घासकी बनी फिरकिर्नोंके चिन्हसे वे पहचान लिए जाते थे, उनमें जल असुलभ होनेसे वह प्रदेश किसीके पसंद नहीं था। सूखी हुई कितनी ही गिरि-नदियोंसे उस वनका मध्य भाग ऊँचा नीचा हो गया था, उनके तीर मधुकी बूँदें टपकाते सिंधुवारके वनकी कतारमेंसे उड़ कर आई हुई रजसे धूसर हो गए थे, निकुञ्ज नामक लताके जाल उनकी रेती पर निरंतर व्याप्त थे और बटोहियोंने रेती खोद कर वहाँ छोटी छोटी कुइयाँ खोदी थीं जिनमेंसे थोड़ा थोड़ा मलिन जल मिल जाता था। जिसमें मुर्गा और कुत्ता के शब्दसे अनुमान होता था कि झाडीके बीचमें कोई छोटासा गाँव होगा ऐसे शून्य वनमें दिन भर चलनेके पीछे जब रविका बिम्ब अस्त होने लगा और दिन बिम्बकी लाल धूपसे युक्त हो गया तब एक बडा रक्त ध्वज दूरसे ही उसे देख पडा।

२६८—वनके उस प्रदेशमें, चोटी पर एक पल्लव रहनेसे छत्रकी विडम्बना करते, शाखा-रहित, अनेक कदम्ब, शाल्मली और पलाशके वृक्ष लगे थे, जिनमें नई कोंपल निकल कर ऊपरको चट रही थी ऐसे स्थूल स्तम्भोंकी जड़ोंसे वह भरा हुआ था, वहाँ हरतालके समान पीले पके बाँसके वृक्षोंकी बाड़ बनाई गई थी, हिरनोंको डरानेके लिए तृण-पुरुष बनाए गए थे, पक जानेके कारण पीले दीखते फल-युक्त प्रियंगु वृक्षोंसे भरे वन-क्षेत्रोंसे वह सकुचित हो रहा था। वहीं बहुत कालसे लगे लाल चन्दनके वृक्षके ऊपर वह ध्वज बँधा था, जो इधर उधर मानो पथिकोंके बलिदानका रास्ता देखता था। वह ध्वज सरस मांसके समान अलक्तक और अभिनव रुधिरके समान लाल रक्त चंदनके लेपसे [illegible] था, उसके दण्ड पर जिह्वा-लताके समान लाल रक्त-पताकाएँ और [illegible] कलापके समान काले चामर अधोमुखसे लटकते थे, जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो ताजे मारे हुए प्राणियोंके अवयवोंके आभूषणोंसे उसे सजाया हो। उस ध्वज पर कौड़ियाँ लगा कर बहुतसे गोल गोल घेरे तथा अर्ध चन्द्र बनाए गए थे, उनसे ऐसा मालूम होता था मानो अपने पुराने [illegible]

लिए उसके शिखर पर उतरे सूर्यने चद्रको उतार लिया हो। उस पर—जो आकाशको छूले इतनी ऊँची—एक सोनेकी त्रिशूलिका लगी थी। उसके मोगो से बँधी लोह-शृङ्खलाओंमें घटियाँ लटक रही थीं जिनके हिलनेसे घर घर ओ घोर शब्द होता था, और सिंहकी सटाका बना मनोहर चामर उससे बंधा था।

२६९—उस ध्वजकी ओर थोड़ी दूर चलनेके पीछे उसने हाथीदाँतके बने हुए, केवड़ेकी बालके समान धवल, कपाटके भीतर, चंडिकाको देखा। वहाँ द्वार देश पर एक लोहेकी महाराब बनी थी। उसमें लोहेके गोल दर्पणोंकी बदनवार लटक रही थी और उसके बीचबीचमें लाल लाल चामर लग रहे थे। उनमे ऐसा मालूम होता था मानो वहाँ कपिल केशोंसे भयंकर दीखते शबरोंके मरों की माला बाँध दी हो। सामने काले पत्थरके चबूतरे पर एक लोहेका मन्दिर बैठा था। उस पर लाल चदनके थापे लगे थे, उनसे ऐसा मालूम होता था मानो यमने रुधिरसे लाल हाथ उस पर फेरा हो, रुधिरकी बूँदके लोभसे ललचाई शृगाली उसके लाल नेत्रको जिह्वासे चाट रही थी। कहीं भीलोंके द्वारा मारे गए जगली महिषोंके नेत्रोंके समान लाल कमलोंसे, कहीं सिंहोंके पंजोंके समान अगस्ति पुष्पकी कलियोंसे, कहीं शार्दूलोंके सरुधिर पंजोंके समान किंशुक पुष्पोंकी कलियोंसे, पवित्र पुष्पोंके उपहार दिए गए थे। मार कर देवीकी भेट किए गए पशुओंकी हिंसा, मदिरमें एक तरफ, ऐसी मालूम होती थी मानो हिरनोंके टेढे सींगोंके अग्रभागके समूहोंसे अकुरित हुई हो, सैकड़ों सरस जिह्वाओं से पल्लवित हुई हो, हजारों रक्त नयनोंसे पुष्पित हुई हो, और मुण्ड मडलसे फलित हुई हो। आँगनमें लगे लाल अशोक वृक्षकी डालियोंके बीचमें लाल मुर्गे निरंतर भर रहे थे, उनसे ऐसा प्रतीत होता था मानो भयसे अकाल कुसुम स्तवक लगे हों। बलि रुधिर पीनेकी तृष्णासे आए वैतालोंके समान तालवृन्द फल रूपी मुडका उपहार दे रहे थे; पशुओंका वध देखनेकी शकासे पैदा हुए ज्वरसे मानो काँपते कदली-वनोंसे, भयसे मानो कंटकित हुए श्रीफल वृक्षोंसे और त्राससे मानो ऊँचे उठे केशवाले खजूरके वनोंसे वह स्थान सर्वत्र व्याप्त हो रहा था।

२७०—वहाँ अम्बिकाके लाड़ करनेसे चाहे जहाँ घूमते सिंहके बच्चोंसे विदीर्ण किए गए जंगली हाथियोंके कुम्भस्थलोंमेंसे गिरे लाल लाल मोतियोंके

दानोंको मुग्ध मुर्ग नवीन रुधिरसे रक्त चावलोंके बलिदानके लालचसे ले लेकर फिर उगल देते थे, और उन्हें खेलमें बिखेरते थे। बहुतसा रुधिर देखनेसे मानो मूर्छित होकर गिरे, अस्तके समयके, लाल सूर्यके प्रतिबिंबसे अधिक लाल दीखते, रुधिर रूपी जलके प्रवाहसे वहाँका आँगन चुपकने लगा था। अंदरवाले दरवाजेके वस्त्र, लटकते हुए दीपकोंके धूमसे, रँगीन हो गए थे, उसमें मयूरके गलोंकी गुंथी हुई माला बँधी थी; आटेसे साफ की हुई दृढ घटियोंका हार लटक रहा था; उसके दोनों किवाड़ोंमें सीसेके सिंहके मुँहके मध्यमें मोटी लोहेकी चटखनी बनी थी, हाथीदाँतकी आगल लगाई जाती थी, और पीले, नीले और लाल दर्पणोंमें कीलोंकी परछाई पड़ती थी। अंदरकी कुर्सीकी सतह पर गिरत, सब पशुओंके शरणमें आए जीवके समान, अलक्तकसे रंगे वस्त्रसे उस देवी के चरण सदा ढके रहते थे। वहाँ परशु, भाला आदि कितनेही जीवोंकी हिंसा करनेके शस्त्र थे; उनमें कृष्ण चामरोंका प्रतिबिंब पड़नेसे ऐसा मालूम होता था मानो सिर काटनेसे बाल चिपक रहे हों, उन शस्त्रोंकी प्रभासे गाढ अंधकार हो जानेके कारण चंडिका मानो पातालमें वास करती हो ऐसा प्रतीत होता था। वह बिल्वपत्रोंके हार पहन रही थी; उनके बीचबीचमें लाल चंदन चुपड़े हुए पत्ते और फल चमक रहे थे तथा वे ऐसे मालूम होते थे मानो बालकोंके मुंडोंकी लम्बी लम्बी मालाएँ हों। रुधिरसे लाल हुए कदम्बके गुच्छोंसे पूजे गए और पशुओंका बलिदान करते समय बजाई गई दुंदुभीके तीक्ष्ण शब्दसे उत्पन्न हुए आनन्द-रससे मानो रोमाञ्चित हो ऐसे अवयवोंसे वह उग्रता दिखाती थी। सुन्दर कनक-पट्टसे आच्छादित तथा भीलनियों द्वारा लगाए गए सिंदूरके तिलक बिन्दुसे युक्त ललाटसे, कानमें पहने हुए अनारके फूलकी प्रभाके [illegible] लाल हुए चौड़े गालसे, रुधिर रूपी ताम्बूलसे लाल हुए होठसे, लाल [illegible] तथा माया सकोड़नेसे टेढी भौंहवाले मुखसे, और कसूमम गुलाबी रंग[illegible] दुकूलसे युक्त देह-लतासे, उसने महाकालकी अभिसारिकाके वेष का विलास धारण किया था। लहराते हुए श्याम गूगलकी धूपके धूमसे रक्त हुए भीतरके मंडपकी चंचल दीपिका लताएँ ऐसी मालूम होती थी मानो महिषासुरके [illegible] बूंदोंसे लाल हुई उँगलियोंसे वह चोर कर्वे खुजानेसे त्रिशूल-दण्डको [illegible] देनेके अपराधके कारण उस महिषको धमकाती हो। लम्बी लम्बी [illegible]

फर बकरे भी मानो व्रत करते हों, होठ फड़का फड़का कर मृग भी माना नर करते हों, कृष्णचर्म ओढकर मृग भी मानो धरना देकर सोते हो और मलक चमकते हुए लाल रत्नकी किरणोंके कारण कृष्णसर्प भी मानो माथ पर मणि-दीपक धारण करते हों—इस प्रकार सब उसकी आराधना करते थे। कठोर कौवे भी सर्वत्र काँव काँव करके मानो प्रशंसा करनेमें लगे हुए उसकी स्तुति करते थे।

२७१—वहाँ एक बूढ़ा द्रविड़ धार्मिक रहता था, मोटी मोटी नसोंके जालसे निरंतर व्याप्त होनेके कारण वह ऐसा मालूम होता था मानो जले हुए वृक्षकी शाखासे गोह, छिपकली और गिरगटोंके झुंड उस पर चढ़े हों। फोड़ोंके घावके चिन्होंसे चित्रित उसका सब शरीर ऐसा मालूम होता था मानो अलक्ष्मीके द्वारा जड़से उखाड़ गए शुभ चिन्होंके खाली स्थानोंसे युक्त हो। कर्णभूषणकी जगह रक्खी गई उसकी शिखा छोटी सी बरसाती नालाके समान मालूम होती थी। अम्बिकाके पैरोंमें गिरनेसे उसके काले ललाट पर गूमड़ा पड़ गया था। किसी अत्तारके दिए हुए सिद्धांजनके लगानेसे उसकी एक आँख फूट गई थी, इस कारण हर वक्त वह दूसरी आँखमें अंजन लगानेके लिए एक काठकी सलाई पतली किया करता था। बाहर निकले दाँतोंकी चिकित्साके लिए वह प्रति दिन कड़वी तूँबरोंका पसेव लगाया करता था। किसी तरह अस्थान पर गरम ईंट लग जानेके कारण उसने झुर्रियोंवाली एक भुजाका मर्दन करना बंद कर दिया था। बार बार कटुक-वर्तीका निरंतर प्रयोग करनेसे उसका तिमिर रोग बढ़ गया था। पत्थर काटनेके लिए उसने सूअरके दाँत इकट्ठे कर रक्खे थे। इंगुदीके वृक्षके कोश में औषध और अंजनका संग्रह कर रक्खा था। प्रकोष्ठकी एक नसको सूईसे सी लेनेके कारण उसके बाएँ हाथकी उँगलियाँ मुड़ गई थीं। रेशमी मोजोंके घिस जानेसे चरणके अँगूठेमें बिवाई फट गई थी। विधिके अनुसार न बनाई गई रसायनके प्रयोगसे उसे अकाल ज्वर आ गया था। वृद्ध होने पर भी दक्षिण देशके राज्यके वरकी प्रार्थना करके वह चण्डिकाको पीड़ा देता था। किसी दुष्ट भिक्षुकके बताए हुए तिलक पर उसकी विभव मिलनेकी आशाका आधार था। हरे पत्तोंके रससे कोयलेकी बनी हुई स्याहीसे मलिन हुई एक पोथी उसके पास थी। एक

पट्टी पर उसने दुर्गाका स्तोत्र लिख रक्खा था। उसके पास ताल-पत्रों पर लिखे इंद्रजाल, तंत्र और मंत्र की छोटी छोटी पुस्तकोंका संग्रह था, जिनके लाल लाखके अन्दर धुएँसे रँग गए थे। प्राचीन महापाशुपतके उपदेशसे उसने महाकाल-मत लिख लिया था। इस साधनसे खजाना मिलेगा—ऐसे निधि-वादकी उसे व्याधि थी। इस साधनसे ताँबा भी सुवर्ण हो जायगा—ऐसे धातु-वादकी वाय उसे होगई थी। पातालमें प्रवेश करनेका पिशाच उसके पीछे लगा था। यक्ष-कन्याके साथ भोग की अभिलाषा करनेसे उसकी बुद्धिमें भ्रम हो गया था। अदृश्य हो जाने के कितने ही मंत्रों और साधनोंका उसने संग्रह कर रक्खा था। श्रीपर्वतकी हजारों आश्चर्य-मय वार्ताओंसे वह परिचित था। अभिमन्त्रित की हुई सरसोंके बार बार फेंकनेसे दोड़े हुए—पिशाचसे आविष्ट—मनुष्योंने चनकटे मार मार कर उसके कान चपटे कर दिए थे। उसने अपने शैव होने का अभिमान नहीं छोड़ा था। उलटा पुलटा पकड़ कर बजाए गए तमूरेका शब्द सुन कर उद्वेग पाते पथिक उसके पास तक नहीं फटकते थे। दिन भर सिर हिला हिला कर वह मच्छरकी भिनभिनाहटके समान कुछ गाया करता था। अपने देशकी भाषामें बने हुए भागीरथीके एक स्तोत्रको गाता हुआ नाचा करता था। अक्ष[१]-ब्रह्मचर्य ग्रहण करनेके कारण अन्य देशोंसे आकर बसती हुई वृद्ध सन्यासिनियों पर बार बार स्त्री-वशीकरण चूर्ण डाला करता था। बहुत चिड़चिड़ापन होने के कारण कभी कभी इधर उधर रक्खी हुई अष्ट-पुष्पिका[२]-के गिरजाने पर वह क्रोधित हो जाता था। मुँह बना बना कर चाडकाग भी खूब उपहास करता था। कभी कभी ठहरनेका निषेध करने से क्रुद्ध हुए [illegible] के साथ मार-पीटमें गिर पड़नेसे उसकी पीठ टूट जाती थी। कभी कभी [illegible]ध करके दौड़े हुए बालकोंसे चिढ़कर उनके पीछे दौड़ने में ठोकर गाकर [illegible] मुँह पत्थर पर गिर पड़नेसे उसके सिर और कपाल फूट जाते थे तथा गर्दन टेढी हो जाती थी। कभी कभी वहाँ लोगोंके द्वारा किसी नए आए हुए अन्य धार्मिकका आदर हुआ देख मत्सरसे (आत्मघात करनेके लिए)

१—अर्थात् स्त्रियोंके न होनेसे जबरदस्ती ब्रह्मचर्यसे रहना।

२—आठ तरहके फूलोंका संग्रह।

फाँसी लगा लेता था। संस्कार-रहित होने के कारण चाहे जो कुछ करता रहता था। लँगड़ा होनेके कारण धीरे धीरे चलता था। बहरा होनेके कारण इशारों से बातचीत करता था। रतौंधा होनेके कारण दिनमें ही बाहर निकलता था और लम्बा उदर होनेके कारण आहार बहुत करता था। अनेक उपायोंके द्वारा फल गिरानेसे चिढ़े हुए बन्दरोंने पंजोंसे खरोट कर उसकी नाक पर छेद कर दिए थे। कितनी ही बार फूल तोड़नेसे उड़े हुए हजारों भौंरोंने डंक मार मार कर उसका शरीर शीर्ण कर डाला था। हजारों बार, साफ किये बिना, शून्य देवालयोंमें सोनेसे काले सर्पोंने उसे काट लिया था। सैकड़ों बार श्रीफलके वृक्षकी चोटी परसे गिरनेके कारण उसके मस्तकका चूरा हो गया था। अनेक बार टूटे फूटे देवीके मंदिरमें रहने वाले रीछोंने पंजे मार मार कर उसके गाल जर्जरित कर डाले थे। हमेशा वसंतमें खेलने वाले लोग एक टूटी खाट पर बिठा कर लाई गई वृद्ध दासीके साथ विवाह करके उसका अपमान करते थे। बहुतसे देव मंदिरोंमें अभीष्टकी सिद्धिके लिए धरना दे कर सोने पर भी उसे कुछ, फल नहीं मिला था। अनेक व्याधियोंसे पीड़ित अपनी दुःस्थितिका भी वह कुटुम्बकी भाँति पालन करता था। बहुतसे व्यसनोंसे युक्त मूर्खताको यों दरसाता था मानो उस मूर्खताने अनेक अपत्य उत्पन्न किए हों। अनेक डंडोंकी चोटसे शरीर पर पड़े गूमड़ोंसे क्रोधके भी मानो फल गए हों यों प्रकट करता था। सब अवयवों पर प्रज्वलित दीपकके समान दाह पैदा करनेवाले व्रणोंसे अपने क्लेश के भी मानो बहुतसे मुख हुए हों यों दिखाता था। बिना कारण बुलाए गए लोगोंके द्वारा पैर पकड़ कर सैकड़ों बार खींचा जानेके कारण अपने तिरस्कार को भी मानो सप्रवाह हो यों धारण करता था। सूखी वन-लताओंकी एक बड़ी टोकरी फूल भरनेके लिए और बाँसका एक अंकड़ा[1] फूल तोड़नेके लिए उसने बना लिया था और काले कम्बलके टुकड़ेकी एक टोपी क्षण भर भी अलग नहीं रखता था। उसी जगह चन्द्रापीड़ने विश्राम लिया।

२७२—फिर घोड़े परसे उतर, मंदिरमें जा कर, चंडिकाको उसने भक्तिपूर्ण चित्तसे प्रणाम किया और प्रदक्षिणा-पूर्वक फिर प्रणाम करके ऐसी शान्त जगह देखनेके चावसे वह इधर उधर फिरने लगा। इतनेमें उसने देखा कि एक जगह द्रविड़ धार्मिक गुस्सेमें आकर ऊँचे स्वरसे रोता और चिल्लाता है।

कादम्बरीके वियोगसे उत्पन्न हुई उत्कंठा और उद्वेगसे स्वयं पीड़ित होने पर भी उसे देखकर वह बहुत देर तक हँसा। उसके साथ उपहास और कलह करते अपने सैनिकोंको उसने रोक दिया और किसी भाँति मीठे मीठे वचन कह कर तथा विनयसे समझा बुझा कर उसे ठंडा किया। फिर उसकी जन्म भूमि, जाति, विद्या, स्त्री-पुत्रादिक विभव, वयः प्रमाण, और सन्यास ग्रहण करनेका कारण क्रमसे स्वयं ही पूछा। तब उसने अपना सब वर्णन किया और पहलेके शौर्य, रूप, विभव आदिके विस्तार पूर्वक वर्णन सुन कर राजकुमारको बहुत ही आनंद हुआ। उसके विरहोत्कंठित हृदयको कुछ विनोदसा भी हुआ। परिचय हो जानेसे उसको ताम्बूल दिलाया।

२७३—फिर जब भगवान् सूर्य अस्त हो गए, सब राजपुत्रोंने जैसे मिले वैसे वृक्षोंके तले डेरे डाल लिए, सुवर्णकी जीनें शाखाओं पर लटका दी गईं, भूमि पर लोटनेसे लगी हुई धूल झाड़नेके लिए बालोंको इधर उधर फटकारने से घोड़े उत्साह दिखाने लगे, उन्होंने थोड़ी थोड़ी घास खाली, जल पी लिया, स्नान करनेसे पीठ गीली होनेके कारण थकावट दूर हो गई और उनको सामने गड़ी हुई भालोंकी लकड़ियोंसे बाँध दिया, दिनमें चलनेसे थके हुए सैनिकोंने प्रहर निश्चय कर लिए, घोड़ोंके पास ही पत्तोंके बिछौने बिछाकर वे सोने की तैयारी करने लगे और बहुतसी जगहोंमें सुलगाई गई अग्निकी प्रभासे अंधकारका नाश हो जानेके कारण सब सेनाका डेरा दिनके समान प्रकाशमान लगने लगा, तब चन्द्रापीड़ परिजनोंके द्वारा एक भागमें बाँधे गए इन्द्रायुधके सामने बने हुए, प्रतिहारके बनाए हुए, शयनके तंबूमें गया। वहाँ बैठते ही आकुलाहटसे उसके हृदयमें संताप होने लगा। जब किसी तरह मन नहीं लगा उसने सब राजा लोगोंको बिदा किया। पास बैठे हुए अत्यंत प्रियजनोंसे भी वह कुछ बातचीत नहीं कर सका। केवल आँखें मींच कर मनसे [illegible]देशको बार बार जाने लगा। एकाग्र चित्तसे हेमकूटकी ही याद करने [illegible]। महाश्वेताकी कृपाकी निष्कारण बाधनताके विषयमें चिन्तन करने लगा। [illegible]दम्बरीके—जीवन सफल करनेवाले—दर्शनकी पुन पुनः अभिलाषा करने लगा। अभिमान रहित होनेसे मनोहर लगते—मदलेखाके—परिचयको निरंतर चाहने लगा। तमालिकाके देखनेको उत्कंठित हुआ। केयूरकके आनेकी [illegible]

देखने लगा। हिमगृहको देखने लगा। गरम और लंबे साँस बार बार छोड़ने लगा। शेष हारसे अधिक प्रीति करने लगा। पीछे रही पत्रलेखाको पुण्यशालिनी मानने लगा। इस प्रकार जरा भी नींद आए बिना ही उसने सब रात बिताई। प्रात:काल उठ कर, द्रविड़ धार्मिककी इच्छाके अनुसार, द्रव्यके दानसे उसका मनोरथ पूरा करके, यथारुचि रमणीय प्रदेशोंमें ठहरता हुआ, थोड़े ही दिनोंमें उज्जयनीमें आ पहुँचा।

२७४—अकस्मात् आ जानेसे हृष्ट और सभ्रांत हुए नगर निवासियोंकी—अर्घ कमलके समान—हजारों नमस्कारांजलियोंको स्वीकार करते राजपुत्रने अतर्कित ही नगरीमें प्रवेश किया। सबसे पहले खबर ले जानेकी आशासे दौड़ते और अत्यंत सरंभ तथा हर्षसे विह्वल हुए परिजनोंसे जब उसके पिताने सुना कि देव, द्वार पर चन्द्रापीड़ आ पहुँचे हैं, तब वह अत्यंत आनन्दके भारसे मंद मंद चलता, क्षीरसागरके जलको मंदराचलके समान अपने नीचे गिरते निर्मल दुपट्टेको खैंचता, कल्पवृक्षोंमेंसे गिरते मोतियोंकी वर्षाके समान नेत्रोंमेंसे आनन्दाश्रु टपकाता, पैदल ही सामने मिलने आया और उसके पीछे हजारों राजा आये। उनके मस्तक बुढ़ापेसे सफेद हो गए थे, चन्दनका उन्होंने लेप किया था, कोरे रेशमी वस्त्र, बाजूबंद, उष्णीष, मुकुट, और शेखर पहननेसे वे पृथ्वीको अनेक कैलास मय वा अनेक क्षीरसागर-मय दरसाते थे और उन्होंने खड्ग, छड़ी, ध्वज, चामर आदिको ग्रहण किया था। पिताको दूरसे देखते ही चन्द्रापीड़ने घोड़े परसे उतर कर चूड़ामणिकी किरणोंसे व्याप्त हुए मस्तकको भूमि पर झुका कर प्रणाम किया। इतनेमें बाँह पसार कर तथा—आओ, आओ—कह कर पिताने उसका आलिंगन किया। उस समयमें पास खड़े हुए माननीयोंको नमस्कार करनेके पीछे हाथ पकड़ कर राजा उसको विलासवतीके महलमें ले गया। रानीने भी उसीके अनुसार सब अन्त:पुर तथा परिवार-सहित मिलनेके लिए आगे आकर, आगमनका अभिनंदन करके, मांगलिक क्रियाएँ कीं। वहाँ थोड़ी देर तक दिग्विजयके संबंधकी बातचीत करके वह शुकनाससे मिलने गया। वहाँ भी उसी प्रकार थोड़ी देर बैठ कर तथा सेनाके साथ वैशंपायनकी कुशलताका समाचार कह कर

मनोरमासे मिल कर, फिर विलासवतीके महलमें आकर, मानो परवश हो इस प्रकार, उसने स्नानादिक सब क्रियाओंको समाप्त किया। सन्ध्याको फिर अपने ही महलको गया परन्तु वहाँ उत्कंठासे मन खेद पाने लगा इसलिए वह कादम्बरीके बिना केवल अपनेहीको, अपने महलहीको, और अवन्ती नगरीहीको नहीं, परन्तु सब महीमंडलको ही शून्य समझने लगा। फिर गन्धर्व-राजपुत्रीकी बाता सुननेके लिए उत्सुक होनेके कारण पत्रलेखाका आना मानो महोत्सव हो, मनोवाञ्छित वरकी प्राप्तिका अवसर हो, अमृतोत्पत्तिका समय हो—इस प्रकार उसकी राह देखने लगा।

२७५—फिर कुछ दिनके बाद मेघनाद पत्रलेखाको ले कर आया और राजपुत्रके पास लिवा लाया। पत्रलेखाके नमस्कार करने पर दूरसे ही मुसकुराहटसे प्रीति दिखा कर चन्द्रापीड़ने स्वभावसे प्रिय होने पर भी, कादम्बरीके पाससे उसकी कृपासे मानो और सौभाग्य ले आई हो इस प्रकार, उसको अधिक प्यारी समझ कर, उठ कर अत्यन्त आदर दिखा कर आलिंगन किया। प्रणाम करते हुए मेघनादकी पीठ पर उसने अपना कोमल हाथ फेरा और बैठ कर कहने लगा—पत्रलेखा, आर्य्या महाश्वेता और मदलेखा सहित देवी कादम्बरी सबकी कुशल कहो? तमालिका केयूरकादि सब परिजन भी कुशली हैं? पत्रलेखाने उत्तर दिया—देव, जैसे आप पूछते हैं वैसे ही सब हैं। अंजलि मस्तक पर रख कर देवी कादम्बरी, सब सखीजन और परिजन सहित, आपका अर्चन करती है। इस प्रकार कहता हुई पत्रलेखाको लेकर और सब राजा लोगोंका विदा करके वह मंदिरके भीतर गया। वहाँ मन विरहसे आतुर होने के तथा अत्यंत प्रीतिके कारण वह बहुत कुतूहल न रोक सका। इसलिए सब परिजनोंको हटा कर, एक कमरेमें [illegible], नई स्थल-कमलिनी के बीचमें घुस गया। उसके ऊँचे दंडवाले [illegible] पत्ते छत्रका काम देते थे। सुखसे सोए हुए एक हंस मिथुनको मर[illegible] पताकाके समान शोभायमान मालूम होते एक दूसरे पत्र मंडपके [illegible] [illegible] [illegible]दसे सरका कर, वहाँ बैठ कर, पत्रलेखा से पूछने लगा—पत्रलेखा, कह, कैसे और कितने दिन तक रही? देवीकी कृपा तुझ पर कैसी थी? क्या क्या बातचीत हुई? सखियोंसे क्या क्या बातें हुई? [illegible]

प्यार करता है? और कौन अधिक प्यार करता है? राजपुत्रका यह प्रश्न सुन कर उसने उत्तर दिया—देव, कैसे और कितने दिन में वहाँ रही, देवीकी कृपा मुझ पर कैसी थी, और हममें क्या बातचीत हुई, और क्या कथा हुई, यह सब आप ध्यान दे कर सुनिए।

२७६—आपके वहाँसे चलने पर, केयूरकके साथ पीछे लौट कर, मैं पहले की तरह फूलोंके बिछोनेके पास जा बैठी, और देवीके नए नए प्रसादका अनुभव करती वहाँ सुखसे रही। अधिक कहनेसे क्या फायदा—बहुधा जहाँ मेरी आँख, वहाँ देवीकी, जहाँ मेरा शरीर, वहीं देवीका, जहाँ मेरा हाथ, वहाँ देवीका कर-पल्लव; वह मेरे नामके अक्षरोंका ही उच्चारण करती थीं और मुझसे प्रीति करनेमें उनका हृदय लगा हुआ था। इस प्रकार सब दिन होता रहा। सायंकालको मेरे ही सहारे हिमगृहमेंसे निकल कर, सब परिजनोंको आनेका निषेध कर, स्वेच्छासे टहलतीं वह अपने प्रिय बालोद्यानकी ओर चलीं। वहाँ यमुना-जल-तरंग-मय मालूम होती एक मरकत-मणिकी सोपान माला पर हो कर चूनेसे धवल हुए प्रमद-वनके चबूतरे पर चढीं और वहाँ एक मणि-स्तम्भका सहारा लेकर खड़ी रहीं। जरा खड़ी रह कर, हृदयमें दीर्घ काल तक विचार करके, मुझसे कुछ कहने की इच्छासे, पुतली और पलकोंको निश्चल रख, नेत्रोंसे मेरे मुखकी ओर बहुत देर तक देखती रहीं। देखते देखते ही निश्चय-पूर्वक मदनाग्निमें प्रवेश करनेकी इच्छासे स्वेद-जलके प्रवाहमें मानो स्नान किया। फिर स्वेद-जलके प्रवाहसे मानो तरल हुई हों इस प्रकार काँपने लगीं। अंग काँपनेके कारण गिरनेके,मानो भयसे विषादने उनको पकड़ लिया।

२७७—इससे मैंने उनका अभिप्राय समझ लिया और उनके मुख पर निष्कंप नयन रख, ध्यानसे देख कर, मैंने जब विनय किया कि मुझे आज्ञा करें, तब उनके अवयव भी काँप कर मानो उनको रोकने लगे; रहस्य सुननेकी लज्जासे अपनी प्रतिमाको भी मानो हटानेके लिये चरणाङ्गुष्ठ मणि-भूमि पर फेर फेर कर वह उसे रगड़ने लगीं, मणि-भूमि पर अंगुष्ठ घिसनेसे झन झनाहट करते नूपुरवाले चरणारविंदोंसे भवन-कलहंसोंको भी दूर भगाने लगीं, कर्णोत्पलके आगे घूमते भ्रमरोंको भी स्वेदसे गीले वदन पर पंखेका

काम देते वस्त्र-पल्लवसे उड़ाने लगीं, दाँतसे काटे हुए पानकी बीड़ीके टुकड़ेकी मयूरको मानो (केका न करनेके लिए) रिशवत देने लगीं, वन-देवताओंके सुननेकी मानो शङ्कासे इधर उधर बार बार देखने लगीं; और बोलनेकी इच्छा होने पर भी लज्जासे कंठ गद्‌गद् हो जानेके कारण कुछ भी बोल न सकीं। उनकी वाणी मानो जलती हुई मदनाग्निने सबकी सब जला दी हो, निरन्तर बहते नयन-जलमें बह गई हो, प्रवेश करते हुए दुःखोंसे व्याप्त हो, ऊपर गिरते कामके बाणोंसे टुकड़े टुकड़े हो गई हो, निकलते हुए निःश्वासोंने निकाल बाहर की हो, हृदयमें भरी हुई सैकड़ों चिन्ताओंने पकड़ रक्खी हो, और निःश्वासका पान करते हुए मधुकरोंने पी ली हो—इस प्रकार बड़े-बड़े प्रयत्न करने पर भी प्रवृत्त न हुई। दुःख-सहस्रकी गिनती करनेके लिए, मानो मोतीके दानोंकी एक अक्षमाला बनाती हों इस प्रकार वे नीचा मुख करके, गालको स्पर्श न करें ऐसे स्वच्छ अश्रु-बिन्दुओं की केवल वर्षा करने लगीं। उस समय उनसे लज्जाने भी मानो लज्जा-लीला सीखी, विनयने भी अति विनय सीखा, मुग्धताने भी मुग्धता सीखा, चातुर्यने भी चातुर्य सीखा, भयने भी भीरुता सीखी, विभ्रमने भी विभ्रमिता सीखी, विषादने भी विषादिता सीखी और विलासने भी विलास सीखा।

२०८—ऐसी अवस्थामें मैंने उनसे विनती की—देवी, यह क्या? तब उन्होंने भीतरसे लाल हुए अपने नेत्र पोछ डाले, अत्यन्त दुःखसे मानो अपनेको फाँसी लगानेके लिए मृणालकोमल बाहुलतासे लता-गृहकी मालिनकी गूँथी हुई एक कुसुम-मालाको, पकड़ कर, मृत्युका मानो मार्ग देखती हों इस तरह, एक भ्रूलताको ऊँची चढा कर, वह लंबे और गरम निःश्वास छोड़ने लगीं। उनके ... कारणकी उत्प्रेक्षा कर मैंने बार बार कहनेके लिए अनुरोध किया, परन्तु ... कारण कहनेकी बात मानो लिख कर देती हों इस प्रकार नागाश्र... के पत्ते पर कुछ लिखने लगीं, बोलने की इच्छासे होठ फड़कने लगे, ...वाससे आकृष्ट हुए मधुकरोंसे मानो कानमें सदेशा कहने लगीं, और भूमि... निश्चल नयन रख कर बहुत देर तक खड़ी रहीं।

२०९—फिर धीरे धीरे मेरे मुँहकी ओर दृष्टि कर, कामाग्नि... ... अपनी वाणीसे भरी हुई आँखोंमेंसे गिरते अश्रु-बिन्दुओंसे, मानो ...

बार धोती हुई, और अश्रु-बिन्दुओंके बहाने, घबराहटमें भूले हुए अपूर्ण वाच्यार्थाक्षरोंका विलक्ष स्मितसे झलकती हुई दन्त किरणोंसे मानो गूँथती हुई देखने किसी भाँति बोलनेकी हिम्मत की और मुझसे कहा—पत्रलेखा, वल्लभताके कारण जिस स्थानमें तू है, उसमें न पिता हैं, न माता है, न महाश्वेता है, न मदलेखा है, न मेरे प्राण हैं। जबसे तुझे देखा है तबसे ही तुझसे प्रेमी प्रीति हो गई है। न नहीं जानती हूँ कि क्यों सब सखियों परसे खिसक कर मेरा हृदय तुझ पर विश्वास करता है। अन्य किसको उलाहना दूँ? अन्य किससे परिभवकी बात कहूँ? अन्य किसको अपना दुःख बाँटूं? यह सब असह्य दुःख-भार तुझे जता कर अब मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। मैं जीवनकी सौगन्द खाती हूँ। मेरा हृदय यह वृत्तान्त जानता है इसलिए मुझे उससे भी लाज आती है, फिर अन्य किसीके हृदयका तो कहना ही क्या है? मेरी-सी स्त्री चन्द्र-किरणोंके समान शुभ्र कुलको लोकापवादसे कैसे कलंक लगावेगी? कुल-क्रमागत लज्जाका कैसे त्याग करेगी और कन्याओंके अयोग्य चपलतामें कैसे चित्तको जलावेगी? पिताने मेरा संकल्प नहीं किया, माताने दान नहीं किया, और गुरुओंने अनुमोदन नहीं किया, इसलिए मैं कोई भी सँदेसा नहीं कहती हूँ, न कुछ भेजती हूँ; और न देहका विकार दिखाती हूँ। मुझे गर्विष्ठ कुमार चन्द्रापीड़ने दीन और अनाथके समान गुरुजनोंमें निन्दित होनेके योग्य बना दिया है। तू ही कह—क्या यह बड़े आदमियोंका आचार है? क्या यह परिचयका फल है कि मेरे नवीन मृणाल-पल्लवके तन्तुके समान सुकुमार मनको इस रीतिसे दुःख दिया जाता है? युवकोंको तो कुमारिकाओंके साथ कभी जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। मदनाग्नि प्रायः पहले लज्जाको जला डालती है, फिर हृदयको, कामके बाण पहिले तो विनयादिकका खण्डन करते हैं फिर मर्मस्थानका, इसलिए मैं तुझे पुनर्जन्मान्तरमें मिलनेके लिये आमंत्रण करती हूँ। तुझसे बढ़ कर प्यारा मुझे कोई नहीं है? प्राण-परित्याग-रूपी प्रायश्चित्त करके मैं अपना कलंक अब धोए डालती हूँ। यों कह कर वह चुप हो गई।

२८—मैं तो वृत्तान्त जाननेसे सचमुच मानो शर्मा गई होऊँ, डर गई होऊँ, घबरा गई होऊँ, चेतना हीन हो गई होऊँ, इस तरह विषाद सहित कहने

लगी—देवी, चन्द्रापीड़ने क्या किया ? क्या अपराध उनसे हुआ ? और तुम्हारे कुमुद-कोमल अखेदनीय मनको कैसे अविनयसे उन्होंने खेद पहुँचाया ? यह सब मैं सुनना चाहती हूँ इसलिए कृपा करके कहिए। सुन कर प्रथम मैं प्राण त्याग करूँगी और पीछे तुम। मेरा ऐसा वचन सुनकर वह फिर बोली—ले कहती हूँ; ध्यान देकर सुन। प्रतिदिन वह चतुर धूर्त स्वप्नमें आ आकर पिंजरेके शुक-सारिका-रूप दूतियोंके साथ रहस्य संदेशा भेजता है। मैं सोती रहती हूँ तब, व्यर्थ मनोरथसे मनको मोह कर, मेरे कानोंके दन्त पत्रोंमें संकेत स्थान लिख जाता है। सम्मोहके कारण समागमकी आशासे प्रेरित होकर वह कितने ही ऐसे मनोहर मदन-लेख भेजता है कि, अन्तर स्वेदसे बिगड़े होने पर भी, उनमें पड़ी हुई अंजन युक्त अश्रु-बिन्दुकी पंक्ति ही उसकी अवस्था बता देती है। जबरदस्ती मेरे चरणोंको वह अपने अनुराग[1] से इस तरह रंगता है मानो अलक्तक-रससे रँगता हो। अविनयसे निश्चेतन होकर वह मेरे नख में पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बको भी बहुत मानता है। उपवनमें मैं अकेली जब उसके पकड़नेके भयसे दौड़ती हूँ और पल्लवोंमें वस्त्रका पल्ला अटक जानेसे चलनेसे रुक जाती हूँ तब लता रूप सखियाँ मुझे पकड़ कर मानो उसके अर्पण कर देती हैं, इससे वह मिथ्या-प्रगल्भ मुँह फेर लेने पर मेरा आलिंगन करता है। मेरे स्तन स्थलके ऊपर पत्रलताएँ रच कर वह दुष्ट मेरे प्रकृति से मुग्ध मनको कुटिलता सिखाता है। श्रम-जलकी कणिका-रूपी तारोंसे भरे हुए मेरे गालोंपर वह—मिथ्या मधुर बोलनेवाला—हृदयोत्कंठा रूपी तरंग पर होकर आती हो ऐसी शीतल मुख-पवनसे पंखा करता है। स्वेद-जलसे ढीला होकर कमल जिसमेंसे गिर गया ऐसे शून्य हाथसे भी वह दुर्विदग्ध [illegible]रके समान, अपनी शुद्ध नख किरणोंका कर्णपूर मुझे पहनाता है। अत्यन्त [illegible]ल बकुल वृक्षके सींचनेके समय मुँहमें भरी गई सुराकी घूँटोंको [illegible] [illegible] मेरे केश पकड़ पकड़ कर बार बार मुझे पिला देता है। महलके [illegible]के ताड़न करनेके लिए जब मैं चरण उठाती हूँ तब मेरे पाद प्रहार अपने मस्तक पर लेता है। पत्रलेखा, कह, मदनसे मन मूढ होनेके

१—रंग, प्रेम।

कारण निश्चेतन हुए उसे किस रीतिसे अब म रोकूँ ? वह प्रणय भगको भी ईर्ष्या समझता है। निदाको भी परिहास गिनता है। असम्भाषणको भी मान समझता है। दोष कहे जायें तो भी उनको स्मरण करनेका उपाय मानता है। अवज्ञाको भी अनर्गल प्रणय गिनता है। लोकापवादको भी यश गिनता है।

२८१—उनकी ऐसी वाणी सुन कर मुझे अत्यत हर्ष हुआ और म विचार करने लगी—अहो! चन्द्रापीड़में कामदेवने इसका अनुराग बहुत गहन कर दिया है! अथवा जो कादम्बरीके बहाने यथार्थमें कामदेवकी साक्षात् चित्त-वृत्ति ही महाराज पर यों प्रसन्न हुई है तब तो उनके सहज और साथ धानतासे सर्वधित गुणोंने प्रत्युपकार किया, यशने दिशाओंको धवल कर दिया; यौवनने रतिरस रूपी सागरकी तरंगोंसे रत्नवृष्टि बरसाई, यौवन-विलासोंने चन्द्रमें नाम लिखा; सौभाग्यने निज श्रीका प्रकाश किया, लावण्यने मानो चद्रकलाओंसे अमृतकी वृष्टि की। यों ही मलय पवनको बहुत दिनमें अब समय मिला, चन्द्रोदयको अवसर प्राप्त हुआ, वसन्तकी कुसुम-समृद्धिको अनुरूप फल मिला, मदिरा रसका दोष गुण हो गया और मन्मथ-युगके अवतारने मुँह दिखाया। फिर मैं हँस कर प्रकट-रूपसे बोली कि देवी, जो यह बात है तो तुम कृपा करके कोप छोड़ दो। कामके अपराधोंसे तुम्हें देवको दोष नहीं देना चाहिए—यह सब तो शठ कामकी चपलता है—इसमें देवका क्या है? मेरे यों कहने पर उन्होंने कुतूहल सहित पुन• प्रत्युत्तर दिया कि यह काम, अथवा जो कोई हो, उसके रूप क्या क्या हैं? मुझसे कह।

२८२—तब मैंने विनती की—देवी, इसका रूप कैसा? यह तो अग-रहित अग्नि है, क्योंकि ज्वालाओंका प्रकाश किए बिना ही सताप उत्पन्न करता है, धूम प्रकट किए बिना अश्रुपात कराता है, और भस्म-रज दिखाए बिना ही पाण्डुता उत्पन्न करता है। अखिल त्रिभुवन में ऐसा कोई प्राणी नहीं जो इसके शर-गोचरमें न आ गया हो, न आ रहा हो वा आनेको न हो। इससे कौन नहीं डरता? कुसुम-धनुष लेकर यह बाणोंसे बलवान्को भी भेद डालता है। जो कामिनियाँ इसके वश होकर कल्पनामें अपने प्रियके मुख चन्द्र सहस्र देखा करती हैं, उनको आकाश भी छोटा लगता है, जो

अपने प्राण-पतियों के आकार बनाती हैं उनको मही-मण्डल भी छोटा लगता है, जो अपने वल्लभ के गुण गिना करती हैं उनको संख्या भी स्वल्प लगती है, जो प्रियतमकी कथा सुना करती हैं उनको सरस्वती भी कम बोलने वाली लगती है और जो अपने प्राणनाथके समागम के सुख का ध्यान करती हैं उनके हृदयको तो काल भी बहुत थोड़ा लगता है ।

२८३—यह सुन थोड़ी देर विचार कर उन्होंने उत्तर दिया—पत्रलेखा, तू कहती है वैसे ही मुझे कामने कुमारका तरफदार बना दिया है, उसके ये सब और इनसे अधिक भी जो रूप हैं सब मुझमें हैं। हृदयसे तू कुछ अलग नहीं है इसलिए अब मैं तुझसे ही पूछती हूँ। इस समय जो उचित हो मुझे बता। ऐसी ऐसी बातोंमें मैं कुछ भी नहीं समझती। मेरा हृदय तो यों ही कहता है कि गुरुजन अब निन्दा करेंगे और मुझे बहुत शरमाना पड़ेगा इसलिए जीनेसे मरना ही अधिक अच्छा है। उनका यह वचन सुन मैंने फिर कहा—देवी, बहुत हुआ, बहुत हुआ, यों निष्कारण मरणका निश्चय करनेसे क्या फायदा? भगवान् मकरकेतुने तो बिना आराधनाके ही प्रसन्न होकर तुमको वर दिया है, और फिर जब कामदेव, गुरुके समान, कन्याका सङ्कल्प करता है, माताके समान अनुमोदन करता है, पिताके समान दान करता है, सखीके समान उत्कंठा उत्पन्न करता है और धात्रीके समान तरुणावस्थामें रत्युपचार सिखाता है, तब उसमें गुरुजनकी निंदाकी क्या बात है? कहो तो कितनी ही ऐसी गिना दूँ जिन्होंने अपने आप विवाह किया है। जो यों न होता तो धर्मशास्त्रमें बताई हुई स्वयम्बर-विधि निरर्थक हो जाती। इसलिए देवी, प्रसन्न होओ, मैं तुम्हारे पाद-पङ्कज-स्पर्शकी सौगन्द खाकर कहती कि अब तुम मरनेकी बात मत करो—मुझे कुछ सन्देशा देकर भेजो कि मैं तुम्हारे प्राणप्रियको बुला लाऊं। मेरे यों कहने पर प्रीति-द्रवसे आर्द्र चक्षुसे मानो मेरा पान करतीं, रोके जाने पर भी कामबाणके प्रहारसे प्रेरित हुई लज्जाको मानो भेदनेसे रास्ता पाकर बाहर निकलते अनुराग-निर्भरा आकुल होतीं, प्रिय वचन सुननेसे उत्पन्न हुए स्वेदसे चिपटे उत्तरीयांशुकको रोमाञ्चके जालसे मानो उठा कर धारण करतीं, और लटकते हुए कुण्डल और माणिक्य पत्रके मकरकी नोकोंमें उलझे हुए अपने हारको, मानो हाथ

द्वारा गलेमें डाले गए, चन्द्र-किरण-मय मरण-पाशके समान सुलझातीं, वह हर्षसे अन्तःकरण विह्वल होने पर भी कन्याओंकी सहज लज्जाका मानो अव-लम्बन करके धीरे-धीरे कहने लगीं—

२८४—मै जानती हूँ कि तू मुझसे बहुत ही प्रीति करती है, परन्तु कोमल शिरीष-पुष्पके समान मृदु-प्रकृतिवाली अवलाओंमे और फिर विशेष करके बालभावकी कुमारियोंमे इतना अधिक प्रागल्भ्य कहाँ? जो स्वयं संदेशा भेजती हैं, अथवा पास चली जाती हैं, वे तो साहसकारिणी होती हैं। मै तो बाला हूँ, और सन्देशा भेजनेका साहस करनेमे शरमाती हूँ—अथवा मुझे सन्देशा भी क्या कहलाना है? जो यों कहूँ कि तुम मुझे बहुत प्यारे हो—तो यह कहना पुनरुक्ति होगा, क्या तुमको मै प्यारी हूँ? इस सवालसे मूढता प्रकट होगी, तुम पर मेरा अत्यन्त प्रेम है—यह तो वेश्याओंके कहनेका तरीका है, तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकती हूँ—यह अनुभव-विरुद्ध है, अनग मुझे बहुत पीड़ा देता है—यह तो अपने ही दोषका उला-हना है, मदनने मुझे तुम्हारे अर्पण कर दिया है—यह उनके पास जानेका उपाय है, मैंने तुमको जोरसे पकड़ रक्खा है—यह कुलटाका प्रागल्भ्य है, तुम अवश्य यहाँ आना—यह सौभाग्यका गर्व है; मैं आप ही तुम्हारे पास आती हूँ—यह स्त्री चापल्य है, यह दासी अनन्य रक्त है—यह तो अपनी भक्ति दिखाने-की लघुता है, इन्कारकी शकासे मै सदेशा नहीं भेजती—यह निश्चयपूर्वक नहीं जानी गई बातका जताना है, तुम्हारे वियोगके कारण जीवन भार लगता है और मै दुःख का अनुभव कर रही हूँ—यह अति प्रणय है, और मरणसे तुम मेरी प्रीति जानोगे—यह तो असभव ही है।

२८५—* और जो अब तू कुमारको ले भी आई तो चचलतासे उत्पन्न हुई लज्जाके कारण मैं उन्हे देख न सकूँगी, काम विकारसे उत्पन्न हुई पर्याकुलता-

* इतना ग्रथ रचकर बाणभट्ट स्वर्ग चले गए तब उनके पुत्र पुलिन भट्ट ने कथा को पूरा किया। पुलिनभट्ट की प्रस्तावना.—

१—जिसमे सधिका जोड़ नहीं दीखता ऐसा जिनका एक शरीर आधे आधे दो शरीरोंके जुड़नेसे बना है उन, जगत्के माता-पिता, पार्वती

के कारण उनके आगे न ठहर सकूँगी, क्या करना चाहिए? —यह न जाननेकी जड़ताके कारण उनके पास न जा सकूँगी, अपने आप पास जानेकी लघुताके कारण उनका सत्कार न कर सकूँगी, और उनको जबरदस्ती बुलानेके भयके कारण उनके समुख न हो सकूँगी। और जो किसी तरह गुरुजनोंकी शरमसे, या राजकार्य के अनुरोधसे, या बहुत कालके अनन्तर देखे हुए—साथ परवरिश पाए हुए—बंधुओंके दर्शन सुखसे, या मित्रोंका मुखकमल देखनेकी उत्कंठासे, या फिर आनेका कष्ट न उठाने की इच्छासे, या अपने घर पर रहनेकी रुचिसे, या जन्मभूमिके स्नेहसे, या मेरी चाह न होनेसे

परमेश्वरकी, अत्यन्त दुर्घट कथाके परिशेषकी सिद्धिके लिए, वन्दना करता हूँ।

२—केसर सटा की चेष्टासे जिनका मुख विकराल मालूम होता है, जिनके हाथमें शख, गदा, खड्ग और चक्र शोभायमान हैं तथा जिन्होंने मनुष्य और सिंहका रूप एक साथ प्रकट किया था उन, ससारके स्रष्टा, नारायणको भी नमस्कार करता हूँ।

३—जिन आर्यकी लोग घर घर पूजा करते हैं, पुण्योंके कारण जिनका मैं पुत्र हुआ हूँ और जिन्होंने—जिसके रचना करनेकी शक्ति अन्य किसीमें नहीं थी ऐसी—इस कथाकी सृष्टि की है उन, वाणीके ईश्वर, अपने पिताको प्रणाम करता हूँ।

४—पिताके स्वर्ग जाने पर उसकी वाणीके साथ ही पृथिवी पर जिस कथाके प्रबन्धमें विच्छेद हो गया था उसके समाप्त न होनेसे पैदा हुए सज्जनोंके दुःखको देख कर मैंने उसे प्रारम्भ किया है, कवित्वके गर्वसे नहीं।

५—यद्यपि मेरे पिताने गद्यमें रचना की थी तथापि उन्होंने जैसे अक्षरोंका प्रयोग किया वह उनका ही प्रभाव था (तो भी मैं कथा जारी रखता हूँ, क्योंकि) एक प्रवाह में बहते अमृत-रस के स्थान चन्द्रमाकी किरणोंका सपर्क ही चन्द्रमणि के द्रव के लिए काफी होता है।

६—पृथ्वी पर छोटी छोटी नदियाँ भी गगामें प्रवेश करके तन्मय होकर स्फीत हुई समुद्रमें जा मिलती हैं। मैं भी समुद्र तक पहुँचनेवाले—पिताके वचनोंके—प्रवाहमें कथा पूरी करनेके लिये अपनी वाणी को पहुँचा रहा हूँ।

उनको तू—मेरी प्यारी सखी—पैरों पड़ कर और मुझ पर स्नेहके कारण प्रयत्न करने पर भी यहाँ न ला सकी तब तो आशा भी बिलकुल नहीं रहेगी।

२८६—और अब ज्यादा क्या हो गया है? मैं वही कादम्बरी हूँ जिसको खिले हुए कुमुद वनकी महकसे सुगंधित दिगतवाली कुमुदिनीके तट पर, चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शके कारण चंद्र-मणियोंके शिखरमेंसे झर झर बहते झरनेवाले क्रीडा-पर्वतके बीचमें, जहाँ मनोहर हरिचंदनके रसकी कणिकाओंसे उनके कर-तलके स्पर्शके सुखसे उत्पन्न हुई पसीनेकी बूँदोंका भ्रम होता था ऐसे—उस समय रमणीय लगते—मुक्ता-शिलाके तख्तके ऊपर, जहाँ फूलोंकी सुगंधिसे दशों दिशाएँ महक रही थीं और जो हिम-कणोंके एकत्र होनेसे मनोहर होने पर भी केवल बाहरका ही देह-दाह शान्त करता था ऐसे—सब रमणीय वस्तुओंके संग्रह-स्थानके समान—हिमगृहमें, प्रदोषके समय—जब कपूरका चूर्ण मिला कर घिसे गये चंदनकी गोलियाँ लेकर कुपित कामिनियोंका मन बहलानेके योग्य गीतोंसे परिजन मुखर हो रहे थे, बार बार अपने-स्वामियों को देख कर उठनेके कारण कंचुकी लज्जित हो रहे थे, मधु-मदसे गुंजार करते भ्रमरोंके मधुर कोलाहलसे व्याकुल हुई कोयलोंके करुण शब्दसे विरही जन मनमें दुःखी हो रहे थे, खिले हुए कमलोंके मकरंदसे आनंदित होकर मंद मंद चलती हवा दशों दिशाओंको सुगंधित कर रही थी, खिले हुए फूलोंकी सुगंधसे कामदेव मानिनियोंका मान छुड़ा रहा था, और (पके हुए

७—जैसे लोग मदिरा के स्वाद से उन्मत्त हो जाते हैं उसी तरह कादम्बरीके रससे मत्त हो जानेके कारण सब लोग गुण दोषकी परीक्षा जरा नहीं कर सकते हैं। इस कारण अपने रस-वर्ण विहीन वचनोंसे उस कथाके बाकी हिस्सेको पूरा करनेमें मुझे कुछ भय नहीं है।

८—जिनमें फल पैदा करनेकी शक्ति है, बोनेवालेने ही जिनको अच्छी जगहमें डाला है, बड़ी मेहनत करके जिनकी सँभाल की है, जिनमें अंकुर निकलने लगे हैं और खूब फल लगनेको है उन बीजोंको उसका पुत्र एकत्रित करता है। (आशय यह है कि बाण भट्ट ने जो बीज तैयार किए थे—संकेत बनाए थे—जिनका उन्होंने कादम्बरी में उपयोग किया था—उन्हींके अनुसार उनका पुत्र कथा पूरी करता है)।

सरपतेके गट्ठेके समान पाडु तथा कड़े कुडल जिन पर टकरा रहे थे ऐसे सुन्दर युवतियोंके गालोंकी विडम्बना करता और आकाशको भूषित करता) चद्रमा निरतर चमकते श्वेत कर समूहसे चाँदनी-रूपी जल खूब बरसा रहा था, तब—कुमारने मुझे फूलोंके बिछौने पर लेटा देखा था! उनके दर्शनकी नई स्पृहावाले वे के वे ही मेरे नेत्र हैं जिन्होंने उनको देखा था, अज्ञानसे शून्य हुआ वह का वही मेरा हृदय है जो भीतर प्रवेश करने पर भी उनको धारण न कर सका, वह का वही यह शरीर है जो बहुत देर तक उनके पास उदासीन रहा था, वह का वही हाथ है जिसने गुरुजनोंकी मिथ्या अपेक्षासे अपना ग्रहण नहीं कराया, दूसरोंकी पीड़ाकी परवा न करने वाले चंद्रापीड़ भी वही हैं जो यहाँ आकर दो बार लौट गए हैं, और मुझे ही मारते मारते बाण हो चुकनेसे अन्यत्र कुछ न करनेवाला कामदेव भी वह का वही है, जिसका हाल तूने बतलाया था।

२८७—और महाश्वेतासे मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक तू दुःखन है मैं अपना विवाह नहीं करूँगी, पर उसने कहा था—"देवि, ऐसी बात मनमें मत आने दे, यह बात अच्छी नहीं, यह पापी कामदेव बड़ा दारुण है, प्रिय जनका दर्शन न हो तो हृदयमें अनुराग उत्पन्न करके यह कभी कभी प्राण भी ले लेता है।" पर मेरे साथ तो यह बात नहीं। कामदेवने, या दानने, या विरहने, या यौवनने, या अनुरागने, या मदने, या हृदयने, या अन्य किसीने मुझे कल्पना मय कुमार दिया है जो लोगोंके सम्मुख भी किसीके देखनेमें नहीं आता और सिद्धके समान सर्वदा दर्शन दिया करता है, और प्रत्यक्ष चद्रापीड़के समान यह कल्पना मय कुमार ऐसा निष्ठुर नहीं है कि एक साथ मुझे छोड़ दे। यह आप ही मेरे वियोगसे डरता है। दिन रात ...र्नके लिए व्याकुल नहीं रहता। पृथ्वीका पति नहीं है। उसे सखियों की अपेक्षा नहीं है। न कीर्तिको बढ़ाता है। शयनमें, ...में, ... कमलिनियोंमें, उद्यानोंमें, लीला सरोवरोंमें, क्रीड़ापर्वत पर और छोटी ... गिरिनदियोंमें, उस मुग्ध कन्याओंका वचन करनेके मुख्य हेतु, इस कुमारको बैठतेमें, खड़े होनेमें, फिरतेमें, सोतेमें, जागनेमें, आँखें मिची होने पर, ..., और स्वप्नमें, जिस प्रकार मैं दिन रात देखती हूँ ... मने ... कहीं

है। इसलिए अब उनको यहाँ ले आनेकी बात रहने दे। यों कहतीं कहतीं, मानो अचानक मूर्छा आ गई हो इस प्रकार, आँखें मींच कर, पलकोंके पास इकट्ठे हुए आँसू बरसातीं, मानो अन्तर्गत सतापके वेगसे गली जाती हों, घबराहटसे गला भर गया हो—इस तरह चबूतरेके चंदोवेके बीचमें लटकती हुई डोरीसे बँधे वस्त्रका जिसने सहारा ले रक्खा था ऐसी अपनी बाहु-लता पर मुँह रख कर, उत्कीर्णकी भाँति, चुपचाप खड़ी रहीं और उनका मुँह ऐसा मालूम होने लगा जैसे स्वच्छ जलके प्रवाहमें उगी मृणालिका पर पानीके हिलोरे लगनेसे श्याम पड़ा लाल कमल हो।

२८८—यह सुन कर मैंने विचार किया—वह कल्पनामय प्रिय सर्वदा वियोगिनी कुलीन स्त्रियोंका और विशेष करके कुमारियोंका यथार्थमें जीवनका बड़ा आधार और मन बहलानेका साधन है, क्योंकि दूतियोंके पैरों पड़कर दीनता दिखाए बिना ही इसके साथ क्षण-क्षणमें उनका सैकड़ों बार समागम होता है, नियत कालमें न होनेसे रमणीय मालूम होते स्वेच्छाभिसरणका सुख मिलता है, और ऐसी रति होती है जिससे कुमारी-भावको दूषण न लगे। सुरतमें स्तनोंके बीचमें होनेसे जो अड़चन होती है उससे रहित आलिंगन होता है, व्रण दीखनेसे उत्पन्न होती लज्जाके बिना नख-दन्त-क्षतका सुख मिलता है, केशपाशको ढीला किये बिना ही कच-ग्रह-रूपी महोत्सव होता है, शब्द-रहित रत होता है, और क्षत पर गुरुजनोंकी दृष्टि पड़नेसे होती हुई हैरानीके बिना अधर-खंडनका विलास होता है। अंधकार इसे अदृश्य नहीं कर सकता, मेघकी धारा ढक नहीं सकती और तुषार समूह छिपा नहीं सकता। यों मैं विचार कर रही थी कि इतनेहीमें अनुराग कथाके रसमें मानो डूब जानेसे दिन लाल लाल हो गया। उस क्षण राग प्रकट करता हुआ सूर्य मण्डल लज्जासे भागते हुए कादंबरीके हृदयके समान देख पड़ा। रात्रिने पत्तोंके बिछौनेके समान सन्ध्यारागकी रचनाकी और प्रदोषने परिचारकके समान चन्द्र रूपी मणि-शिला-तलकी शैया बनाई। इतनेमें अपने अपने काममें जुटी हुई दीपिका लानेवाली बालिकाएँ दूरसे आकर, तेलके सुगंधित होनेसे महक फैलानेवाली, दीपिकाओंका मंडल बनाकर उन्हें आसपास रख गईं। फिर निर्मल लावण्यमें दीखते दीपिकाओंके प्रतिबिंबों से देवी ऐसी मालूम होने लगीं मानो कामदेवके बाणोंकी नोकें

उनके अंगोंमें छिद गई थीं । तब नई कलियोंसे निरंतर लदी हुई चंपक-लताके समान देवी को देख कर मैंने फिर विनय किया—देवि, कृपा करिए, आप खेदके योग्य नहीं हैं इसलिए हृदय को खेद पहुँचानेवाला संताप आपको नहीं करना चाहिए। शोकके वेगको दबाइए। मुझे चन्द्रापीडको लेकर आई हुई ही समझिए। विष दूर करनेके मंत्रसे विषमूर्च्छितके समान आपके नामसे युक्त मेरे इस वचनसे उन्होंने झट आँखें खोलीं और स्पृहा-पूर्वक मेरी ओर देख कर—यहाँ कौन परिजन है?—इस प्रकार पूछा।

२८६—तब कितनी ही कन्याएँ दौड़ीं। उनकी शरीरलता सफेद वस्त्रों से शोभित थी, दरवाजेके अन्दर घुसनेमें उन्होंने अपने अंगोंको सुकोड़ लिया था; वे परशुरामके बाणोंसे किए गए विवरमेंसे निकली हुई कल हंसों की कतारों के समान मालूम होती थीं, कलहंसोंके समान मधुर स्वरसे उनके पायजेब मानो जवाब दे रहे थे, कर्णपूर पल्लवके लटकनेसे छूटे हुए उनके कान आज्ञा सुननेके लिए मानो दौड़ते थे, कंधे पर पड़ी हुई मोतीके कुंडलकी किरणोंके जालसे ऐसा मालूम होता था मानों उन्होंने चमर धारण किये हों, गालों पर टकराते कुंडल उनको मानो बलपूर्वक ले जाते थे, और उनके कर्ण-कमलके वाचाल मधुकर मानो—क्या आज्ञा है?—यों कहते थे। वे सब आज्ञा सुनने की इच्छासे उनके मुखकमलकी तरफ देखने लगीं तब क्रमसे उन पर स्निग्ध इंदीवरकी मालाके समान दृष्टि गेरती गेरती वह मरकत-शिला तल पर बैठ कर कहने लगीं—"पत्रलेखा, यह बात मैं इस कारण नहीं कहती हूँ कि तुझे अच्छी लगेगी। तुझे ही देख कर मैं जिन्दा हूँ। तथापि जो तेरा ऐसा ही आग्रह है तो तुझे अच्छा लगे सो कर।" ॥ २८८, अपने अंगमें पहने हुए वस्त्राभूषणों के तथा ताम्बूलके दानसे अनुग्रह करके उन्होंने मुझे विदा किया।

२९०—इतना कह कर पत्रलेखा मुँह जरा नीचा करके फिर धीरे धीरे कहने लगी—देव, देवीके नए प्रसादकी अभिलाषासे धृष्ट हुई मैं [illegible] हो कर सूचित करती हूँ कि ऐसी दशा में देवी को छोड़ कर क्या आपने तो अपनी आपन्न-कमल प्रकृतिके अनुकूल किया? पत्रलेखाका यह उपालंभ सुन कर और कादम्बरीका ऐसा स्नेह देखकर चन्द्रापीड भ्रान्त हुआ, [illegible]

युक्त, याचना-युक्त, अभिमान-युक्त, अवहेलना युक्त, प्रसाद-युक्त, निर्वेद युक्त, अनुराग-युक्त, पीड़ा-युक्त, धैर्य युक्त, कोप युक्त, आत्मार्पण युक्त, सद्भाव युक्त, व्यंग्य युक्त, उपालभ युक्त, अनुक्रोश युक्त, स्पृहा-युक्त, विमर्श युक्त, मधुर[1] होने पर भी दु:खसे सुननेके योग्य, सरस[2] होने पर भी शोषकारी, कोमल[3] होने पर भी कठोर, नम्र[4] होने पर भी उन्नत[5], विनय-युक्त होने पर भी अहंकार[6]-युक्त, और लालित्य-युक्त होने पर भी प्रोढ आलाप सुनकर, पलक निश्चल हो जानेके कारण दुःसह दु:खसे उत्पन्न हुए आँसुओंसे भरे बड़े बड़े नेत्रवाले कादम्बरीके मुखकी उत्प्रेक्षा करता करता, चंद्रापीड़ स्वभावसे धीर-प्रकृति होने पर भी अत्यन्त व्याकुल हो गया।

२९१—फिर मानो कादम्बरीके शरीरमेंसे, पत्रलेखासे कहे गए शब्दोंके साथ ही आकर शोकने हृदयमें, जीवनने कंठमें, कंपने अधर-पल्लवमें, नि:श्वासने मुखमें, स्फुरितने नासाग्रमें और आँसुओंने नेत्रोंमें एक साथ वास किया। इस कारण कादम्बरीके समान दशा वाला होकर वह आँसू टपकाता टपकाता गद्गद वाणीसे ऊँचे स्वरसे कहने लगा—पत्रलेखा, मैं क्या करूँ? शृंगार-नृत्यका आचार्य भगवान् कामदेव अन्तर्गत विकार दिखानेके लिए उस बालासे मेरे विषयमें जो कुछ अनेक प्रकारसे हठ पूर्वक कराता है वह सब, अदृष्ट-पूर्व होनेके कारण, दिव्य कन्याओंके रूपके अनुरूप लीला समझनेसे और अपने साथ ऐसे मनोरथका होना भी असम्भव जाननेसे—यह सब उसका स्वाभाविक है—यों मुझे दुरात्मा, दुःशिक्षित, ज्ञानाभिमानी, पंडितमानी, दुर्विदग्ध, दुर्बुद्धि, मिथ्या धैर्यवाले, अपने आप किए हुए शत सहस्र मिथ्या सन्देहोंसे भरे हुए, अविश्वासु मूढ हृदयने विकल्प और संशयमें डाल कर देवी के ऐसे दु:खका और तेरे उपालभका हेतु बनाया है। मैं समझता हूँ कि मुझे

१—(१) सुखसे श्रवणीय, (२) शृंगार रसके पोषक पदोंसे युक्त।
२—(१) आर्द्र, (२) रति आदि रसके वर्णनसे युक्त।
३—(२) मृदु-वर्ण-युक्त।
४—(१) नीचा, (२) विनय-युक्त।
५—अर्थात् उदार।
६ (२) कुल आदिके अभिमानसे युक्त।

भी यह कोई विवेकका नाश करनेवाला शाप लगा है। नहीं तो अनसमझ को भी जिनमें कुछ संदेह न हो ऐसे ऐसे कामदेवके स्पष्ट चिह्नोंके विषयमें भी मुझे इस तरह भ्रम क्यों हुआ? अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण जिनका ज्ञान कठिनतासे होता है ऐसे मुसुकुराहट, कटाक्ष, कथन, विहृत[१], लीला और लज्जाको रहने दो, क्योंकि इनका अन्यथा होना भी सम्भव है, पर चिर-काल तक अपने कंठके संसर्गके सौभाग्यको प्राप्त हुए इस हारको मुझ पुण्य हीनके गलेमें उसी क्षण पहना कर उन्होंने क्या नहीं जताया? और हिम-गृहका वृत्तान्त तो तूने भी प्रत्यक्ष देखा था। इसलिए देवी ने प्रणय-कुपित होने पर भी इसमें झूठ क्या कहा है? यह सब मेरे विरुद्ध आचरणका दोष है, तो अब मैं ऐसा बर्ताव करनेमें अपनी जान तक लड़ा दूँगा कि जिससे देवी मुझे ऐसे अत्यन्त कठिन हृदयका न जानें। कुमार यों कह रहा था कि इतनेहीमें बेंत हाथमें लिए एक प्रतीहारीने कहलाए बिना ही भीतर आकर प्रणाम पूर्वक विनय किया—युवराज, देवी विलासवतीने कहलाया है कि परिजनोंकी बातचीतमें मैंने सुना कि पत्रलेखा पीछे रह गई थी सो आज लौट आई है। मैंने उसकी परवरिशकी है इस कारण तुम पर और उस पर मेरा एक-सा स्नेह है। तुमको बिना देखे भी बहुत देर हो गई है इसलिए उसके साथ ही आओ। तुम सैकड़ों मनोरथोंसे प्राप्त हुए हो। तुम्हारे मुख कमलका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है।

२८२—यह सुन चन्द्रापीड़ने विचार किया—अहो! मेरा जी [illegible] सन्देह दोलापर चढा है। एक ओर माता मुझे क्षण भर भी नहीं देखतीं तो [illegible] दुःखित होती हैं, दूसरी ओर निष्कारण [illegible] देवीने पत्रलेखाके द्वारा [illegible] वहाँ आनेकी आज्ञा भेजी है। एक ओर जन्म समयसे [illegible] माता [illegible] [illegible] है, दूसरी ओर मेरा हृदय चाह से व्याकुल हो गया है। एक ओर [illegible] चरणोंकी सेवाका सुख छोड़ा नहीं जाता, दूसरी ओर [illegible] दुःसह पीड़ा देता है। एक ओर गुरु [illegible] मनोहर है, दूसरी ओर उत्कंठाका दुःख सहा नहीं जाता। एक ओर [illegible] प्रीति [illegible]

१—जब प्रीतमके मिलने पर भी लज्जा वश नायिका अपना मनोरथ प्रकट नहीं करती है तब विहृत हाव होता है।

करनेवाली है, दूसरी ओर नई प्रार्थना कुतूहल पूर्ण है। एक ओर कुल-क्रमागत राजा लोग मेरे मुखको देखा करते हैं, दूसरी ओर प्रियतमाके मुखका दर्शन जीवनका फल है। एक ओर प्रजा अनुरक्त है, दूसरी ओर कादम्बरीका प्रेम बहुत गहन है। एक ओर जन्म भूमि छोड़ना बहुत कठिन है, दूसरी ओर कादम्बरी परिग्रहके योग्य है। एक ओर मन विलम्ब सहन नहीं कर सकता, दूसरी ओर हेमकूट और विन्ध्याचलके बीचमें बहुत अंतर है। यों विचारते विचारते, पत्रलेखाका हाथ पकड़, प्रतीहारीके बताए हुए मार्गसे वह माताके पास गया। माताके अनेक प्रकारके लाड़के सुखमें दुःसह हृदयोत्कंठा भूल कर वह दिन उसने वहां बिताया।

२९३—फिर, मानो आत्म चिन्ताकी तरह, जब दशों दिशाओंमें अंधकार करने वाली रात्रि आई, अनिवार्य विरह-वेदना से मनमें खिन्न होनेके कारण व्याकुल हुए चक्रवाक-युगल ऊँचे स्वरसे करुण शब्द करने लगे, अकोल के परागके समान धूसर प्रकाशवाली चंद्रमाकी अग्र-किरणें कामबाणको पैना कर के फैलने लगीं, और खिलती हुई कुमुदिनीके श्वासकी परिमल लेकर प्रदोप-पवन मंद मंद चलने लगी, तब चन्द्रापीड़ पलग पर लेटा, परन्तु आँखें मीचने पर भी उसे निद्राका विनोद नहीं मिला और हेमकूटसे आनेके खेदके कारण कादम्बरीके पाद पल्लवकी छायामें गिर कर मानो विश्राम करता हो, पिंडलियों पर चढ कर मानो दोनों पुष्ट जंघाओंसे चिपट गया हो, विस्तृत नितंब फलक पर मानो चित्रित हुआ हो, नाभि मुद्रामें मानो डूब गया हो, रोम राजिमें मानो उल्लसित हुआ हो, तीन सिलवट रूप सीढियोंसे मनोहर लगते मध्य-भाग पर मानो चढ गया हो, उन्नत और विस्तीर्ण स्तन तट पर मानो जा बैठा हो, बाहुओंमें मानो लीन हो गया हो, हाथोंका मानो सहारा ले रहा हो, गलेसे मानो चिपट गया हो, गालोंमें मानो प्रविष्ट हुआ हो, अधर -पुटमें मानो दृढ लग्न हो, नासिका सूत्रमें मानो गुँथा हो, नेत्रोंमें मानो प्रफुल्लित हुआ हो, चौड़े ललाटमें मानो स्थित हुआ हो, केश-कलापके अंधकारमें मानो अटक गया हो, और सब दिशाओंको भरें डालते लावण्य प्रवाहमें मानो तैरता हो, ऐसे मनसे वह कामदेवके मंदिरके समान कादम्बरीके रूपका स्मरण करने लगा।

२६४—फिर जब उसे होश आया तब अत्यन्त स्नेहसे आर्द्र हृदय होकर उस दिनसे ही मानो उसकी रक्षा करनेके लिए कमर कसली हो इस तरह जहाँ जहाँ फूलोंका धनुष चढा कर कामदेवको उस पर प्रहार करते देखने लगा वहीं वहीं आप बीचमे पड़ने लगा। चमेलीके ताजे फूलके समान सुकुमार शरीर पर निर्दयतासे प्रहार करके क्या तुझे शरम नहीं आती?—इस तरह मानो चचल पुतलीवाली और आँसू भरी दृष्टिसे कामदेवको दिन-रात उलाहना देने लगा। फिर कामबाणकी चोटसे मूर्च्छित हुई कादंबरीको मानो होशमें लानेके लिए ही वह अपने अवयवों पर पसीनेकी बूँदें धारण करने लगा और लबे लबे नि:श्वासोंकी हवा छोड़ने लगा। उसके होशमें आनेसे मानो हर्षित होकर [illegible] सब अगोंमे व्याप्त हुए रोमाचको उसने क्षणभरके लिये भी दूर नहीं किया। हृदयसे वेदना सहन होती है या नहीं—यह बात कादंबरीसे पूछनेके लिए ही मानो उसने अपने मनको भेजा हो इस प्रकार वह शून्य-हृदय हो गया। उसके समाचार सुननेके लिए ही मानो वह सर्वदा चुप रहने लगा। कादंबरीके मुख दर्शनमे मानो सब फीका हो गया हो इस प्रकार वह अन्य कुछ नहीं देखता था। चद्रबिबसे भी उसकी दृष्टिको चैन नहीं पड़ता था। कादंबरीके आलापसे मानो कान भर गये हो इस तरह उसे और कुछ सुनाई नहीं देता था। वीणाकी ध्वनि भी अच्छी नहीं लगती थी। सुभाषितमें भी आनन्द नहीं मिलता था। मित्रोंकी वाणी भी कठिन सी लगती थी और बान्धवोंके शब्दसे भी सुख नहीं मिलता था। कोई उसके आ[illegible] न समझ ले—इस डरसे ही मानो वह, पहलेकी तरह, किसीको दर्शन [illegible] देता था। निरतर निकलती हुई ज्वालावाली कामाग्निसे [illegible] भी गुरुजनोंकी लज्जाके कारण वह तत्काल तोड़े गए [illegible] नहीं सोता था। सरस मृणाल-लताओंको अग पर नहीं [illegible] था। जल-बिंदु-रूपी मोतियोंसे चित्रित हुए कोमल कमलिनीके [illegible] नहीं रखता था। फूल-पत्तोंका बिछौना बनानेकी आज्ञा नहीं देता था। फव्वारोंके निरंतर चलनेके कारण ठंडे जलकी [illegible] दुर्दिन बना रहता था ऐसे धारागृहको भी नहीं देखता था। [illegible] सदा हृदयमें [illegible] हुए अन्तरवाले—सदोष [illegible]—

लता मंडपोंमें भी नहीं जाता था। चंदन जल छिड़की हुई मणि-भूमि पर भी जान कर नहीं लोटता था। चंद्रमाकी किरणें पड़नेसे मनोहर लगते—कामिनियों-के हाथ में लिए गए—चंद्रमणि-दर्पणोंमे भी अपना प्रतिबिंब नहीं गेरता था। अधिक क्या?—गाढ़ा हरिचंदन-रस भी चरणों तक नहीं चुपड़वाता था।

२९५—इसी प्रकार तन्दुरुस्तीकी कुछ परवा न करके, संताप-दायक होने पर भी दाह-शक्तिसे हीन, स्नेह[1]-रूपी ईंधनका क्षय किये बिना ही जलती और संताप सहन करनेके लिए ही मानो भस्म न करनेवाली कामाग्निसे भीतर और बाहर उबलता राजकुमार दिन-रात सूखने लगा, पर प्रतिक्षण बढ़ती हुई आर्द्रता[2] भी उसने न छोड़ी। इस तरह अत्यन्त कुटिल कामदेवकी वेदना सहन करने पर भी उसका कुछ उपाय न करने तथा त्याग दुष्कर होनेके कारण उसने लोगोंकी दृष्टिमें अपने आकारकी ही रक्षा की, काम-बाणोंसे अपने जीवनकी नहीं; देहमें ही कृशता आने दी, लज्जामें नहीं, खाने-पीनेमें ही अनादर दिखाया, कुल-मर्यादामें नहीं, प्रजाका आदर किया, कामकी उत्कंठा में नहीं; और सुखकी ही अवज्ञा की, धैर्यकी नहीं। इस प्रकार कादम्बरीके रूप और गुणोंको उसके प्राणोंका आधार बनानेवाला प्रबल अनुराग उसे आगे खींचने लगा और गुरुजनोंके अनुरोधसे अधिक दृढ़ हुआ गहन स्नेह पीछे रोकने लगा। परन्तु उसकी प्रकृति गंभीर थी इस कारण वह, चंद्रमासे समुद्रके समान, अत्यन्त उल्लसित हुई आत्माको मर्यादासे रोकने लगा। इस तरह थोड़े होने पर भी हजार जैसे मालूम होते दिन किसी तरह बीत गये तब एक बार उत्कंठाओंके कारण भीतर आराम न मिलनेसे नगरीके बाहर जाकर, जल तरंगोंके संसर्गसे शीतल जल-कणवाली पवनसे युक्त—कलहंसों और चकवाकोंके झुंड जिसके नरम तथा सुकुमार रेतीके किनारों पर मधुर शब्द कर रहे थे ऐसे—सिप्रानदीके तट पर होता हुआ बहुत दूर तक पैदल ही टहलता टहलता चला गया।

२९६—स्वामिकार्तिकके मंदिरके पास पहुँचा था कि इतनेहीमें मस्तीकी चालसे अत्यन्त वेग-पूर्वक आते बहुत से घोड़े दूरसे ही उसे दीख पड़े। उनकी

१—तैल, प्रेम।
२—मृदुलता, स्नेहयुक्तता।

टापें जल्दी जल्दी पड़ती थीं, वे कभी इकट्ठे हो जाते थे और कभी जुदे जुदे हो जाते थे, कभी पास पास आ जाते थे और कभी बिखर जाते थे, कभी उत्साहसे आगे चलते थे और कभी पीछे हो जाते थे, कभी एक साथ मिल कर चलते थे और कभी कतारसे अलग हो जाते थे। पैर फिसलने पर, गिर पड़ने पर, थक जाने पर, सवार उनको यथा-शक्ति उत्साहित करते थे, शरीर पसीनेसे तर होनेसे वे दूर चलनेका खेद प्रकट करते थे, और जल्दी चलनेसे किसी बड़े भारी कार्यके लिए आनेकी सूचना देते थे। उनको देखते ही चन्द्रापीड़को कुतूहल हुआ और उसने खबर पूछनेके लिये एक आदमी भेजा। स्वयं भी जाँघ तक पहुँचते सिप्राके जलमें होकर उनका हाल जाननेके लिये कार्तिकेयके मन्दिरमें खड़ा रहा।

२६७—वहाँ कुतूहलसे घोड़ोंकी फौजकी तरफ दृष्टि फेंकता फेंकता, पास खड़ी हुई पत्रलेखाको हाथसे खींच कर वह कहने लगा—"पत्रलेखा, देख देख सबसे आगे ही जो सवार आ रहा है उसका मुख सूर्यकी किरणोंको रोकनेके लिए फैलाई गई, हिलते हुए लंबे चचल फुँदनोंवाली, मोर-पंखमय छत्रीसे ढका है। वह मुझे केयूरक मालूम होता है।" जब तक इस तरह उसके साथ देखता है तब तक खबर लेनेके लिए भेजे गए आदमीसे चन्द्रापीड़का यहाँ होना सुन कर, निगाह पड़ते ही घोड़े परसे उतर कर, पास आते हुए केयूरकको उसने देखा। दूरसे जल्दी जल्दी आनेके कारण धूलसे उसका शरीर मलिन और श्याम हो गया था, इससे ऐसा मालूम होता था मानो उसका आकार ही बदल गया हो। अंगराग और सत्कारके बिना मलिन शरीरसे, शिथिल शून्य मुखसे और भीतरके दुःखका भार प्रकट करती दृष्टिसे दूरसे ही कह, बिना पूछे भी, कादम्बरीकी दुःखपूर्ण अवस्था, बिना प्रकाशके ही, प्रकाशित करता था। उसे देखकर प्रीतिसे—आओ, आओ—कह कर, चन्द्रापीड़ने नम्रता पूर्वक प्रणाम करके पास आते ही अपनी बाहुओंको दूर तक फैला कर उसका आलिंगन किया, जरा सरक कर उसने फिर नमस्कार किया तब चन्द्रापीड़ने उसके सहायकोंका कुशल प्रश्नसे सत्कार करके, आगे बढ़े हुए केयूरकको स्नेहसे बार बार देख कर कहा—'केयूरक, तुम्हारे दर्शनसे ही मन्दभाग्यके साथ देवी कादम्बरीकी कुशलता सूचित होती है। कुछ तो बतलाओ कि

आनेका कारण कहना।" यों कह कर महावतके द्वारा एक साथ लाई गई हथिनी पर चढ कर—इस शरीरको सुख कहाँसे?—यों कहते हुए केयूरकको अपने पीछे बैठा कर और पत्रलेखाको साथ लेकर चंद्रापीड़ अपने महलको गया। वहाँ सब राजा लोगोंसे आनेका निषेध करके वल्लभोद्यानमें जाकर परिवार-युक्त केयूरकके साथ उसने उत्कंठित चित्तसे बिना जाने ही दिनका सब व्यापार किया। फिर सब परिजनोंको दूर हटा कर, अकेली पत्रलेखाको साथ ले, केयूरकको बुला कर कहने लगा—केयूरक, देवी कादंबरी, मदलेखा और महाश्वेताका सँदेसा कहो।

२९८—चन्द्रापीड़का यह प्रश्न सुन विनय-पूर्वक सामने बैठ कर केयूरक कहने लगा—देव, मैं क्या कहूँ? देवी कादम्बरीका, मदलेखाका या महाश्वेता का जरासा भी सँदेसा मेरे पास कहने को नहीं है। जब पत्रलेखाको मेघनाद को सुपुर्द करके हेमकूटको लौट कर मैंने आपके उज्जयिनी जानेका वृत्तांत कहा तब फौरन ऊपरकी ओर देख, लम्बे और गरम निःश्वास छोड़, निर्वेदके साथ—यह यों हुआ—इतना कह, उठ कर महाश्वेता तप करनेके लिए अपने आश्रमको चली आई। देवी कादंबरी भी, तत्काल हृदयमें मानो हथोड़ेकी चोट लगी हो और सिर पर मानो अकस्मात् वज्र-प्रहार हुआ हो इस प्रकार, अन्तर्गत पीड़ासे सकुचित होनेके कारण मिची हुई आँखोंसे, मूर्छित हो, ठगी गई हो, परिभूत हो, वंचित हो या अन्तःकरणसे उन्मुक्त हो, इस तरह महाश्वेताके जानेका हाल न जानती हुई बहुत देर तक वहीं ठहरीं, फिर आँखें खोल कर, घबरा गई हों, लज्जित हों, भूली हुई हों इस प्रकार विस्मय से निश्चल दृष्टि होकर,—महाश्वेतासे कह—यों मानो ईर्ष्या पूर्वक मुझसे कहने लगीं, फिर मदलेखाकी ओर मुँह फेर कर विलद-स्मित सहित—मदलेखा, कुमार चन्द्रापीड़ने जैसा किया है वैसा क्या किसी औरने कभी किया या कोई करेगा?—इतना कह कर, खड़ी हो, सब परिजनोंको आनेका निषेध करके, पलंग पर लेट कर, चादरसे सिर ढक कर, समान दुःखवाली मदलेखाके साथ भी बोलचाल बन्द करके, उन्होंने सब दिन बिताया। दूसरे दिन प्रातःकाल ही मैं उनके पास पहुँचा तब—तुम ऐसे अत्यन्त दृढ शरीरवाले भी मानो मेरे समान हो जो न ऐसी अवस्थाका अनुभव करती हूँ—इस प्रकार मानो

हमको ताना देती हों, मुझे तुम्हारे जैसे पास रहने वालोंसे कुछ काम नहीं है—इस प्रकार मानो तिरस्कार करती हों, क्यों मेरे पास खड़े हो ? इस प्रकार मानो अन्तर्गत दु:खके भारसे फटकारती हो—ऐसे, आँसू छलकनेके कारण कॉपने से आकुल हुई दृष्टिसे, बहुत देर तक मेरे सामने देखती रहीं। इस तरह उनके द्वारा देखे जाने पर मैंने समझा कि दु:खित देवीने मुझे जानेकी आज्ञा देदी है। इसलिए मैं उनसे कहे बिना ही आपके पास चला आया हूँ। अब—केवल आप ही जिसकी रक्षा कर सकते हैं ऐसे—जनके जीवनकी रक्षाके लिए व्याकुल हुए केयूरककी विज्ञापनाके सुननेमें आपको ध्यान देनेकी कृपा करनी चाहिए।

२६६—सुनिए महाराज, सुगंधित मलय पवनके समान आपके प्रथम आगमनसे जब समस्त कन्या-रूप लता वन चलायमान[1] हुआ तभी सब भुवनों के मनको अच्छे लगते वसंतके समान आपको देख कर लाल अशोक[2] वृक्षकी लताके समान देवीमें कामदेवने प्रवेश किया। अब तो आपके लिए बड़ी भारी कष्ट उठा रही हैं। सूर्योदयसे लेकर, सूर्य मणिकी अग्नि के समान, [illegible] रहित, पवनकी प्रेरणासे हीन, निर्धूम, भस्म रहित, जलती उनकी कामाग्निका दाह परिजनों के कर-कमलोंके द्वारा लीला सहित कोमल पल्लवोंकी हवा होनेसे शान्त नहीं होता। छोटी छोटी पखिड़योंमेंसे उड़ती ठंडे पानी की [illegible] की सिंचाईसे उसकी निवृत्ति नहीं होती। सरस हरिचंदनकी धार [illegible] उसका नाश नहीं होता। पीसे हुए मोतियोंका बुरादा छिड़कनेसे [illegible] नहीं। कीलोंसे जड़े हुए यंत्र-मय कलहंसोंकी कतारमेंसे निकलती [illegible] धारा-वाले धारागृहसे उसका शमन नहीं होता। चलते हुए [illegible] निकलती तथा अत्यन्त शीतल जलकी कणिकाओंमें [illegible] जलधाराएं [illegible] [illegible]के ऊपर गिरती हैं त्यों त्यों, [illegible] अग्निके [illegible] समान, [illegible] [illegible]ती जाती है, और शिशिर उपचार करनेमें, कुन्दकी कलियोंके [illegible] समान, पसीनेकी बूँदों का जाल और भी बढ़ता जाता है। आनन्द है कि [illegible] कामाग्निमें जलने पर भी [illegible] हुए [illegible] की तरह उनका [illegible]

१—क्षुभित, व्याकुल।

२—फूलोंसे लदी हुई लता मधुमासमें उद्दीपक होती है।

खूब निर्मल होता जाता है। मुझे मालूम होता है कि जैसे जल, स्वभावसे मृदु होने पर भी, मोती बन जाता है उसी तरह अबलाओंका हृदय उत्कंठासे कठिन हो जाता होगा, क्योंकि इतना संताप होनेसे भी विलीन नहीं होता। प्रियजनोंके समागमकी आशा बहुत प्रबल होती है, क्योंकि इस तरह संतापकी वेदनासे प्राण विह्वल होने पर भी लोग अत्यन्त कष्टसे जीते हैं। क्या करूँ? बतलाइये, उनकी प्रबल उत्कंठा किस प्रकार कहूँ? किस भाँति उसका वर्णन करूँ? किस उपायसे उसे दिखलाऊँ? किस तरहसे समझाऊँ? किस युक्तिसे प्रकाशित करूँ? कैसे उसका ज्ञान कराऊँ?

३००—यह स्पष्ट है कि स्वप्नमें प्राणियोंका विषय ग्रहण करने का सामर्थ्य जाता रहता है, इस कारण प्रति दिन स्वप्नमें उनको देखने पर भी आप उनकी ऐसी हालत नहीं देख सकते। हजारों प्रचंड किरणोंका आतप सहनेवाले कमल उनका बिछौना बनाए जानेसे मुरझा जाते हैं; इससे मालूम होता है कि उन्होंने अपनी उष्णतासे सूर्यकी मूर्तिको भी जीत लिया है। वह करुणा हीन और निष्कारण प्रतिकूल कामदेवकी पीड़ाकी अनेक चेष्टाएँ दिखलाती है, जैसे—कामकी वेदना सहनेवाले अत्यन्त कठिन मनमें आप निवास करते हैं इस कारण फूलोंके कोमल बिछौने पर उनको सखियाँ किसी तरह बड़ी कठिनतासे लिटाती हैं। फूलोंके बिछौने पर सोनेके बाद संतापके कारण पैरोंमेंसे गिरे अलक्तक रसकी बूँदोंसे गुलाबी हुए बिछौनेके फूलोंसे, मानो हृदयमेंसे गिरे तथा रुधिरमें सने, कामदेवके बाणोंका भय पैदा करती हैं। कामदेवके बाणोंको रोकनेके लिए पहने कवच के समान आपके स्मरणसे उत्पन्न हुआ सर्वाङ्गव्यापी रोमाञ्च धारण करती हैं। रोमाञ्चित स्तनों पर श्वासकी हवासे खिसके वस्त्रको रखतीं ऐसी मालूम होती हैं मानो आपके पाणि ग्रहणकी तृष्णासे अपने दक्षिण कर कमलको कंटक शयन रूपी व्रतकी लीलाका अनुभव कराती हों। बायें गालके भारसे जड़ हुई उँगलीवाले, चमकते पद्मराग-मणिके कंकणसे रंजित और प्रज्वलित कामाग्निमें मानो जलने वाले हाथको हिलाया करती हैं। कमलके पत्तोंके पंखेकी हवासे कानमें पहने नील कमलके दल उनके मुख पर हिला करते हैं, इनसे ऐसा मालूम होता है मानो निरंतर टपकने आँसुओंके डरसे उनके चंचल नेत्र पलायन

करते हो। क्षण क्षणमें दुर्बल होती हुई वह, गिर जानेके भयसे, मणि वलयको ही नहीं पर दोलायमान हृदयको भी बार बार हस्त-पल्लवसे रोकती है। लीला कमलोंकी मालाके समान ठंडे जलकी बूंदें टपकाते सखियोंके द्वारा शरीर पर रक्खे जानेसे वह थक जाती है। और अब वह दोनों चरणोंसे ताम्बूलको, चौड़े नितंबसे मध्य-भागको, संगमकी आशासे हृदयको, हृदयसे आपको, छातीसे कमलके पत्तोंके आवरणको, कंठसे जीवनको, कर कमलसे गालको, आपकी बातचीतसे अश्रुपातको, ललाटमें चंदनलेखाको और रुकघसे नेत्रोंको धारण करती है। आपके देखनेकी इच्छासे वह चाहती है कि हृदय फट[१] जाय। भूलसे प्रियतमका नाम लेनेकी तरह जीवनसे लज्जित होती है। प्रिय सखीके समान मूर्छा बार बार उनके मनका स्पर्श करती है। परिजनके समान उत्कंठा उन—काम पराधीना—को फूलोंके बिछौने परसे उठाती है। परिचारिकाके समान पीड़ा उन—शिथिल अंगवाली—को चलाती है। द्वारा दिलाए गए उत्कंठाके संतापकी शांतिके लिए पंखा बनानेके प्रयोजनसे पत्ता तोड़े जानेके भयसे मानो काँपते, लता मंडपमें बार बार रहती है। सुन्दर भाग युक्त कलियोंसे पूर्ण, मृणाल वलय न तोड़े जानेके लिए मानो अंजली बांधे हुए, स्थल कमलिनीके वनमें बार बार सोती है। फाँसी लगा लेनेके भयसे ही मानो पत्तोंसे निरंतर आच्छादित लता-रूपी पाश वाले उद्यानमें बार बार जाती है। निरंतर रोदनसे लाल हुई आँखोंके प्रतिबिंबसे युक्त, बाहर बिछाए जानेके भयसे ही मानो डूबते हुए कमलवाले, उपवनके बावड़ीके जलमें बार बार नहाती है। वहाँसे निकल कर तमाल वृक्षोंकी कुंजमें जाती है।

१०२—वहाँ भुजलताको ऊँची करके, उसमें डालीका सहारा लेकर, उस पर अपना मुँह रख कर, आँख मींच लेनेसे चमकते दाँतोंकी मालाकी ... शोभा करती, थोड़ी देर विश्राम करके फिर ... जाती है। वहाँसे, मृदंगके मधुर स्वरके लयसे मनोहर मालूम होता ... खिन्न होकर, मयूरीकी तरह, चलती ... है।

१—क्योंकि आप हृदयमें रहते हैं। उसके फटनेसे आपके दर्शन हो जायं।

वहाँसे भी, घन[1] जल-धाराओंकी बूँदोंसे पुलकित[2]-शरीर होकर, कदम्बकी कलीकी तरह, काँपती काँपती रनवासकी कमलिनीके तीर पर जाती हैं। वहाँसे, पालतू कलहंसोंका स्वर असह्य होनेके कारण, फिर चल देती हैं और पायजेब उतर जानेमें कृशता[3] मानो समझदार हो यों उसकी प्रशंसा करती हैं। वलय रचनेसे कम हुए मृणालोंके कारण मानो कुपित हुए गृह-सरोवरके चक्रवाक-मिथुन उनको अपने शब्दसे खेद पहुँचाते हैं। शय्या-विलासमें फूलोंके कुचल जानेके कारण मानो कुपित हुए प्रमदवनके भ्रमर अपनी गुंजारसे उनको उद्वेग पहुँचाते हैं। प्रबल उत्कंठाके समयके गीतोंसे अपने स्वरके निर्जित होनेके कारण मानो कुपित होकर कोयलोंके झुंड, आँगनके आम्रवृक्षों पर कल-कल करके, उनको व्याकुल करते हैं। काम वेदनाके कारण फीके पड़े गालसे अपने भीतरके पत्तेकी कान्तिका पराभव होनेके कारण ही मानों उद्यानकी केतकियोंने काँटे छेद दिए हों इस प्रकार वे पीड़ा भोगती हैं। ऐसी ऐसी कामकी दुःखदायक चेष्टाओंमें उनका सब दिन व्यतीत होता है

३०२—चन्द्रोदयके समय उनका धैर्य इस तरह दूर भाग जाता है मानो अंधकार-मय हो, हृदय इस तरह खेद पाता है मानो कमल-मय हो, काम इस तरह विकास पाता है मानो कुमुद-मय हो; नेत्र इस तरह द्रव पाते हैं मानो चन्द्रकान्त मय हों, निश्वास इस तरह वृद्धि पाते हैं मानो समुद्र-जल मय हों और मनोरथ इस तरह वियोग पाते हैं मानो चकवाक मय हों। शीतज्वरसे मानो आतुर हों इस तरह मणिभूमिमें पड़े चन्द्रमाके प्रतिबिंब पर काँपती हुई चंचल उँगलियोंवाले अपने हाथोंको पसार कर चुपचाप शशि-संताप प्रकट करती हैं। दंत-किरणोंके बहाने, कामबाणसे जर्जरित हुए हृदयमें घुसी हुई चन्द्र-किरणोंको मानो सीत्कारोंके द्वारा बाहर निकालती हैं। प्रकंपमें केलेके पत्तोंके खेलके कारण मानो उपदेश ग्रहण करती हैं। जँभाई लेतेमें मानो कंठमें

१—(२) मेघ।

२—(२) खिल कर।

३—अगर पायजेब रहते तो उनका शब्द सुन कर हंस दौड़ते और संताप और भी बढ़ता।

करते हों। क्षण क्षणमे दुर्बल होती हुई वह, गिर जानेके भयसे, मृणाल-वलयको ही नहीं पर दोलायमान हृदयको भी बार बार हस्त-पल्लवसे रोकती है। लीला कमलोंकी मालाके समान ठंडे जलकी बूँदें टपकाते सखियोंके हाथ शरीर पर रक्खे जानेमे वह थक जाती है। और अब वह दोनो चरणोंसे तागड़ी को, चौड़े नितंबसे मध्य-भागको, संगमकी आशासे हृदयको, हृदयसे आपको, छातीसे कमलके पत्तोंके आवरणको, कंठसे जीवनको, कर कमलसे गालको, आपकी बातचीतसे अश्रुपातको, ललाटमे चंदनलेखाको और कंधसे वेणीको धारण करती है। आपके देखनेकी इच्छासे वह चाहती है कि हृदय फट[1] जाय। भूलसे प्रियतमका नाम लेनेकी तरह जीवनसे लज्जित होती है। प्रिय सखीके समान मूर्छा बार बार उनके मनका स्पर्श करती है। परिजनके समान उत्कंठा उन—काम-पराधीना—को फूलोंके बिछौने परसे उठाती है। परिचारिकाके समान पीड़ा उन—शिथिल अंगवाली—को चलाती है। हवामे हिलाए गए उत्कंठाके संतापकी शांतिके लिए पंखा बनानेके प्रयोजनसे पत्ता तोड़े जानेके भयसे मानो काँपते, लता मंडपमें बार बार रहती है। सुन्दर कोश युक्त कलियोंसे पूर्ण, मृणाल वलय न तोड़े जानेके लिए मानो अंजली बाँधते हुए, स्थल कमलिनीके वनमे बार बार सोती है। फाँसी लगा लेनेके भयसे ही मानो पत्तोंसे निरंतर आच्छादित लता-रूपी पाश वाले उद्यानोंमे वह बार बार जाती है। निरंतर रोदनसे लाल हुई आँखोंके प्रतिबिंबसे युक्त, शैया पर बिछाए जानेके भयसे ही मानो डूबते हुए कमलवाले, उपवनके तालाबोंके जलमे बार बार नहाती है। वहाँसे निकल कर तमाल वृक्षोंकी कुंज गलियोंमें जाती है।

३०१—वहाँ भुज लताको ऊँची करके, उससे डालीका सहारा लेकर, उस पर अपना मुँह रख कर, आँखें मींच लेनेसे चंपक दलकी मालाकी फाँसी की शंका कराती, थोड़ी देर विश्राम करके फिर संगीत-शालामे जाती है। वहाँसे, मृदंगके मधुर स्वरके लयसे मनोहर मालूम होते नृत्यकी लीलासे खिन्न होकर, मयूरीकी तरह, चलती जल-धारावाले धारा-गृहमें जाती है।

१—क्योंकि आप हृदयमे रहते हैं। उसके फटनेसे आपके दर्शन हो जायगे।

वहाँसे भी, घन[1] जल धाराओंसे बूँदोंसे पुलकित[2]-शरीर होकर, कदबकी कलीकी तरह, काँपती काँपती रनवासकी कमलिनीके तीर पर जाती हैं। वहाँसे, पालतू कलहसोंका स्वर असह्य होनेके कारण, फिर चल देती हैं और पायजेब उतर जानेमें कुशलता[3] मानो समझदार हो यों उसकी प्रशसा करती हैं। वलय रचनेसे कम हुए मृणालोंके कारण मानो कुपित हुए गृह-सरोवरके चक्रवाक-मिथुन उनको अपने शब्दसे खेद पहुँचाते हैं। शैया-विलासमें फूलोंके कुचल जानेके कारण मानो कुपित हुए प्रमद वनके भ्रमर अपनी गुंजारसे उनको उद्वेग पहुँचाते हैं। प्रबल उत्कंठाके समयके गीतोंसे अपने स्वरके निर्जित होनेके कारण मानो कुपित होकर कोयलोंके झुंड, आँगनके आम्रवृक्षों पर कल-कल करके, उनको व्याकुल करते हैं। काम वेदनाके कारण फीके पड़े गालसे अपने भीतरके पत्तेकी कान्तिका पराभव होनेके कारण ही मानो उद्यानकी केतकियोंने काँटे छेद दिए हो इस प्रकार वे पीड़ा भोगती हैं। ऐसी ऐसी कामकी दुःखदायक चेष्टाओंमें उनका सब दिन व्यतीत होता है

२०२—चंद्रोदयके समय उनका धैर्य इस तरह दूर भाग जाता है मानो अंधकार-मय हो, हृदय इस तरह खेद पाता है मानो कमल-मय हो; काम इस तरह विकास पाता है मानो कुमुद-मय हो; नेत्र इस तरह द्रव पाते हैं मानो चन्द्रकान्त मय हो, निश्वास इस तरह वृद्धि पाते हैं मानो समुद्र-जल मय हो और मनोरथ इस तरह वियोग पाते हैं मानो चक्रवाक मय हों। शीतज्वरसे मानो आतुर हों इस तरह मणिभूमिमें पड़े चन्द्रमाके प्रतिबिंब पर काँपती हुई चंचल उँगलियोंवाले अपने हाथोंको पसार कर चुपचाप शशि-संताप प्रकट करती हैं। दन्त-किरणोंके बहाने, कामबाणसे जर्जरित हुए हृदयमें घुसी हुई चन्द्र-किरणोंको मानो सीत्कारोंके द्वारा बाहर निकालती हैं। प्रकपमें केलेके पत्तोंके सेवन करनेमें मानो उपदेश ग्रहण करती हैं। जँभाई लेतेमें मानो कंठमें

१—(२) मेघ।

२—(२) खिल कर।

३—अगर पायजेब रहते तो उनका शब्द सुन कर हंस दौड़ते और संताप और भी बढ़ता।

आए हुए प्राणोंको बाहर जानेका रास्ता दिखलाती हैं। गलतीसे अन्य नाम लेनेके कारण पैदा हुई अस्वाभाविक मुसकुराहटमें, हृदयमें लगे हुए कामबाणकी पुष्प-रजका मानो वमन करती हैं। रोते रोते बड़े बड़े आँसुओंकी धाराओंके प्रवाहको बहानेसे ऐसा मालूम होता है मानो वे गली जाती हैं। चंद्रमणिके दर्पणोंमें पड़े हुए अनेक प्रतिबिम्बोंके बहाने मानो सहस्रधा विभक्त हो जाती हैं। फूलोंकी शैया पर, परिमलके लोभसे आए भ्रमरोंसे व्याकुल हुईं वह मानो धूम प्रकट करती हैं। निर्मल कमल शैया पर कमलतन्तुओंके परागसे पीली पीली होकर वह मानो जली जाती हैं। पसीना सुखाने के लिए चुपड़ी हुई स्वच्छ कपूरकी बुकनीसे श्वेत होने पर मानो भस्म रूप बन जाती हैं। नहीं मालूम- मुग्धतासे, या विलाससे, या उन्मादसे, संगीतमें मृदंगका शब्द सुन कर—कहीं मोर न बोलने लगें—इस शंकासे वह धारागृहके मरकतमणिमय मयूरोंके मुँह ढक देती हैं। सन्ध्या-समय, वियोगके भयसे, दीवार पर चित्रित हुए चक्रवाक-युगलको मृणाल-सूत्रसे बाँध देती हैं। कल्पित रति-क्रीड़ाके आरम्भमें कर्ण-कमलोंसे मणि प्रदीपोंका ताड़न करती हैं। उत्कंठा के लेखोंमें कल्पित समागमके अभिज्ञान लिखती हैं और, दूतियोंके द्वारा, स्वप्नमें किए हुए अपराधके उलाहनेका सँदेसा भेजती हैं।

३०३—और उनको दक्षिण-पवनके साथ, चंदनकी परिमलके समान मूर्च्छा आती है। रात्रिके साथ, चक्रवाकोंके शापके समान, जागरणका भय आ जाता है। झरोखोंके कबूतरोंके स्वरके साथ, उनके प्रति-शब्दके समान, दुःख उत्पन्न होते हैं। उपवनके फूलोंकी महकके साथ, भ्रमरोंके समान, मरणाभिलाषा आती है और वह जल-कणिकाकी भाँति कमल-पत्र[1] पर काँपती है। स्फटिकमें, जलमें, मणि-दर्पणमें और मणि भूमिमें (कृशताके कारण) छायाके समान देख पड़ती हैं। कमलकी भाँति चद्रमाकी किरणोंके स्पर्शमें म्लान हो जाती हैं। हंसोंकी तरह सरस मृणालिकाहारके[2] सम्पर्कसे जीती हैं। शरद्‌के समान कुमुद, कुवलय और कमलके स्पर्शसे मनोहर गन्धवाली

1—कमलका पत्ता, कमलके पत्तोंकी शैया।

2 मृणालकी माला, मृणालका आहार।

करती हैं और सकुसुम[1] बाण विजृंभण[2] करती हैं। चंद्र मूर्तिके समान कमल समूहमें पाद[3] -पल्लव स्खलित होनेसे फिरतीं फिरतीं रात बिताती हैं। कुमुदिनी-की तरह चंद्र-किरणोंसे जाग्रत रह कर झूठी निद्रामें दिन काटती हैं।

३०४—विष्णुकी जल-शयन लीलाके समान वह मंदोच्छ्वसितशेष[4] तथा निमीलित-लोचन[5] होकर कुछ चिन्तन करती हैं। मलय-नदीकी तरह वह सरस हरिचंदन वृक्षोंके कोमल पत्तोंसे ढके हुए शिलातलों पर पड़ती हैं। कुंद कलीके समान तुषारसे[6] गीले पल्लवोंमें रह कर वन[7]-पवनसे वह काँपती हैं। असह्य[8] संतापके कारण भुजंगीके समान चंदनका आलिंगन[9] करके शिखि शकुन्त[10] कुलके कोलाहलसे खेद पाती हैं। हिरनीके समान केसरि[11] वनको छोड़ देती हैं। कुसुम-[12]घटित शिलीमुखोंसे मनोहर लगते कामदेवके धनुषके समान, प्रमद वनमें उन्हें डर लगता है। जानकीकी तरह, पीत[13]-रक्त निशा-चरोंके समान, चंपक और अशोकसे भयभीत होती हैं। ऊषाकी तरह स्वप्न-समागमसे भी अपनेको कृतार्थ मानती हैं। ग्रीष्म-निशाकी लक्ष्मीके समान प्रतिदिन वह अत्यन्त क्षीण होती जाती हैं। सर्वथा कामकी वेदनासे उनके

१—काम, पुष्प-सहित बाण वृक्षोंसे युक्त।

२—सुखका विकास करती हैं, सर्वत्र फैलती हैं।

३—चरण, किरण।

४—जिनका मंद साँस ही बाकी रह गया है, जिसमें शेष नाग धीरे धीरे साँस लेते हैं।

५—आँखें मींच कर, विष्णु योग-निद्रामें आँखें मींच लेते हैं।

६—बरफ, ओस।

७—उपवन, अरण्य।

८—विरहका संताप, आतप।

९—लेप, आलिंगन।

१०—मयूर तथा अन्य पक्षी, मयूर पक्षी।

११—बकुल वृक्षोंका वन, सिंह-युक्त वन।

१२—फूलों पर बैठे हुए भ्रमरोंसे, फूलोंके बने हुए बाणोंसे।

१३—पीले और लाल, लहू पीनेवाले।

आग, दिनोंसे जीवन धारण करनेकी वस्तुएँ, वलय-रचनासे गृह-कमलिनीके मृणाल, उपदेशोंसे सखियोंके वचन, शैयाओंकी रचनासे उपवनोंके फूल और निरंतर प्रहार करनेसे कामदेवके बाण बिलकुल क्षीण हो गए हैं। ज्यादा क्या कहूँ? अब तो आपके नामसे वह सब सखियोंको बुलाती है, आपके सम्बन्धका वहाँ सब रहस्य होता है, आपके समागमके उपाय सोचनेके लिए सब एकत्रित होते हैं, आपके समाचार पानेके सब प्रश्न होते हैं, आपका ही सब हाल परिजन कहा करते हैं; आपकी बातचीतसे ही सबका मन बहलता है; आपकी तसवीर बनानेसे ही चित्रकलाका अभ्यास होता है, आपके लिए उलाहनेसे भरे सब मागधियोंके मंगल-गीत होते हैं, बार बार आपके दर्शनोंसे युक्त स्वप्न आते हैं, आपके परिहाससे युक्त कामज्वरके दाहके सब प्रलाप होते हैं, सिर्फ आपका नाम लेनेसे ही जिनमें होश आ सके ऐसे बड़ी भारी अचेतनताके दौरे होते हैं।

३०५—इस प्रकार कहते हुए केयूरकसे—रहने दे, अधिक मुझसे नहीं सुना जाता—यों मानो आँखें मींच कर इशारा करते हुए चन्द्रापीड़को, कादम्बरीकी पीड़ा सुननेकी वेदनासे पैदा हुई अनुकम्पासे ही मानो, आती हुई मूर्छाने केयूरकका रोक लिया, परन्तु कादम्बरीका हाल पूरा हो जानेके कारण वह चुप नहीं हुआ।

३०६—इस प्रकार जब कादम्बरीका ही मानो ध्यान करते चन्द्रापीड़की चेतना मूर्छासे जाती रही तब घबराहटमें केयूरकके सहारा देनेसे, पत्र-लेखाके पंखा करनेसे और होनहारका अनुभव करानेमें तत्पर दैवके प्रभावसे उसको होश आया। तब स्वयं पहुँचाई हुई पीड़ाके अपराधसे मानो भयभीत हो, लज्जित हो, घबरा गया हो, इस तरह चुपचाप खड़े केयूरकसे, अत्यन्त [illegible] के कारण गद्गद कंठसे, टूटे फूटे अक्षरोंमें, चन्द्रापीड़ बड़े कष्टसे कहने [illegible] केयूरक, जिस प्रकार मेरे फिर आने की सम्भावना दूर कर, मुझे [illegible]न्त कठिन-हृदय और अपने ऊपर प्रेम न करनेवाला समझ, देवी का[illegible] [illegible] तुझे यहाँ आने की आज्ञा नहीं दी, महाश्वेताने कुछ संदेसा न[illegible] [illegible], तथा दृढ प्रेम छोड़ कर मदलेखाने तेरे मुखसे कुछ नहीं कहलाया—यह [illegible] पत्रलेखाने मुझसे कहा है। देवी कादम्बरी कुलीनता, महानुभावता, उदारता, सम्मान-शीलता, दक्षिणता और स्वभावकी अत्यन्त मधुरताके [illegible]

अपनेको ठीक ठीक नहीं जानती हैं। चन्द्र मूर्तिके दर्शनसे चद्रकान्त नामका निश्चेतन पत्थरका टुकड़ा जल बहा सकता है, पर उसकी किरणोंका आकर्षण नहीं कर सकता। अत्यन्त लोलुप भ्रमर भी फूलके पास ही जा सकता है, पर मकरदका लाभ तो कली खिलने के अधीन है। दिनके सतापसे मलिन हुए कुमुद-समूहको चद्रके सन्मुख होना चाहिए, परन्तु उसका विकास तो चॉदनीसे मनोहर रात्रि ही करती है। भीतर बहुतसी सरसता होने पर भी वसत-लक्ष्मीके परिग्रह बिना वृक्ष लाल लाल पत्ते किस प्रकार प्रकट कर सकता है? इस कारण देवी कादबरीकी—मेरे काम-ज्वरका आप इलाज कीजिए ऐसी—आशाका ही दोष है, क्योंकि उस (आशा) ने केवल अधर हिलनेकी राह देखनेवाले, पास खड़े दासको भी, निष्करुणताके कारण, अपनेको नहीं देने दिया। उसने सुखकी शत्रु, केवल दुःख देनेमें निपुण, और दूसरोंके हृदयकी पीड़ा की परवा न करनेवाली लज्जाकी अपेक्षा की, परतु देवीके जीवनको सदेहमें डालनेवाली देवीकी हालत नहीं देखी। अथवा परिजनोंकी भी यह कैसी मूढता थी कि इच्छाके बिना भी हठ-पूर्वक उसको आज्ञा देनेके लिए प्रवृत्त नहीं किया। भक्त आज्ञाकारी सेवकसे लज्जा कैसी? गौरव कैसा? अनुरोध कैसा? और चित्तका यह अविश्वास कैसा कि शिरीषके फूलके समान कोमल आत्माके लिए ऐसी अत्यन्त दारुण पीड़ाको अगीकार किया और मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया। अथवा अपने मनके भावोंका छिपाना रमणियोंमें परपरासे चला आता है और विशेष कर उन कन्याओंमें जिनमें कुछ बाल-भाव बाकी है और मुग्ध कामदेव बहुत प्रदीप्त नहीं हुआ है। देवी स्वय तो मेरे सामने लज्जा छोड़नेमें समर्थ न हुईं, परन्तु मदलेखा तो उनका दूसरा हृदय है। उसने क्यों इस दुरात्मा, स्वतन्त्र कामदेवसे पीड़ा पाती हुई देवीके शरीरकी उपेक्षा की? सयमरूपी अपार धनवाले मुनि भी उससे हरण किए गए हृदयकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते, वह ऐसा चोर है कि उसे दंड नहीं दिया जा सकता, पवित्र जनोंको भी उसका स्पर्श अवश्य करना पड़ता है, वह ऐसा चाडाल है कि उससे छूत नहीं रक्खी जा सकती; असख्य प्राणियोंको उसने भस्म कर दिया है, वह बुझाई न जा सके ऐसी, श्मशानकी अग्निके समान है, सब लोगोंसे नया है, शरीर-रहित व्याधि है, रूपसे आकर्षण करनेवाला अकाल

व्याध है, मर्म छेदनेवाला झूठा धनुर्धर है, तत्काल प्राण हरनेवाली अकाल मृत्यु है; योग्य अथवा अयोग्य स्थान देखे बिना प्रवृत्त होनेवाला है, दूसरोंके साथ अपकार करनेसे वह कृतार्थ होता है, हृदयमें वास करता है और पराया विश्वास नहीं करता। मैं वहाँ था तभी मेरे कानमें यह बात क्यों नहीं डाल दी? अब जान कर भी क्या करूँ? क्योंकि रास्तेमें ही बहुत दिन लग जायँगे। देवीका शरीर मलयाचलकी हवासे हिलाई गई लताओंमेंसे गिरते फूलोंको भी सहन करनेके योग्य नहीं है और कामबाण, वज्रसारके समान कठिन हृदयवालोंको भी, दुःसह होते हैं। नहीं मालूम निमेष मात्रमें क्या होगा! देवी भी अकसर इन बातोंको सोचती होगी। और केवल दुःख देनेमें ही निपुण, दुर्घट घटना रचनेमें पडित, चाहे जो कुछ करनेवाले, निष्कारण कुपित, मरे विधिके ज्यों ज्यों मैं सब जगह उल्टे काम देखता हूँ त्यों त्यों मुझे मालूम होता है कि यह इतनेसे ही नहीं मानेगा। नहीं तो कहाँ मेरा निष्प्रयोजन किन्नर-मिथुनका पीछा करते करते अमानुष-भूमिमें आना, कहाँ वहाँ पिलास लगना और अच्छोदका दृष्टि पड़ना, कहाँ उसके तीर पर आराम करनेमें अमानुष गीत ध्वनि सुनना, कहाँ उसकी जिज्ञासामें जाते जाते महाश्वेताको देखना, कहाँ तरलिकाके साथ उस जगह नहीं आनेसे मेरे जानेका प्रस्ताव होना, कहाँ महाश्वेताके साथ हेमकूट जाना, कहाँ वहाँ कादम्बरीके मुखका दर्शन होना, कहाँ इस दास पर देवीके अनुरागका पैदा होना, और कहाँ मेरा मनोरथ पूरा न होने पर ही लौटनेके लिए पिताकी अनुल्लङ्घनीय आज्ञाका मिलना! इसलिए इस अनुचित काम करनेवाले, हमारे कर्मोंके अनुसार आज्ञा देनेमें चतुर, जले विधिने बहुत [illegible] हमको पटका है। तो भी मैं देवीकी आराधना करनेका प्रयत्न करूँगा।

२०७—चन्द्रापीड़ यों कह रहा था कि इतनेहीमें—कादम्बरीके [illegible] ही इसे संताप हो गया है, फिर मैं क्यों अपने तेजसे अधिक [illegible] तरह मानो करुणा उत्पन्न होनेके कारण भगवान सूर्यने, [illegible] सुवर्णके द्रवके कणके समान, पीला प्रकाश फैलाती, दिशाओंमें फैले हुए महादेवके जटा मण्डलका अनुकरण करती, अपनी हजारों किरणोंको [illegible] सूर्यास्तके पीछे दिन भी ऊँचे ऊँचे वृक्षों पर रहे हुए लाल [illegible]

आकर्षण करता करता चला गया। फिर क्रमसे, मानो उसे करुणा उत्पन्न हुई हो इस प्रकार, सध्या भी जब, गीले कपड़ेके समान, अपना राग-पटल ऊपर फैलाने लगी, अन्यमनस्कतासे विकल हुए इस कुमारका इस दशामें दर्शन होना ठीक न जान कर, प्रियमित्रकी तरह, निशागम भी जब, नीलके पिढके समान, ऊपर लटकती तिमिर लेखाको सर्वत्र फिराने लगा, शोषकारी सताप दु सह होनेके कारण मानो बिछोनेके काममें आनेके भयसे कमल भी जब बद होने लगे, स्वभावसे स्वच्छ होनेके कारण अत्यन्त आर्द्र[1] कुमुद भी बिछोनेके काममें आनेकी, मानो, हमाहमीसे जब खिलने लगे, प्रिया-विरहसे खिन्न हुए चक्रवाक भी, मानो कादम्बरीके पास जानेकी सलाह देते हुए, जब ऊँचे स्वरसे बार बार मधुर शब्द करने लगे; समस्त भुवनका एक छत्र, अमृतसे भरा चॉदीका कलश, पूर्व-दिग्वधूके मुखका चदन तिलक, आकाश लक्ष्मीके लावण्यका महा सरोवर, सकल लोकाल्हादक भगवान् चंद्रमा भी जब अमृत मय किरणोंसे चद्रापीडका मानो स्पर्श करनेको और उल्लास करनेकी हेतु चॉदनी-रूप जल छिड़कनेको उदयाचलके शिखर पर चढ गया और प्रदोष समय जब प्रौढ हुआ तब उसी वल्लभोद्यानमें चद्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे दीखती हुई निर्मल जलकी बूँदोसे रमणीय लगते एक चंद्रमणिके चट्टान पर शरीरको डाल कर पर दाबनेके लिए पास आए हुए केयूरकसे वह कहने लगा—केयूरक, क्या सोचता है? हम वहाँ पहुँचें तब तक क्या कादम्बरी जीती रह सकेगी? अथवा मदलेखा उनका मन बहला सकेगी? अथवा उन्हें तसल्ली देनेके लिए महाश्वेता फिर आवेगी? मेरे परिचयसे खिन्न हुई वह शरीर-स्थितिके लिए उसकी विनती मानेगी! अथवा मे उनका मुसकराता, चञ्चल पुतलीवाला तथा—डरे हुए हिरनके बच्चेके समान—लबे नेत्रवाला मुख फिर भी देख सकूँगा?

३०८—केयूरकने कहा—महाराज, धैर्य रख कर चलनेका यत्न कीजिए। पासही नमियों वा परिजनोंको रहने दीजिए। देवीको तो आपके दर्शनकी लालसा स्वेच्छासे आँखें भी नहीं मींचने देती। समागमकी आशाहीने हृदयको धारण कर रक्खा है। श्वास ही मुखमें रह गया है। रोमाच ही

1—गीले, करुणार्द्र।

उनके शरीरको क्षणभर भी छोड़ता नहीं है। आँसू ही दिन रात लोचन पथमें रहते हैं। जागरण ही रातको भी उन पर निगाह रखता है। अरति ही उनको अकेला नहीं रहने देती और जीवन ही कंठ स्थानके पाससे नहीं खिसकता है।

३०६—इस प्रकार कहते हुए केयूरकको चन्द्रापीड़ने आराम करनेकी आज्ञा दी और आप भी जाने की फिक्र करने लगा। जो मैं पिता-मातासे कहे बिना, उनके चरणोंमें पड़े बिना, उनको अपना मस्तक सुँघाये बिना, उनका आशीर्वाद लिए बिना, और उनकी अनुमतिके बिना ही एक साथ चला जाऊँ तो जाने पर भी मुझे सुख कहाँसे मिलेगा? मेरी क्या भलाई होगी? जानेका फल कैसे मिलेगा? और हृदयमें शान्ति कैसे होगी? अथवा वहाँ पहुँच जानेके बादकी चिन्ता करनेमें क्या फायदा? अगर मैं यहाँसे किसी तरह निकल भी गया तो जाऊँगा कैसे? पिताका भुज दुस्तर युद्ध रूपी समुद्रके पार जानेके लिये सेतुबन्ध, मर्यादा वाञ्छित फल दायक कल्पवृक्ष, शत्रुओंके पराक्रमके यशके निकलनेके दरवाजेका अर्गला दण्ड, समस्त भुवन रूपी भवनका आधार-स्तम्भ है। उस परसे उतार कर उन्होंने सब राज्यका भार मुझ पर ही डाल दिया है। इस कारण, जो मैं कहे बिना एक पग भी रक्खूँगा तो, असंख्य हाथी, घोड़े और रथ चलानेसे पृथ्वीको क्षुभित करते, फहराती हुई ध्वजाओंके वनसे सूर्यकी किरणोंको आकुल करते, ऊँचे उठाए गए माङ्गलिक छत्रोंके मण्डलकी छायासे दिनकी धूपको रोकते, अनुरागसे उड़ती हुई दूर्वा के चिन्हों को निरंतर भरते, आगे दौड़ते नेत्र वाले और कतार बाँध कर आती गजमय सेनावाले राजा लोग, थक जाने पर भी और भूखे रहने पर भी चलनेमें विलम्ब न करके, समुद्र तक आज्ञा लिए आगे आगे पीछे दौड़ेंगे। सेवामें तत्पर राजा लोगोंकी बात रहने दो। मुझे ... सुख माँगनेवाली प्रजा भी, पिताके स्नेहके कारण, स्त्री पुत्रोंको छोड़ मेरे पीछे लगेगी। और पिताजी भी ऐसा और ... है जिस पर ... बाद रख, मेरे चले जानेके बाद—यह गया तो जाने दो, उसके आने जाने से क्या?—इस प्रकार सोच कर, मेरे अलिनको ... बाँधे ... रह सकें? अन्य किसका मुँह देख, ... मुझे ... लिए अपने प्रताप कर, माता पिताको आकुल न करूँगा? और ...

पिता मेरे पीछे आए तो अठारह द्वीपोंकी मालावाली पृथ्वी ही पीछे आवेगी । उस समय मुझे कहाँ जाना ? कहाँ रहना ? कहाँ विश्राम लेना ? कहाँ चलना ? कहाँ भोजन करना ? कहाँ दौड़ना ? कहाँ अपनेको छिपाना ? और अगर मैं पकड़ा गया तो कैसे मुँह दिखाऊँगा ? पूछने पर क्या जवाब दूँगा ? और जो कदाचित् दैवयोगसे मैं निकल गया तो भी अखेद-नीय पिताको इस प्रकार बड़े दुःखमें, और पिताकी कृपासे जिन्होंने कभी दु ख नहीं देखा ऐसी माताको मेरे चले जानेसे उत्पन्न हुए शोक-सागरमें डालना मुझ पापीका अच्छा काम नहीं होगा । इसके सिवाय बहुत दिनके प्रवाससे खिन्न हुई मेरी सेना भी अभी तक नहीं आई । उसे मेरे तलाश करनेकी दूसरी आज्ञासे आये रास्तेसे ही पीछे मुड़ कर फिर दौड़ना पड़ेगा । और जो माता पितासे कह कर और उनसे विदा ले कर अच्छी तरह प्रबंध करके जाऊँ तो उनसे मुझे क्या कहना चाहिए ? मेरे स्नेहसे दुःखित हुई गंधर्व राजपुत्री कादंबरी मेरे लिए कामकी पीड़ा भोगती बड़े कष्टमें है, या उस पर मेरा प्रेम बड़ा गहन है—उसके बिना मैं प्राण धारण नहीं कर सकता, या उसके और मेरे—दोनोंके—जीवनोंके बचनेकी हेतुभूत महाश्वेताने उसके साथ विवाह करनेके लिए मुझे सँदेसा भेजा है, या उसका दुःख सहनेके लिए अशक्त होनेके कारण यह केयूरक, उसकी भक्तिसे, मुझे बुलाने आया है। अब फिर जानेके लिए कोई भी बहाना नहीं किया जा सकता । अभी मैं सब पृथ्वीको जीत कर तीन वर्षसे भी अधिक समयके बाद लौट कर आया हूँ । अभी तक मेरी फौज भी नहीं आई और जानेका सबब बताए बिना मैं यहाँसे किस प्रकार पीछा छुटा सकता हूँ ? माता पिता मुझे कैसे जाने देंगे ? यह ऐसा कार्य है जिसका होना मित्रके अधीन है । इसमें मैं अकेला कार्य उठा कर भी क्या कर सकता हूँ ? वैशंपायन भी मेरे पास नहीं है । मैं किससे पूछूँ ? किसके साथ विचार करूँ ? कौन मुझे सलाह देगा ? और कौन इस बातको तै करेगा ? और किसकी बुद्धि विवेकयुक्त है ? और किसका शास्त्रका ज्ञान सुननेके लायक है और किसे यथार्थ बात कहना आता है ? और किसका मुझ पर असामान्य स्नेह है ? और किसके साथ मैं समान दुःखी होऊँ ? और कौनसा मेरा रहस्य बतानेका स्थान है ? और

किस पर कर्तव्यका भार डाल कर मैं निश्चिन्त होकर रहूं ? और कौन मेरे कामके लिए व्याकुल होगा ? तथा मुझ पर कुपित हुए माता पिताको समझा कर और कौन मुझे लेजा सकता है ?

३१०—ऐसे ही विचारमें उसकी, दुःखके कारण लम्बी, रात भी बीत गई। प्रातः काल ही उसने उड़ती हुई खबर सुनी कि सेना दशपुर तक आ पहुंची है। यह सुन हृदयमें हर्षित होकर विचार करने लगा—अहो! मैं धन्य हूं। भगवान् विधिने मुझ पर कृपा की कि मेरे ध्यान करते ही मेरा दूसरा हृदय वैशम्पायन आ पहुंचा। यो हर्षसे परवश होकर, भीतर आते और दूरसे ही प्रणाम करते केयूरकसे कहने लगा—केयूरक, अब तो सिद्धिको हथेली पर आई हुई समझो। वैशम्पायन आ गया है।

३११—यह सुन कर, जानेमें विलम्ब होनेकी चिन्तासे शून्य हृदय होकर, केयूरक कहने लगा—अच्छा हुआ, महाराजके हृदयको बड़ी तसल्ली हुई। यों कहता कहता ही पास सरक कर और एक ओर बैठ कर, इशारेसे सब परिजनोंको हटा कर, वैशम्पायनके आनेकी गपशपमें ही कहने लगा—महाराज, सर्वत्र चमकती बिजली जैसे बादलोंके आनेको, काली पड़ी हुई मेघमाला जैसे पानी बरसनेको, सफेद चमक प्रकट करती पूर्व दिशा जैसे चन्द्रोदयको, परिमल लानेवाली मलयपवनका चलना जैसे वसन्त मासके आनेको, कामको बढाती वसन्त लक्ष्मी जैसे पत्ते फूटनेको, चमकते हुए रंगवाले पत्तोंका आना जैसे फूल निकलनेको और खिले हुए काश कुसुमोंकी मंजरी [illegible] शरद्के आरंभको सूचित करता है उसी प्रकार यह अवस्था ही [illegible] जानेकी सूचना देती है। महाराजको अवश्य [illegible] प्राप्ति होगी। [illegible] बिना चन्द्रमाका, या मृणालिका [illegible] कमलाकरका, या [illegible]

किसीने क्या कभी देखा है ? और सब [illegible]

आमके फूलोंकी मंजरीके परिग्रह बिना और [illegible]

[illegible] सुहावना नहीं लगता। परन्तु वैशम्पायनके आनेमें और [illegible] उत्तम युक्तिका विचार करनेमें अवश्य विलम्ब [illegible]। और [illegible] देवी विलम्ब सहनेके अयोग्य है सो सब [illegible] निवेदन किया [illegible]। सब तरह आशाएं [illegible] हैं, परन्तु देवीके हृदयको [illegible]

फिर होनेकी आशा ही नहीं है। तब वे किस अवलंबनके सहारे रहें? मैं जो हाल कहूँगा उसे सुन कर उनके मनमें यह ख्याल होगा कि अपने जीवनसे मुझे काम है इसलिए दुःखोंको सहन करके भी इसे धारण करूँगी। इस कारण मैं विज्ञप्ति करता हूँ कि हृदयसे तो आप आगे गए ही हैं और शरीरसे भी पीछे पीछे आवेंगे ही। फिर मैं अब यहाँ पड़ा पड़ा क्या करूँगा? इसलिए आपके आगमन-रूपी उत्सवका हाल कहनेके लिए, आपकी प्रीतिके प्रसादके कारण आग्रह-युक्त हुआ, मेरा हृदय यह चाहता है कि इसे अभी जानेकी आज्ञा-रूपी प्रसाद मिले।

३१२—केयूरककी यह विज्ञप्ति सुन कर, अतर्गत तोषके कारण प्रफुल्लित हुई—खिले हुए नीले कमलोंकी मालाके समान—दृष्टिसे प्रसन्नता प्रकट करके चन्द्रापीडने जवाब दिया—मैं क्या कहूँ? हमारे दुखोंका न सहनेवाला, और अपने शरीरकी शक्तिकी भी परवा न करनेवाला ऐसा उत्साह और किसे है? और कौन इस तरह देश-काल जानता है? और किसकी हम पर ऐसी निष्कपट भक्ति है? यह तूने ठीक विचारा है। देवीको प्राण धारण करानेके लिए तू जा और मेरे आनेका विश्वास करानेके लिए पत्रलेखा भी तेरे साथ ही देवीके चरणोंमें जायगी। इस पर भी देवीकी कृपा है। मेरा विचार है कि इसे देख कर भी देवीको अवश्य बड़ा धैर्य होगा। फिर इसका भी तो देवी पर स्नेह और भक्ति है। इतना कह पीछे बैठी हुई पत्रलेखासे उसने पूछा—क्यों ठीक है या नहीं? तब मुँह जरा नीचा करके उसने विनय किया—महाराज, आपकी जो आज्ञा हो, दीजिए। फिर उसके जानेका निश्चय हो जाने पर मेघनादको बुलानेके लिए एक प्रतीहारीको भेजा। आज्ञा पाते ही मेघनाद आकर दूरसे प्रणाम करके आज्ञाकी राह देखने लगा। इतनेमें आप ही उसे बुला कर सादर कहा—मेघनाद, जिस जगह मैं पहले तुझे पत्रलेखाके लानेके लिए छोड़ आया था उसी जगह पत्रलेखाको लेकर तू केयूरकके साथ आगे जा। मैं भी वैशम्पायनसे मिल कर तेरे पीछे पीछे ही घोड़ोंके साथ आता हूँ। यह सुन—जैसी महाराजकी आज्ञा—यों कह कर, नमस्कार करके, जल्दी जानेकी तैयारी करनेके लिए मेघनादके चले जाने पर, केयूरकने कहा—महाराज अब अधिक विलम्ब क्यों किया जाय? और वह भी मेघनादके जानेके

बाद फौरन ही चलनेके समय प्रणाम करनेके लिए उठ खड़ा हुआ। उसे स्नेह-पूर्वक बुला कर, आँसू भरी दृष्टिसे बार बार देख कर, रोमाञ्चित बाहुओंसे उसका आलिंगन कर, अपने कानमेंसे उतार कर—अनेक वर्णोंसे रुचिर हुए सदेसेके समान—कर्ण-भूषण उसके कानमें पहना कर, आँसू भर आनेके कारण गद्गद कंठसे, टूटे फूटे अक्षरोंमें, चन्द्रापीड कहने लगा—केयूरक, तुम मेरे लिए देवीका कुछ सँदेसा तो लाए ही नहीं हो इसलिए तुम्हारे हाथ में उसके लायक क्या अपूर्व सँदेसा भेजूँ? देवीको विज्ञप्ति करनेमें मिथ्या वचनके भारसे तुमको क्यों पीड़ा दूँ? पत्रलेखा देवीके चरणोंमें जाती ही है। यह सब कह देगी। यों कहते ही एक साथ आए हुए वियोगसे दुःखित हुए, अमंगलकी शंकासे यत्न करने पर भी आँसुओंको रोकनेमें असमर्थ, आगे कुलकाती और बिना लक्ष्यके शून्यमें फिरती दृष्टिवाली, पैरों पर गिरनेको तयार हुई, पत्रलेखाके सामने आकर, प्रीति पूर्वक हाथ जोड़कर, चन्द्रापीड कहने लगा—

दशाकी मुझ निष्करुणने उपेक्षा नहीं की ? क्या उस दशाका कारण मैं नहीं हूँ अथवा इन सब दोषोंका आश्रय होने पर भी मैंने उनकी राजीसे चरणों की आराधना भी है इस कारण स्वयं सब गुणोंसे हीन होने पर भी मुझे देवीके गुणोंका ही सहारा है। यह उनकी प्रकृतिसे सरस सरलता ही है जो दूर होने पर भी नामाग्निसे जलने पर मेरी रक्षा करती है। उनका स्नेह भाव बार बार मुझे बुलाता ही है। प्रतिज्ञा दृढ रखनेकी आदत मुझे उनकी ओर खींचे ही ले जाती है। दाक्षिण्य पास बुलाता ही है। वत्सलता मेरा अङ्गीकार करती ही है। हृदयकी मृदुता चरणोंमें पड़ने पर भी निर्भर्त्सना नहीं करती है। महानुभावता मुझे उठा कर समान करती ही है। प्रियवादिता मेरे साथ बातचीत करती ही है और अत्यंत उदारता हृदयमें अवकाश देती ही है। यद्यपि यह सब सच है तो भी मैं जो निर्लज्ज होकर फिर अपना मुँह दिखानेका साहस अपने ऊपर लता हूँ उसमें भी देवीके अच्छे स्वभावके प्रसाद ही कारण हैं। स्वार्थ-हीनता, उदारता, और सगतिके कारण ये सब प्रसाद क्षणभरका परिचय होने पर भी जीवनकी प्रत्याशा देकर कुछ नहीं कराते सो बात नहीं है। देवीकी सेवा करने की याद दिलाते हैं। उनके चरणोंकी आराधना करनेके लिए उत्साह देते हैं। सेवाका चातुर्य सिखाते हैं। आराधनाके उपायोंका उपदेश देते हैं। मीठा बोलनेकी, बार बार, आज्ञा देते हैं। इस तरह रहना—या स्वयं ही बतलाते हैं। अयोग्य समयमें किसीके हमारे पास आनेसे मुँह पर प्रकट होते कोपके समय हम शान्त करते हैं। पारितोषके समय गुण कहकर अनुग्रह करते हैं। लज्जासे दूर गये हुए को हठसे खेंच कर पास लाते हैं। अन्यत्र क्षणभर भी ठहरने नहीं देते। और वे प्रसाद अपनी अनुग्राहक[1] शक्तिके कारण अपरित्याज्य हैं। गुरुत्वके कारण ही स्थिर हैं। विस्तारके कारण ही अलंघनीय हैं और बहुतायतके कारण ही अपरिहार्य हैं। इसलिए मुझे बहुत दूर पहुँच जाने पर भी, वे मानो जबरदस्ती खेंच कर, आने की आज्ञाके बिना भी, देवी के चरणोंमें ले जाते हैं। और जिस वाणीने जानेकी आज्ञाकी अपेक्षा न रक्खी, और अपनी इच्छासे - मैं जाता हूँ—यो कहा था वही वाणी अब कहती है कि जिससे मेरा आना निष्फल न हो अथवा जगत् शून्य न हो उसी तरह

१— अनुग्रह करनेकी, ग्रहण करनेकी।

देवीको जीवन धारण करनेके लिए स्वयं यत्न करना चाहिए।

३१४—इतना सँदेसा कह कर फिर बोला—पत्रलेखा, तुम भी रास्ता चलतेमें मेरे वियोगकी पीड़ाका कुछ खयाल मत करना, शरीरके शृंगारका अनादर मत करना, भोजनके समयकी पाबंदी करना, चाहे जिस अनजान रास्तेसे मत जाना, बिना विचारे चाहे जहाँ मत उतरना या रहना, चाहे जिस अनजान आदमीसे अपना रहस्य मत कहना, और सर्वदा शरीरको सँभाल रखना। क्या करूँ? देवीके प्राण मुझे तुमसे भी अधिक प्रिय हैं इसी कारण तुमको यों अकेला उनकी रक्षाके लिए भेजना पड़ा है, और मेरा जीवन भी तुम्हारे ही हाथमें है इसलिए निःसन्देह तुम यत्न पूर्वक अपनी रक्षा करना। यों कह कर स्नेह पूर्वक आलिंगन कर, केयूरक को फिर पत्रलेखाका समाचार लाने के लिए तैयार कर, उससे कहा—महाश्वेताके आश्रम तक तुम इसीके साथ मुझे लिवाने आना—और उनको विदा किया।

३१५—केयूरकके साथ पत्रलेखाके चले जाने पर उसके हृदयमें इस तरह चिन्ता होने लगी—ये जलदी जायँगे या नहीं, रास्ते में इनको विलम्ब होगा या नहीं, कितने दिनोंमें ये वहाँ पहुँच जायँगे। ऐसी ऐसी चिन्ताओंसे ग... हृदयवाला कुमार थोड़ी देर ठहर कर, सेनाकी ठीक ठीक खबर जाननेके लिए एक दूत भेज कर, बहुत दिनसे जिसको नहीं देखा था ऐसे वैशम्पायनको लिवा लानेके लिए आज्ञा लेने स्वयं पिताके पास गया। वहाँ दोनों आगे ... प्रतीहार मंडलके हट जानेके कारण अत्यन्त निस्तीर्ण हुए रास्तेको पार कर, दूरसे ही दक्षिण घुटने और करतलमें निर्मल मणि-भूमिका ... लेनेके कारण पड़ी हुई प्रतिमासे युक्त, प्रतिमाके कारण दुगने दीखने वाले ... केश-कलाप सहित, उसने पिताको प्रणाम किया।

३१६—फिर तारापीड़, इस प्रकार दूरसे ही चन्द्रापीड़का प्रणाम ... स्नेहसे भरे, जलके भारसे मंद हुए मेघकी ध्वनिके समान, ... गर्जोचित गौरवके साथ—आओ, आओ—यों उसे बुला कर, ... दौड़ने पर भी गुरुजनको प्रणाम करके पास आकर भूमि पर बैठना ... हुए कुमारको हठसे खींच कर, कुरसी पर बैठा कर, ... ऐसे नेत्रसे बहुत देर तक देख कर, ...

होते उसके हर एक अंग पर हाथ फेर कर, शुकनासको दिखा कर कहने लगा—शुकनास, देखो यह आयुष्मान् चंद्रापीड़की डाढी चारों तरफ निकलने लगी है। यह कनकगिरिसे बाहर निकलती महानीलमणियोंकी प्रभाके समान, गंधगजके गंडस्थल पर शोभायमान मद-लेखाके समान, चंद्रमाके कलंककी छायाके समान, खिलनेकी राह देखती कमलाकरकी भ्रमरावलीके समान, सौंदर्यका चित्र बनानेकी काले रंगकी कूँची, तारुण्य-रूपी मेघका गहरा नीला रंग, जलते हुए काम-प्रदीप की काजलकी लौ, प्रकाशमान प्रतापाग्निकी धूम राजि, कामोद्यानकी तमालवेल, काम विकार-रूपी दोषागम[1]की बाल तिमिरोद्गति[2] और विवाह रूप मंगल-कार्यकी भृकुटी का इशारा मालूम होती है। अब चंद्रापीड़की अवस्था विवाह-मंगलके योग्य हो गई है। इस कारण देवी विलासवतीके साथ सलाह कर जगत्में कोई कुलीन और सुन्दर कन्या तलाश करो। दुर्लभ दर्शनवाले पुत्रका मुख देखा। अब बहूके मुख-कमलके दर्शनसे आनंदित हों। तारापीड़ के इतना कह चुकने पर शुकनासने जवाब दिया—

३१७—महाराजने ठीक विचार किया। इन सहृदय कुमारने हृदयमें सब विद्याओंको स्थान दिया है; सब कला सीख ली हैं, सब प्रजाको वशमें कर लिया है, सब दिग्वधुओंका कर[3] ग्रहण कर लिया है, राजलक्ष्मीको स्थिर कर कुटुम्बिनीकी जगह स्थापित कर लिया है और चारों समुद्रोंकी मेखलासे भूषित पृथिवीको वश ही लिया है। फिर अब बाकी क्या है जो इनका विवाह न किया जाय? शुकनासके ऐसे वचनसे लज्जित हो, सिर नीचा करके, चंद्रापीड़ विचार करने लगा—अहो! यह कैसा योगमें योग मिल गया कि मैं कादम्बरी के साथ समागमके उपायकी चिंता कर रहा था कि इतनेमें पिताको यह बात सूझी! यह मेरे लिए वैसा ही हुआ जैसी कहावत है कि अँधेरेमें गए हुएको चाँदना मिले, गहन वनमें घुसे हुएको रस्ता मिले, महासागरमें पड़े हुएको नाव मिले और मरते हुए पर अमृतकी वृष्टि हो। कादम्बरीकी प्राप्तिमें

१—रात्रि, दोष।
२—अंधकार, रोग।
३—महसूल, हाथ।

अब मुझे केवल वैशम्पायनका दर्शन ही बाकी है। यह यों विचार कर रहा था कि इतनेहीमें राजा उठा और उठ कर विनयसे अवनत पूर्व शरीर वाले चन्द्रापीड़के कंधे पर, समग्र भूमंडलका भार उठानेसे भारी हुए अपने हाथका सहारा दे, धीरे धीरे चलते, पीछेसे आते शुकनासके साथ, विलासवतीके महलमें गया। वहां जाकर, सम्भ्रम-पूर्वक उठ कर अभ्युत्थान देती, चन्द्रोदयके दर्शनसे चंचल हुई समुद्र-वेलाके समान, विलासवतीसे खड़ा खड़ा ही कहने लगा—प्रिये, तुमको भी बहूका मुँह देखनेके सुखकी उत्सुकता नहीं होती—यह मानो जताना देती हो ऐसी, पुत्रके मुँह पर दीखती, यह प्रफुल्ल यौवनारंभके सूचना देनेवाली पातली रेखा, मानो तारुण्यके दुर्विलासकी इच्छासे दूर रहनेकी हमारी आज्ञा हो इस प्रकार निकलती मूँछकी शोभा हमें विवाह मंगलकी तैयारी करनेकी सूचना देती है। तुम और क्या सूचना करती हो यह भी पूछना है इसलिए कहो। यों समझाने पर क्यों तुम आज शरमा कर अपना मुँह फेर लेती हो और पूछने पर—क्या करना चाहिए?—सो नहीं कहती। तुम तो अब वर-माता हुई। मैं समझता हूँ कि चन्द्रापीड़ पर तुम्हारी अप्रीति है। क्या तुम इस काममें अनादर दिखाती हो और इसकी परवा नहीं करती। ऐसे ऐसे हास्य-पूर्ण वचनोंसे अन्तःकरणमें सुखी होकर और बहुत देर तक वहां ठहर कर खानेपीनेके लिए यह वहांसे बाहर गया।

३१८—चन्द्रापीड़ने भी वैशम्पायनको लिवा लानेके लिए शुकनासके यहां जाने की अनुमति माँग कर, माताके महलमें ही स्नान भोजनादि कर, मित्रके पास जानेकी तैयारी करनेके विनोदमें ही वह दिन बिताया।

३१९—फिर रात हुई तब पलंग पर भी, मित्र-दर्शनकी उत्सुकताके कारण से पहरसे भी अधिक देर तक, वह जागता ही रहा। अपनी [illegible] आकाशकी नीलिमाको मानो बदल देती हो, घने वृक्षोंकी हरियालीको मानो [illegible] [illegible] हो, नीचे भी छेद करके मानो प्रवेश करती हो, [illegible] [illegible] मानो निकाल बाहर करती हो, गुफाओं, [illegible] और [illegible] [illegible] घुसे हुए अँधेरेको भी मानो सहन न करके वहां घुस कर [illegible] [illegible] हो, निरन्तर प्रवेशके छलसे मानो स्थानस्थान प्रवेश करना शुरू करती हो, [illegible] [illegible] मानो [illegible] [illegible] करती हो, [illegible]

दिशाओंके मुख भरे डालती हों, गाढे चंदन-रससे रात्रिको मानो लीपती हों, पृथ्वीको मानो ऊँचा उठाती हों. आकाशको मानो पास लाती हों; तारा, ग्रह और नक्षत्र-मंडलोंको मानो संचित कर देती हों, नदियोंके रेतीले किनारोंका मानो विस्तार बढाती हों, कमल-वनको मानो दाब दाब कर जुदा जुदा करती हों; प्रफुल्ल पँखड़ीवाले कुमुदाकरोंको मानो इकठा करती हों, पर्वतोंके शिखरों पर मानो बिछी हों, महलोंके ऊपर मानो फैलादी गई हों, इकट्ठी होकर सड़कोंके मुखमें मानो बहती हों, जल-तरंगों पर मानो तैरती हों, रेतीली जगहोंमें मानो फैली हों, हंसोंके साथ मानो मिल गई हों; चाँदनीमें सोती हुई अंगनाओंके गालोंके लावण्यके साथ मानो मुकाबला करती हों, चन्द्रकान्त मणियोंमेंसे झरती हुई हजारों जल-धाराओंसे मानो धुल गई हों, घरोंके बीचमें भी बिना रोक टोकके जानेवाली, हाथीदाँतके झरोखोंमें और भी सुंदर मालूम होतीं; कमलकी पँखड़ीके टुकड़े पर भी जिनकी सफेदी अखंडित थी, उद्यानोंमें भी जिनसे दिन-सा मालूम होने लगता था; परस्पर मिलनेसे जो सर्वत्र चाँदनीके प्रवाहका मानो वमन करती थीं, उन्हें नीचे फेंकती थीं, बिछाती थीं; बढाती थीं; प्रवृत्त करती थीं, बरसाती थीं, और कादंबरी समागममें जलदी करने के लिए कामके मानो सब बाण छोडती थीं, ऐसी चद्रमाकी किरणोंने जब कामोत्साह दूना कर दिया तब उसने कूचका संकेत करनेवाले शंखके बजानेकी आज्ञा दी।

३२०—फिर बड़े जोरसे बहुत देर तक शंख-नाद हुआ। वह गगन तलमें फैल गया, दिशा-रूपी कुंजोंमें मानो भर गया, आकाश तक पहुँचते नगरीके प्राकार मंडलके भीतर मानो फिरने लगा, अत्यन्त ऊँचे नगर-द्वारकी अटारियोंके शिखरों पर मानो चढने लगा, बड़े बड़े मकानोंके भीतर मानो फिरने लगा, सभा मंडपोंके आँगनमें मानो विकास पाने लगा, राज-मार्गोंमें मानो चलने लगा, बड़े बड़े मकानोंमें मानो भटकने लगा, उद्यानोंके कृत्रिम पर्वतोंकी गुफाओंमें मानो प्रवेश करने लगा, और महलोंके कोनोंमें मानो फैलने लगा। उसी क्षण जागे गृह-कमलनीके सारसोंका अत्यन्त तीक्ष्ण और ऊँचा स्वर मानो उसका पीछा करता था, पालतू कलहंसोंके, स्वभावसे ही गद्गद और मधुर गर्जने, भार गर मानो वह विच्छेद पाता था और चलनेके समय

प्रणाम करनेके सम्भ्रममें वेश्याओंके हिलते हुए कङ्कण, नूपुर और मेखलाओं का कलकल कानोंमें पड़नेसे मानो निश्चित किया जाता था। इसके बाद वहाँ हजारों घोड़े तैयार होकर आए। उनमेंसे कितने ही खड़े किए जाते थे और कितने ही खड़े थे, कितनों ही का आकर्षण किया जाता था और कितने ही आकृष्ट थे, कितनों ही पर जीनें रक्खी जाती थीं और कितनों ही पर रखी गई थीं, कितने ही ले जाए जाते थे और कितने ही लाए जाते थे, कितने ही औरोंको दिए जाते थे और कितनोंहीको औरोंने ले लिया था, कितने ही आते थे और कितने ही आ गए थे, कितनोंहीको गहने पहनाए जाते थे और कितने ही पहन चुके थे, कितने ही कतारमें थे और कितनों ही पर सवारी हो रही थी, कितने ही खड़े थे और कितने ही राह देख रहे थे। राजद्वारका आँगन उनके लिये काफी नहीं था, चौराहा उनके लिये छोटा होता था, चार पूरी सड़कका रास्ता रुक जानेसे वे भीतर और बाहर नगरीके विस्तारका सहोड़ देते थे। उन घोड़ोंसे ऐसा मालूम होने लगा मानो अन्तरिक्ष मालाके वनसे व्याप्त हो, पृथ्वी मानो खुरोंसे शब्दमय हो, कानोंके छेद मानो हिनहिनाहटसे भर गये हों, युवराजके महलका चौक मानो फेनके पिंडोंसे भर गया हो, दशों दिशाएँ मानो लगामकी खनखनाहटसे भर गई हों और नगरमा की स्त्रियाँ मानो घोड़ोंके गहनों से रत्नकान्तिमय हो गई हों।

३२१—फिर थोड़ी देरमें सज कर, चौकस खड़े इंद्रायुध पर चढ़ कर, चाँदना करनेके लिये आया हुआ मानो दूसरा चन्द्रमण्डल हो ऐसे तथा [illegible] समान शोभायमान मंगल-छत्रसे अपना बाहर आना सूचित करते चन्द्रापीडके दर्शन करते करते हजारों राजपुत्र घोड़ों पर सवार हुए ही इधर उधरसे प्रणाम करने लगे। नगरनिवासियोंके भीतर रहनेके कारण राजमार्ग पर [illegible] [illegible] पर भी घुड़सवारोंकी फौजकी बड़ी संख्याके कारण [illegible] [illegible] कर किसी तरह वह नगरीके बाहर निकला। निकलते ही वह [illegible] [illegible] पर पहुँचा। उसका पानी, चाँदनीके प्रवाहके व्याप्त होनेसे, [illegible] [illegible] जाना नहीं जाता था, उस पर [illegible] हुए हंसोंके [illegible] जो मधुर गुंजार करनेमें ही जाने जाते थे, वह मानो पुलिनमा [illegible] थी, और सब ओरसे आती हुई अनन्त [illegible] [illegible]

मालूम होता था कि उसका जल पास है। सिप्रा नदी पार करके वह दशपुरके रास्तेकी तरफ चला। वह खूब कुटा हुआ था और संकट-रहित होनेके कारण जाने के उत्साहको मानो बढाता था और अत्यन्त चौड़ा होने पर भी चद्रमाकी किरणोंसे मानो और भी चौडा हो गया था।

३७२—फिर सब दिशाओंमें फैले तथा वेगसे बहते चाँदनी-रूपी जल-प्रवाहके साथ मानो खिचते—वैशम्पायनको देखनेके लिए उत्सुक हुए चन्द्रापीडके मनके ही, मानो, बराबर दौडते—इन्द्रायुधकी जंघाओंसे उत्पन्न हुई हवाने मानो खींचे गए घोडोंके साथ उतनी ही पिछली रातमें उसने तीन योजन पूरे कर लिए। जब चाँदनी रूपी जलमें यथेच्छ स्नान करनेसे अत्यन्त शीतल स्पर्श युक्त ओसकी बूँदोंका आकर्षण करनेवाली, फूलोंकी रजसे युक्त—अनेक प्रकारके—वन पल्लवोंसे आती पवनसे प्रेरित, खिली हुई कुमुदिनीको रगड़से लगी परिमल लाती, परिमलसे जड़ हुई, रातके बीतनेकी सूचना देती, सुखदायक पवन मानो रास्तेकी थकावट मिटानेके लिए चलने लगा, रात्रिको दु सह वियोगकी मानो चिन्तासे, आसन्नवर्ती सूर्योदयके मानो दु खसे, प्रदोष समयसे लेकर कुमुद-समूहोंके द्वारा ऊँचे मुख करके पिए गए अपने तेजके मानो क्षयसे, गगन-सरोवरका जल पीने को आए हुए मेघो के समान घोड़ोंकी रजके मानो समूहसे, क्रम पूर्वक, पश्चिम दिग्वधूका मुख चुम्बन करता हुआ चन्द्रबिंब जब फीका हो गया और प्रभात होने लगा; आकाश लक्ष्मीके नए वियोगके संतापसे उतारे हुए सफेद दुपट्टेके समान, चन्द्रमासे लगा हुआ चाँदनीका प्रकाश जब दूर होने लगा, चाँदनी-रूपी जल प्रवाहके मानो पश्चिम समुद्रमें गिरनेसे, झागके बुद्बुदोंकी कतारके समान तारोंकी पंक्तियाँ जब एक साथ नष्ट होने लगीं, गिरते हुए ओसके जलसे, मानो,धुल जानेके कारण दिशाएँ जब धीरे धीरे मोतियोंके बुरादेके समान सफेद चाँदनीके लेपका त्याग करने लगीं, स्वाभाविक श्याम कांति फिर दीखनेके कारण वृक्ष, लता और टहनियाँ जब जलमेंसे मानो फिर बाहर निकलने लगीं, पूर्व दिग्वधूके कानमें पहने हुए लाल अशोकके पल्लवके समान, गगन-सरोवरके लाल कमलके समान, प्रभात रूपी हाथीके गंडस्थलके सिंदूर-रेणुके समान, तथा पूर्व-दिशाकी लाल ध्वजाके वस्त्रके समान, प्रभात संध्याका

रंग जब चमकने लगा, प्रातः सन्ध्याका प्रकाश चारों ओर फैलनेसे मानो दावानलसे युक्त हों ऐसे मालूम होने लगे, निवास वृक्षोंमेंसे पक्षियोंके झुंड कल कल करके जब निकलने लगे, नींद बाकी रह जानेसे अलस हुए हिरनोंके झुंड, बहुत देर तक फैला रखनेके कारण अकड़ी हुई जंघाओं तथा पैरोंको जोरसे खेंच कर लंबे लंबे पैर धरते, जब तृण-रहित भूमि पर उठ कर दौड़ने लगे, पल्वलोंके किनारे पर उगे हुए नागरमोथेकी गाँठों को उखाड़ कर दाँतोंमें काटते वराहोंके झुंड जब वनकी गुफाओंकी ओर जाने लगे, रात्रिके अंतमें चरनेके लिए जाने वाली गायोंके झुंडोंसे ग्रामकी सीमाके अंतके वन स्थल जब इधर उधर सफेद दीखने लगे; बाहर आते जाते लोगोंके दीखनेके कारण जब गाँव मानो नए पैदा हुए मालूम होने लगे, सूर्यकी किरणोंके प्रकाशके साथ साथ जब पूर्व दिग्भाग मानो ऊँचा हो गया, दिशाएँ मानो आगे बढ़ती गईं, वन मानो आगे खिसकते गए, ग्रामोंकी सीमाएँ मानो विस्तार पाने लगीं, जलाशय मानो विशाल होने लगे, पर्वत मानो अलग अलग साफ दीखने लगे, पृथ्वी मानो ऊँची होने लगी, कुमुदिनियाँ मानो अदृश्य होने लगीं, अदृश्य करनेवाले नीले धुएँके समान अंधकार मालाको करोंसे हटा कर, विरहसे पीड़ित हुई कमलिनीको मानो देखनेके लिए [illegible] भगवान् सूर्य जब उदयगिरिके शिखर पर चढ़ गए, गगनतलको प्रकाशित कर सूर्यकी—सारे जगत्में उजेला करने वाली—किरणें जब दिशाओंको चमकाने लगीं, और जब आसपासके पदार्थ दीखने लगे, उस समय चंद्रापीडने अपनी सेनाको देखा। वह एक साथ ही लगभग दो मील आगे [illegible] प्रयाण [illegible] आई थी। भीतर स्थान होनेसे भयभीत हुआ रसातल मानो उसका [illegible] [illegible] था, इकट्ठा भार असह्य लगनेके कारण पृथ्वी मानो उसे [illegible] [illegible] थी, जगह काफी न होनेसे दिशाएँ उसको मानो [illegible] अपरिमित रजके ढक जानेके कारण आकाश मानो [illegible] [illegible] था, सूर्य-प्रकाशके साथ ही मानो वह विस्तार पाती थी, [illegible] खूब लम्बा फैला कर अनेक देखने पर भी उसका अंत नहीं दीखता था, [illegible] अनुजीवी[1] भूपालों[2] [illegible]

१—आश्रित। २—राजा, [illegible]।

शील भूमडल था, नदियोंके प्रवेश विना भी गम्भीर मालूम होता मानो प्राणि मय, दुस्तर, आठवाँ महासमुद्र था, ऊँची उड़ती हुई रजके ढेरके कारण उसका सब वृत्तान्त साफ नहीं दीखता था; तथापि इधर-उधर सफेद ध्वजाओंके फहरानेसे मालूम होता था कि उसमें हजारों हाथियोंके झुंड थे, जिनसे वह ऐसी लगती थी मानो अनगिनती बगलोंकी कतारोंसे शोभाय मान मेघोंकी घटावाले, मूर्तिमान् मेघ-समयका आरभ हो; और फिर ठहरनेकी जगह तलाश करनेके सभ्रममें दौड़ते हुए असख्य हाथी घोड़ोंके सवारोंकी, लहरों के समान, आपसकी टक्करसे ऐसा मालूम होता था मानो मदग-जलके धीरे धीरे छलकनेसे छिन्न भिन्न हुई तरग-मालाओंसे आकुल हुए महासमुद्रकी लीलासे वह पडाव डालती हो।

३२३—देख कर उसने विचार किया—जो मैं अचानक ही जाकर वैशम्पायनसे मिलूँ तो ठीक हो। यों सोच कर छत्र-चमरादि अपने चिन्होंके साथ सब राजपुत्रोंको छोड़, अनन्त वेगवाले तीन चार घोड़े लेकर, दुपट्टेसे मस्तक ढक कर, विशेष वेगसे चलनेवाले इन्द्रायुध पर बैठ कर, अकस्मात् ही वह अनेक व्यापारोंमें लगे हुए लोगोंसे भरी हुई सेनाके पास आ पहुँचा। घोड़े पर चढा ही हर एक डेरेमें जाकर पूछने लगा कि वैशम्पायनका डेरा कहाँ है। तब वहाँ पासकी स्त्रियोंने उसे साधारण मनुष्य जान कर पहचाना नहीं, और जिन कामोंको आरंभ कर दिया था उनमें व्यग्र रह कर ही, आँसुओंके कारण शून्य हुए मुखसे, कहा—भद्र, क्या पूछते हो? यहाँ वैशम्पायन कहाँसे आया? यह सुन कर—अरी पापिनियो, क्या ऐसी असगत बात कहती हो?—यों शून्य-हृदय होकर, उनकी परवा न करके, हृदय भीतरसे भिन्न हो जानेके कारण दूसरी किसी स्त्रीसे पूछे बिना योंका यों ही—डरे हुए हिरनके बच्चेके समान, यूथमेंसे भटक जानेके कारण घबराते हुए हाथीके बच्चे के समान, गायके विरहसे कान उठाए फिरते बछड़ेके समान—बिना कुछ देखे, बिना कुछ बोले, बिना कुछ बात किये, बिना कुछ सुने, बिना कुछ विचारे, बिना कहीं खड़े हुए, बिना किसीको बुलाए—मैं यहाँ आया हूँ, कहाँ आ निकला हूँ, कहाँ जाता हूँ, क्या देखता हूँ; मैंने क्या आरंभ किया है और मैं क्या करता हूँ?—इन सब बातोंके भान बिना माने

अंधा हो, बहरा हो, गूँगा हो, जड हो, आविष्ट हो, यों सेनाके बीचमें, जिस तेजीसे आया था उसीसे, घोड़ेको ले गया ।

३२४—फिर इन्द्रायुधको पहचाननेसे और खबर सुन कर ही, पीछे [illegible] राजपुत्रोंके दर्शनसे, देव चन्द्रापीडको आया जान कर चारों ओरसे सम्भ्रम-सहित दौड़ते, हुए के गिरने पर ध्यान न देते, आँसुओंके कारण शून्य दृष्टिवाले, दूरसे ही लज्जा और प्रणाम-क्रियाके कारण [illegible] होते हजारों क्षत्रिय राजाओंके मुख देख कर चन्द्रापीडने पूछा कि [illegible] कहाँ है ? तब उन सबने आपसमें सलाह कर निवेदन किया—आप इस वृक्षके तले उतरिए, जो बात हुई है, उसे हम निवेदन करेंगे । [illegible] भी अधिक कष्ट देनेवाले उनके वचनसे चन्द्रापीडका हृदय इस प्रकार फट गया मानो भीतर बाण लगा हो । स्नेहके कारण उस समय आई [illegible] मूर्च्छाहीने उसे धारण किया । घोड़ेसे उतार, गलीचे पर बिठा, उसके पिताके समान वयवाले, आदरके योग्य, क्षत्रिय राजाओंने उसके शरीरको सहारा दिया, पर उसको इसकी कुछ खबर न पड़ी । [illegible] होने पर भी [illegible] यनको न देखनेसे और अपनी स्थितिका विचार [illegible]—यह क्या है ? मैं कहाँ हूँ ? मैंने यह क्या किया ?—इस प्रकार [illegible] मानो [illegible] गया, इन्द्रियाँ मानो अपनी शक्ति छोड़ने लगीं, उसे कुछ नहीं सूझा, [illegible] आ जानेसे ही [illegible] अभाव देख और कुछ न विचार कर, [illegible] पीड़ा उत्पन्न होनेसे—क्या मैं रोऊँ ? क्या हृदयको [illegible] रहूँ ? क्या आत्मना [illegible] हृदयको प्राणोंसे [illegible] करूँ ? [illegible] दिशाकी तरफ चला जाऊँ ?—यह कुछ उसकी समझमें नहीं आता था । [illegible] मानो गला जाता था, [illegible] जाता था और [illegible] [illegible] हो गया [illegible], इस प्रकार विचार करने लगा—अहा ! [illegible]

[illegible] के लिए अरमणीय हो गया ! [illegible]

[illegible] होने पर भी दिशाएँ [illegible] [illegible]

[illegible] गया ! [illegible] होने पर भी [illegible]

[illegible] किसको देखूँ ? [illegible]

[illegible] साथ [illegible] ? अब [illegible] और [illegible]

वैशम्पायनके लिए कहाँ जाऊँ? किससे पूछूँ? किससे प्रार्थना करूँ? कौन मुझे ऐसा मित्र-रत्न फिर देगा? वैशम्पायनके बिना मैं अपने पिता और शुकनासको कैसे मुँह दिखाऊँगा? पुत्र-शोकसे विह्वल हुई माता मनोरमाको क्या कह कर धैर्य धारण कराऊँगा? क्या यों कहूँगा कि एक भूमि मेरे जीतनेसे रह गई है, उसे लेनेके लिए वह पीछे रह गया है? या एक राजाके साथ सधि नहीं हुई जिसे करनेके लिए उसे पीछे छोड़ दिया है? या एक विद्या नहीं सीखी है, उसे सीखनेके लिए मैंने अनुमति दे दी है? ऐसे ऐसे कितने ही विचार बहुत देर तक, मुँह नीचा करके, करनेके पीछे हृदय न फटनेके कारण मानो अपनेको सभ्रान्त, दोषी अथवा महापातकी समझता, मुँह दिखाए बिना धीरे धीरे, मानो बड़े कष्टसे, उनसे पूछने लगा—

३२५—मेरे चले आनेके बाद क्या बीचमें ऐसा कोई युद्ध हुआ, या कोई तत्काल चिकित्सा करनेके योग्य व्याधि उत्पन्न हुई, जिससे अचानक ही यह महा वज्रपात हुआ? ऐसा प्रश्न सुन उन सब ने साथ ही कानों पर दोनों हाथ रख कर निवेदन किया—महाराज, विघ्न सब शान्त हैं। आपके समान वैशम्पायन अभी सौ वर्षसे अधिक जिएगा। यह सुन कर मानो फिर जीवित हुआ हो यों आनन्दके आँसू टपका कर तथा सबको आदर-सहित कंठालिंगन करके वह बोला—वैशम्पायन जीता होता तो उसका क्षण भर भी अन्यत्र रहना असम्भव समझ कर मैंने आपसे यह पूछा था। अब वह जीता है, ऐसे अक्षर मेरे कानमें पड़े। पर उसको क्या हो गया जो वह नहीं आया? वह है कहाँ? किस प्रसंग से रह गया है? उसको अकेला छोड़ कर आप सब क्यों चले आए? क्या जबरदस्ती भी आप उसे न ला सके? यह जाननेके लिये मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। यह सुन कर उन सबने कहा—देव, जो कुछ हुआ है, सुनिए—

३२६—सेनाकी देख भाल करके, वैशम्पायनके साथ तुम सब धीरे धीरे पीछे से आना—यह आज्ञा दे कर आपके लौटने पर उस दिन घास, ईंधन, इत्यादि सब सामग्री खूब इकट्ठी करनेके कारण सेनाने कूच नहीं किया। दूसरे दिन जब कूचका बिगुल बजाया गया और सब सेना तैयार हुई तब प्रातःकाल ही वैशम्पायनने हमसे कहा—पुराणोंमें कहा गया है कि अच्छोद

नामका सरोवर बहुत पवित्र है, इसलिए उसमें नहा कर और उसके ही तीर पर बने हुए सिद्ध स्थानमें भगवान् भवानीपति महेश्वर चन्द्रशेखरको प्रणाम करके चलेंगे। इस—दिव्य पुरुषोंसे सेवित—भूमिको फिर कोई फिर स्वप्नमें भी देखेगा? यह कह कर पैदल ही वह अच्छोद सरोवरके तीर पर गए। वहाँ अत्यन्त रमणीयताके कारण सब ओर देखते फिरते थे कि उसके तट पर उन्होंने एक लतामण्डप देखा। वह देवांगनाओंके कानोंके ऊपर रक्खे जानेके योग्य तथा तरंगपवनके लगनेसे चंचल किसलयोंसे और मकरंदके लोभसे निरंतर भरे हुए मत्त भ्रमरोंकी मधुर गुंजारसे मानो स्वयं ही उनको बुलाता था, मरकतमणिके समान श्याम प्रभासे दसों दिशाओं का एक साथ ही मानो लेप करता था, सूर्यकी किरणोंका प्रवेश न होनेके कारण दिनमें भी मानो भीतर रात्रिका धारण करता था, बहुत दिनोंसे परिचय होने पर भी मेघोंके आनेकी शंकासे बारम्बार मधुर केका करते मिले मयूर ऊंची गर्दन करके उसे देख रहे थे, वह वर्षाकालका मानो स्थान था, सब ऋतुओंका मानो प्रतिपदा था, शीतलताका मानो आश्रम था, वसन्तऋतु का मानो निर्गम मार्ग था, कामदेवका मानो आश्रय था, रतिका मानो, [illegible] के समान, मन बहलाने का स्थल था, सब रमणीयताओंका मानो स्थान था, निरंतर बहती सुगन्धित और शीतल—अच्छोद सरोवर की—तरंगोंसे उसके भीतरके शिलातल ठंडे हो गये थे।

३२३—उसे देख, बहुत दिनोंसे नहीं देखे हुए मानो [illegible] भार्याको, पुत्रको या मित्रको देखता हो, अनन्य दर्शन—निमेष रहित [illegible]—उसको ही देखते देखते स्तम्भित हो, चित्रित हो, उत्कीर्ण हो, अथवा [illegible] हो, इस प्रकार वह बहुत देर तक खड़े रहे, और [illegible] [illegible] असमर्थ हो, मूर्च्छासे मानो आक्रान्त हो, तथा इन्द्रजाल [illegible] [illegible] प्रकार सुस्त हो, अंग शिथिल हो [illegible], [illegible] [illegible] कुछ स्मरण करने हो [illegible] [illegible] ना नयनोंसे आँसुओंकी [illegible] लगाने, [illegible] [illegible] उनकी ऐसी अवस्था [illegible] [illegible] [illegible] रहनेवाले [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

जो 'कुतूहलाकीर्ण' प्रथम वयमें वर्तमान हैं उनका तो कहना ही क्या है? इसलिए निश्चय है कि अत्यन्त मनोहर भूमि देख कर चिन्तन करने से उन्हें यह हृदय विकार हुआ है। फिर थोड़ी देर पीछे हमने उनसे इस प्रकार कहा—दर्शनीय वस्तुओंकी यह सीमा देख ली। इसलिए उठिए। अब नहा-धो लें। बहुत देर हो गई। सब सवारियाँ सज गई हैं। सब सेना कूँच करनेको तैयार है और आपकी राह देख रही है। अब विलंब करनेसे क्या लाभ? हमारे यों कहने पर भी मानो हमारे शब्द न सुने हों, जड़ हों, मूक हों या बोलना न जानते हों यों उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। निमेष-रहित, निश्चल तथा स्तब्ध पुतलीवाले, आँसुओंकी झड़ी लगाते, मानो चित्रित हों ऐसे, नेत्रोंसे केवल उसी लता-मंडपको देखते रहे।

३२८—हमने आनेके लिए बार-बार अनुरोध किया तब वहीं दृष्टि स्थिर करके, अपना कर्तव्य निश्चित कर लेनेके कारण निष्ठुर शब्दोंमें, वह हमसे कहने लगे—मैं तो इस जगहसे नहीं सरकूँगा। आप सब सेनाको लेकर जाओ। चंद्रापीड़के भुज-बल से रक्षित महासेनाको लेकर, उनके जानेके पीछे इस जगह आपको क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहिए। उनके यों कहने पर हमें संदेह हुआ कि क्या उनको दैवयोगसे ही अचानक वैराग्य-कारण उत्पन्न हो गया है? इस कारण विनय सहित बार बार हमने उनको आनेके लिए समझाया और, ऐसे असंगत आचरणसे दुःखी होकर, हमने निष्ठुर शब्द भी कहे कि हमको तो यों रहना योग्य नहीं है परन्तु महाराज तारापीड़के तुल्य शुकनासके पुत्र—देवी विलासवतीकी गोदमें पाले गए—देव चन्द्रापीड़के साथ ही परवरिश पाए हुए और विद्यालयमें महा यत्नसे इस प्रकार शिक्षित हुए आपको क्या यह योग्य है कि आपके बड़े भाई, मित्र, वत्सल, स्वामी जगन्नाथ, गुणवान्, चन्द्रापीड़ आपको सब सौंप कर चले गए उसे त्याग कर आप यहाँ रहें। अन्य कौन आपकी तरह युक्त अयुक्तका विचार करेगा आपके ऊपर हमारी प्रीति और भक्ति तो दूर रही, इस शून्य वनमें आपको अकेला छोड़ जायँ तो चन्द्रमाके समान शीतल प्रकृतिवाले देव चंद्रापीड़ हमसे क्या कहेंगे? क्या चन्द्रापीड़ और आप जुदे जुदे हैं? इस हठ को छोड़ दीजिए और चलने का इरादा करिए।

३२९—जब हमने यों कहा तब जरा अस्वाभाविक हास युक्त मानसे उन्होंने उत्तर दिया—क्या मैं इतना भी नहीं जानता हूँ जो आप मुझे चलने के लिए समझाते हो? चन्द्रापीडके बिना मैं क्षणभर भी अन्यत्र नहीं रह सकता। यह मैं खूब जानता हूँ तो भी क्या करूँ? इसी क्षणसे मन अपने वशसे प्रभुत्व जाता रहा, क्योंकि मेरा मन, मानो कुछ याद करता हो इस प्रकार, अन्यत्र कहीं नहीं लगता, दृष्टि मानो कुछ देखती हो इस तरह, अन्यत्र नहीं पड़ती, हृदय मानो कहीं आसक्त हो इस तरह, कुछ नहीं समझता, चरण मानो शृङ्खलामें बँधे हों इस प्रकार, एक कदम चल नहीं सकते और शरीर तो मानो इसी स्थान में गड़ गया है। इसलिए हाथ तो मैं जानेके लिए असमर्थ हूँ। अब जो आप जबरदस्ती मुझे ले जाना चाहें तो मुझे आशा नहीं है कि इस जगहसे चले जाने पर मेरे प्राण रहेंगे। परन्तु जो मैं यहीं रहूँगा तो इस हृदयमें जो अज्ञात भावना है—जिससे मैं आसक्त हूँ—उसके ही आश्रय मेरे प्राणोंकी रक्षा होगी, यह मेरा विचार है। इसलिए आग्रह मत करो। आप जाओ और जीवन-पर्यंत चन्द्रापीडके दर्शनके सुखका अनुभव कर खूब तृप्त होओ। मुझ अल्प पुण्यवालेका तो यह सुख, [illegible], मुझीने देखते छीन लिया है। यों सुन कर कौतुकसे बार बार हमने [illegible] कहा कि आप यह क्या कहते हैं? देव चन्द्रापीडके पास क्यों नहीं [illegible]? तब उन्होंने कहा—मैं भी कहते शर्माता हूँ तथापि मित्र चन्द्रापीडके ही [illegible] शपथ खाता हूँ कि मैं कुछ भी नहीं जानता कि [illegible] असमर्थ हूँ और यह वृत्तान्त आपके भी मालूम है। इसलिए आप [illegible] इतना कह कर वह चुप हुए।

३३०—[illegible] बाद उठ [illegible] [illegible], और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस प्रकार, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। हम तो उनको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible]

अपने जीवनसे भी अधिक प्रिय हैं, इस कारण अगर ये मुझे जबरदस्ती भी छोड़ कर जाते हों तो भी इनको धारण करनेके लिए मुझे प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु जाते ही नहीं फिर क्या ? मुझे चन्द्रापीड़के दर्शन से ही काम है, मृत्युसे नहीं। इसलिए यहाँ प्रार्थनाकी जरूरत नहीं है। यों कह कर, उठ कर स्नान किया तथा कंद, मूल और फलों से वनवासके योग्य भोजन किया। उनके निवृत्त हो चुकने पर हमने भी शरीर-व्यापार निपटाया। ऐसे ही क्रमसे रात दिन—यह क्या है ?—यों उनके वृत्तान्तका ही चिंतन करते, अंतःकरणमें विस्मित हो कर, तीन दिन हम वहाँ ठहरे। फिर उनके आनेकी या उनको ले आनेकी कुछ आशा न रहनेसे उनके भोजनादिका ठीक प्रबंध करके तथा उनके नौकर-चाकरोंको वहाँ नियत कर हम यहाँ आ गए। आगेसे जो हमने दूत नहीं भेजा उसका कारण तो यह था कि आपके लौटतेमें रास्तेमें आपके पास तक पहुँच ही नहीं सकता था और दूसरे आप बहुत दिन बाद नगरमें आए थे इससे आते ही आपको फिर जानेका कष्ट होता।

३३१—स्वप्नमें भी जिसकी सभावना नहीं थी कि ऐसा वैशम्पायनका वृत्तान्त सुन कर चन्द्रापीड़के हृदयमें उद्वेग और विस्मय भाव ही पैदा हुए और उसने विचारा कि सब त्याग कर वनवास का ही आश्रय लेने-वाले वैराग्यका क्या कारण होगा ? मुझसे तो कुछ अपराध हुआ नहीं दीखता। पिताकी कृपासे मेरी तरह उसका भी सब राजा चरणोंके तलेमें चूडामणियों का स्पर्श करके आदर करते ही हैं। मेरी तरह उसको भी इच्छासे अधिक सब उपभोगोंमें किसी बातकी कमी नहीं रहती। मेरी तरह उसकी आज्ञाका भी कोई उल्लंघन नहीं करता। मैं जिस तरह कृपा करता हूँ उसी तरह वह भी करता ही है। अपराधी जन जिस तरह मुझसे डरते हैं उसी तरह, उससे भी डरते ही हैं। मेरे समान उसके पास भी सब प्रकारकी सम्पत्ति है। उसको भी देखकर लोगों को ऐसी ही श्रद्धा होती है जैसे मुझे देख कर होती है। क्या आते समय पिताने, माताने, आर्य शुकनासने या मनोरमाने [illegible] उसका आदर नहीं किया ? अधिक विनय चाहने-[illegible] शुकनासने कुछ ऐसी बात तो नहीं कही जिसे सुन कर उसे

वेश्याओंके हाथोंमें मणि-जटित चामर, पंखे, रत्न पाट्का आदि सामग्री थी, मदकी परिमलसे दिशाओंको महकाता गंधमादन नामका राज-हस्ती, उसके एक ओर, चन्दोवेके नीचे खड़ा था, दूसरी तरफ भी इन्द्रा-युधके लिए स्थान बना था, बाहरका आंगन सवारीकी हथिनियोंसे भरा था, सब दरवाजोंके पास बहुतसे छड़ीदार खड़े थे, महत्वसे, गम्भीरतासे और अनेक प्राणियोंके एकत्रित होनेसे वह महा-जलनिधिके समान मालूम होता था—क्योंकि प्रत्येक प्रहरमें सेवाके लिए तैयार खड़ी हुई अनेक गज-घटाओंके परिवारसे मानो तटके वनसे युक्त हो, गंधमादनसे मानो अंतःप्रविष्ट महाप्वंत-सहित हो, सेवकोंके सभ्रम सहित चलने फिरनेसे मानो तरंग-मय हो, पहरेवालोंकी टोलियोंके खड़े रहनेसे मानो भँवर-सहित हो, सुन्दर स्त्रियोंसे मानो लक्ष्मी-सहित हो, महा-पुरुषोंसे मानो रत्न-सहित हो, श्वेत-ध्वजाओंसे मानो हंसमाला-युक्त हो, फूलोंके ढेरोंसे मानो फेन-पटल-युक्त हो, ऐसा वह विष्णुके समान [१]अनंत-भोग-परिकर युक्त था।

३३२—उसके भीतर प्रवेश करते ही, शरीर-संस्कार नहीं करनेके कारण मलिन वेष और उद्वेग-युक्त दीन मुखवाली वेश्याएँ, पहरेदार और नौकर-चाकर इधर उधरसे उसको प्रणाम करने लगे, पर वह चुपचाप छड़ी-दारके समान, मदकी सुगंधसे बताए गए गंधमादनकी ओर शून्य दृष्टि करके धीरे धीरे अपने रहनेके भवन की ओर चला। वहाँ कपड़े उतार कर पलंग पर लेटते ही शरीर मलनेवाले छोटे छोटे पंखोंसे हवा करने लगे और धीरे धीरे यात्राकी थकावट दूर हुई। रात भर जागनेसे खिन्न होने पर भी उसे निद्रा सुख नहीं मिला। एकके बाद दूसरा दुःख पैदा करनेवाली चिन्ता-दीमें फिर पड़ा कि जो मैं माता पिताकी आज्ञा बिना, उन दोनोंको शोक-सागरमें डाल कर, और पुत्र-विरहके शोकसे विह्वल हुए तात शुकनास और माता मनोरमाका इतमीनान किए बिना, इस जगहसे चला जाऊं तो मेरा भी यह काम वैशम्पायनके समान होगा। यहाँसे पीछे लौटूं तो मुझे संदेह होता है कि फिर आनेकी आज्ञा नहीं मिलेगी। इसलिए अब क्या करना चाहिए? अथवा आज्ञा न मिलनेकी शंका ठीक नहीं है। प्रियमित्रने अपना और मेरा

[१]—भोगकी वस्तु व वस्तुओंसे युक्त, शेषके शरीरके वेष्टनसे युक्त।

परित्याग करके भी अन्य प्रकारसे ही जानेकी आवश्यकता पेश करके, कादम्बरीके पास जानेके उपायकी चिन्तामें आकुल हुए मेरा उपकार ही किया। इसलिए अब वैशम्पायनको लौटा लानेके लिए जानेमें पिता, माता, या आर्य शुकनास कोई मुझे नहीं रोकेगा और यहाँसे [illegible] कि वैशम्पायनके साथ उसी तरफ हो कर मैं आगे जाऊँगा। यह निश्चय कर तत्काल हुए वैशम्पायनके वियोगके दुःखको परिणाममें सुखकारक दवाके समान प्रत्यक्ष मान कर, क्षण भर आराम करके, शरीर में सुख पा कर, तृतीय अर्द्धयामका बिगुल बजते ही स्नान-भोजन आदिके लिए उठा।

३२४—उठ कर—जहाँ कादम्बरी है, वहीं वैशम्पायन है—इस प्रकार अपने पैरोंके अवलम्बनमें हृदयको दृढ़ कर, शून्य मन हो कर, फिर सब राजा लोगोंको एकत्रित करके, उसने स्नान भोजनादि किया। आहारके बाद भीतर [illegible] कामाग्निको और वैशम्पायनके विरहकी शोकाग्निको बाहर भी सताप देनेमें मानो सहायता करनेके लिए जब सूर्य—ऊपर रह कर आठों दिशाओंमें एक साथ किरणें फैला कर बिना प्रयत्नके ही अत्यन्त [illegible] संताप उत्पन्न करूँगा, यों मानो विचार कर—आकाशके बीचमें आया, जब किरण-जाल धूपके बहाने मानो गरम चाँदीका रस [illegible] लगा, धूपकी चिनगारियाँ जब शरीरको भेद कर मानो भीतर घुसने लगीं, इकट्ठे हुए प्राणियोंके समूह समेत वृक्षोंकी छाया [illegible] सिकुड़ने लगी, दृष्टि जब बाहर देखनेमें भी समर्थ न हुई, दिशाएँ [illegible] जलने लगीं, दृष्टि जब बाहर देखनेमें भी समर्थ न हुई, दिशाएँ [illegible] जलने लगीं, भूमि जब दुस्पर्श हो गई, रास्ते बन्द हो गए, [illegible] कुटीके भीतर पानी पानेको इकट्ठे होने लगे, [illegible] पत्ते जब अपने अपने [illegible] घुस गए, [illegible] गए, [illegible] और [illegible] और [illegible] के कारण उत्पन्न हुए [illegible] ऊँचे नीचे [illegible] हाथियोंके झुंड जब घूमने लगे, [illegible] हो गए, [illegible] हुए [illegible] समान दीखने लगा, [illegible] आने लगी, [illegible]

होने लगी; वर्षाकालका आना सब चाहने लगे, दिनके अन्तकी इच्छा होने लगी और प्रदोष समयको देखनेके लिए हृदय जब उत्सुक होने लगा तब चन्द्रापीड़ उठ कर सरोवरके किनारे बने हुए एक जल-मडपमें गया। वहाँ जलकी धाराओंकी निरंतर वर्षा होनेसे सूर्यकी किरणोंका सताप दूर हो गया था। उसके आसपास, एक ही धारामें, वर्षाके वेगसे बहती नदीके समान, एक नहर थी। भीतर लटकाए हुए जल-जम्बुके कोमल पत्तोंसे उसमें अधकार हो रहा था। उसके सब खंभों पर फूलों और पत्तोंसे युक्त लताएँ लिपटी थीं। गाढे हरिचन्दनके लेपसे वह गीला हो रहा था। समस्त भूतल पर मरकतके समान श्याम कमलके पत्ते बिछे थे। सुगंधित और सरस प्रफुल्लित कमलोंके ढेर बिखरे थे। सरस मृणाल दंड इधर उधर पड़े थे। इधर उधर पानी की बूँदें बरसाती शैवलकी प्रवाल-मजरियोंसे वहाँ अकाल मेघ-समयकी रचना की गई थी। तत्काल स्नान करनेके कारण गीले केश पाशवाली बहुतसी वेश्याएँ जलदेवियोंके समान खड़ी थीं। उनके हाथोंमें सुगधित और कोमल गीले वस्त्र थे। गीले चन्दनके लेपसे वे मनोहर दीखती थीं। उन्होंने केवल हार और ककड़ोंके ही गहने धारण किए थे, कोमल शवल प्रवाल कानमें पहने थे, और मृणाल, ताड़के पखे, कपूर पटवास, हरिचन्दन, चन्द्रकान्त मणि, दर्पण आदि सामान उनके हाथोंमें था। वह मडप उष्ण-कालका मानो परिभव-स्थान था, शीतकालका मानो मूल-कारण था, मेघोंका मानो रहने का स्थान था, रवि किरणोंका मानो तिरस्कार था, सरोवरका मानो हृदय था, हिमाचलका मानो सहोदर था, शीतलताका मानो स्वरूप था, रात्रियों का मानो आवास था और दिनका मानो निराकरण करनेवाला था।

२३५—वहाँ अत्यन्त रम्यताके कारण क्षुभित[1] हुए मकरध्वजकी हजारों उत्कलिकाओंसे विषम और पानी गिरनेकी ठंडकके कारण सधुक्षित[2] मित्र वियोग-रूपी अग्निवाले महासमुद्रके समान गंभीर दिन उसने अकेले ही बड़े बड़े कष्टोंसे

१—कामकी उत्कंठाओंसे दु सह, नक्र-लाछन-युक्त तरगोंसे दुस्तर।
२—उत्तेजित, जिसमें बड़वानल सुलग रही है।

अपने [illegible] रूप नावसे पार किया। फिर जब संध्या हुई और सूर्य लाल लाल होने लगा तब बाहर आकर, मोटे गोबरके लेपसे हरे दीखते और मंद मंद चलती हवासे हिलते सफेद फूलोंसे शोभायमान वास-भवनके आंगनमें क्षणभर, पासके राजाओंके साथ, वैशम्पायनकी बातचीत करनेके बाद—'दूसरे ही पहरमें चलना है, इसलिए सेना तैयार करो'—यों सेनापतिको आज्ञा देकर, तारोंके उदय होते ही सब राजा लोगोंको विदा करके वह वास-भवनमें गया। फिर बहुत दिनसे उज्जयिनीको न देखनेसे उत्सुक हुए सब सैनिक कूचका बिगुल बजनेके बिना भी चलनेको तैयार हो गए। प्रातः भी निद्राका विनोद न मिलनेसे तीसरे प्रहरके आरम्भमें ही थोड़े [illegible] हथिनियोंके वाहनवाले बहुतसे राजा लोगोंके साथ, जहां सेनाकी भीड़ कम थी ऐसे, रास्तेसे चला। फिर मार्गमें ही साथ जाते रात्रि क्षीण हुई, सब वस्तुएं मानो रसातलमेंसे तैर कर बाहर निकलने लगीं, दृष्टि मानो विकास पाने लगी, जीवलोक मानो अन्य प्रकारसे तैयार होने लगा, ऊंचे नीचे प्रदेश दूरसे दूर दीखने लगे, गहन वन मानो विरल होने लगे, तरु-लताओंकी झाड़ियां मानो सिकुड़ने लगीं; आकाशमें चढ़ती हुई दिवस-श्रीके, लाक्षाके रससे लाल हुए, चरणके समान तथा नीहारसे सिंचाई होनेके कारण पूर्व दिशारूप लताके फूटते हुए नये पल्लवके समान, कमलिनीको राग देनेवाला सूर्यबिम्ब जब दीखने लगा और प्रभात समय स्पष्ट होने लगा तब सैनिकोंके साथ ही वह उज्जयिनी पहुंच गया।

३३७—यह सुन कर उसने विचारा कि बाहरके लोगोकी ऐसी दशा है फिर जितने उसे गोदमें खिलाया, उसका सवर्धन किया या उसकी बाल्यावस्था की सुन्दर बातें सुनीं, उसका तो कहना ही क्या है ? इस कारण वैशम्पायन के बिना तात शुकनास या माता मनोरमासे मिलना मेरे लिए अत्यन्त कष्ट-दायक है। यों विचार करते करते आँसुओंसे भरी दृष्टि नाककी ओर रख कर, सब वृतान्त देखे बिना ही उसने उज्जयिनीमे प्रवेश किया। उतर कर राज-कुलके द्वारमे घुसते ही उसने सुना कि देवी विलासवतीके साथ राजा आर्य शुकनासके महलको गए हैं। यह सुन पीछे मुड कर वह भी वहीं गया और जाते जाते पास पहुँच जाने पर उसने सुना—हा वत्स वैशम्पायन, अभी तो तू मेरी गोदमें खिलाने योग्य बालक ही है, कैसे तू अकेला लाखों सर्पोंसे भयकर, निर्जन तथा शून्य वनमें पड़ा है ? वहॉ सब क्रूर प्राणियोंको मार कर किसने तेरे शरीर की रक्षा की होगी ? किसने शीत-वात आदिके सकट-से बचा कर तेरे शरीरकी सँभाल की होगी ? किसने तेरे लिए निद्रामें सुख देनेवाला बिछौना बिछाया होगा ? कौन तुझे भूखा, प्यासा या सोनेका इच्छुक देख दु खित हुआ होगा ? बेटा, मेरा उत्सग छोड कर तुझे समान सुख दुःख भोगनेवाली वहू भी अभी नहीं मिली है। तेरे आते ही पिताकी आज्ञा लेकर बहूका मुख देखनेका जो मैंने विचार किया था, वह मुझ मद पुण्यवालीका पूरा न हुआ, बल्कि तेरे मुखका दर्शन भी दुर्लभ हो गया। वत्स, जहॉ तुझे रहना अच्छा लगे वहीं मुझे भी अपने पितासे कह कर ले चल। तुझे देखे बिना मैं न जियूँगी। तात, तूने कभी बालपनमें भी मेरा अपमान नहीं किया। अब एक साथ ही क्यों तू ऐसा निष्ठुर हो गया ? जन्मसे आज तक जिसका मुख कभी क्रोधित नहीं देखा वह तू कैसे मुझ पर अकस्मात् कुपित हो गया कि मुझे यों छोड़ कर चला गया ! चला गया है तो भी आजा ! मैं विनीत भावसे तुझसे प्रार्थना करती हूँ। और मेरा कौन है ? देशान्तरके परिचयके कारण तेरा हमसे सब स्नेह जाता रहा। क्षणभर भी जिसे देखे बिना तू नहीं रह सकता था उस चन्द्रापीड़ पर क्यों ऐसा निःस्नेह हो गया ? पुत्र, यह तूने अच्छा नहीं किया। सुखी रखने के योग्य सब गुरुजनोंको तूने दुःखमें डाला ? न जाने नहीं जानती यों करने से तुझे क्या मिलेगा ? ऐसे ऐसे

अपने धैर्य-रूप नावसे पार किया। फिर जब संध्या हुई और धूप लाल लाल होने लगी तब बाहर आकर, मोटे गोबर के लेपसे हरे दीखते और मंद मंद चलती हवासे हिलते सफेद फूलोंसे शोभायमान वास-भवनके आँगन-में क्षणभर, पासके राजाओंके साथ, वैशम्पायनकी बातचीत करनेके बाद— दूसरे ही पहरमें चलना है, इसलिए सेना तैयार करो—यों सेनापतिको आज्ञा देकर, तारोंके उदय होते ही सब राजा लोगोंको विदा करके वह वास-भवनमें गया। फिर बहुत दिनसे उज्जयिनीको न देखनेसे उत्सुक हुए सब सैनिक कूचका बिगुल बजनेके बिना भी चलनेको तैयार हो गए। आप भी निद्राका विनोद न मिलनेसे तीसरे प्रहरके आरम्भमें ही घोड़ों तथा हथिनियोंके वाहनवाले बहुतसे राजा लोगोंके साथ, जहाँ सेनाकी भीड़ कम थी ऐसे, रास्तेसे चला। फिर मार्गके ही साथ जब रात्रि क्षीण हुई, सब वस्तुएँ मानो रसातलमेंसे तैर कर बाहर निकलने लगीं; दृष्टि मानो विकास पाने लगी; जीव-लोक मानो अन्य प्रकारसे तैयार होने लगा, ऊँचे नीचे प्रदेश जुदे जुदे दीखने लगे; गहन वन मानो विरल होने लगे; तरु-लताओं की झाड़ियाँ मानो सिकुड़ने लगीं, आकाशमें चढ़ती हुई दिवस-श्रीके, लाक्षाके रससे लाल हुए, चरण के समान तथा नीहारसे खिंचाई होनेके कारण पूर्व दिशा-रूप लताके फूटते हुए नये पल्लवके समान, कमलिनीको राग देनेवाला सूर्य-बिम्ब जब दीखने लगा और प्रभात समय स्पष्ट होने लगा तब सैनिकोंके साथ ही वह उज्जयिनी पहुँच गया।

३३६—वहाँ दूरसे ही अंजली बाँधे हुए, इकट्ठे होते और इकट्ठे हुए, झुंड बाँध कर खड़े और बैठे, मुड़ते और कितने ही शून्य पद धरते, पीछे फिरते और आते, ऊँचे मुख और अधो मुखवाले, अश्रुमय दृष्टिवाले, विवर्ण और दीन मुखवाले, महा-कष्ट शब्द बोलते, और अधिक दुःखके कारण मौन हुए, नगरीमेंसे आए हुए, मुनियोंको भी, मुमुक्षुओंको भी, विरागियोंको भी, निःस्पृहियोंको भी, उदासीनोंको भी, और दुर्जनोंको भी, स्नेहसे परवश हो कर, पिता हो, मित्र हो, और प्यारे बन्धु हो इस प्रकार दुःखसे वैशम्पायन-का ही वृत्तान्त पूछते, कहते, विचारते, और चिन्तन करते उसने चारों ओर सुना।

३३०—यह सुन कर उसने विचारा कि बाहरके लोगोकी ऐसी दशा है फिर जिसने उसे गोदमें खिलाया, उसका सवर्धन किया या उसकी बाल्यावस्था की सुन्दर बातें सुनीं, उसका तो कहना ही क्या है ? इस कारण वैशम्पायन के बिना तात शुकनास या माता मनोरमासे मिलना मेरे लिए अत्यन्त कष्ट-दायक है। यों विचार करते करते आँसुओंसे भरी दृष्टि नाककी ओर रख कर, सब वृतान्त देखे बिना ही उसने उज्जयिनीमें प्रवेश किया। उतर कर राज कुलके द्वारमें घुसते ही उसने सुना कि देवी विलासवतीके साथ राजा आर्य शुकनासके महलको गए हैं। यह सुन पीछे मुड कर वह भी वहीं गया और जाते जाते पास पहुँच जाने पर उसने सुना—हा वत्स वैशम्पायन, अभी तो तू मेरी गोदमें खिलाने योग्य बालक ही है, कैसे तू अकेला लाखों सर्पोंसे भयकर, निर्जन तथा शून्य वनमें पड़ा है ? वहाँ सब क्रूर प्राणियोंको मार कर किसने तेरे शरीर की रक्षा की होगी ? किसने शीत-वात आदिके सकट-से बचा कर तेरे शरीरकी सँभाल की होगी ? किसने तेरे लिए निद्रामें सुख देनेवाला बिछौना बिछाया होगा ? कौन तुझे भूखा, प्यासा या सोनेका इच्छुक देख दुःखित हुआ होगा ? बेटा, मेरा उत्सग छोड कर तुझे समान सुख दुःख भोगनेवाली बहू भी अभी नहीं मिली है। तेरे आते ही पिताकी आज्ञा लेकर बच्चेका मुख देखनेका जो मैंने विचार किया था, वह मुझ मद पुण्यवालीका पूरा न हुआ, बल्कि तेरे मुखका दर्शन भी दुर्लभ हो गया। वत्स, जहाँ तुझे रहना अच्छा लगे वहीं मुझे भी अपने पितासे कह कर ले चल। तुझे देखे बिना मैं न जियूँगी। तात, तूने कभी बालपनमें भी मेरा अपमान नहीं किया। अब एक साथ ही क्यों तू ऐसा निष्ठुर हो गया ? जन्मसे आज तक जिसका मुख कभी क्रोधित नहीं देखा वह तू कैसे मुझ पर अकस्मात् कुपित हो गया कि मुझे या छोड़ कर चला गया ! चला गया है तो भी आजा ! मैं विनीत भावसे तुझसे प्रार्थना करती हूँ। और मेरा कौन है ? देशान्तरके परिचयके कारण तेरा हमसे सब स्नेह जाता रहा। क्षणभर भी जिसे देखे बिना तू नहीं रह सकता था उस चन्द्रापीड पर क्यों ऐसा निःस्नेह हो गया ? वत्स, यह तूने अच्छा नहीं किया। सुखी रखने के योग्य सब गुरुजनोंको तूने दुःखी क्यों किया ? मैं नहीं जानती यों करने से तुझे क्या मिलेगा ? ऐसे ऐसे

वचनोंसे, तत्काल हुए पुत्र-विरहके शोकसे विह्वल होकर भवनके भीतर बैठे बैठे, स्वयं देवी विलासवतीके द्वारा आश्वासन की गई, विलाप करती मनोरमाको उसने सुना ।

३३८—ऐसे उसके अत्यंत करुण विलाप-रूपी विषसे मानो विह्वल हो गया हो, निद्रा आनेसे मानो चक्कर खा गया हो इस प्रकार चन्द्रापीड निश्चेतन हो गया । जैसे तैसे स्वाभाविक बलके सहारे अपनेको सँभाल कर, भीतर जाकर, पिताको भी मुँह दिखानेमें शर्मा कर, सब अंगोंके स्तब्ध हो जानेसे मदराचलके समान शोभायमान शुकनासके साथ मथनके बाद निश्चल हुए महा समुद्रके समान, पिताको नीचे मुखसे ही प्रणाम कर दूर बैठ गया । बैठने पर क्षण भर उसे देख गला भर आनेसे गद्‌गद् हुए स्वरसे, बरसनेके लिए तैयार हुए मेघके समान राजाने उससे कहा—वत्स चन्द्रापीड, मे जानता हूँ कि भाई पर तेरी अपने जीवनसे भी अधिक प्रीति है परन्तु जिनसे केवल सुखकी आशा हो ऐसे वल्लभ जनोंकी ओरसे जो असभव पीड़ा पहुँचे तो क्या नहीं होता ? इसलिए तेरे भाई और मित्रके जन्म, स्नेह, वय, शील, ज्ञान, गुरुजनोंकी आज्ञा, विनय, सबके प्रतिकूल इस वृतान्त को सुन कर मेरे हृदयमें सदेह होता है कि इसमे तेरा कुछ दोष है ।

३३९—यों कहते हुए राजाके वचनको काट कर, शोक और क्रोधसे एक साथ ही जिसके मुँह पर अंधकार छा गया था ऐसा शुकनास, बिजलीके कारण जो देखा न जा सके ऐसे वर्षाऋतुके आरम्भके समान, काँपते अधर सहित मानो ... । करके बोला—

३४०—महाराज, यदि चन्द्रमामे गरमी हो, अग्निमें ठंडक हो, सूर्यमें अंधेरा हो, रात्रिमें दिन हो, महा-समुद्रमें शोष हो, शेषनागमें पृथ्वीके धारण करनेकी अशक्ति हो, साधुजनोंमें दूसरों के लिए अनुद्यम हो या सज्जनके मुखसे अप्रिय वचन निकलें तो युवराजमे भी दोषकी संभावना हो । इसलिए क्यों इस प्रकार बिना विचारे उस हिताहितसे अनभिज्ञ, मूढ़ प्रकृति वाले, दुरात्मा, राजा का अहित करनेवाले, माता पिताके घाती, मित्र-द्रोही, कृतघ्न, कर्म-चाण्डाल, महापातकीके कारण आप सतयुगमे अवतार लेनेके योग्य, गुणवान्, अत्यंत उदार चरितवाले चन्द्रापीडके विषयमें ऐसी शंका

करते हो ? गुणवान्में साधारण जन भी दोषकी सभावना करें तो इससे बढ कर अन्य कुछ अधिक कष्टदायक दुःखका कारण नहीं होता। फिर गुरुजन ऐसी सभावना करे तब तो कहना ही क्या है ? जो गुणी हो उसे तो गुणकी प्रशंसासे ही सतुष्ट करना चाहिए। वह अपनी गुण-युक्त आत्मा को आपके अलावा अन्य किसको दिखावे ? फिर जन्मसे ही जो महाराजकी और देवी विलासवतीकी गोदमें खिलाए जानेसे भी वशमें न रह सका, उस पवनके समान चचल स्वभाववालेके लिए चन्द्रापीड भी क्या कर सकता है ? ऐसे— शरीरमेंसे उत्पन्न हुए महा कृमि, सर्व दोषोंसे[1] भरी हुई महा व्याधि, भीतर विषसे[2] युक्त महा सर्प, विनाश करनेवाले महा उत्पात, भुजंग[3]-वृत्तिवाले महावातिक[4], वक्रचारी[5] महाग्रह[6], तमोमय[7] प्रदोष, मलिनात्मक कुलागार, निःस्नेह[8] खल[9], निर्लज्ज क्षपणक, सज्ञा-रहित[10] पशु और काष्ठ[11]-रहित अग्नि, गुणरहित[12] जालवाले[13], तीर्थ[14]-रहित जलाशय[15], गौरव-रहित[16]

१—बुराइयाँ, वात, पित्त, कफ।
२—कुटिलता, जहर।
३—कामुक-वृत्तिवाले, वक्रगामी।
४—ज्ञान भ्रान्तिसे उन्मत्त, तेज आँधी।
५—कुटिल, अपनी कक्षामें भ्रमण करनेवाले।
६—दुराग्रही; खेचर।
७—तमोगुण मय, अंधकार-मय।
८—प्रीति रहित, तैल रहित।
९—पिशुन, धान्य।
१०—चेतना-हीन; ज्ञान विकल।
११—इंधन, सीना।
१२—औदार्य आदि गुणोंसे रहित, बिना डोरीके।
१३—कुटिल उपाय करनेमें चतुर, पाशवाले।
१४—शास्त्र, अवतरण-मार्ग।
१५—मद-बुद्धि, सरोवर।
१६—महत्व-हीन, गुरुता रहित।

खर[1] प्रकृतिवाले, महाविनायकसे[2] अधिष्ठित अशिव मूर्ति—अपने आप ही जन्मते हैं। वे सकलक[3] खड्गकी तरह स्नेहसे[4] ही कठिन होते हैं, स्वभावसे मलिन गज गण्डस्थलकी तरह दानसे[5] ही अधिक मलिन होते हैं, निर्वर्ति[6] मणि-प्रदीपके समान प्रसादसे[7] प्रज्वलित होते हैं, अगलग्न[8] भुजाके समान दाक्षिण्य-परिग्रहसे ही इतर वाम होते हैं, गुण[9]-मुक्त बाणों के समान सपक्षाश्रय फलहीसे दूर जाते हैं, सराग[10] पल्लवके समान दिन[11] चढ़ने पर ही

१—कठिन स्वभाववाले, गधेके समान स्वभाववाले।

२—यद्यपि उनकी गोदी में गणेश हैं तो भी उनका शरीर अशिव है अर्थात महादेव का नहीं है, उनका शरीर अकल्याण है और बड़े बड़े समझदार उनके सलाहकार नहीं हैं अर्थात् वे स्वच्छन्द वृत्तिवाले हैं। (विरोधाभास)

३—जनापवाद, मल।

४—प्रेम, तेल।

५—त्याग; मद।

६—अपने मार्ग से च्युत, बिना बत्ती के।

७—जैसे बिना बत्तीके मणि प्रदीप अपने तेजसे चमकते हैं उसी तरह वे अपने मार्गसे भ्रष्ट होकर अनुग्रहसे ही कोप करते हैं।

८—अग लग्न = शरीर से संपर्क होने पर, शरीर में लगी हुई। दाक्षिण्य परिग्रह = विनय-पूर्वक आचरण, दक्षिण कहलाया जाना। इतर = ..., अदक्षिण। वाम = कुटिल, बायाँ। जैसे शरीर में लगी हुई एक भुजा ...क्षिण होने से दूसरी वाम कहाती है उसी तरह ये शरीर से सपर्क होने ... विनय पूर्वक आचरण से भी शत्रु और कुटिल हो जाते हैं।

९—गुण मुक्त = गुणों से हीन, धनुष की डोरी से छोड़े गए। सपक्षाश्रय = स्वजनों का आश्रय, पंख युक्त। फल = मनोरथ, साध्य, लोहे की नोक। जैसे लोहे की नोक से युक्त पुंख वाले बाण धनुष की डोरी से छोड़े जाने पर दूर चले जाते हैं उसी तरह ये जब स्व जनों की सहायतासे मनोरथ सिद्ध करलेते हैं तब गर्व के मारे फूले नहीं समाते।

१०—अनुराग-युक्त, लाल रगके।

११—दिन बीतने पर; दिन चढ़ने पर।

अपरक्त[1] होते हैं, भूतिसे[2] परामृष्ट दर्पणके समान अभिमुख रह कर सब उलटा ग्रहण करते हैं, भीतरसे अस्वच्छ जलाशयकी तरह गाढ अवगाहनसे[3] कलुषित[4] होते हैं, स्नेहीके साथ भी वे रूक्ष होते हैं, सीधोंके साथ भी वक्र होते हैं, साधुओंके साथ भी असाधु होते हैं, गुणवान्‌के साथ भी दुष्ट होते हैं, स्वामीके साथ भी सेवकभावरहित होते हैं, स्नेहालुओंके साथ भी क्रुद्ध होते हैं तृष्णारहित जनसे भी कुछ झपटनेकी इच्छा रखते हैं, मित्रोंके भी द्रोही होते हैं, विश्रब्ध जनोंका भी घात करते हैं, भयभीत पर प्रहार करते हैं, प्रियजनोंसे भी द्वेष रखते हैं विनीतके साथ भी उद्धत होते हैं, दयालुके साथ भी निर्दय होते हैं, स्त्रियोंके साथ भी शूर होते हैं, सेवकके साथ भी क्रूर होते हैं, और दीनके साथ भी दारुण होते हैं। फिर इन विपरीत जनोंको गुरु ही छोटा, नीच ही ऊँचा, अगम्य ही गम्य, कुदृष्टि ही सद्दर्शन, अकार्य ही कार्य, अन्याय ही न्याय, अस्थिति ही स्थिति, अनाचार ही आचार, अयुक्त ही युक्त, अविद्या ही विद्या, अविनय ही विनय, दुष्ट स्वभाव ही सुशीलता, अधर्म ही धर्म और असत्य ही सत्य होता है।

३८१—ऐसे क्षुद्रजनोंकी बुद्धि दूसरोंको धोखा देनेके लिए होती है, ज्ञानके लिए नहीं, उनका शास्त्र ज्ञान माया-जालके लिए है, शान्तिके लिए नहीं; पराक्रम प्राणियोंके घातके लिए है, उपकारके लिए नहीं, उत्साह धन-प्राप्तिके लिए है, यश के लिए नहीं, स्थिरता व्यसनके साथके लिए है, बहुत काल तक मित्रताके लिए नहीं, धन-परित्याग कामके लिए है, धर्मके लिए नहीं, अधिक क्या कहूं, सब वस्तुएँ उनका दोषके लिए होती हैं, गुणके लिए नहीं। इसलिए यह भी ऐसा कोई प्रपुरुषशाली पैदा हुआ है जिसे ऐसा करतेमें यह विचार नहीं हुआ कि मैं चन्द्रापीडका मित्र हूँ, फिर उसका द्रोही क्यों होता हूँ? या मार्गसे भ्रष्ट होनेवालेको दण्ड देनेवाले महाराज तारापीड ऐसा करनेसे हृदयमें दुःखी होकर मुझसे नाराज होंगे—यह शंका भी उसने नहीं की? अकेला

1—अनुराग रहित हो जाते हैं, मुरझा जाते हैं।

2—ऐश्वर्यसे युक्त, राखसे साफ किए गए।

3—अत्यन्त परिचय, अत्यन्त आलोडन।

4—विरक्ति कालिमा प्रकट करते हैं, गदले हो जाते हैं।

मैं ही माताके जीवनका सहारा हूँ; मेरे बिना उसका क्या हाल होगा?—यह बात उस नृशंसके हृदयमें नहीं आई; अथवा पिंड देनेके लिए पिताने मुझे वंश-वृद्धिके निमित्त उत्पन्न किया और उसकी आज्ञाके बिना क्यों मैं सबका परित्याग करता हूँ? यह भी उस मूर्खकी बुद्धिको नहीं सूझा। इस प्रकार बुरे रास्ते पर जाते हुए, नष्टात्मा, कुदृष्टिवाले उस विमूढ़ने दुर्दर्श अनिष्ट तो देखा ही नहीं। देखा हुआ भी जिसे न दीखा ऐसे अज्ञान रूपी तिमिरसे अंधेका क्या करना? फिर उस पशु-रूपको बड़े यत्नसे देवने तोतेकी तरह पढ़ाया और पाला पोसा है। अथवा, पक्षी भी मन बहलाकर अपने सिखाने का श्रम सफल कर देते हैं, परवरिश करनेसे पोषक पर स्नेह भी रखते हैं, कृतज्ञ भी होते हैं; जाने पहचानेके पीछे भी जाते हैं, उनको माता पिता पर स्वाभाविक स्नेह भी होता है, पर उस, दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुए, पापी, दुर्जनको तो कुछ भी नहीं है। उसका तो यह सब व्यर्थ है। और जिस दुरात्माने जन्म लेकर हम सबको केवल सुख नहीं दिया—इतना ही नहीं बल्कि इस तरहके शोक-सागरमें डाला, वह अवश्य ही पशु-पक्षियोंकी किसी योनिमें पड़ेगा। जिसका चित्त स्वस्थ हो वह अपने और पराये हितका खयाल रखता है। परन्तु उसने तो हमें इस प्रकार दुःख देकर न अपना हित किया, न पराया। मुझे नहीं सूझता कि इस आत्म-द्रोहीने यह क्या किया? सर्वथा, यह पापी, ग्रह-गृहीत, हमें दुःख देनेको ही पैदा हुआ। इतना कह कर, हेमन्त-कालकी कमलिनीके समान, आँसुओंसे भरी दृष्टि तथा काँपने -सहित, भीतरसे बाहर नहीं निकलते क्रोधके प्रवाहसे मानो फटा हो इस प्रकार, साँस छोड़ता छोड़ता वह शान्त हुआ।

३४२—उसे ऐसी अवस्थामें देख तारापीड़ने जवाब दिया—आपको हम जैसों का समझाना ऐसा है जैसे प्रदीपसे अग्निका प्रकाश करना, दिनके चाँदनेसे सूर्यको चमकाना, ओस की बूँदोंसे चन्द्रमाका आल्हादन करना, मेरुके जलकी बूँदोंसे समुद्र भरना और पखेकी पवनसे वायुका बढ़ाना। तथापि—बुद्धिमान्, बहुश्रुत, विवेकी, धीर, बलवान्—सबका मन, एक साथ दुःख आ पड़नेसे, वर्षाके जलसे सरोवरके समान, विशुद्ध होने पर भी अवश्य कलुषित हो जाता है। मन कलुषित होनेसे—यह क्या है?—यह देखने भालनेकी मन

शक्ति जाती रहती है, चित्त विचार नहीं करता, बुद्धिको बोध नहीं होता और विवेक विवेचन नहीं करता। इस कारण मुझे कहना पड़ा है, नहीं तो लोकरीति तो हमारी अपेक्षा आप ही अच्छी तरह जानते हैं।

२४३—क्या इस संसारमें कोई ऐसा है जिसका यौवन निर्विकार बीत गया हो? यौवनके आनेके समय बाल-भावके साथ ही गुरुजन-स्नेह जाता रहता है, तारुण्यके साथ ही नई प्रीति बढती है, वक्षःस्थलके साथ ही वाञ्छा विस्तार पाती है, बलके साथ ही मद बढता है, दोनों बाहुओंके साथ ही बुद्धि स्थूल होती जाती है, मध्यके साथ ही शास्त्र कृशता पाता जाता है, उरु-युगलके साथ ही हृदय अविनयसे भरता जाता है, मूँछोंके साथ ही मलिन मोह उत्पन्न होता है, आकारके साथ ही हृदयमेंसे विकार प्रकट होते हैं, क्योंकि विकारसे नेत्र, धवल होने पर भी, सराग[1] हो जाते हैं, तथा लम्बे होने पर भी दूर तक नहीं देख सकते। विकारहीन कानोंमें भी गुरुजनोंका उपदेश नहीं आ सकता। स्त्रीका अनुरागी हृदय होने पर भी उसमें विद्या रूप स्त्रीको जगह नहीं मिलती। अस्थिर प्रकृतिकी तरलतामें स्थिरता रहती है और छोड़नेके लायक व्यसनोंमें आसक्ति रहती है।

२४४—सब विकारोंका[2] कारण प्रायः सरसता[3] होती है। वह सबको जल-[4] प्राय करती वर्षातिवृद्धिसे[5] उत्पन्न होती है। फिर दिनसे[6] दोषा गम, दोषागम[7]से दृष्टि-निरोध, दृष्टि निरोधसे असत् दर्शन, असत् दर्शनसे अविवेक और अविवेकसे बुरे मार्ग में प्रवृत्ति, बुरे मार्गमें प्रवृत्ति होनेसे भ्रान्त हुआ चित्त

१—रंगीन, अनुराग-सहित।

२—मनोवृत्ति, रोग।

३—रसिकता, आर्द्रता।

४—विवेक-हीन, जल प्रचुर।

५—अधिक अवस्था, अधिक वर्षा।

६—जैसे दिनके पीछे रात्रि आती है उसी प्रकार प्रति दिन दोष उत्पन्न होते हैं।

७—जैसे रात्रि में कुछ देख नहीं पड़ता उसी तरह दोषोंके कारण भला बुरा दीखना बन्द हो जाता है।

भ्रमण करता करता अवश्य ही अपने मार्गसे भ्रष्ट हो जाता है। चित्तके भ्रष्ट होनेसे उसके साथ लगी हुई लज्जा भी जाती रहती है और लज्जाके परदेसे रहित हुए शून्य हृदयमें प्रवेश कर वहाँ पैर जमाते, दुर्निवार, सब अविनयोंके हेतु कामदेवको कौन रोक सकता है? और फिर कामकी वृद्धिके साथ ही सत्यको नीचे गिराने वाले हजारों छिद्र[8] क्यों न हों? और सत्यके नीचे गिरने पर शील किसके सहारे स्थिर रहे? विनयका क्या आधार रहे? निराधार धैर्य फिर क्या करे? बुद्धि कहाँ स्थिर रहे? और धैर्यावलम्बनका समाधान कैसे हो? किसने बलसे रोक कर मनको निश्चल किया? कुमार्गमें जाती हुई इन्द्रियोंको किसने नियममें रक्खा? जगत्में निन्दनीय दुश्चरित्रोंको किसने रोका? तमकी[8] वृद्धि करनेवाले, दृष्टिका[9] नाश करने वाले, दोषाभिषङ्गको[10] किसने प्रकाश रूपसे दूर किया? बहुदर्शित्व न हो तो दीखेगा भी क्या? और युवावस्थामें बहुदर्शित्व कैसे सम्भव हो कि जिससे अन्वय-व्यतिरेकसे[11]—यह मलिनता है, यह नहीं है—इस बातका निश्चय कर उसका त्याग किया जाय? फिर वृद्धावस्थामें भी कुछ थोड़े ही पुण्यवानोंके, केशोंके साथ, चरित धवल होते हैं, इसलिए मोह तथा विषय रूप महा-सर्पवाला, मद विकार-रूप गन्ध-गजवाला, दुश्चरित रूप अद्वितीय राज्यवाला, कामाभिलाषकी निद्राके विलासका महल—अभिनव अनुरागके अंकुरोंके आविर्भावके विभ्रमके अन्तमें होनेवाले असाधारण दुराचरणोंका चक्रवर्ती—तारुण्य आने पर अत्यन्त विषम विषय मार्गमें पड़े मनुष्य अपने पथसे भ्रष्ट हो ही जाते हैं। फिर अपने लाड करने और पालनेके योग्य बालक पर आपने क्यों इतना अधिक क्रोध किया जिससे पुत्र-स्नेहके अनु... ऐसी आक्रोश-युक्त बात कही? स्वप्नावस्थामें भी गुरु-जनके मुखमेंसे जो ...ी बुरी बात निकलती है वह बालकोंको फले बिना कदापि नहीं रहती,

८—विवर, दोष।

८—विवेक विकलता, अन्धकार।

९—विवेक शक्ति, नेत्र।

१०—व्यसनोंमें आसक्ति, रात्रिका सम्बन्ध।

११—एक वस्तु की सत्ता से दूसरे की सत्ता सिद्ध करना—अन्वय है। एक के अभाव से दूसरे का अभाव दिखाना—व्यतिरेक है।

कि गुरु उन बालकोंके देवता हैं। जैसे गुरुजनोंका आशीर्वाद वरदान-रूप होता है वैसे ही आक्रोश शाप-रूप होता है। इसलिए कोपके आवेशमें आकर वैशम्पायनके विषयमें जब आपने ऐसी अत्यंत कठोर बात कही तब मेरे मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ। अपने आप लगाए हुए वृक्ष पर भी स्नेह पैदा हो जाता है, तब फिर अंगमेंसे उत्पन्न हुए बालककी तो बात ही क्या है? इसलिए वैशम्पायन पर क्रोध मत करो। उसने कुछ भी विपरीत आचरण नहीं किया है। सिर्फ सब छोड़ कर वहाँ रह गया है सो उसका कारण जाने बिना उसे क्यों इस तरह दोष दिया जाय? कदाचित् यह अविनयसे उत्पन्न हुआ दोष गुण हो। इसलिए उसे बुलाना और जानना चाहिए कि यह—उसकी अवस्थाके अनुचित—वैराग्य क्यों उत्पन्न हुआ? फिर जो ठीक होगा किया जायगा।

३४५—तारापीड़के यों कहने पर शुकनासने फिर कहा—महाराज, अत्यंत उदारता और वत्सलताके कारण आप ऐसा कहते हैं। युवराजको छोड़ कर स्वेच्छासे एक क्षण भी अन्यत्र रहनेसे बढकर अन्य क्या विपरीत आचरण होगा? शुकनासके यों कहने पर पिताकी इस दोष-संभावनासे हृदयमें मानो चाबुक लगी हो इस प्रकार अश्रु-पूर्ण दृष्टि सहित बैठे बैठे ही पास सरक कर चन्द्रापीड़ धीरे धीरे शुकनाससे कहने लगा—आर्य, वैशम्पायनके साथियोंके कहनेसे तो मैं समझता हूँ कि मेरे दोषसे वैशम्पायन न आया हो सो बात नहीं है। तथापि पिताने जो समझा वही और किसने न समझा होगा? लोग, और उनमें विशेष करके गुरु लोग, जो समझें उसे ठीक न होने पर भी वैसा ही जानना चाहिए। लोकमत या तो गुण पर या दोष पर अवलंबित रहता है। इसीसे इस संसारमें बड़ाई या बुराई पैदा होती है। परलोकमें पुण्यदायक यथार्थ चरित्रकी यहाँ कोई परवा नहीं करता। इसलिए इस दोष-संभावनाके प्रायश्चित्तके लिए आप पितासे मुझे वैशम्पायनके लिवा लानेके लिए जानेकी आज्ञा दिला दीजिये। मेरे दोषकी शुद्धि अन्यथा नहीं होगी। कारण यह है कि वैशम्पायन नहीं आवेगा तो महाराजकी यह संभावना नहीं जायगी और मेरे गए बिना वैशम्पायन आवेगा नहीं। यदि अन्य कोई उसे ला सकता हो तो भी—पिता भी जिनके वचनोंका उल्लंघन नहीं करते ऐसे—हमारों

राजा उसको ले ही आते। इसलिए आप मुझे जानेकी अनुमति दिलानेकी कृपा कीजिए। घोड़े लेकर अपनी देखी हुई भूमिमें जानेसे मुझे जरा भी कष्ट नहीं होगा। इसलिए वैशम्पायनको लेकर मुझे आया ही समझिए। बाहरी खेदकी अपेक्षा उसके वियोगका आन्तरिक खेद ही मुझे अधिक असह्य है। सेना लेकर मेरे पीछे ही वह आवेगा—यों समझ कर मैं उसके बिना चला आया। नहीं तो जन्म दिनसे आज तक वैशम्पायनके बिना मैं कब गया हूँ? रहा हूँ? खेला हूँ? हँसा हूँ? मैंने पिया है या खाया है? मैं सोया हूँ या जगा हूँ? कब मैंने अकेले साँस भी लिया है? उसका हाल सुन उसी जगहसे मैं नहीं चला गया—इसका सबब यह था कि कहीं मैं भी उसके बराबर न समझा जाऊँ। इसलिए तत्काल उसके पीछे न जानेके दोषसे आप मुझे बचाइये।

३४६—चन्द्रापीड़के यों कहने पर, भीतरकी पीड़ासे पैदा हुई रक्तातासे रक्त—लाल कमलके समान दीखते—मुख पर सपक्षपात[1] भ्रमरावलीके समान दृष्टि करके—युवराज जाने की सूचना देते हैं, महाराजकी क्या आज्ञा है?—इस प्रकार शुकनासने धीरे धीरे राजासे पूछा। शुकनासका यह प्रश्न सुन कर तारापीड़ने कुछ विचार कर जवाब दिया—आर्य, मेरी इच्छा थी कि इन्हीं दिनों सम्पूर्ण मंडल-युक्त चन्द्रमाकी चाँदनीके समान करावलम्बन करती पुत्र वधूको मैं देखूँगा। इतनेमें ही यह दूसरा आशा[2]-पथको रोकनेवाला, मेघ-समयके समान, विघ्नकारी वैशम्पायनका वृत्तान्त, प्रतिकूल प्रकृतिवाले विधाताने, बीचमें डाल दिया। जैसे आयुष्मान्‌ने कहा वैसी ही बात है। न तो अन्य कोई ला सकता है और न उसके बिना यह यहाँ रह सकता है। इसलिए [illegible] ही व्यसनार्णवको इस पातके द्वारा पार करना चाहिए। वैशम्पायनको [illegible]नेके लिए देवी विलासवती भी इसको भेजेहीगी—यह मेरा निश्चय है। इसलिए इसे जाने दीजिए। परन्तु इसे बहुत दूर जाना होगा, इसलिए ज्योतिषियोंसे आप आदर पूर्वक इसके जानेके लिए दिन और लग्न निश्चय कर और तैयारी करावें।

३४७—शुकनाससे इतना कहकर विनयसे नम्र हुए चंद्रापीड़को आँसूभरी

१—चन्द्रापीड़के पक्षपात (= तरफदारी) के साथ, पक्षोंके पात सहित।

२—मनोरथ, दिशा।

आँखोंसे बहुत देर तक देख, पास बुला कर, स्कंध, सिर और दोनों बाहुओं पर हाथ फेर तारापीड़ने कहा—पुत्र, तू ही भीतर जाकर मनोरमा-सहित अपनी मातासे अपने जानेका हाल कह दे। चंद्रापीड़से यों कहकर राजा शुकनासके साथ अपने महल में गया। चंद्रापीड़ने कादम्बरीकी वरमालाके समान सुन्दर वर्ण[1]-युक्त जानेकी आज्ञाको हृदयमें धारण कर, मनमें हर्षित होने पर भी हर्ष रहित दृष्टिसे प्रवेश कर, नमस्कार कर, माताके समीप बैठ, अपने दर्शनसे दूने होते वैशम्पायनके विरहके शोकसे विह्वल हुई मनोरमाका आश्वासन कर कहा—

३४८—माता, धीरज रक्खो। वैशम्पायनको बुलानेके लिए पिताने मुझे जानेकी आज्ञा दे दी है। इसलिए कुछ दिनोंमें होनेवाले वैशम्पायनके मुख-दर्शनके लिए उत्सुक हुए मुझे निःसंदेह विदा करो। यह सुनकर उसने जवाब दिया—बेटा, अपने जानेके वचनसे क्यों मेरा आश्वासन करता है? तुझमें और उसमें मेरे लिए क्या अन्तर है? प्रथम तो वह कठिन हृदय-वाला मेरे सामने नहीं है। फिर तू चला जायगा तो तेरा दर्शन भी न होगा। उसके अदर्शनमें तू ही मेरे जीवनका आधार है। इसलिए वत्स, तू न जा। तुम दोनोंमें एकसे भी हम दोनों पुत्रवती हैं। वह निष्ठुर हृदय-वाला न आवे तो क्या ठीक? मनोरमाकी यह बात सुन कर विलासवती धैर्य-पूर्वक बोली—प्रियसखी, तुझे और मुझे तो ऐसा ही है जैसा तूने कहा, परन्तु वैशम्पायन बिना यह किसको देखेगा? इसलिए यह बात रहने दे। क्यों इसको रोकती है? रोकने पर भी यह नहीं रहेगा और मुझे मालूम होता है कि इसके पिताने भी यही सोचकर इसे जानेकी अनुमति दी होगी। इसलिए इसे जाने दे। हम दोनोंका, चाहे जितने दिन तक, इन दोनोंके अदर्शनसे क्लेश भोगना ठीक है, परन्तु इसका वैशम्पायनके अदर्शनके दुःखसे दीन हुआ मुख प्रति दिन देखना अच्छा नहीं। इसलिए उठ, वत्स चन्द्रापीड़के जानेकी तैयारी करने चलें।

३४९—यों कहती कहती विलासवतीने मनोरमाका हाथ पकड़ कर उसे उठाया और पीछे आते हुए चन्द्रापीड़के साथ वह अपने महल में गई। चन्द्रापीड़ भी माताके साथ जानेकी बातें कर अपने महलमें गया। वहीं

[1] - शब्द, रंग।

कपड़े उतार, जाने को उत्सुक हुए हृदयसे ज्योतिषियोंको बुला कर एकान्तमें कहने लगा—आर्य शुकनास या मेरे पिता आपसे पूछें तब आप ऐसा दिन बताना जिससे मुझे जानेमें विलम्ब न हो। ऐसी आज्ञा सुन कर उन्होंने निवेदन किया—देव, आजकल सब ग्रहों की जो स्थिति है उसका यदि विचार किया जाय तो हमारी रायमें हालमें आपका जाना उचित नहीं है। परन्तु जरूरी काम आ पड़ने पर राजाकी इच्छा ही काल है। इसलिए दिन देखनेका कुछ काम नहीं है। राजा कालका कारण होता है। जिस समय चित्त-वृत्ति अनुकूल हो वही समय सब कामोंमें उचित है। ऐसी ज्योतिषियोंकी वाणी सुन चन्द्रापीड़ने फिर उनसे कहा—पिताने आपसे पूछने की आज्ञा दी है इसलिए मैंने आपसे कहा है, नहीं तो प्रतिक्षण उत्पन्न होते आवश्यक कार्योंमें कार्यार्थी मनुष्योंको मुहूर्त दिखलानेकी बात ही कैसी? इसलिए तुम ऐसे बताना जिसमें कल ही मेरा जाना हो जाय। यह सुन कर—देवकी जैसी आज्ञा—यों कह कर वे चले गए। तब आप स्नान भोजनादि करनेके लिए उठा और शरीर स्थित कर चुका सो ही ज्योतिषियोंने फिर आकर धीरेसे कहा—हमने आपकी आज्ञाका पालन किया है और आर्य शुकनास पुत्र वियोगसे विकल हो गए हैं इस कारण वह सफल भी हो गया है। इसलिए कल रात्रिको आप यहाँसे प्रस्थान करना। यह समाचार सुन कर—अच्छा किया—यों कह कर, आनन्दित हृदयसे उनकी प्रशंसा कर, कादम्बरी तथा वैशम्पायनको निगाहके सामने आते हुआ [illegible]।—पत्रलेखाके प्रवेश करनेके पहले ही मैं पहुँच जाऊँगा—यों आगे [illegible]त चित्तसे विचारता और नाना समुद्रोंके सारभूत इन्द्रायुधके समान [illegible]ने जानेवाले घोड़ाकी ओर घोड़ेकी सवारीकी थकावटकी परवा न करने-वाले तथा उत्साही अनगिनती राजपुत्रोंको देखता भालता, वह और कुछ काम न होनेसे एक रात्रि और एक दिन जैसे तैसे वहाँ रहा।

३५०—फिर, मानो अनुरक्त कमलिनीके साथ समागम न होनेसे सताप पाकर, दिनके साथ, जब सूर्य अस्त हुआ, दिनपतिके पतनसे चिताग्निके समान सन्ध्या रागमें, पश्चिम दिशाके साथ, जब पश्चिम गगन भागने प्रवेश किया, सन्ध्याग्निके पतंगोंके समान तारोंका जब उदय होने लगा, [illegible] होनेसे

मूर्च्छागमके समान अंधकारसे दिशाओंके मुख जब काले पड़ने लगे, अपने-अपने घोसलोंकी तरफ जानेमें शब्द करते पक्षी मानो गगन वियोगके दुःखसे आर्त स्वरसे प्रलाप करने लगे, प्रकाश उत्पन्न करते जन्मके समान संध्या देख कर जीव-लोकने जब प्रकाश रहित गर्भके समान अंधकारमें फिर प्रवेश किया, मानो जन्मान्तरमें आया हो ऐसा उदयाचलवर्ती, अपनी अतिशय कान्तिसे निष्कलंकके समान दीखता चन्द्रमा, चाँदनीसे पूर्व-दिग्वधूके मुखको प्रकाशित करके, जब नक्षत्र समागमके सुखको बार बार अनुभव करने लगा और जब आधी रात हुई तब प्रस्थान मंगलके लिए प्रणाम करनेके प्रयोजनसे चन्द्रापीड माताके पास गया। पीड़ासे भीतर मानो उबली जाती हो इस प्रकार, अमंगलकी शंकासे, प्रयत्न करने पर भी, बहुत लंबे नेत्रोंसे भी आँसुओंके वेगको रोकनेमें असमर्थ हुई विलासवतीने, शोक और स्नेहके आवेगके कारण गद्गद् कंठसे, टूटे फूटे अक्षरोंमें कहा —

३५१—पुत्र, गोदीमें पले हुए अनुभव शून्य नवयुवकके पहले ही पहल जानेके समय—गोदीमेंसे जब पहले ही दूर जाय तब—हृदयमें बड़ी भारी पीड़ाका होना ठीक है, परन्तु मुझे तो तेरे अब जानेसे जो पीड़ा होती है, वह पहले जानेके समय भी नहीं हुई। मेरा हृदय मानो फटा जाता है, मर्मस्थान मानो चिरे जाते हैं, शरीर मानो उबला जाता है, चित्त मानो उछला पड़ता है, संधि बंधन मानो टूटे जाते हैं, प्राण मानो निकले जाते हैं, बुद्धिसे कुछ समाधान नहीं होता, सब मुझे सूना लगता है, अपनी भाँति हृदयको धारण करनेमें भी मैं असमर्थ हूँ, रोकने पर भी आँसू जबरदस्ती निकले पड़ते हैं, तेरी मंगल-क्रिया के लिए बार-बार स्थिर करने पर भी मेरी बुद्धि चलायमान हुई जाती है, मैं नहीं जानती मैं क्या देखती हूँ? मैं नहीं समझती क्यों मेरे हृदयमें ऐसी पीड़ा होती है? क्या बहुत दिनोंमें [illegible] आया मेरा प्यारा पुत्र झट फिर वापिस जाता है इससे, या वैशम्पायनके वियोगसे उद्विग्न हुआ तू अकेला जाता है यह देख कर, या [illegible] वृत्तान्त सुन कर मैं स्वयं दुखित हूँ इस कारण यों होता होगा? [illegible] कारण वैशम्पायनको लिवानेके लिए जानेसे तुझे रोकनेको मेरे [illegible] शब्द नहीं निकलते। परन्तु हृदय नहीं चाहता कि तू जाय। इस

लिए मेरी ऐसी पीड़ाका विचार कर पहलेकी तरह अब किसी जगह तू किसी दृश्यको बहुत दिन तक देखता देखता मत रह जइयो। इसके लिए वत्स, म अजली सहित सिर झुका कर तुझसे बिनती करती हूँ। यों कहती हुई अपनी मातासे चन्द्रापीड़ने शरीरको अत्यन्त झुका कर निवेदन किया—माता, उस समय तो मैं दिग्विजयके मतलबसे रहा था, परन्तु अब तो उस जगह पहुँचनेकी ही देर है। इसलिए इस समय—मुझे आनेमें बहुत दिन लगेंगे—यों समझ कर तुझे हृदयमें जरा भी दुःख नहीं करना चाहिए। चन्द्रापीड़की यह बात सुन कर, आँसुओंके वेगको रोक, जैसे तैसे धैर्य धर, जानेके समयकी मंगल-क्रिया कर, छूटती धारासे सींचती, मस्तकको सूँघ कर, बहुत देर तक गाढ आलिंगन कर, माताने, मानो निकले जाते प्राणों सहित, पुत्रको कष्टसे छोड़ा।

३५२—मातासे बिदा होकर वह पिताको प्रणाम करनेके लिए महलमें गया। वहाँ—महाराज, युवराज जानेके लिए प्रणाम करते हैं—इस प्रकार द्वारपालके कहने पर प्रवेश कर, भूतल पर मस्तक रख, दूरसे ही उसने पलग पर लेटे हुए पिताके चरणोंको प्रणाम किया। इस तरह उसे प्रणाम करते देख, पूर्व-काय जरा ऊँचा उठा कर, लेटे-लेटे ही पिताने उसको बुला कर, नेत्रोंसे मानो पान करते करते, प्रेमसे गाढ आलिंगन कर, बालकके समान सहसा भर आते अविरल आँसुओंके वेगसे आकुल हुए नेत्रों सहित, अतर्गत ोभके आवेगके कारण टूटे फूटे अक्षरोंमे कहा—वत्स, पिताने तुझमें दोषकी . की—यों जान कर मनमें ज़रा भी दुःख मत पाना। तुम शिक्षित हुए .. ही हमने तुम्हारी खूब परीक्षा करली है, और परीक्षा करके, जो गुण गण ही प्राप्त हो ऐसा, राज्यभार तुमको सौंपा है, पुत्र-स्नेहसे नहीं। यह राज्य सचमुच पृथ्वीके मानो भार के कारण ही अत्यंत कष्टसे वहन करनेके योग्य है। महीधरों[1]की मानो सकीर्णतासे ही अति सकट है। कुटिल नीतिके प्रचारसे ही मानो कष्टसे व्यवहारके योग्य है। चारों समुद्रों तक भुवनोंकी व्याप्तिसे मानो बहुत बड़ा है। बड़ी सेनाको वशमें रखना पड़ता है—इसलिए ही मानो दुःसाधन है। अनंत व्यवहारोंकी चिन्ताके जालसे ही मानो अति गहन है।

१—राजा, पर्वत।

उच्च वंश[1] प्रतिष्ठित होनेके कारण ही मानो अत्यन्त दुरारोह है। हजारों शत्रुओंको जड़से उखाड़नेके कारण ही मानो यह अति दुर्धर है और समवृत्तिता[2]-से ही अति विषम[3] है। अनेक तीर्थों[4]की कल्पनासे ही उसका अवतरण दुष्कर है। कंटकोंके[5] दूर करनेसे ही वह दुर्ग्रह है। सम्पूर्ण प्रजाके पालन-रूप व्यवहारसे ही दुःखपूर्वक पालनके योग्य है और सब आशाओंकी प्राप्तिसे ही दुष्प्राप्य है। जो महा सत्त्व-रहित हो, अस्थिर प्रकृतिका हो, अदाता हो, महत्त्वाकांक्षा रहित हो, अशुद्ध हो, शौर्यहीन हो, महा उत्साह-रहित हो, अप्रिय वक्ता हो, असत्यसंध हो, बुद्धिमान् न हो, अविवेकी हो, अकृतज्ञ हो, उदार व्यवहारका न हो, जो उचित पुरस्कार न देता हो, अन्यायवर्ती हो, धर्ममें अरुचि रखता हो, शास्त्रोक्त व्यवहार-रहित हो, शरण न देता हो, भक्ति-हीन हो, कृपालु न हो, मित्र-वत्सल न हो, अपने वशमें न हो, जितेंद्रिय न हो, या असेवक हो उसके पास तो वह रहता ही नहीं। परन्तु जो समग्र गुणोंसे[6] आकर्षण कर जबरदस्ती इस चंचल-प्रकृतिका प्रतिबंध करनेको समर्थ हो, उसके पास ही ठहरता है। गुरु भी पूर्वापर विचार कर, स्खलनके डरके बिना, उसे ही राज्यभार सौंपते हैं। इसलिए इससे ही वत्स, तुझे जानना चाहिए कि मुझमें दोष नहीं है। फिर अब किस पर भार रख कर तू जरासा भी अपराध करेगा? तुझे ही सब लोगोंका रंजन करनेके लिए प्रयत्न करना है।

३५३—हमारा तो समय गया। हम धर्म-पथसे डिगे बिना बहुत वर्षों तक सदाचार में स्थित रहे हैं। लोभसे प्रजाको पीड़ा नहीं दी। अहंकारसे गुरुओंको उद्विग्न नहीं किया। मदसे सत्पुरुषोंको विमुख नहीं किया। क्रोधसे प्राणियोंको त्रास नहीं दी। हर्षसे अपनी हँसी नहीं कराई। कामसे परलोक नहीं खोया। राजधर्मका अनुरोध किया, अपनी रुचिका नहीं। वृद्धोंकी सेवा की, व्यसनो-

१—कुल, बाँस।

२—सबके साथ एकसा बर्ताव, एकसी भूमि।

३—दुष्कर, ऊँचा नीचा (विरोध)

४—उपाय, सोपान।

५—बदमाश, काँटे।

६—औदार्य आदि गुण, डोरी।

की नहीं। सज्जनोंके चरितका अनुवर्तन किया, इन्द्रियोंका नहीं। धनुषको उन्नमित[1] किया, मनको नहीं। सदाचारकी रक्षाकी, शरीरकी नहीं। जनापवादका डर रक्खा, मरणका नहीं। सुरलोकको दुर्लभ विषयोपभोगके सब सुखों-का उपभोग किया। अकार्य छोड़ कर यौवनेच्छाको काफी तृप्त किया और अपना कर्त्तव्य पालन करके परलोकका भी सपादन किया। मेरी समझमें तेरे जन्मसे मैं कृतार्थ हूँ इसलिए मेरा मनोरथ है कि दारपरिग्रहसे तेरे प्रतिष्ठित होने पर सब राज्य भार तुझे सौंप कर, जन्म कृतार्थ होनेसे निवृत्त हुए हृदयसे, पूर्व राजर्षियोंके रास्ते पर जाऊँ। पर वैशम्पायन वृत्तान्त-रूप विघ्न एक साथ मुझ पर आ पड़ा, इससे मुझे मालूम होता है कि यह सपन्न नहीं होगा। नहीं तो कहाँ वैशम्पायन? और कहाँ ऐसी उसकी—स्वप्नमें भी असम्भव—चेष्टा? इसलिए वत्स, तू जाकर भी ऐसा करियो कि मेरा मनोरथ बहुत दिनों तक हृदयके भीतर ही न फिरता रहे। इतना कह, जरा ऊँचे उठाये हुए मुखसे ही, लपेटे हुए हृदयके समान ताम्बूल दे, उसने चन्द्रापीड़को विदा किया।

२५८—पिताके इस आदरसे अत्यत उन्नत होने पर भी अत्यंत नम्र हुआ चन्द्रापीड़ पास जाकर फिर प्रणामसे उन्नत होकर बाहर आया। बाहर निकल कर शुकनासके महलको गया। वहाँ पुत्रकी चिन्तासे व्याप्त, इन्द्रियोंसे मानो मुक्त, निरुत्साह शरीरवाले शुकनासको और निरतर अश्रुपातसे मलिन मुखवाली मनोरमाको प्रणाम कर तथा उसी प्रकार उनके द्वारा भी आशीर्वादसे सत्कार किया जाने पर, और—अपना दुःख-भार मानो उस पर धरते हो यों—उसे [illegible]जे तक पहुँचाने आए हुए, उन दोनोंको लौटानेके लिए बार बार मुँह फेर वह वहाँसे बाहर निकला तथा आगे चलाने पर भी पीछे सरकते, हिनहिना [illegible] न करते, कान ऊँचे न करते, मुँहमें अच्छा शब्द नहीं करते, बिना मनके जाते, गमनोत्साह न दिखाते दीन इन्द्रायुधको देख कर भी—फिर कोई जानेसे रोक न ले—इस शकासे, वैशम्पायनको देखनेकी जल्दी तथा कादम्बरीके समागमकी उत्सुकतासे जरा भी विलम्ब किये बिना, सवार हो, जल्दी जल्दी वह नगरीसे बाहर निकला।

१—ऊँचा चढ़ाया, मनमें दर्पको स्थान नहीं दिया।

२५५—निकल कर, सिप्राके तट पर प्रस्थान मंगलके प्रयोजनसे रहनेके लिए लगाए गए तंबूमें प्रवेश किए बिना, बाहरसे ही—युवराज गया—यों कल कल करते, और उस समय उसके एक साथ चले जानेसे संभ्रान्त हुए परिजनों तथा राजपुत्रोंके, इधर उधरसे दौड़ कर, उसके पीछे जाने पर छ: मील तक जाकर जहाँ घास-पानी सुलभ था ऐसी जगहमें उसने निवास किया। हृदय तड़फनेके कारण प्रभात होनेके पहले ही उसने रातमें उठ कर फिर चलना शुरू किया और चलते चलते उसी दिनसे वह सोचने लगा कि यों अचानक ही वहाँ पहुँचकर, लज्जासे भागते वैशम्पायनके पीछे जाकर, जबरदस्ती कंठ से लगा—अब भाग कर कहाँ जायगा?—यों कह कर मैं उसकी व्यग्रता दूर करूँगा, इस भाँति उसके समागमका सुख अनुभव करनेके पीछे, निष्कारण प्रसन्न हुई, दोष रहित, एक साथ मेरे आ जानेसे विशेष हृष्ट हुई महाश्वेतासे आगे जानेकी सिद्धिके लिए फिर मिलूँगा, महाश्वेताके आश्रम के पास सब घोड़ तथा फौज फिर ठहरा कर उसके साथ ही हेमकूट जाऊँगा। वहाँ मुझे पहचान कर सभ्रम सहित दौड़ती हुई कादम्बरीकी दासियाँ इधर उधरसे प्रणाम करेंगी। तब मैं प्रवेश करूँगा और उसकी सखियाँ प्रफुल्ल नयनोंसे मेरे आनेकी खबर देकर पूर्ण-पात्र लेंगी। वह कहाँ है? किसने कहा? कितनी दूर है? ऐसे प्रश्न स्वयं करती, उस क्षणमें उत्पन्न हुई ताप शान्ति तथा लज्जासे छाती पर रक्खा हुआ कमलका पत्ता हटा कर उत्तरीयके पल्लेसे अपने स्तन ढकती, आभरणके लिये पहने हुए मृणाल उतार कर भूषणोंसे भी अधिक अपने शरीरकी शोभाको ही सब गहनोंके स्थान पर धारण करती, ताप-शान्तिके लिए केवल हारका आभूषण पहने, गाढ़ा हरिचन्दन लगानेसे ढकी हुई लावण्य शोभावाले अंगोंको वह अपने हाथसे मर्दन करनेके प्रयाससे अधिक दर्शनीय करती, सेज पर बिछाए हुए कमल, कुमुद तथा कुवलयके पत्ते और केसरके—अंगमें चिपटे हुए—टुकड़ोंको रोमोद्गम से ही दूर करती, गाल पर तितर बितर होकर आए हुए अपने केश कलाप को मेरे दर्शन देख कर हाथसे कंधे पर रखती, आनंदके कारण नेत्र-पुटमें से गिरते अश्रुजलसे वह कामाग्निके सतापको मानो जलाञ्जली देती, छुटा ... भी बचे—शरीरमें लगी हुई भस्मके समान—कुछ सूखे चन्दन-

रसमें ही कामाग्निके बुझने की सूचना देती और अभ्युत्थानके बहानेही फूलों-की सेजको दूर करती, ऐसी कादंबरीको देख, दर्शनीयके अवलोकन रूपी फलसे नेत्रोंको मैं कृतार्थ करूँगा। फिर अंजलि युक्त प्रणाम और कंठग्रहसे मदलेखाका सत्कार कर, चरणोंमें पड़ी हुई पत्रलेखाको उठा कर, केयूरकको बार-बार गाढ़ आलिंगन करूँगा। फिर महाश्वेता मेरे विवाहकी मांगलिक क्रिया करेगी तथा सब सखियाँ जल्दी-जल्दी देवीके वैवाहिक स्नानकी मंगल विधि करेंगी। इतनेहीमें, वर्षामें अभिषिक्त पृथ्वीके समान देवीका कर[1] ग्रहण करूँगा। फिर बहुतसे कुंकुम, फूल, धूप तथा लेपकी महकसे कामोद्दीपन करते महलमें मैं सेज पर बैठूँगा। तब मेरे पास बैठ, थोड़ी देर तक हँसी की बातचीत कर मदलेखा बाहर चली जायगी। फिर लज्जासे नीचा मुख किए, इच्छा नहीं करती कादम्बरीको दोनों हाथोंसे जबरदस्ती सेज पर लाकर, सेजसे उत्संगमें और उत्संगसे हृदयके पास ले जाऊँगा। फिर धोतीकी दृढ़ गाँठ पर बहुत मजबूतीसे दोनों हाथ रख कर शरमसे वह अपनी आँखें मीच लेगी तब उसका चुम्बन कर बहुत दिनमें मैं कृतार्थ हूँगा। उसका देवताओंको भी दुर्लभ अधरामृत, तृप्त होने तक पीकर, अपना जीवन सफल करूँगा। अत्यन्त कोमलताके कारण अन्तर्विलीन होकर मानो अंगमें प्रवेश करती हो ऐसी प्रियाके—कामाग्निमें जलनसे बाकी बचे—शरीरको गाढ़ आलिंगन-सुखके रससे ठंडा करूँगा। यों परवश होने पर भी मानो स्वेच्छानुसार बर्ताव करती हो, प्रयत्न-रहित होने पर भी मानो यत्न करती हो, पीछे हटती हुई भी मानो आगे सरकती हो, सब अंगोंको सिकोड़ती भी मानो अभिप्राय प्रकट करती हो, ऐसी देवी कादम्बरीके साथ फिर मैं—सब जनों को सुलभ होने पर भी केवल योग[2]को ही गम्य, स्पर्श-विषय होने पर भी हृदय[3] ग्राही, मोदित[4] करनेवाला होने पर भी इन्द्रियोंको प्रसन्न करता, कामाग्निको उद्दीप[5] करने पर भी निवृत्त

१—हाथ महसूल।

२—संयोग, चित्त वृत्ति निरोध।

३—हृदय प्रसन्न करनेवाला, अन्तःकरणमें आविर्भूत।

४—मोह-युक्त, अत्यंत सुखी।

५—उत्तेजित, प्रकाशित।

करता, सब अंगो को खिन्न करने पर भी आल्हादन करता, कठिन उच्छ्वासके[1] श्रमसे स्वेद उत्पन्न करने पर भी सीत्कार सहित रोमाञ्च करता, अनुभूत होने पर भी अनुभव करनेकी स्पृहा उत्पन्न करता, हजारों बार अनुभूत होने पर भी हमेशा नया मालूम होता, अत्यन्त स्पष्ट होने पर भी अवर्ण्य स्वरूपवाला, अचिन्त्य, अमम आमग[2]वाला, अतुल-स्पर्श, अनुपम रसवाला, अवर्ण्य प्रीति[3] उत्पन्न करता, परम ध्यान[4]से प्राप्त होता, अन्य प्रकारके मोक्ष सुखके समान—सुरत नामका विचित्र सुख भोगूँगा और निमेष मात्र भी वियुक्त रहे बिना उसके साथ ही अनेक रम्य स्थलोंमें क्रीड़ा करके स्वाभाविक रीतिसे रम्य हुए यौवनको भी अधिक रमणीय बनाऊँगा। फिर विश्वास उत्पन्न होने पर देवीसे ही प्रार्थना कर मदलेखाके साथ वैशम्पायनका भी सबंध करा दूँगा। ऐसे ऐसे तथा अन्य विचारोंमें क्षुधा, तृषा, श्रम, और जागरणकी व्यथा न गिनता हुआ वह रात-दिन बराबर चलता रहा।

२५६—इस प्रकार चलने पर भी अंतर बहुत होनेसे आधा रास्ता कटा था कि इतनेमें मेघकाल जल्दी जानेमें विघ्नकारी हो गया। जैसे काला साँप रास्ता रोक लेता है उसी तरह मेघकालने उसे आगे न बढने दिया। वह काल प्रबल पक्षके समान ग्रीष्मऋतुको रोक देता है, रात्रि आगमनके समान सूर्यको छिपा देता है, राहुके समान चन्द्रको ग्रस लेता है, वज्रकी प्रारम्भी चमकमें धूमके समान, पहलेसे सूचना दे देता है। उससे हाथीके मदके समान कामकी वृद्धि होती है, उसके आनेसे विरहातुर मरण-रूपी अंधकारमें प्रवेश करने लगते हैं, जैसे हिरन कालपाशमें खूब फँस कर मर जाते हैं उसी तरह वह उत्कंठा युक्त कामीजनोंको नष्ट करता है। वह गमनको रोकनेमें लोहमय अर्गला-दंड है, क्योंकि उसके आनेसे वे एक जगह रुके रहते हैं, घोड़ोंको अच्छेद्य पाद-शृंखला है, पथिकोंका अत्याज्य शृंखला-बंध है, प्रोषित जनोंकी अलंघ्य वन लेखा है, प्राणि-मात्रका लोह पंजरमें

१—श्रमसे सांस फूलना, प्राणायाममें श्वासका आना जाना।

२—अतुल हठवाला, अनुरक्ति रहित।

३—संतोष, सुख।

४—इष्ट लालसा, परब्रह्मका मनसे चिन्तन।

बंधन है, भ्रमरके झुंडों और जंगली महिषोंके समान मलिन—गर्जती हुई—मेघोंकी घटाके विस्तारसे वह भयंकर मालूम होता है, विषम ध्वनिसे गड़-गड़ाता है, अधिक विषम विद्युत् रूपी गुणसे खेंचता, विकट इन्द्र-धनुष चढाता, लगातार धारा रूपी बाणोंकी बौछारकी वर्षासे प्रहार करता है। मानो विरुद्धाचरणशील हो इस प्रकार मुख पर अंधकार करके आगेसे मार्ग रोकता है और एक लाख वज्रोंके सतापके समान दुष्प्रेक्ष्य होनेसे आँखोंको मानो चोंधिया देता है।

२५७—वहाँ प्रथम तो उसे अचेतन करनेवाले मूर्छाके वेगसे दशों दिशाओंमें अंधकार व्याप्त हो गया, फिर मेघोंसे। आगे उसका तड़फड़ाता हुआ चित्त कहीं गया, फिर हंस गये। पहले उसके परिमल-युक्त निश्वास निकले, पीछे सुगंधित वायु। पहले उसके नील-कमलके समान दोनों नेत्रोंने जल बरसाया, फिर मेघ वृन्दोंने। पहले हजारों उत्कलिकाओंसे[1] आकुल होता उसका मन उद्वेगसे[2] भरने लगा, फिर नदियोंका पाट। और दुस्तर नदीके प्रवाहोंके साथही उसकी काम वेदना बढने लगी, वर्षाके जलसे तितर-बितर हुए कमलाकरोंके साथ ही उसकी कादम्बरी-समागमकी आशा दूर गई, धाराके वेगको सहन करनेमें अशक्त कदलीके अंकुरोंके साथ ही उसका हृदय फटने लगा, मेघ कालकी पवनसे आहत कदम्ब-कलीके साथ ही उसका कंटकित शरीर काँपने लगा, निरंतर जल गिरनेसे जर्जरित पदमवाले[3] केलोंके फूलोंके साथ ही दोनों नेत्र लाल हो गए। तीर पर आते हुए जलसे जड़मेंसे खुदते ...तटके साथही उसके प्राण गिरने लगे, परिमल-मय मालतीके फूलोंके ... ही उसमें उत्कंठा बढी, इसी प्रकार भारी ओलोंसे ही उसके मनोरथ भग्न ... गए, अत्यंत तीक्ष्ण नोकवाले केवड़ेके काँटोंसे ही उसके मर्म छिद गये, ... ऊँची करते शिखियोंसे[5] ही उसके अंग जल गये, दिशाओंमें अंधकार

१—उत्कंठा, जल तरंग।

२—खेद, ऊँचा जाता वेग।

३—पलक, फूलोंकी पँखड़ी।

४—पंख, ज्वाला।

५—मयूर, अग्नि।

करते मेघके तिमिरसे ही मोहान्धकार बढ़ गया, अंधकारका तिरस्कार करती बिजलीकी चमकसे ही संताप बढ़ गया, और जलके भारके कारण मानो बार बार लगातार गंभीर गर्जना करके पृथ्वीके पीठ-बंधको कँपाते नए मेघोंसे आकाशमें, मेघ-जल धाराके कारण चोंचसे शब्द करते चातकोंसे अंतरिक्षमें, ऊँचे स्वरसे टरटर करते मेंढ़कोंसे पृथ्वी पर, लगातार झंकार शब्दसे धाराके जलको जर्जरित करती हुई जलद-पवनोंसे दिशाओंमें, मदमत्त हो कर केकाका कोलाहल करते मयूरोंसे वनोंमें, ऊँचे नीचे शिखरोंमें शिलाओं पर गिरनेसे खनखनाते झरनोंसे पर्वतोंमें, और ऊँची उछलती हुई तरंगोंकी टक्करसे बड़ा हुआ विषम निर्घोष करते प्रवाहोंसे नदियोंमें, स्थलोंपर सर्वत्र विस्तार पाते, गुफाओंमें घन हुए जाते, पहाड़ों पर प्रचंड लगते, जल पर आपसमें मिल जाते, पर्वतोंके तटों पर पटु लगते, हरी घासवाली भूमि पर मृदु लगते, पल्लवों पर चारु लगते, वृक्षों पर गंभीर लगते, तृणों पर सूक्ष्म लगते, ताल-वनमें स्पष्ट मालूम होते, जलधाराओंके गिरनेके समय सुनाई देते, सब प्रकार मधुर तथा हृदयमें चुभ जानेवाले धारा-स्वरसे राजपुत्रकी उत्कंठा अधिक बढ़ती गई। इससे न रातमें, न दिनमें, न गाँवमें, न जंगलमें, न भीतर, न बाहर, न वनमें, न उपवनमें, न मार्गमें, न घरमें, न चलनेमें, न ठहरनेमें, न [illegible] स्मरणमें न कादम्बरी-समागमके ध्यानमें, कभी किसी प्रकार कहीं भी तसल्ली नहीं हुई।

२५८—चित्तको धैर्य न हुआ तब मेघ-समय-रूपी ईंधनवाली बिजलीके समान, मानो, भस्म कर डालनेके लिये तैयार हुई कामाग्निके अति दुःसह होनेसे, [illegible] पार होने पर भी उसका स्वाभाविक साहस ही जाता रहा, सब पृथ्वीतलको सराबोर कर डालते धारा-जलसे भी उसको शोष हुआ, दशों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई बिजलीकी चमकसे भी वह [illegible] पड़ गया, जगत्‌का आल्हादन करती—वर्षा कालकी—पवनसे भी उस[illegible] हुआ, जल भारसे घने दीखते मेघोंसे भी वह क्षीण हो गया, [illegible] लाल लाल करती बीरबधूटियोंसे भी वह फीका पड़ गया, [illegible] कुटजसे भी वह गतरस[1] हुआ, तथापि सब जगत्‌के

१—रस, अनुराग।

जीवन हेतु मेघकालसे भी जीवन संदेहके झूलेमें झूलने लगा, उत्कूल[1] गमन करते दैवके विलासों और नदीके प्रवाहों पर तैरने लगा, निरंतर बरसते जलसे उत्पन्न हुई मूर्छामें तथा पंक-पटल में गिरने लगा, जलमें रुके मार्गमें तथा नेत्रोंमें स्खलन करने लगा, विकाश पाती कादम्बरी—समागमकी चिन्ताओंमें तथा फूले कदंब की रजो-वृष्टियोंमें मग्न होने लगा, लगातार आते गमन विघ्नोंसे तथा मेघकी गर्जनाओंसे मोह पाने लगा, दुर्लंघ्य वेगवाली हजारों उत्कंठाओं को तथा नदियोंको उलांघने लगा, मेघोंके आनेमें वृद्धि पाते कादंबरी समागमकेऔत्सुक्यसे तथा जल-प्रवाहके वेगमें खिंचने लगा, जीवनकी परवा न करते लोगों तथा घोड़ोंको छोड़ता जाने लगा, बिजलियाँ मानो उसकी तर्जना करने लगीं, बादल मानो उसको रोकने लगे, गर्जनायें मानो उसको धमकाने लगीं, खड्गके समान निर्दयतासे गिरती जलधाराएं मानो उसके सैकड़ों टुकड़े करने लगीं, और जलद कालने, मानो जल्दी जानेमें विघ्न करनेको, सब दिशाओंका रास्ता रोक दिया, तो भी कादम्बरी-समागमकी आशा जरा भी कम न होनेके कारण, समस्त प्राणी जिसमें अपने स्थानमेंसे हिल नहीं सकते थे ऐसी वर्षाऋतुमें भी, क्षणभर विलंब किए बिना वह आगे बढ़ता ही गया। जिनके नेत्र जल-धाराओंकी चोटसे आधे मिचे जाते थे, जो बार बार अपने मुखको मोड़ते तथा नीचे झुकाते थे, जिनकी गर्दनके बाल पसीनेसे चिपट कर इकट्ठे हो गये थे, बार बार कीचड़में गड़नेसे जिनके खुर भर गए थे, ऊँची नीची जमीन न दीखनेसे चलनेमें जिनके पैर फिसलते थे, जीनके बंधन ढीले हो गये थे, बार बार नदियोंके पार करनेमें जिनकी [illegible] गीली हो गई थी और जिनका बल, वेग तथा उत्साह घटने लगा था, ऐसे घोड़ोंकी फौज उसके पीछे चलती थी। आदरणीय राजा लोगोंके प्रार्थना करने पर भी, शरीर-सत्कार न करके केवल जीवन धारण करनेके लिए कम कम आहार करते हुए, उसने वह सब दिन ही बिता दिया।

३५६—यों चलते चलते रातका तीसरा हिस्सा बाकी रहा था तब उसने मेघनादको लौटता देखा। देखते ही दूरसे मेघनादने नमस्कार किया। इतनेमें ही चन्द्रापीड उससे पूछने लगा—पत्रलेखाके लानेका हाल [illegible]

१—अनियन्त्रित, कूलके बाहर जाते।

रहने दो। मैं पहले वैशम्पायनका हाल पूछता हूँ। क्या तूने वैशम्पायनको अच्छोद सरोवर पर देखा? उसके वहाँ ठहरनेका कारण पूछा? पूछने पर उसने कुछ कहा या नहीं? हमारे परित्यागसे क्या अब वह पश्चाताप करता है? हमको याद करता है? मेरे विषयमें तुझसे उसने कुछ पूछा? उसका कुछ अभिप्राय मालूम हुआ? तुम दोनोंमें क्या बातचीत हुई? माता-पिताको उसने कुछ संदेशा कहलाया? आनेके लिये तूने उसको कुछ समझाया? हमारे आनेकी कुछ खबर कही? वहाँसे वह भाग तो न जायगा? मुझसे मिलेगा तो सही? मेरी विनती मानेगा? क्या मेरे साथ लौट आवेगा? वह सब दिन वहाँ क्या किया करता है? वहाँ उसका मन कैसे लगता है?

३६०—ऐसे प्रश्न सुन कर मेघनादने निवेदन किया—महाराज, वैशम्पायनसे मिल कर पीछे झट ही घोड़ा पर मैं आया—यों आपने मुझे आज्ञा देकर भेजा था और—अच्छोद सरोवरकी तरफ पीछे वैशम्पायन गये होंगे यह तो बात ही न हुई थी। आपके आनेमें विलंब हुआ तब पत्रलेखा तथा केयूरकने मुझसे कहा कि मेघसमयका आरंभ देख कर ऐसे दिनोंमें देव तारापीड़, देवी विलासवती तथा आर्य शुकनासने युवराजको, प्रयत्न करने पर भी, आज्ञा कदाचित नहीं दी होगी और तुझे अकेले इस भूमिमें रहना नहीं चाहिए इसलिए तू यहाँसे लौट जा। हम तो अब करीब करीब आ पहुँचे हैं। यों कह कर जहाँसे अच्छोद सरोवर तीन चार पड़ाव दूर था वहाँसे मुझे जबरदस्ती पीछे लौटा दिया। इतना कह कर मेघनाद चुप हुआ तब चन्द्रापीड़ने फिर पूछा—तू क्या समझता है? पत्रलेखा आज तक पहुँच गई होगी या नहीं। उसने जवाब दिया—देव, मेरी समझमें तो, रास्तेमें अगर कोई विलंबकारी विघ्न न हुआ होगा तब तो, निःसंदेह उसे पहुँच जाना चाहिए।

दूतके आलापमें, केतक-सुगंध विष परिमलमें, खद्योत प्रलयाग्निके पतंगोंमें, भ्रमर वलय कालपाशमें, बगुलोंकी पंक्तियाँ यमराजकी पताकामें, नदियाँ सर्व-क्षयकारी महा प्रवाहके चढ़ावमें, दुर्दिन काल-रात्रिमें, और कुटजवृक्ष यमके हास्यमें मानो बदल गए। फिर उसके शरीरमें भी सत्वके बदले कातरता, बलके बदले क्षीणता, कान्तिके बदले विवर्णता, मतिके बदले मोह, धैर्यके बदले विषाद, हास्यके बदले शोक, नयनोंमें आँसू, आलापमें मौन, अंगमें असहनता, इन्द्रियोंमें अपटुता और सबमें अरति दीखने लगी। फिर दिन बीतते बीतते वह मानो चित्र लिखासा हो, दिन रात बहते आँसुओंके प्रवाहसे मानो गिरा जाता हो, सर्वदा चलती निश्वास-पवनसे मानो टूटा जाता हो, निरन्तर पैदा होती काम-संतापकी हजारों उत्कंठाओंसे मानो चारों ओर जर्जरित होता हो, काम बाणोंकी वर्षासे मानो शरीरके साथ ही क्षीण होता हो—यों स्वल्प ही बाकी रह गया और अपनी-सी वृत्तिवाले कादम्बरीके कल्पना मय शरीरके साथ मानो गलेसे चिपटा हुआ अपना जीवन जैसे-तैसे धारण करता, अच्छोद सरोवरके पास आ पहुंचा। वहाँ तीरके वृक्षोंके तले बरसातके पानीसे भीग गए थे, तीरके पासकी नव तृण मय भूमि पर जल भर गया था, किनारेके लता वन असेव्य थे, किनारों पर जल बाहर निकलनेसे उनके प्रांतभाग टूट गए थे, टूटे हुए ऊँचे डंडवाले कुमुद पत्रोंसे वह गहन हो रहा था, कमल समूह डूब गए थे, कुछ सूखे कमल-तन्तु तथा पत्तोंके टुकड़े पानी पर तर रहे थे, कल्हार तथा कुवलय ढीले हो गए थे, भ्रमरोंके झुंड डर डर कर चक्कर लगा रहे थे, हंस उड़ रहे थे, [illegible] हीन सारस करुण शब्द कर रहे थे, डरे हुए चक्रवाक-मिथुन [illegible] [illegible] चे घुसे जाते थे, काँपते हुए राजहंसोंके झुंड तीरके पास [illegible] हुए [illegible], और जोरसे मनोहर शब्द करते मयूरों तथा बगुलोंके झुंड [illegible] हुआ बैठे थे। वर्षाऋतुके विकारसे मानो अन्य हो इस प्रकार वह दृष्टिपूर्व हो। [illegible] भी अदृष्ट पूर्व सा था। उससे दृष्टिको सुख नहीं मिलता था, हृदय प्रसन्न नहीं होता था, और वह मनको अच्छा नहीं मालूम होता था, उसे देख कर दुःख दूना होता था।

३६२—वहाँ पहुंचते ही उसने सब सवारोंको आज्ञा दी—जलके [illegible]

कदाचित् वैशम्पायन हमें देख कर भागने लगेगा, इसलिए तुम सब चारो ओर सावधानीसे रहना। इतना कह कर आप भी, खिन्न होने पर भी मानो अखिन्न हो इस प्रकार, घोड़े पर बैठे बैठे ही, लता, वन, वृक्ष मूल, शिलातल तथा सुन्दर मण्डपोंमें ढूँढता आसपास घूमने लगा। परन्तु घूमते घूमते जब कहीं भी उसके रहनेका कुछ चिह्न न देख पड़ा तब उसने विचार किया कि पत्रलेखासे मेरे आनेकी खबर पाकर वह पहलेसे ही अवश्य भाग गया होगा, जिससे यहाँ उसके ठहरनेका चिह्न तक नहीं दीखता। किसी गुप्त स्थानमें गया होगा इस कारण इस तरह ढूँढने पर भी वह नहीं मिलता। अब तो महा कष्ट आ पड़ा! वैशम्पायनको देखे बिना इस जगहसे एक कदम भी आगे रखने का उत्साह मेरे चरणोंमें नहीं है और कामदेवके बाणोंसे जर्जरित हुए तथा कादम्बरीके दर्शन मात्रकी आशासे ही टिके हुए मेरे प्राण क्षीणताके कारण क्षणभरका विलम्ब भी नहीं सह सकते, सो कहीं निकल न जायँ। सर्वथा मैं विनष्ट हुआ। देवी कादम्बरीका दर्शन न हुआ, वैशम्पायनका भी न हुआ। ऐसा निश्चय उत्पन्न होने पर भी आशाकी सीमा अनिश्चित होनेसे, उसने मनमें विचारा कि कदाचित् महाश्वेताको भी इस बात की खबर हो, इस लिए उससे मिलना चाहिए। फिर जो ठीक होगा, करूँगा। यो विचार उसके आश्रमके पास ही घोड़ाकी फौजका डेरा डाल कर, सवारीका वेष उतार कर, सर्प कचुकके समान महीन तथा मैल-रहित चाँदनीके समान सुन्दर दो कपड़े पहन कर, थोड़ी थोड़ी रक्खे हुए जीनवाले इन्द्रायुध पर बैठ, आप महाश्वेताके आश्रममें आया।

जिससे मेरा आगमन हर्षदायक होने पर भी महाश्वेता ऐसी अवस्थाका अनुभव करती है। इस शंकासे भिन्न हृदय होकर, निकले जाते प्राणोंसे ही पद पद पर मानो स्खलन करता, गिरता, मोह पाता, पास जाकर उसी शिलातलकी एक ओर बैठ कर, आँसुओंसे दीन वदन होकर, वह तरलिकासे पूछने लगा कि यह क्या बात है? परन्तु वह तो उस अवस्थाको प्राप्त हुई महाश्वेताके मुखको ही देखने लगी।

३६४—इतनेमें शोकके वेगके शांत हुए बिना भी महाश्वेता ही गद्गद कंठसे बोली—महाभाग, यह बिचारी क्या कहे? दुःख सहते सहते जिसका हृदय कठिन हो गया है और जिसने दुःख सुननेके अयोग्यको भी अपना दुःख सुनाया था वही—मंदभागिनी—मैं महाभागके जीवन को संशयमें डालनेवाला यह निर्लज्ज, निर्दय, तथा सुननेके अयोग्य दुःख भी आपको सुनाती हूँ। सुनिए—केयूरकसे आपके जानेका हाल सुन कर मेरा मन विदीर्ण हो गया कि न तो मैंने चित्ररथका मनोरथ सफल किया, न मदिराकी प्रार्थना पूरी की, न अपना कुछ भला किया, न घरमें आए हुए चन्द्रापीडका प्रिय किया और न मैंने प्रियसखी कादम्बरीको प्राणप्रियके समागमके सुखमें युक्त देखा। यों अनेक प्रकारसे वैराग्य उत्पन्न होनेके कारण, कादम्बरीके स्नेहके नए मजबूत बंधनोंको भी तोड़ कर, मैं फिर कष्टतर तप करनेको यहाँ चली आई। तब मैंने आपके ही समान आकृतिवाले, मानो शून्य-हृदय, अनुत्साह शरीर, तथा घबराए हुए मुखवाले, एक ब्राह्मण युवकको, आँसुओंसे भरी [illegible] रहित दृष्टिसे, मानो किसी खोई हुई वस्तुको इधर उधर ढूँढते देखा। पहले [illegible] देखे भी मानो मुझे पहचान लिया हो, अपरिचित होने पर भी मानो चिरपरिचित हो, सम्भावनाके बिना भी मानो प्रौढ़ प्रेम युक्त हो, [illegible] होने पर भी मानो प्रेममें परवश हो, शून्य होने पर भी मानो [illegible], आकारसे दुःखी होने पर भी मानो सुख पाता हो, चुप [illegible] भी मानो [illegible] करता हो, बिना पूछे भी मानो अपनी अवस्थाकी सूचना देता हो, मानो प्रार्थना करता हो, शोक करता हो, हर्ष पाता हो, खेद पाता हो, [illegible], अभिनन्द पाता हो, आकृष्ट हो, आनन्दित करता हो, भूले हुएका स्मरण करता हो, [illegible] रहित, निश्चल तथा [illegible] सहित आँसुओंसे भरे, [illegible]

पहुँचते, मानो विकसित हों ऐसे, खुली हुई पुतली-वाले नेत्रोंसे, मत्त हो, आविष्ट हो, वियुक्त हो, पान करता हो, और भीतर प्रवेश करता हो, यों मेरे पास आकर और एकाग्र दृष्टिसे मुझे बहुत देर तक देख कर कहने लगा—सुन्दरी, जगत्‌मे जन्म, वय और आकृतिके अनुकूल आचरण करनेवालोंकी कोई बुराई नहीं करता। परन्तु तूने अत्यंत वाम प्रकृतिवाले विधाताकी तरह असदृश अनुष्ठानमें यह कैसा प्रयत्न किया है कि चमेलाके ताजे फूलोंके समान सुकुमार तथा मालाके समान कण्ठ-प्रणयके योग्य शरीरको तू इस अनुचित कठोरतर तपके क्लेशमें खिन्न करती है? सुमनोहारी[1] लताके समान इस शरीरका, रूप तथा वयके अनुरूप, रमाश्रयी[2] फलके साथ क्यों तू संयोग नहीं करती? रूप गुण विहीन नारियोंको भी जन्मसे प्राप्त हुए सांसारिक सुखोंका अनुभव करनेके पीछे परलोकसंबंधी तपका श्रम अच्छा लगता है। तब फिर रूपवान्‌की तो बात ही क्या है? इसलिए मृणालिनीके समान स्वभाव सरस तेरे शरीर पर हिमपातके समान तप-क्लेश देख कर मुझे पीड़ा होती है। जब तेरे समान ललनाएँ संसार सुखसे पराङ्मुख होकर तपसे आत्माको कष्ट देती हैं तब कामदेव अपना धनुष वृथा चढ़ा रखता है; चन्द्रमाका उदय व्यर्थ होता है, वसन्तमास वृथा आता है, कुमुद, कुवलय, कल्हार तथा कमलके वन वृथा खिलते हैं, वर्षाकालके आरम्भका आडम्बर निष्प्रयोजन है, उपवन [illegible] है चाँदनीका भी क्या काम है, लीला नदियोंके रेतीले किनारोंका भी [illegible] है और मलयपवनका भी क्या प्रयोजन है?

अवश्य इसका कुछ अनिष्ट होगा। पर उसने तो मना करने पर भी दुर्निवार्य वृत्तिवाले मेरे कामदेवके दोषसे या अनर्थकी भवितव्यतासे मेरा पीछा नहीं छोड़ा। कितने ही दिन बाद एक बार, जब रात्रि बहुत बीत गई थी, कामाग्निका उद्दीपन करनेवाली चन्द्रमाकी किरणें चाँदनीके प्रवाहका मानो खूब वमन कर रही थीं और तरलिका नींदमें सो गई थी तब, संतापके कारण निद्राका सुख न मिलनेसे, मैं बाहर आकर शिला-तल पर लेट गई। उस समय कल्हारकी सुगंध लाती हुई अच्छोद सरोवरकी पवन मंद मंद चल रही थी और चन्द्रमा, चूनेकी कूँचीके समान, किरणोंसे दशों दिशाओंको सफेद कर रहा था। उस पर निगाह डाल कर मैं—अमृत बरसाती तथा सब जगत्का आल्हादन करतीं किरणोंसे यह चन्द्रमा मेरे प्राणनाथको भी बरसा दे!—यों इच्छाके प्रसंगसे सुगृहीतनामा देव पुण्डरीकका स्मरण कर रही थी और विचार कर रही थी कि क्या मुझ पापिनीके अभाग्यसे आकाशमेंसे उतरे ऐसे दिव्य आकृतिवाले महा पुरुषका कहना भी असत्य निकला? अथवा जीवनको प्रिय माननेवाली तपस्विनीको भी ज्यों त्यों जीवित रखनेके अभिप्रायसे अनुकम्पा कर उसने आश्वासन दिया जिससे फिर मुझे उसने दर्शन ही नहीं दिया?" सुगृहीतनामा पुण्डरीक क्या करें? उन्हें तो मरते ही उठा ले गए, पर कपिञ्जल तो जीता जागता उनके पीछे गया है। इतना अधिक समय बीत गया तो भी उस निष्करुणने मुझे कुछ समाचार नहीं भेजे? इस प्रकार अनेक विचार करती दुश्चिन्तनमें घिरी हुई मैं जागती ही रही।

३६६—इतनेमें चन्द्रमाके—दिनके समान—प्रकाशसे दूरसे भी दीखते, आविष्ट हो, मत्त हो, इस प्रकार उन्मादमें पैर धीरे धीरे रख कर चलते आते, उसी युवकको मैंने देखा। चरणों तक कंटकित हुआ उसका शरीर ऐसा मालूम होता था मानो निरन्तर लगे कामदेवके बाणोंके तीरोंकी नोकसे व्याप्त हो। विकसित केतकीकी रजके समूहके समान धवल होनेसे ऐसा मालूम होता था मानो पहलेसे ही कामाग्निने उसे जला कर भस्म कर डाला हो। संसारमें जिसके शासनको सब मानते हैं ऐसे कामदेवके द्वारा अपने मरनेके लिए दिया गया मानो तत्काल माननेकी आज्ञाका अक्षर हो ऐसा मालूम होता मृणाल-वलय उसने हाथमें पहना था। नव तथा कोमल दिनों, [illegible]

चिनटी, कामदेवके प्रथम सहायक चन्द्रमा की कलाके समान, केतकीकी आल— अब तू कहाँ जाता है? मने तेरा घात किया है—यों मानो उसकी तर्जना करती थी। उद्वेगमे निकलते आँसुओंके प्रवाहसे वह मानो अपनेको जल-दान करता था, अपनी इच्छासे ही मेरा कर-ग्रहण करनेके लिए वह मानो पसीनेसे नहाता था, दूसरेके हृदयका हाल जाने बिना तेरा जाना ठीक नहीं है—यों कह कर मानो भारी उरु स्तम्भ पद पद पर उसको रोकता था। मुझे आलिंगन करनेकी मिथ्या आशासे दूरसे ही दोनों भुजा पसारनेसे वह ऐसा मालूम होता था मानो हजारों उत्कलिकाओंसे विषम हुए अनुराग-सागर पर तैर रहा हो। निरंतर चलते लंबे लंबे निश्वासोंकी पवन मानो उसे आगे खेंचती थी। निरंतर दिशाओंमें भरे डालता चाँदनी का प्रवाह मानो उसको उठा कर लिए जाता था। कामकी वेदनासे वह शून्य-मनस्क था। उसका मुँह सूख गया था। मदनने उसे छोड दिया था। वह देखनेमें अत्यंत दीन, धैर्यसे तिरस्कृत, तरलता से गृहीत, लज्जासे विसर्जित, धृष्टतामें अधिगत, परलोकके भयसे दूर, युक्त-अयुक्तके विवेकसे विमुक्त, और केवल कामदेवके ही वशमें था।

३६७—अपने जीवनकी परवा न होने पर भी उसको इस तरह देख, मुझे बड़ा भय हुआ और मैंने विचार किया—अहो! यह बड़ी आपत्ति सामने आई! यदि उन्मादसे आकर यह हाथसे भी मुझे छू लेगा तो इसके छूने मात्रसे अपुण्य मेरा शरीर त्यागना पड़ेगा और देव पुण्डरीकका दर्शन [illegible]पर होनेकी आशासे बहुत काल तक खूब दुःख भोग कर भी मेरा प्राण [illegible]धारण करना व्यर्थ होगा। इस प्रकार मैं चिन्ता कर रही थी कि इतनेही- [illegible] मेरे पास आकर कहने लगा—चन्द्रमुखि, यह कामदेवका सहायक [illegible] मुझे मारने पर आमादा है इसलिए मैं तेरी शरणमें आया हूँ। [illegible] हूँ और अपने प्राण उबार करनेमें असमर्थ हूँ। मुझ अशरण और [illegible] तू रक्षा कर। मे[illegible] जीवन तेरे अधीन है। शरणागतकी रक्षा करना [illegible] का धर्म है। इसलिए जो तू आत्म दानसे मेरी रक्षा नहीं करेगी [illegible] मार [illegible] मुझे मार डालेंगे।

[illegible]— [illegible] सुन कर मेरे [illegible]से तो मानो उसी [illegible] लपटें निकलने लगीं।

१—[illegible] [illegible]।

म क्रोधकी अग्निमे मानो उसे जलाने लगी तथा आँसू रूपी चिनगारीवाली दृष्टिसे मानो तर्जना करने लगी। उस समय मेरा शरीर चारों तरफ काँपने लगा। आविष्टके समान अपने आपको भी भूल कर मै क्रोधके आवेगमे कठोर शब्दोंमे बोली – अरे पापी, मुझसे यो कहतेमे तेरे माथे पर वज्र क्यो न पड़ा? तेरी जिह्वाके हजारों टुकड़े क्यों न हो गए? तेरी वाणी विकल क्यो न हुई? तेरे बोलनेकी शक्तिका नाश क्यों न हुआ? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तेरे शरीरमे संसारके धर्म अधर्मके देखने वाले पाँच महाभूत नहीं हैं, क्योंकि तुझे यो कहतेमे न तो अग्निने जलाया, न वायु उड़ा ले गई, न जलने डुबाया, न पृथ्वीने रसातलमे प्रवेश कराया और न आकाशने इसी क्षण अपना सा ही कर डाला। शास्त्रकी मर्यादाके नियमोसे जकड़े हुए इस लोकमे तू ऐसा मर्यादाका उल्लङ्घन करने वाला कहाँसे उत्पन्न हुआ जो, पक्षीके समान काम वश होकर, कुछ भी नहीं समझता। जिस मरे विधिने तुझे किसी कारणसे तोतेकी तरह मुखराग[1] दिखाते, केवल स्वपक्षपात[2]मे प्रवृत्त तथा अनुचित स्थानके विवेकके बिना यों बोलनेके लिए शिक्षित किया उसने ही क्यों तुझे उसी जातिमे उत्पन्न नहीं किया? इस कारण तेरे यो कहने पर भी केवल हँसी आती है, क्रोध नहीं आता। तेरे वचनसे पीड़ित हुई मै इतना तेरा दुःख चाहती हूँ कि जिससे तू अपनी वाणीके समान जातिमे पैदा होकर मेरी-सी स्त्रियोंकी इच्छा न करे।

३६६—मैने इतना कह कर चन्द्रमाके सामने देख, हाथ जोड़ कर, फिर कहा—भगवन्, परमेश्वर, सकल भुवन चूड़ामणे, लोकपाल, जो मैने देव पुण्डरीकके दर्शनके पीछे मनमे भी किसी अन्य पुरुषका चिन्तन न किया हो तो मेरे इस सत्य वचनसे यह दुष्ट कामी मेरी कही हुई जातिमे पड़े। यह तो मेरे इस वचनके पीछे ही न जाने अगम्य कामज्वरके वेगसे, या तत्काल फल दायक पापके भारसे, या मेरे वचनके सामर्थ्यसे ही, छिन्नमूल वृक्षकी तरह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके मरनेके पीछे विलाप करते हुए उसके परिजनोंसे मैने सुना कि यह आपका ही मित्र था। इसी

1—वाचालता, चोंचकी लाली।

२ अपना इष्ट कार्य, इधर उधर पर फैलाकर उड़ना।

पट कर लज्जासे मुँह नीचे झुका कर, चुपचाप बड़े बड़े आँसू डाल कर वह पृथ्वीको भिगोने लगी।

३७०—यह सुन कर, कानोंके छोर तक पहुँचते नेत्रोंके बंद हो जानेसे चन्द्रापीड़की दृष्टि भग्न हो गई, वचन-सौंदर्य जाता रहा और—भगवति, तुम्हारे प्रयत्न करने पर भी मुझ पुण्यहीनको इस जन्ममें देवी कादम्बरीकी चरण सेवाका सुख न मिला इसलिए जन्मान्तरमें भी तुम उसकी सम्पादयित्री होना—इतना कहते ही, कादम्बरीके साथ समागम न होनेके दु:खसे ही विदीर्ण होने पर उतारू हुआ उसका—स्वभावसे ही सरस—हृदय, भ्रमरके आघातसे कलीके समान, फट गया।

होने पर अब देव तारापीड़की वहन की हुई धुराको कौन उठावेगा ? वीर होने पर भी क्यों, कायरकी भाँति, आपका हृदय शोकसे विदीर्ण हो गया ? दयालु होने पर भी क्यों आज हम पर इतने निर्दय हुए ? देव, प्रसन्न होओ ! एक बार तो आज्ञा दो। भक्त-जनोंकी प्रार्थना पूरी करो। प्राण धारण करो। आपके बिना न पुत्र-वत्सल देव तारापीड़, न देवी विलासवती, न आर्य शुकनास, न मनोरमा, न राजा लोग, न प्रजा—एक क्षण भी जियेगी। सबको छोड़कर अकेले कहाँ चले गए ? एकाएक इतने अधिक निष्ठुर कैसे हो गए ? कहाँ गई आपकी गुरुजनोंकी भक्ति, जिससे यों, उनकी अपेक्षाके बिना, चले गए ! यह सुन कर ऊँचे कान करके—हा ? हा ? यह क्या ?—यों उद्भ्रान्त चित्तसे चिल्ला कर रोते रोते राजपुत्र लोग दौड़ दौड़ कर आने लगे, और चञ्चल पुतली वाले नयनोंको खोल कर देखता इन्द्रायुध, चन्द्रापीड़के मुख पर दृष्टि रख कर, अति दीन हिनहिनाहटसे आक्रन्द करने लगा, क्रमसे चारों खुरोंको उठा कर भूतल पर मानो शोकसे पछाड़ने लगा, मानो छूट जानेके लिए ही तीक्ष्ण रास तथा सोनेकी शृङ्खलाके बन्धनको—अश्व-जातिमें से मानो मोक्ष चाहता हो इस प्रकार—तोड़ने लगा।

३७२—इसी समय पत्रलेखासे चन्द्रापीड़के आनेकी खबर पाकर, चन्द्रोदयसे उल्लास पाती समुद्रकी वेलाके समान मकरध्वजसे युक्त कादम्बरी, माता-पिताके सन्मुख महाश्वेतासे मिलनेका बहाना करके, शृङ्गार-योग्य वेष तथा आभूषण-पहन कर, आगमनके खेदकी परवा न करती, चन्द्रापीड़के दर्शनके लिए आती हुई आई। झनझनाते पायजेबवाली, झन-झनाती मेखलावाली, तथा ऊपर उज्ज्वल वस्त्रवाली कादम्बरीको देख कर कामदेवकी सेनाका भ्रम होता था। साथकी दासियाँ सुगन्धित माला, अंगलेप, पटवास, आदि सामग्री लेकर उसके पीछे पीछे चली आती थीं। आगे केयूरक रास्ता दिखलाता जाता था। उसने पत्रलेखाका हाथ पकड़ लिया था और मदलेखाके साथ बातचीत करती आ रही थी—मदलेखा, पत्रलेखा प्रति दिन कहती है, परन्तु मुझे तो विश्वास नहीं होता कि अत्यन्त कठिन-हृदय, शठमति, क्रूर मनके कुमार फिर मेरे लिए ही आ रहे हैं। क्यों ? क्या तुझे याद नहीं है कि उस दिन हिमगृहमें मेरी अवस्था पर विश्वास न करके, उस दुर्विदग्ध बुद्धिने, मेरा हाल जाननेके लिए, हँसी उड़ाई थी।

कही थी? उस समय मैंने जरा हँस कर तेरे सामने देख लिया था इस कारण तूने ही उनको खूब ठीक जवाब दिया था। इसलिए मेरे मर जाने पर भी वे तो मेरी ऐसी अवस्था पर विश्वास न करेंगे। नहीं तो—मेरे कारण यह इस प्रकार दुःख पाती है—ऐसा उनको खयाल होता तो वे यों जाते ही नहीं। इसलिए अगर वे आए होंगे तो जो कुछ बातचीत होगी तुझे ही करनी पड़ेगी। मैं तो देखूँगी तो भी न बोलूँगी, न उलाहना दूँगी। चरणोंमें पड़ने पर भी विनती स्वीकार न करूँगी, तू मुझे मत मनइयो।

३७३—वहाँ आकर अमृत-रहित सागरके समान, चन्द्र-रहित निशा-समयके समान, तारा-गण-रहित आकाशके समान, कुसुम-शोभा-रहित उपवनके समान, उखाड़ी हुई कर्णिकावाले कमलके समान, खंडित अंकुरवाले मृणाल-के समान, मध्य-मणि विहीन हारके समान, प्राण-रहित चन्द्रापीड़को उसने देखा। देखते ही एक साथ—हैं यह क्या? – यों कह कर औंधे मुँहसे भूमि तल पर गिरती हुई कादम्बरीको रोती चिल्लाती मदलेखाने ज्यों त्यों करके सहारा दिया, परन्तु पत्रलेखा तो कादम्बरीका हाथ छोड़ अचेतन होकर भूमि पर गिर पड़ी। बहुत देरमें होश आने पर भी कादम्बरी, योंकी यों ही, मूढ़के समान निश्चल तथा स्तब्ध दृष्टि-सहित मानो आविष्ट हो, स्तम्भित हो यों, निष्प्रयत्न रह, साँस लेना भी भूल कर, अन्तर्गत शोकके भारसे मानो निश्चल बन कर, चन्द्रापीड़के मुख पर ही नेत्रोंको स्थिर कर, श्याम और लाल चेहरेसे, राहुसे ग्रस्त हुए चन्द्र-बिम्बवाली पूर्णिमाकी रात्रिके समान, काँपते अधर-पल्लवसे तीक्ष्ण परशुकी चोटसे काँपती हुई लताके समान, स्त्रीस्वभावके विरुद्ध चित्तको स्थिर कर, चित्रितकी तरह खड़ी रही। तो उसको ऐसी देख कर आतस्वरसे मदलेखा पैरों पर गिर कर कहने लगी—प्रियसखी, कृपा करके इस शोकके भारको रुदनसे दूर करो। अश्रु-[illegible] इसे दूर न करोगे [illegible] अत्यन्त भारी[1] पीड़ासे, छोटेसे तालाबके समान, [illegible] हुए[3] तुम्हारा हृदय अवश्य ही सहस्रधा विभक्त हो जायगा।

१—[illegible] भार, जल-प्रवाह।
२—[illegible] जलसहित।
३ [illegible], [illegible] टुकड़ोंसे रहित [illegible]।

यह सोच कर चित्ररथ और मदिराकी अपेक्षा करो। तुम्हारे बिना माता-पिता दोनोंके कुल नष्ट हो जायँगे।

३७४—ऐसे कहती हुई मदलेखासे कादम्बरीने हँस कर कहा—अरी पगली, यह मेरा वज्रसारके समान कठिन, मेरा हृदय तो यह देख कर ही सहस्र धा विदीर्ण न हुआ, फिर फट कैसे सकता है? और जो जीवित हो उसके माता, पिता, बन्धु, आत्मीय, सखियाँ, परिजन आदि सब हैं परन्तु मैं तो मरती थी कि इतनेमें ज्यों त्यों कर मुझे यह—जीवनका हेतु—प्रियतम शरीर मिला है जो जीतेमें संभोगसे और मरतेमें अनुमरणसे दोनों प्रकारसे, मेरे मन दुःख दूर कर सकता है। इसलिए मेरे लिए आकर तथा प्राण त्याग कर मुझे देवने उच्च पद पर चढाया और गौरव दिया है। फिर अपनेको केवल आँसू बहानेसे हलका बना कर मैं क्यों पतित करूँ? रुदनसे मैं स्वर्गमें जाते हुए देवका अमंगल क्यों करूँ? चरणोंकी धूलके समान उनके चरणोंका अनुगमन करनेको तत्पर हुई मैं, हर्षके स्थान पर भी रुदन करूँ—ऐसा मुझे क्या दुःख है? अब तो मेरे सभी दुःख दूर हो गए। अब भी मैं क्या रोऊँ? जिसके लिए कुलकी मर्यादा नहीं गिनी, गुरुजनोंकी अपेक्षा नहीं की, धर्मका अनुरोध न किया, जनापवादका भय न किया लज्जाका त्याग किया, मदनोपचार करा करा कर सखीजनोंको खेद दिया, अपनी प्रियसखी महाश्वेताको दुःखित किया और उसके साथ जो प्रतिज्ञा की थी उसके अन्यथा होनेका भी विचार न किया, उस मेरे प्राणनाथने मेरे लिए ही प्राण त्याग किए।

प्राणोंके जानेकी राह देखती हुई मुझसे तूने यह क्या कहा? इस [illegible] तो मरना ही जीना और जीना ही मरना है। इसलिए जो मुझ पर स्नेह है और तू मेरा प्रिय अथवा हित चाहती है तो, स्नेह[illegible] होने पर भी, प्रियसखी, तुझे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि पिता माता कोई मेरे शोकसे प्राणोंका त्याग न करें और मुझसे वाञ्छित मनोरथ तुझसे पूर्ण करें जिससे मेरे परलोक जाने पर भी मेरे जलांजलि देनेवाला पुत्र उत्पन्न हो। मेरी [illegible] या मेरे परिजन जिससे मेरी याद न करें या महल सूना देख कर [illegible] वैसा ही करियो। महलके आँगनमें लगे हुए—मेरे पुत्रके समान—[illegible] आमके पौधेका, जैसा मैंने विचारा था वैसा ही, माधवीलताके साथ [illegible]

विवाह करियो। मेरे चरण-तलके स्पर्शसे बढे हुए अशोक वृक्षमेंसे कर्णपूरके लिए भी पत्ता मत तोड़ियो। मेरी बढाई हुई मालतीके फूल देवताओंकी पूजाके लिए ही तोड़ियो। मेरे महलमे सिरहानेकी तरफ रक्खा कामदेव-पट फाड़ डालियो। मेरे लगाए हुए आमके वृक्षोंमें जिस तरह फल आवें उसी तरह उनका संवर्धन करियो। बिचारी कालिंदी मैना तथा परिहास तोतेको पिंजरेमें रहनेके दुःखसे छुड़ा दीजियो। मेरी गोदमें सोनेवाली नकुलिकाको तू अपनी ही गोदमें सुलइयो। मेरे पुत्र—बाल हिरन—तरलकको किसी तपोवनमें भिजवा दीजो। मेरे हाथोंसे पाला हुआ चकोरोंका जोड़ा क्रीड़ा-पर्वत पर जिसमें मर न जाय ऐसा कीजियो। चरणोंके साथ चलनेवाले हंसको जिसमें कोई मार न डाले उस तरह रखियो। जिसे घरमें रहनेकी आदत नहीं है ऐसी जबरदस्ती लाई गई बिचारी वनमानुषीको वनमें ही छुड़वा दीजियो। क्रीड़ा-पर्वत किसी शान्त तपस्वीको दे दीजियो। मेरे वस्त्र तथा भूषण आदिका ब्राह्मणोंको दान कर दीजियो, परन्तु वीणाको तो अपने ही उत्संगमें प्रेमसे रखियो और जो कुछ तुझे अच्छा लगे ले लीजियो। मैं तो अब चन्द्र-किरणोंसे, गीले चन्दनकी चर्चासे, धारागृहकी निरंतर वर्षासे, चारों ओर फैलती हुई चन्द्र-किरणोंसे, चमकते हुए उज्ज्वल हारोंके पहननेसे, मणि दर्पण रखनेसे, चन्दन-जलमें डुबाए हुए कमलके पत्तोंके आस्तरणसे, कमलके सरस डठलों तथा पत्तोंके बिछौनेसे, कोमल मृणालोंकी सेज रचनेसे, तथा विकसित कमल, कुमुद, कुवलयके बिछौनोंसे जलनेसे बाकी बचे, इस शरीरको देखके कंठ से लग कर उत्कण्ठाकी प्रज्वलित अग्निमें शीतल करती हूँ। यों कहती कहती वह, फूट फूटके रोती हुई मदलेखाको छोड़ कर, महाश्वेताके पास आकर, उसके गलेसे लिपट कर, सिसकार मुखसे ही फिर उससे बोली—

रूपी पवनसे आहत, उत्कण्ठा-रूपी तरंगसे लुढ़कती, आनन्दके आँसुओंके वेग-रूप लहरसे चंचल, टपकते हुए स्वेद-रूपी मकरन्दकी बूँदें बरसाती, मिचते हुए नेत्र रूपी कुमुदवाली, चन्द्रापीड़-रूपी चन्द्रमाके अस्तसे शोकग्रस्त हुई कुमुदिनीके समान कादम्बरी हृदय-वल्लभके ऐसी अवस्थामें होने पर भी, मानो समागमका सुख भोगती हो इस प्रकार, एक साथ ऊपर पड़ते केश कलापमेंसे गिरते फूलोंवाले मस्तकसे चन्द्रापीड़के चरणोंकी पूजा कर, निकलते स्वेदामृतसे गीले हाथोंसे उसको उठा कर गोदमें लेकर बैठ गई।

३७६—इतनेमें उसके स्पर्शसे मानो सजीवन होते चन्द्रापीड़के शरीरमेंसे, उस सब प्रदेशको मानो हिममय करता, अस्पष्ट रूपका, चन्द्रमाके समान धवल, कुछ ज्योति-सा झट प्रकट हुआ और तत्काल ही अन्तरिक्षमें, मानो, अमृत बरसाती हो ऐसी, शरीर रहित वाणी सुनाई दी—वत्से महाश्वेते, फिर भी मैं तेरा आश्वासन करता हूँ। तेरे पुण्डरीकका शरीर मेरे लोकमें, मेरे तेजसे पुष्ट होता हुआ, तेरे साथ समागमके लिए विनाश रहित स्थित है। यह दूसरा मेरे तेजसे युक्त, स्वयं ही विनाश-रहित, और विशेष कर कादम्बरीके कर-स्पर्शसे पुष्ट होता हुआ चन्द्रापीड़का शरीर, शाप दोषसे मुक्त होने पर भी, आत्मासे दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेवाले योगीके शरीरके समान, यहीं तुम्हारे दोनोंके विश्वासके लिए, शापक्षय तक भले ही रहे। न इसका अग्नि संस्कार करना, न इसे जलमें डालना, और न इसे फेंकना, परन्तु जब तक समागम न हो तब तक यत्नसे रखना।

३७७—ऐसे वचन सुन कर—यह क्या है?—यों हृदयमें विस्मित होकर पत्रलेखाके सिवाय सब परिजन आकाशकी ओर निर्निमेष दृष्टि करके [illegible] चित्रसे में खड़े रहे। परन्तु पत्रलेखा उस ज्योतिके—तुषारके समान शीतल तथा आह्लादक—स्पर्शसे सचेतन हो, उठ कर, मानो आनन्दसे [illegible], जल्दी दौड़ सईसके हाथोंमेंसे इन्द्रायुधको जबरदस्ती छुड़ा कर—[illegible] देवी तो जो होना होगा सो होगा ही, परन्तु मैं [illegible] बिना [illegible] अकेले दूर चले गए इससे तेरा [illegible] भर भी यहाँ ठहरना अच्छा [illegible]—यों कहती हुई उसके साथ ही अच्छोद सरोवरमें जा गिरी।

३७८—उन दोनोंके उसमें [illegible]

-आकारका एक तापस कुमार एक साथ बाहर निकला। जिसमे मानो शैवल-समूह चिपट गया था ऐसे शिर में से वह पानीकी बूँदें टपकाता था, उसकी लम्बी शिखा इधर इधर लटक रही थी, और मुँह पर बाल उलझ जाने तथा सस्कार न करने से मलिन होने के कारण जो बहुत दिन से ऊपर नहीं बाँधा गया था ऐसा जटा-कलाप धारण करता था। जो मानो मृणाल-तन्तुओंका बना मालूम होता था ऐसा जनेऊ उसके गीले शरीरसे चिपट रहा था, कोमल कमलिनीके उलटे पत्तेके समान सफेद—जीर्ण मदारवृक्षके—वल्कलका उसने परिकर बाँध रक्खा था। वह मुँह पर गिरती हुई जटाको हाथसे हटा रहा था और आँसुओंके बहाने भीतर प्रविष्ट हुए अच्छोदके जलको मानो लाल लाल नेत्रोंमें धारण कर रहा था। वह मुनिकुमार पानीमेंसे निकल कर दूरसे ही, वेगपूर्वक आँसू आ जानेसे आकुल होने पर भी एकाग्र दृष्टिसे देखती हुई, महाश्वेताके पास आकर शोकके कारण गद्गद् कठसे बोला—गन्धर्वराजपुत्री, जन्मान्तरमें मानो आए हुए इस जनको पहचाना या नहीं? यह प्रश्न सुन कर शोक तथा आनन्द दोनोंका एक साथ अनुभव करती हुई महाश्वेता सभ्रम-पूर्वक उठी तथा उसके चरणोंकी वदना करके बोली—भगवन् कपिञ्जल, क्या मै ऐसी पापिन हूँ कि आपको न पहचानूँ? अथवा मैं आत्मज्ञानसे शून्य हूँ इस कारण मुझमें यह सभावना ठीक भी है, क्योंकि देव पुण्डरीकका स्वर्गवास होने पर भी मै अज्ञानसे अत्यन्त उपहत होकर जीवन धारण करती हूं। कहिए तो उनको कौन उठा ले गया? क्यों ले गया? उनका क्या हुआ? वे कहाँ हैं? आपको क्या हुआ था कि इतना समय होने पर भी कुछ खबर न भेजी? देवके विना अकेले कहाँसे आए? महाश्वेताके प्रश्न सुन कर कपिञ्जल उत्तर देने लगा और विस्मयसे ऊँचा मुँह करके चारों ओर देखते कादम्बरीके परिजन तथा चन्द्रापीडके अनुगामी राजपुत्र उसको ओर देखने लगे।

आँखें खोल खोल कर उसे देखने लगे, घूँघटसे मुँह ढकनेवाली दिग्गागना अभिसारिकाएँ उसे आकाशमें रास्ता देने लगीं, और चंचल पुतली युक्त नेत्रोंवाली तारिकाएँ इधर उधरसे प्रणाम करने लगीं, ऐसे देवताओंके रास्तेमें होकर, आकाश-सरोवरके कुमुदाकरके समान, तारागणोंका अतिक्रमण कर वह चन्द्रलोकमें गया। उसके सब लोक चाँदनीसे रमणीय लगते थे। वहाँ महोदया नामकी सभामें एक बड़े चन्द्रकांतमय पलंग पर पुंडरीकके शरीर को रख कर वह मुझसे कहने लगा—कपिंजल, मुझे चन्द्रमा जान। संसारके हितके लिए उदय होकर मैं अपना काम करता था उस समय कामपीड़ासे प्राण छोड़ते हुए तेरे इस प्रियमित्रने मुझ निर्दोषको शाप दिया कि दुरात्मन्, दुष्ट चन्द्र, जैसे किरणोंसे संताप देकर और अनुराग उत्पन्न करके तूने मुझे प्राणप्रियाके समागम सुखके बिना प्राणोंसे वियुक्त किया है उसी तरह तू भी—जिसमें कर्मके अनुसार फल मिलता है ऐसे—इस भारतवर्षमें जन्म जन्ममें अनुरागी हो, समागम सुखके बिना, अत्यंत तीव्र हृदय वेदनाका अनुभव कर प्राण छोड़ेगा। यह सुन उसके शापकी अग्निसे मानो मैं भड़क कर प्रज्वलित हो गया और—अपने दोषका फल भुगतनेवाले इस विवेकहीनने मुझ निर्दोषको क्यों शाप दिया?—इस विचारसे क्रोध आ जाने पर—तू भी मेरी तरह सुख दुःख भोगेगा—यह शाप मैंने भी इसे दिया। परन्तु क्रोध शान्त होने पर स्वस्थ बुद्धिसे मैंने विचारा तब मुझे मालूम हुआ कि इसका महाश्वेताके साथ संबंध है। पुत्री महाश्वेता तो मेरी किरणोंसे उत्पन्न हुए अप्सराओंके कुलमें गौरीसे उत्पन्न हुई है और इस भर्ताका उसने स्वयं वरण किया है। परन्तु अब तो इसे अपने दोषसे ही मेरे साथ मृत्युलोकमें दो बार अवश्य जन्म लेना पड़ेगा, नहीं तो—जन्म जन्ममें—यह उक्ति निरर्थक हो जायगी। इसलिए जब तक यह शापके दोषसे छूटे तब तक इसका आत्मा-रहित शरीर विनष्ट न हो इस कारण मैं उठा लाया हूँ और पुत्री महाश्वेताको मैंने आश्वासन कर दिया है। इससे यह यहीं मेरे तेजसे पुष्ट होता हुआ शापके क्षीण होने तक रहेगा। अब तू जाकर यह वृत्तान्त श्वेतकेतुसे कह दे। उनका बड़ा प्रभाव है। कदाचित् वे कहीं कुछ उपाय करें। इतना कह कर उसने मुझे विदा किया।

२८०—मित्रके बिना शोकके वेगसे अधा होकर देवताओंके रास्तेमें दौड़तेमें मैंने एक अत्यंत क्रोधी वैमानिकको उलाँघ दिया। क्रोधकी अग्निसे मानो भस्म करता हो इस प्रकार भृकुटीसे विकराल हुए नेत्रोंसे मुझे देखकर उसने कहा—दुरात्मन्, मिथ्या तपोबल-गर्वित, आकाशके इतने चौड़े रास्तेमें, घोड़ेकी तरह उन्मत्त होकर चलतेमें तूने मेरा उल्लघन किया इसलिए घोड़ा होकर ही तू मृत्युलोकमें जन्म ले। यह सुन आँखोंमें आँसू भर कर और हाथ जोड़कर मैंने उनसे कहा—भगवन्, मित्रके शोकसे अंधा होनेके कारण मुझसे तुम्हारा उल्लघन हो गया, अवज्ञासे नहीं। इस कारण कृपा कर इस शापको शीघ्र दूर कीजिए। उसने कहा—मेरा कहना अन्यथा न होगा, परन्तु इतना मैं करता हूँ कि थोड़े काल तक भी तू जिसका वाहन होगा उसके मरने पर ही नहा कर शापसे छूट जायगा। तब मैंने फिर उससे कहा—भगवन्, जो यह बात है तो मैं इतनी प्रार्थना करता हूँ कि मेरा प्रियमित्र पुण्डरीक भी चन्द्रमाके साथ, शापके कारण, मृत्युलोकमें ही जन्म लेनेवाला है इसलिए आप दिव्य दृष्टि से देख कर इतनी भी कृपा करिए कि जिसमें घोड़ा होकर भी मेरा उसी मित्रके साथ अवियोगमें समय निकले। यह सुनकर, क्षणभर ध्यान कर, उसने कहा—तेरे स्नेहसे हृदय आर्द्र हो जानेके कारण मैंने देखा तो मालूम हुआ कि उज्जयिनीमें पुत्रके लिए तप करते हुए राजा तारापीड़के यहाँ, स्वप्नमें पहलेही सूचना दे, चन्द्रमा पुत्र रूपसे पैदा होगा। तेरा मित्र पुण्डरीकभी उसी राजा के शुकनास नामक मंत्रीका पुत्र होगा और तू उस महोपकारी चन्द्रापीड़ राजकुमारका वाहन होगा। उसका वचन सुनतेही मैं नीचेके महासागरमें जा पड़ा और वहाँसे घोड़ा होकर निकला। घोड़ा बन कर भी मेरी चेतना नहीं गई, जिससे मैं इसी प्रयोजनसे किन्नर-मिथुनके पीछे लगे हुए तुम्हारे भर्तार चन्द्रापीड़को इस जगह ले आया और पहलेके अनुरागके संस्कार से अभिलाषा करते हुए जिस युवकको तुमने बिना जाने शापाग्निसे भस्म कर डाला, वह भी मेरे प्यारे मित्र पुंडरीकका अवतार था।

सब लोकोंमें मुझे ही देखनेवाले, लोकान्तरमें जाने पर आपके विनाशके लिये मैं ही राक्षसी उत्पन्न हुई ! जले प्रजापति का मुझे पैदा करने और बड़ी आयु देनेका क्या यही प्रयोजन था कि बार बार मेरे सबबसे आपका मरण हो ! आपकी हत्या करके मैं पापिन किसे उलाहना दूँ ? क्या कहूँ ? क्या विलाप करूँ ? किसकी शरण जाऊँ ? कौन मुझ पर दया करेगा ? अब मैं आपसे यह प्रार्थना करती हूँ कि देव, प्रसन्न होकर दया करो। मुझे उत्तर दो। इन अक्षरोंके कहनेमें भी मुझे शरम लगती है। मेरा खयाल है कि आपको भी मुझ मन्दभागिनी पर विराग उत्पन्न हो गया है जिससे इतना विलाप करने पर भी मुझे उत्तर नहीं देते हो। हा ! अपने इस जीवन पर ग्लानि न होनेसे ही मेरा हनन हुआ ! यों कहती कहती महाश्वेता भूमि पर गिर पड़ी।

३८२—उसे इस तरह विलाप करती देख कपिंजल अनुकम्पा सहित बोला—गंधर्व-राजपुत्री, इसमें तुम्हारा क्या दोष है जो तुम अपनी अनिन्दनीय आत्माकी निन्दा करती हो ? अब केवल सुख-मय परिणामके अनुभव करनेके समय दु:खका क्या अवसर है जो तुम शोकसे अपनेको पीड़ित करती हो ? जो अत्यन्त असह्य था उसे तो तुमने समागमकी आशासे हृदयको [illegible] करके सहन कर लिया है। जिस प्रकार शाप दोषसे तुम दोनोंको यह दुःख मिला सो सब मैंने तुमसे कहा ही है और चन्द्रमाकी भी वाणी तुमने सुनी ही है। इसलिए तुम्हारी तथा मेरे मित्रकी जिससे भलाई न हो ऐसे शोकके वेगको छोड़ दो। दोनोंकी भलाईके लिए व्रत सहित करके जो योग्य [illegible] तुम करने लगी हो उसे [illegible] रहो। भली भाँति तप करनेसे असाध्य कुछ नहीं रहता। [illegible] [illegible] प्रभावसे महादेवका अत्यन्त दुर्लभ देह [illegible] प्राप्त किया था। इसी प्रकार [illegible] भी थोड़े ही दिनोंमें, उसी भाँति तपके प्रभावसे, मेरे मित्रके [illegible] [illegible] होगी। इस तरह उसने महाश्वेताको समझाया।

३८३—फिर महाश्वेताके शोकका भार शान्त होने पर विषादसे दीन [illegible] वाली कादम्बरीने कपिंजलसे पूछा—भगवन्, [illegible] और [illegible] [illegible] सरोवरके जलमें प्रवेश किया था। इसलिए उसका [illegible] हुआ सो [illegible] कहिए। उसने उत्तर दिया—राजपुत्री, [illegible] तुमने [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] नहीं जाना। इसलिए चन्द्रापीड़के [illegible] [illegible] [illegible]

वैशम्पायनका जन्म कहाँ हुआ, और पत्रलेखाको क्या हुआ—यह सब वृत्तान्त जाननेके लिए मैं, लोकत्रय जिनको प्रत्यक्ष हैं ऐसे, तात श्वेतकेतुके चरणोंमें जाता हूँ। यों कहता कहता ही वह आकाशमें उड़ गया।

३८४—उसके जानेके पीछे कादम्बरी विस्मयके कारण सब शोक भूल गई। चन्द्रापीडको देख उसकी आँखोंमेंसे आँसू टपकने लगे। जब राजपुत्र परिजन-सहित अपने अपने स्थानको चले गए तब वह महाश्वेतासे कहने लगी—प्रियसखी, तेरे साथ एक सी दुखिया बना कर भगवान् दैवने मुझको सुखहीन नहीं किया है। आज मेरा सिर ऊँचा हुआ। अब तुझे मुँह दिखाते मैं तथा प्रियसखी कह कर बोलतेमें मुझे शरम नहीं लगती है। आज ही मैं तेरी प्रियसखी हुई। अब मुझे जीने अथवा मरनेका कुछ दुःख नहीं होगा। मुझे और किससे पूछना है? अन्य कौन मुझे सलाह देगा? इस लिए अब इस समय जो करने योग्य हो वह तू मुझसे कह। मैं स्वयं कुछ नहीं जानती कि क्या करनेसे भलाई होगी। यह सुन महाश्वेताने कहा—प्रियसखी, प्रश्नका या उपदेशका यहाँ क्या प्रयोजन है। जो अलघनीय प्रियतमसमागमकी आशा तुझसे करावे वही करना चाहिए। पुण्डरीकका वृत्तान्त आज कपिंजलके मुखसे ठीक ठीक सुन ही लिया है। तब तो केवल बातोंसे ही आश्वासित होकर मैं और कुछ नहीं कर सकी थी। परन्तु तुझे [illegible] है, क्योंकि तेरा तो यह विश्वास-दायक चन्द्रापीडका शरीर [illegible] ही है। अगर यह बात न होती तो कुछ चिन्ता बराबर की जाती। [illegible] तब तक इसकी सँभाल करनेके सिवाय और [illegible] है? [illegible] देवताओंकी मिट्टी, पत्थर और काठकी प्रतिमाओंका, [illegible] लिए, पूजा तथा सत्कारसे उपचार किया जाता है, तब फिर [illegible] धारण कर आए हुए, प्रत्यक्ष देव चन्द्रमाकी, बिना आराधनाके [illegible] जाती है।

सब लोकोंमें मुझे ही देखनेवाले, लोकान्तरमें जाने पर आपके विनाशके लिये मैं ही राक्षसी उत्पन्न हुई! जले प्रजापति का मुझे पैदा करने और बड़ी आयु देनेका क्या यही प्रयोजन था कि बार बार मेरे सबबसे आपका मरण हो! आपकी हत्या करके मैं पापिन किसे उलाहना दूँ? क्या कहूँ? क्या विलाप करूँ? किसकी शरण जाऊँ? कौन मुझ पर दया करेगा? अब मैं अपने आप प्रार्थना करती हूँ कि देव, प्रसन्न होकर दया करो। मुझे उत्तर दो। इन अक्षरोंके कहनेमें भी मुझे शरम लगती है। मेरा खयाल है कि आपको भी मुझ मंदभागिनी पर विराग उत्पन्न हो गया है जिससे इतना विलाप करने पर भी मुझे उत्तर नहीं देते हो। हा! अपने इस जीवन पर ग्लानि न होनेसे ही मेरा हनन हुआ! यों कहती कहती महाश्वेता भूमि पर गिर पड़ी।

३८२—उसे इस तरह विलाप करती देख कपिंजल अनुकम्पा सहित बोला—गंधर्व-राजपुत्री, इसमें तुम्हारा क्या दोष है जो तुम अपनी अनिन्दनीय आत्माकी निन्दा करती हो? अब केवल सुख-मय परिणामके अनुभव करनेके समय दुःखका क्या अवसर है जो तुम शोकसे अपनेको पीड़ित करती हो? जो अत्यंत असह्य था उसे तो तुमने समागमकी आशासे हृदयको दृढ़ करके सहन कर लिया है। जिस प्रकार शाप दोषसे तुम दोनोंको यह दुःख मिला सो सब मैंने तुमसे कहा ही है और चन्द्रमाकी भी वाणी तुमने सुनी ही है। इसलिए तुम्हारी तथा मेरे मित्रकी जिससे भलाई न हो ऐसे शोकके वेगको छोड़ दो। दोनोंकी भलाईके लिए व्रत ग्रहण करके जो योग्य तप तुम करने लगी हो उसे करती रहो। भली भाँति तप करनेसे असाध्य कुछ नहीं रहता। पार्वतीने भी तपके प्रभावसे महादेवका अत्यंत दुर्लभ देहार्ध पद प्राप्त किया था। इसी प्रकार तुम भी थोड़े ही दिनोंमें, उसी भाँति तपके प्रभावसे, मेरे मित्रके उत्संगमें शोभायमान होगी। इस तरह उसने महाश्वेताको समझाया।

३८३—फिर महाश्वेताके शोकका भार शान्त होने पर विषादसे दीन मुख-वाली कादम्बरीने कपिंजलसे पूछा—भगवन्, तुम और पत्रलेखा दोनोंने इस सरोवरके जलमें प्रवेश किया था। इसलिए उसका क्या हुआ सो कृपा कर कहिए। उसने उत्तर दिया—राजपुत्री, पानीमें घुसनेके पीछे कुछ भी उसका हाल मैंने नहीं जाना। इसलिए चन्द्रात्मक चन्द्रापीडका तथा पुण्डरीकात्मक

[illegible]नका जन्म कहाँ हुआ, और पत्रलेखाको क्या हुआ—यह सब वृत्तान्त जाननेके लिए मैं, लोकत्रय जिनको प्रत्यक्ष हैं ऐसे, तात श्वेतकेतुके चरणोंमें जाता हूँ। यों कहता कहता ही वह आकाशमें उड़ गया।

३८४—उसके जानेके पीछे कादम्बरी विस्मयके कारण सब शोक भूल गई। चन्द्रापीडको देख उसकी आँखोंमेंसे आँसू टपकने लगे। जब राजपुत्र परिजन-सहित अपने अपने स्थानको चले गए तब वह महाश्वेतासे कहने लगी—प्रियसखी, तेरे साथ एक सी दुखिया बना कर भगवान् दैवने मुझको गुणहीन नहीं किया है। आज मेरा सिर ऊँचा हुआ। अब तुझे मुँह दिखानेमें तथा प्रियसखी कह कर बोलनेमें मुझे शरम नहीं लगती है। आज ही [illegible] तेरी प्रियसखी हुई। अब मुझे जीने अथवा मरनेका कुछ दुःख नहीं होगा। मुझे और किससे पूछना है? अन्य कौन मुझे सलाह देगा? इस लिए अब इस समय जो करने योग्य हो वह तू मुझसे कह। मैं स्वयं कुछ नहीं जानती कि क्या करनेसे भलाई होगी। यह सुन महाश्वेताने कहा—प्रियसखी, प्रश्नका या उपदेशका यहाँ क्या प्रयोजन है। जो अलंघनीय [illegible]समागमकी आशा तुझसे करावे वही करना चाहिए। पुंडरीकका वृत्तान्त आज कपिंजलके मुखसे ठीक ठीक सुन ही लिया है। तब तो केवल [illegible] ही आश्वासित होकर मैं और कुछ नहीं कर सकी थी। परन्तु तुझे [illegible] है, क्योंकि तेरा तो यह विश्वास-दायक चन्द्रापीडका शरीर [illegible] है। अगर यह बात न होती तो कुछ चिंता बराबर की जाती। [illegible] तब तक इसकी सम्हाल करनेके सिवाय और [illegible] देवताओंकी मिट्टी, पत्थर और काठकी प्रतिमाओंका, [illegible] लिए, पूजा तथा सत्कारसे उपचार किया जाता है, तब फिर [illegible] प्राप्त हुए, प्रत्यक्ष देव चन्द्रमाकी, बिना आराधनाके [illegible] है।

मणि जटित कङ्कणको छोड़ सब शृंगार-वेष तथा गहने उतार डाले। फिर स्नान करके शुद्ध हो, धुले हुए दो साफ कपड़े पहने और अधर पर लगे हुए ताम्बूलके रंगको बार बार धोया। रोकने पर भी बराबर चले आते आँसुओंके वेगसे उसके नेत्र चंचल हो गए और दुष्ट प्रकृतिवाले, अकार्य-कुशल, दग्ध विधिके प्रभावसे वह बिचारी बाला उस समय कुछ और ही अचिन्तित, अनुत्प्रेक्षित, अशिक्षित, अनभ्यस्त, अनुचित और अपूर्व आचरण करने लगी। जो सुगंधित फूल, धूप, लेप आदि सुरतोपभोगके लिए लाई थी उनसे ही उसने चन्द्रापीड़की मूर्तिकी देवताओंके योग्य पूजा की। देह-धारिणी शोक-वृत्ति मानो आर्त रूपसे हो, उसी क्षण मानो उसका रूप बदल गया हो, और शून्य-मुखी होनेसे मानो प्राण-विहीन हो ऐसी कादम्बरी चन्द्रापीड़के मुखकी ओर देखती, दुःखसे हृदय भर जाने पर भी आँसुओंको रोकने लगी और अत्यंत प्रबल शोकके कारण मरणसे भी अधिक कष्ट-दायक अवस्थाका अनुभव करने लगी। चन्द्रापीड़के चरणोंको यों का यों ही अपनी गोदमें रख कर उसने, दूरसे आनेके कारण खिन्न तथा क्षुधातुर और स्नान, पान, भोजन न करते हुए, दुःखाकुल होनेसे जिनको अपने आपेकी भी सुध नहीं थी ऐसे, राजपुत्रोंके तथा अपने परिजनोंके साथ निराहार रह कर वह दिन बिताया।

३८६ – जिस तरह सब दिन उसी प्रकार रात्रि बिताई। वह रात्रि गंभीर मेघोंके छा जानेसे भयानक मालूम होती थी, निरंतर गर्जनासे हृदयको कँपाती थी, मयूरोंकी मधुर केकाके कोलाहलसे चित्तको व्याकुल करती थी, [illegible] करते मेंडकोंके शब्दसे कानोंको सुन्न करती थी, जो देखी न जा[illegible] ऐसी बिजलीकी चमकसे नेत्रोंको पीड़ा देती थी, प्रचंड गर्जनासे पैदा [illegible] भयसे भुवनोंको ज्वर उत्पन्न करती थी और चमकते हुए बहुतसे खद्योतोंसे जर्जरित हुए—वृक्षोंकी घटाओंके तलेके—अंधकारसे अधिक भयंकर लगती थी। उस रात्रिको स्त्रियोंका स्वाभाविक भय दूर कर, चन्द्रापीड़के चरण-कमलोंका परित्याग न कर, अपने शरीरके खेदकी परवा न कर, जागते जागते ही मानो एक क्षण हो यों, बैठ कर उसने बिताया। प्रातःकाल चन्द्रापीड़का शरीर चित्रके समान उन्मीलित हुआ देख कर, धीरे धीरे उसे

हाथसे स्पर्श करके वह पास बैठी हुई मदलेखासे कहने लगी—प्रियसखी मदलेखा, न जाने प्रणयके या निर्विकारताके कारण हो परन्तु मुझे तो यह शरीर वैसेका वैसा मालूम होता है। इसलिए तू भी जरा सावधानतासे देख। यह सुन कर मदलेखाने उत्तर दिया—प्रियसखी, इसमें देखना क्या है? अन्तरात्माके वियोगसे इसके केवल व्यापार ही शान्त हो गए हैं; नहीं तो, खिले हुए कमलके समान, लक्ष्मीसे जरा भी उन्मुक्त न हुआ यह मुँह वैसा वैसा ही है। चंचल अग्रभागवाला यह स्निग्ध केश-कलाप वैसा ही है। चन्द्रकलाके समान ललाटकी शोभा वैसीकी वैसी है। थोड़े मुँदे नीले कमलके समान रुचिर, कानोंके छोर तक पहुँचते, दोनों नेत्र भी वैसे ही हैं। हास्य बिना भी मानो हँसते हों ऐसे गालोंको शोभा देते मुखके प्रान्तभाग वैसे ही हैं। नये पल्लवकी छविवाला अधर वैसेका वैसा ही है। प्रवालके समान लाल नख, उंगलियाँ तथा तलुवेवाले हाथ पैर वैसे ही हैं और सहज लावण्य तथा सुकुमारतासे युक्त अवयवोंका सौन्दर्य भी वैसा ही है। इसलिए मेरी समझमें हमारा सुनी हुई वाणी तथा कपिंजलके कहे हुए आपका वृत्तान्त सच्चा है। मदलेखाने यों कहा तब आनंदसे प्रफुल्लित होकर कादम्बरीने महाश्वेता को वह शरीर दिखाया और चन्द्रापीडके चरण-तलके अधीन जीवनवाले राजपुत्रोंको भी दिखाया।

खाने-पीनेकी आज्ञा दी । उनके स्नान-भोजन कर चुकने पर आपने भी महाश्वेताके तथा परिवारके साथ उन्हींके लाए हुए फल खाए और आहारके बाद फिर उसी तरह चन्द्रापीड़के चरणको गोदमें लेकर वह दिन भी बिताया ।

३८८—दूसरे दिन चन्द्रापीड़के शरीरके अविनष्ट रहनेका अधिक विश्वास होने पर वह मदलेखासे कहने लगी—प्रियसखी, प्राणनाथके शरीरकी सेवामें अब तब तक अवश्य हमको यहां रहना पड़ेगा । इसलिए तू जाकर माता-पितासे अत्यंत अद्भुत वृतान्त कह आ जिससे मेरे विषयमें वे अन्यथा विचार न करें अथवा दुःखी न हों । तू ऐसा करियो जिसमें वे मुझ दुःखिनीको आकर न देखें । माता-पिताको देख कर मुझसे शोकका वेग रोका नहीं रुकेगा । देवको प्राणरहित देख कर तो मैं रोई नहीं थी । अब मैं उनका जीवन निःसंशय होने पर अनाचरण करती हुई क्यों रोऊं ? इतना कह कर उसको विदा किया ।

३८९—वहाँसे वापिस आकर मदलेखाने कहा—प्रियसखी, आपकी अभिलाषा पूरी हुई । चित्ररथ तथा मदिराने यह संदेसा भेजा है कि बार बार गाढ आलिंगन कर, मस्तक सूंघ कर, हमारी ओरसे पुत्रीसे कहियो कि वत्से, अब तक हमारे मनमें भी यह बात नहीं थी कि तुझे जामाता सहित देखेंगे । इसलिए आज हमको परम आनंद है कि तूने अपने आप वर ढूँढ लिया और वह भी भगवान् लोकपाल चन्द्रमाका अवतार है । इसलिए थोड़े ही दिनोंमें शापका अंत होने पर, कल्याणसे युक्त हम जामाताके साथ ही तेरा आनंदके आँसू छलकाता मुख-कमल देखेंगे । यह सुन कर शान्त चित्तसे चन्द्रापीड़के [illegible] देवताके समान, सेवा करती करती वह वहीं रही ।

[illegible]०—जब वर्षाऋतु बीत गई, बादलोंके कारण अपने स्थानमें ही रहने [illegible] बंधन था उससे सब जीव-लोकका छुटकारा हो गया, दिशाएं मानो [illegible] पाने लगीं, फलोंके भारसे झुके शालिके वनोंसे ग्रामोंकी सीमाएं पीली पीली दीखने लगीं, कासके कुसुमोंसे वनस्थलियां सफेद हो गईं, प्रासादकी छतें काममें आने लगीं, मन्दारके फूलोंसे पल्लव मनोहर लगने लगे, फूलोंकी सुगंधसे रात्रि ठंडी हुई, प्रभातकी पवन निर्गुंडीके फूलोंकी परिमल-सहित चलने लगी, चाँदनीसे प्रदोष-समय रमणीय हुआ, [illegible] [illegible] हुए

कमलोंके परागकी महकसे दिन सुगंधित हुए, तट पर कोमल रेतीकी रेखायें, जलके लौट जानेके क्रमके अनुसार, तरंगोंके समान दीखने लगीं, नदियाँ सुखसे चलने लायक हुईं, कीचड़से अभावसे पगडंडियाँ सूख गईं, वे पैरोंसे नहीं उगनेके कारण घाससे ढक गईं और उनमें कहीं कहीं जरा जरा सूखी कीचड़में नए नए पैर पड़े दीखने लगे, उनका लोग फिर उपयोग करने लगे और वहाँ कीचड़ न रहनेके कारण पृथ्वी पर घोड़ोंके खुर फिसलना बंद हो गया तब एक समय चन्द्रापीड़के चरणोंके पास बैठी हुई कादम्बरीके निकट आकर मेघनादने विनय किया—देवी, युवराजको बहुत दिन हो जानेसे हृदयमें उत्पन्न हुए देव तारापीड़, देवी विलासवती, और आर्य शुकनासने दूत भेजे हैं। उनसे हमने आपका शोक शल्य दूर करनेके लिए जैसे बना वैसे सब खुलासा कह दिया है कि न तो तुम्हारे साथ देव चन्द्रापीड़को कुछ सँदेसा भेजा है, न देवी कादम्बरीको। इसलिए विलम्ब किए बिना ही वापिस जाकर तुम प्रजाकी पीड़ा हरनेवाले देव तारापीड़से यह सब हाल कह दो। जब हमने यों कहा तब वे कुपित होकर बोले कि आपने कहा सो ठीक है। हमारा परम्परासे चला आया स्नेह, भक्ति और आज्ञाकारिता रहने दो, तो भी सँदेसा लेकिन [illegible] गौरवसे उत्पन्न हुआ कुतूहल ही हमको देवका दर्शन करनेके लिए [illegible] प्रेरणा करता है। जो तुमने भी यह वृत्तान्त केवल सुना ही हो तब भी [illegible] सुनकर ही हमारा वापिस जाना ठीक है। पर जो तुमने उनके दर्शन [illegible] तो हम भी कुछ ऐसे अपुण्यशाली नहीं हैं कि देवको न देखें। [illegible] बहुत समय तक देवके चरणोंकी सेवा करके आत्माको पवित्र किया

३६१—इतना कह कर मेघनाद चुप हुआ तब उस क्षण, जिसका आश्वासन न हो सके ऐसी सुमंगलकी विकलताकी तर्कना कर, मानो शोकसे उबली जाती हो इस प्रकार भीतर भरे आँसुओंका, आकुल तथा तरल पुतलीवाले नेत्रोंमे, पान करती करती कादम्बरीने गद्गद् कण्ठसे बहुत देरमें जैसे तैसे उत्तर दिया - उन्होंने जानेसे इन्कार किया सो ठीक है। जो वे देवका दर्शन किए बिना यों ही लौट जायँगे तो वहाँ जाकर क्या कहेंगे? फिर यह वृत्तांत भी ऐसा अलौकिक है कि देखनेसे भी इस पर विश्वास नहीं होता। फिर देखे बिना क्या? जब केवल कपटसे प्रेमका अंकुर दिखलानेवाले, जीवनको अतिवल्लभ माननेवाले हम भी देवको देखते हैं, तब स्नेहकी सद्भावनासे प्राणोंकी परवा न करनेवाले नौकर चाकर न देखें—यह असम्भव है। इसलिए बिना विलम्ब उनको यहाँ आने दो, और देवको देखने दो। वे आगमन परिश्रमके साथ नेत्र सफल करके फिर वापिस जायँ। यह आज्ञा पाते ही मेघनादने उनको भीतर भेजा। दूरसे ही आँसू गिरा कर तथा पाँचों अगोंसे भूतलको स्पर्श कर, चन्द्रापीड़के चरण कमलोंको वन्दना करनेके प्रेमसे पलक खोल कर वे निश्चल दृष्टिसे देखते रहे। चन्द्रापीड़को इस तरह देखते हुए उनको, अनन्य दृष्टिसे बहुत देर तक देख कर, कादम्बरी आप ही कहने लगी—

३६२—भद्रजन, क्रमागत स्नेह तथा सद्भावसे उत्पन्न हुए शोकका वेग छोड़ दो। जिसकी अवधि नहीं दीखती और जिसके अन्तमें केवल दुःख हो ऐसी विपत्तिमें तो सचमुच मरनेसे डरनेवालोंको शोक होता है। परन्तु जिसके अन्तमें सुख है ऐसी आपदाको तो सामने दीखती सुखकी आशा ही रोक कर हृदयमें प्रवेश नहीं करने देती। यह वृत्तान्त ऐसा है कि इसमें केवल शोकके लिए अवकाश ही नहीं है बल्कि बड़े भारी विस्मयका अवसर है। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन? मनुष्योंमें पहले अन्यत्र नहीं देखा गया यह वृतान्त प्रत्यक्ष देखा और तुमने भी पहलेकी तरह विकार-हीन शरीरवाले देवका मुख देखा और जो समागम देवके बिना नहीं हो सकता उसेभी भविष्यमें सम्भव जाना। इसलिए अब तुम समाचार सुननेमें उत्सुक देव तारापीड़के पास जाओ। परन्तु प्रत्यक्ष देखने पर भी इस मृत शरीरके विनाश

हीन होनेका हाल मत कहना। केवल इतना कहना कि हमने देवको अच्छोद सरोवर पर देखा है, कारण यह है कि प्राणियोंका मरण तो अवश्य होता है। इसलिए इसका तो किसी भाँति विश्वास हो भी जाय, परन्तु प्राण-रहित जनके शरीरका अविनाश, देखने पर भी, विश्वासके अयोग्य होगा। इसलिए यह बात कह कर दुःखित गुरुजनोंको मरण संशयमें डालनेसे क्या प्रयोजन? जब प्राणनाथ फिर जी उठेंगे तब यह अत्यंत अद्भुत बात गुरुजनोंको स्वयं ही मालूम हो जायगी।

३६३—यह आज्ञा सुन कर वे बोले देवी, हम क्या करें? इस बातका अज्ञान दो बातोंसे ही हो सकता है - या तो हमारे न जानेसे अथवा न कहनेसे। परन्तु ये दोनों बातें हमारे हाथमें नहीं हैं। युवराज तथा वैशम्पायनके समाचार न मिलनेसे दुःखित हुए देव तारापीड़, देवी विलासवती और आर्य शुकनासने हमको सम्मानपूर्वक यहाँ भेजा है। इसलिए जब तक हम जीवित हैं, न जानेकी बात तो दूर रही, और जाने पर अत्यंत प्रिय पुत्रके समाचार सुननेके उत्सुक राजा, रानी तथा आर्य शुकनास पर—दुःखके कारण आँसुओंमें डूबे नेत्रोंवाले—मुखको देख कर, हमारा निर्विकार मुखसे [illegible] रहना असम्भव है। यह सुन कर 'तुमने ठीक कहा'—ऐसा कह कर कादम्बरीने मेघनादसे कहा—मेघनाद, मैं जानती हूँ कि परिचित लोगोंके लिए यह ठीक नहीं है, तथापि गुरुजनोंके चित्तको पीड़ा न हो इसलिए मैंने ऐसा कहा था। सामान्य दुःख भी क्या कम होता है? फिर इस महा [illegible] दुःखमें तो कहना ही क्या है? इसलिए इतना करना [illegible] के लिए किसी ऐसे आदमीको भेज दो जिसके कहने पर विश्वास हो जाय। जिसने यह सब वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा हो।

भी अनुराग न छोड़ें, फटकारने पर सामना न करे, सलाह पूछने पर हितकर तथा प्रिय बात कहे, कहे बिना अपना काम करे, काम करके कहते न फिरे, पराक्रम करके अपनी तारीफ न करें, उनकी प्रशंसा की जाय तो शरमा जायँ, बड़े बड़े युद्धोंमें, ध्वजाके समान, आगे दीखें, दानके समय भाग कर पीछे छुप जायँ, धनकी अपेक्षा स्नेह अधिक चाहें, जीनेसे पहले मरनेकी इच्छा करें, घरकी अपेक्षा स्वामीके पास सुखसे रहें, जिनको स्वामीकी चरण-सेवा करनेकी सदा तृष्णा रहे, स्वामीका चित्त प्रसन्न करनेसे कभी संतुष्ट न हों, स्वामीके मुख दर्शनके शौकीन हों, गुण-वर्णनमें उत्साह हो, स्वामीको नहीं छोड़नेमें कृपणता हो, आत्मा होने पर भी जिनकी सब इन्द्रिय वृत्तियाँ अपने अधीन न होकर स्वामीके अधीन हों, स्वामीकी आज्ञा बिना कुछ न देखनेसे जो दृष्टि होने पर भी अंधेके समान हों, सुनते हुए भी बहरेके समान हों, वाचाल होने पर भी मूकके समान हों, ज्ञान होने पर भी जड़के समान हों, हाथ पैर अखंडित होने पर भी अपंगके समान हों, नपुंसककी तरह आप कुछ न करते हों परन्तु स्वामीके चित्त-रूपी दर्पणमें प्रतिबिंबके समान हों। इसलिए इन सब सेवकोंका तो यह हाल है और देवके स्थान पर आप हैं। इसलिए अब जो आज्ञा हो उसका पालन हुआ समझिए। इतना कह कर चन्द्रापीड़के बालकपनके सेवक त्वरितकको बुला कर उनके साथ कर दिया।

३६५—बहुत दिनसे खबर न पानेके कारण दुःखित हुई विलासवती, चन्द्रापीड़के आनेके लिए अवन्तीके देवताओंकी मानता माननेको, जब वहाँकी ... के मंदिरमें गई तब एक साथ ही उसने जल्दी जल्दी दौड़ते परिजनोंसे सुना—देवी, आपके भाग्यकी वृद्धि हो! अवन्तीकी माताएँ आपके ऊपर प्रसन्न हैं। युवराजका समाचार लेनेके लिए भेजे गये दूत लौट आए हैं। यह सुन कर आनंदके आँसू छलकाती, पानीमें भीगी हुई नील कमल-दलकी मालाके समान, दूर तक फैलानेसे लंबी हुई दृष्टिसे मानो अर्चन करती हो यों बहुत देर तक दिशाओंको देख, अपने बच्चेसे वियुक्त हुई हिरनीके समान, जरा शांति पूर्वक साँस ले, प्राकृत स्त्रियोंके समान आर्त हो कर, विलासवती पूछने लगी—प्राणोंके बढ़ाने किसने मुझ पर अमृत बरसाया? किसने मुझ पर कृपा की? किसने उनको देखा? वे कितनी दूर हैं? क्या

उन्होंने मेरे बच्चेकी कुशलताका समाचार कहा? वह इस तरह पूछती थी कि इतनेहीमें दूरसे त्वरितकके साथ दूतोंको आता देख कर, राजाकी सेवाके तथा बाहरके भी उज्जायनीके निवासी इधर उधरसे झुंडके झुंड दौड़ कर उनसे पूछने लगे—क्यों? युवराज आए हैं क्या? तुम उनको कितनी दूर छोड़ आए हो? इन दिनों वे कहाँ होंगे? तुम उनसे कहाँ जाकर मिले थे? साधनमें केवल वाहन-सहित राजकुमारने अत्यंत कष्टदायक वर्षाऋतु कहाँ बिताई? घोड़े पर गए थे इससे मालूम होता है कि वह चलते चलते ही बीत गई होगी। त्वरितकको इसकी खबर होगी, पर यह बात जाननेसे भी क्या होगा? इसलिए यह बतलाओ कि जिनके लिए युवराजने इतना कष्ट उठाया उन वैशम्पायनको तुमने देखा या नहीं? उनको वापिस ले आए या नहीं? पत्रलेखाके साथ मेघनाद उनको मिला था क्या? क्यों? क्या देववर्धनने कुछ संदेशा नहीं कहलाया? क्या वह अब तक मुझे मित्र नहीं समझते? सहसा जीवन संशयमें डाल कर जबरदस्ती गए मेरे पुत्र बालधर्माके समाचार पूछतेमें भी मुझे तो भय मालूम होता है। युवराजने प्रसन्न होकर जो घोड़ा उसे दिया था वह जीवित है या नहीं? कृपा कर सवारोंमें प्रथम पृथुवर्मा नामके मेरे मामाके समाचार सुनाओ। हमारा खयाल है कि सवारोंको बड़ा कष्ट हुआ होगा। क्या महान् अश्वपति अश्वसेन कुशलपूर्वक हैं? वे हमारे ससुर हैं। यह अत्यन्त आश्चर्य है कि हमारे पिताने भी तुम्हारे साथ कुछ चिह्न नहीं भेजा। युवराजके भवनमें मेरे भाई भरतसेनको क्या तुमने देखा था? वह बड़ी जिम्मेदारी के पद पर है। क्या सेनापति भद्रसेन परिजन सहित कुशल पूर्वक है? क्या मेरा सेवा-व्यसनी पुत्र कुमारवर्मा वहाँ है? सेनाके अधिकारी ... आगे आनेके कारण युवराज उससे कुछ नाराज

जीवित रहेगी। ऐसे तथा ऐसे ऐसे अन्य प्रश्न पद पद पर किए जाने पर भी दूत, उत्तर दिए बिना, शोक-पूर्ण दृष्टिको नासिकाके अग्रभागमें स्थिर करके, आविष्ट हो इस प्रकार, रास्तेकी थकावटसे अंग शिथिल होने पर भी बड़ी बड़ी छलाँगें मार कर, उत्साह दिखानेसे खिन्न हुई गतिसे चलते थे, उनके फटे वस्त्र अत्यंत मलिन हो गए थे, सस्कारके बिना शरीर भी मलिन हो गए थे; बार बार रास्तेकी धूल पड़नेसे उनके बाल कर्कश हो गए थे; मार्गक्लेशके वे मानो चिह्न थे, श्रमके मानो आश्रय थे, अन्यमनस्कताके मानो पदन्यास थे, प्रवासके मानो आवास थे, और सब दु:खोंके मानो समूह थे। उनको देख कर माताके मंदिरके आँगनमें ठहर कर विलासवतीने उनको बुलानेकी आज्ञा दी।

३६९—तब अचानक रानीका दर्शन होनेसे उनके दुःखका आवेग दूना हो गया और मानो उनका उत्साह छिन गया हो, इन्द्रियाँ उन्हें छोड़ गई हों और मानो काष्ठमय हों इस प्रकार शून्य शरीरवाले वे दूत, निर्जीवके समान, आगे आए। वे प्रणाम भी न करने पाए थे कि इतनेमें ही विलासवतीने आँसुओंके कारण, अंधी होकर गिरती हो इस प्रकार, भयसे रपटते चरणकमलोंसे कितने ही पद आगे चल कर गद्‌गद् स्वरसे चिल्ला कर कहा—भद्रजनो, मेरे बेटेका जो समाचार हो वह मुझसे झटपट कहो। मेरा हृदय तो कुछ अन्यथा ही कहता है। उसको विश्वास नहीं होता। मेरे पुत्रको तुमने देखा या नहीं? यह प्रश्न सुन कर एक साथ भर आते आँसुओंको, भूतल पर मस्तक रख कर, प्रणाम करनेके बहानेसे गिरा कर, महा-दुःखसे सामने मुँह उठा कर, उन्होंने विनय किया—देवी, अच्छोद सरोवरके तीर पर हमने युवराजको देखा है। बाकीका हाल यह त्वरितक निवेदन करेगा। उनके इतना कहते ही आँसुओंसे छाए हुए मुखसे विलासवती बोली—यह बिचारा और क्या कहेगा? दूरसे ही बिना हर्षके पास आनेसे, हमारे प्रश्नोंके उत्तरसे रहित मस्तकोंसे, विषादसे दीन मुखोंसे, यत्नपूर्वक रोके हुए आँसुओंसे, दुःखी हुए नेत्रोंसे, और मेरे मुँहके सामने दृष्टि न करनेसे, जो कहनेको था वह तुमने ही कह दिया। हा वत्स! जगदेकचन्द्र! चन्द्रानन! चन्द्र-शीतल-प्रकृते! चन्द्राभिराम गुण! लोचनानन्ददायक! तुझे ...

हुआ कि तू नहीं आया! तात चन्द्रापीड़! मैं दुःखित होकर कहती हूँ; कोपसे उलाहना नहीं देती। माता, मैं जराभी विलंब नहीं करूँगा—यों मुझसे प्रतिज्ञा करके अन्यत्र रहना तुझे उचित नहीं है। पुत्र! तू जाता था तभी मने अपने हृदयकी शंकासे जान लिया था कि फिर तेरा मुख देखना दुर्लभ है। तू जबरदस्ती गया है। अब क्या करूँ? अथवा इसमें तेरा क्या दोष है। यह मुझ मंदभागिनीके अपुण्योंकी चेष्टा है। लोकमें अपुण्यवती भी होती हैं, परन्तु मेरी सी कोई पापिन नहीं होगी जिसके एक ही पुत्रको यों असमयमें ही बल-पूर्वक पकड़कर विधाता यहीं ले गया! जले विधिने मेरे साथ छल किया! बेटा, तेरे दूर होने पर भी मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ। एक बार वापिस चला आ। तेरे—माता—कहते हुए मुखको देखनेके लिए मेरा हृदय उत्कंठित हो रहा है। दुर्लभ पुत्र! मैं नहीं जानती कि जन्मके बाद तेरे बालकपनको याद करके शोक करूँ, या यौवनका विस्तार करती वर्तमान रूप-शोभाको, या तेरे अवलम्बनसे आगे स्थिर होनेवाली प्रभुताको विचार कर? मुझे विलाप करती देख कर, हृदयस्थित पुत्र, यों मत विचारियो कि मेरे बिना भी विलासवती जीती है। बेटा, तेरे बिना जीने पर भी मैं तेरे पिताको अब कैसे मुँह दिखाऊँगी? नहीं मालूम तू प्यारा है इससे या तेरी आकृति पर विश्वास होनेसे, या स्त्रीजनोंकी स्वाभाविक मूढ़ताईसे अब तक मेरा हृदय तेरे अनिष्ट पर विश्वास नहीं करता और इसी कारण सहस्र-धा नहीं फटता। मैं डरती हूँ, त्वरितकसे तेरा वृत्तान्त स्पष्ट करना नहीं चाहती। नहीं जानने लायक बात सुननेके पहले ही मर जाऊँ तो अच्छा हो! पुत्र, क्या तू [illegible] है कि पुत्रस्नेहके अयोग्य लोकलज्जा कर, विकलतासे क्या [illegible] ले बेटा, तेरे कहनेसे मैं चुप हो गई। अब नहीं रोऊँगी। पालक [illegible]! सहारा लेकर वह यों कह रही थी कि उसे मूर्छा आ गई।

का पान करता हो इस प्रकार बाहर निकला। क्या हुआ, क्या हुआ— यों आर्तस्वरसे कल कल करके सब ओरसे दौड़ते नगर निवासियोंके झुंडसे ऐसा मालूम होता था मानो वह नगर द्वार, चौबारे, कोट, मंदिर तथा तोरण-सहित उज्जयिनीका पीछेसे आकर्षण करता हो अथवा उनको बाहर निकालता हो। वह अवंती माताके मंदिरके पास आकर उतरा तो उसने क्या देखा कि अपने आँसू भरे शोकातुर मुखों को मोड़ कर दासियाँ आधे खुले नेत्रवाली, उष्ण कालकी कमलिनी समान, विलासवती पर चन्दन जल छिड़क रही हैं, केलेके पत्तों से हवा कर रही हैं और गीले हाथोंसे दाब दाब कर जैसे तैसे उसे सचेतन कर रही हैं। यह देख कर एक साथ बहती आँसुओंकी धारासे बाकी बची मूर्च्छाको दूर करनेके लिए मानो सिंचाई करता करता पास बैठकर, स्पर्श-रूपी अमृत बरसाते हाथ उसके ललाट पर, नेत्रों पर, गालों पर, छाती पर, तथा हाथों पर धीरे धीरे फेर कर, आँसुओंके कारण गद्गद् हुए स्वरसे वह कहने लगा—देवी, अगर वत्स चन्द्रापीड़का यथार्थमें कुछ अनिष्ट हुआ होगा तब तो जियेंगे नहीं। इसलिए पुत्रके लिए साधारण लोगोंके योग्य विकलता दिखा कर क्यों अपनेको तुच्छ बनाती हो? अपने अच्छे कर्म इतने ही होंगे। और क्या करें? हम अधिक सुखके भाजन नहीं हैं। छाती कूटनेसे भी अप्राप्य वस्तु इच्छाके अनुसार प्राप्त नहीं हो सकती। यहाँ एक कोई विधि है, वह जो चाहे सो करता है। वह किसीके भी अधीन नहीं है। इस तरह जब सब पराधीन हैं तब हमको क्या नहीं ... वत्सका अत्यंत दुर्लभ जन्मोत्सव किया, गोदमें बैठा कर उसका मुँह ... चित्त लेटे हुएका चुम्बन करके मस्तक पर चरण रखे, घुटनोंके बल ...त, धूलसे धूसर हुए, शरीरको गोदमें खिलानेके सुखका अनुभव किया, ...के अस्पष्ट तथा मनोहर बोल सुने; खेलतेमें उसकी बाल लीला देखी; विद्या पढ़ कर गुणवान् होने पर हृदयमें आनंद पाया, यौवन आने पर उसकी अमानुषी रूप-शोभा तथा शक्तिको प्रत्यक्ष देखा, यौवराज्याभिषेकके बाद मस्तकको सूँघा, दिग्विजयसे आकर प्रणाम करने पर उसके अंगोंका आलिंगन किया; मनोवाञ्छित वस्तुओंमें केवल इतना ही बाकी है कि उसको वधू समेत अपने पद पर प्रतिष्ठित करके तपोवनमें न जा सके। सब इच्छाओंका

प्राप्ति तो महापुण्य करनेसे ही हो सकती है। और पुत्रको हुआ क्या?—यह तो अभी तक किसीने स्पष्ट कहा नहीं। इतना तो मैंने आज परिजनोंकी बात-चीत में अस्पष्ट सुना था कि हमने जो दूत भेजे थे उनके साथ पुत्रका एक बाल सेवक त्वरितक आया है। वह सब हाल जानता है। उससे भी तो तुमने नहीं पूछा। इसलिए पहले उससे तो पूछ देखें। फिर जीने वा मरने का निश्चय किया जायगा। राजाके इस प्रकार कहने पर परिजनोंके पीछे बैठे त्वरितकको बुला कर और उसे दिखा कर प्रतीहारने कहा—महाराज, देखिए, दूरसे पृथ्वी पर मस्तक रख कर त्वरितक प्रणाम करता है।

३६८—राजाने उसको इस तरह देख, चन्द्रापीड़के स्नेह के कारण—आओ आओ—कह कर तथा उसके माथे पर हाथ फेर कर कहा—कहो, त्वरितक, कुमारको क्या हुआ कि वह मेरे, अपनी माताके और मंत्रीके लिखने पर भी नहीं आया? न उसने नहीं आनेका कुछ कारण लिखा। ऐसा राजाका प्रश्न सुन वह प्रस्थानसे लेकर जो जो हुआ सब कहने लगा। परन्तु चन्द्रापीड़के हृदय फटनेका हाल सुन कर राजा अत्यंत क्षुभित शोकसागर के आक्रमण से विह्वल हो गया और उसने हाथ लगा कर आर्तस्वरसे त्वरितकसे कहा—भाई, अब बस करो। जो कहनेका था सो तुमने कहा। मैंने भी जो सुननेका था सो सुना। मेरी जिज्ञासा पूर्ण हुई; सुननेका शौक जाता रहा; कान कृतार्थ हुए, हृदय आनंदित हुआ, प्रीति उत्पन्न हुई; सुख भी हुआ। हा वत्स, तूने अकेले ही हृदय फटनेकी वेदनाका अनुभव किया! वैशम्पायन पर तूने पूरी प्रीति निभाई! हम ऐसिया क्रूर तथा कर्म चाण्डाल हैं कि तेरा हृदय फटने पर भी [illegible] हैं! देवी, हमारा हृदय वज्रसारसे भी अधिक कठिन है, [illegible] उसके [illegible] टुकड़े नहीं होते। मरनेके दुःखसे भयभीत [illegible] उसके पीछे नहीं जायँगे। इसलिए उठो; पुत्र [illegible] तब तक ही उसके पीछे जानेका प्रयत्न करें। अरे [illegible] लोकके लिये ही खड़े हो? यही तो स्नेह [illegible] है। [illegible], महाकालके मन्दिरके पास, जल्दी चिता [illegible] लो। [illegible] इकट्ठा करो। कञ्चुकिनो,

क्यों इस तरह सिकुड़ कर खड़े हो ? जा कर अग्नि-प्रवेशके साधन बाहर लाओ। अब बेफायदा रोनेसे क्या होगा ? देवी, देर करनेसे विघ्न होगा इसलिए जल्दी सब खजाना ब्राह्मणोंको दिला दो। अब किसके लिए उसकी रक्षा करें। मुझ पुण्यहीनको खजानेकी रखवालीसे अब कुछ काम नहीं रहा। राजा-लोगो, जहाँ जाना हो वहाँ जाओ। अब तुम स्वतंत्र हो। प्रजाको आज ही इसका दुःख न मालूम हो यों करना। मेरे पुत्रकी तो अब केवल कहानी रह गई। और किसको राज्य सौंप कर मैं जाऊँ ? यों आर्तस्वरसे प्रलाप करता हुआ तारापीड़ अपनी पीड़ाकी परवा न करती हुई विलासवतीको पकड़ रहा था। उसे देख अत्यंत दीन त्वरितकने विनय किया—महाराज, हृदय फटने पर भी युवराज अभी शरीरसे जीवित हैं, उनका तथा आपदोषसे जिस प्रकार वैशम्पायनका जन्म हुआ उसका सब वृतान्त आप सुनिए।

२६६—यह अद्भुत बात सुन कौतुकके कारण तारापीड़ अपना शोक भूल गया। उसने निमेष-रहित नेत्रोंसे, मानो आविष्ट हो इस प्रकार ध्यान दे कर, जो जो त्वरितकने देखा था, सुना था या अनुभव किया था, सब सुना। अनेक चिह्नोंसे विश्वास उत्पन्न कराने पर भी श्रद्धाके अयोग्य, अत्यंत शोक-जनक तथा विस्मयोत्पादक, दुःखसे सुननेके योग्य तथा कुतूहल पैदा करने-वाला युवराज तथा वैशम्पायनका हाल सुन कर, जरा मुँह मोड़, उसने विचारसे निश्चल हुई पुतलीवाली दृष्टि शुकनासके—अपनेसे ही—मुँह पर डाली। मित्र तो आप दुःखी होने पर भी अपना दुःख छिपाकर मित्रका दुःख दूर [illegible] ही यत्न करते हैं; इसी कारण शुकनासने ऐसी अवस्थामें भी [illegible] [illegible] कहा—

[illegible]०—महाराज, जिसमें देवता, पशु-पक्षी तथा मनुष्य भ्रमण करते हैं [illegible] सुख दुःखमय तथा विचित्र संसारमें त्रिगुणात्मक[1] मूल-प्रकृतिका [illegible] होनेसे, परमाणुसे लेकर ब्रह्माण्ड तककी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार [illegible] वाले ईश्वरकी[2] इच्छासे, अथवा धर्माधर्मके साधन—इष्ट अनिष्ट फलकी

१—सांख्य मत।

२—नैयायिक-मत।

प्राप्ति करानेवाले—शुभाशुभ[1] कर्मोंके—फल देनेके—स्वभावसे, अथवा[2] अपने आप ही अनेक प्रकारसे उत्पन्न होते, स्थित रहते या नाशपाते—नियत व्यवस्था-वाले—स्थावर-जंगमोंकी कदाचित् कोई ऐसी अवस्था नहीं है जो संभव न हो। इसलिए क्यों आप इस बातके सत्यासत्यके विषयमें विचार करते हैं? यदि आप इसमें युक्ति ढूंढते हैं तो यहाँ कितनी ही युक्ति-रहित बातें हैं जो बिलकुल ठीक हैं और शास्त्रके प्रमाणसे ही समझी जा सकती हैं। मुद्रातंत्र[3] अथवा मानने विषसे मूर्च्छित हुए आदमीका विष उतारनेमें क्या युक्ति है? लोह-चुम्बकने लोहके आकर्षण अथवा भ्रमणमें क्या है? वैदिक अथवा अवैदिक मंत्रोंसे अनेक प्रकारके कर्मोंकी सिद्धि होनेमें क्या है? अनेक प्रकारके द्रव्योंके संयोगसे मरण, काम आदिकी उत्पत्ति, अपहरण, वशीकरण तथा विद्वेषणकी शक्ति उत्पन्न होती है। अन्य ऐसी ऐसी बहुतसी बातोंमें शास्त्रका ही प्रमाण है, और पुराण, रामायण, महाभारत आदि सब शास्त्रोंमें तो अनेक प्रकारके शापके वृत्तान्त दिए ही गए हैं—जैसे महेन्द्र-पद प्राप्त करनेवाला राजर्षि नहुष,[4] अगस्त्यके शापसे, अजगर हो गया था, वसिष्ठ-पुत्रके शापसे सौदास[5]

१—मीमांसक मत।

२—शून्य वाद।

३—तंत्र शास्त्रके अनुसार मंत्र पढ़कर उँगलियोंसे झाड़ना।

क्यों इस तरह सिकुड़ कर खड़े हो ? जा कर अग्नि-प्रवेशके साधन बाहर लाओ। अब बेफायदा रोनेसे क्या होगा ? देवी, देर करनेसे विघ्न होगा इसलिए जल्दी सब खजाना ब्राह्मणोंको दिला दो। अब जिसके लिए उसकी रक्षा करें। मुझ पुण्यहीनको खजानेकी रखवालीसे अब कुछ काम नहीं रहा। राजा-लोगो, जहाँ जाना हो वहाँ जाओ। अब तुम स्वतन्त्र हो। प्रजाको आज ही इसका दुःख न मालूम हो यों करना। मेरे पुत्रकी तो अब केवल कहानी रह गई। और किसको राज्य सौंप कर मैं जाऊँ ? यों आर्तस्वरसे प्रलाप करता हुआ-तारापीड़ अपनी पीड़ाकी परवा न करती हुई विलासवतीको पकड़ रहा था। उसे देख अत्यन्त दीन हरितकने विनय किया—महाराज, हृदय फटने पर भी युवराज अभी शरीरमें जीवित हैं, उनका तथा शापदोषसे जिस प्रकार वैशम्पायनका जन्म हुआ उसका सब वृत्तान्त आप सुनिए।

२६६—यह अद्भुत बात सुन कौतुकके कारण तारापीड़ अपना शोक भूल गया। उसने निमेषरहित नेत्रोंसे, मानो आविष्ट हो इस प्रकार ध्यान दे कर, जो जो हरितकने देखा था, सुना था या अनुभव किया था, सब सुना। अनेक चिह्नोंसे विश्वास उत्पन्न कराने पर भी श्रद्धाके अयोग्य, अत्यंत शोक-जनक तथा विस्मयोत्पादक, दुःखसे सुननेके योग्य तथा कुतूहल पैदा करने वाला युवराज तथा वैशम्पायनका हाल सुन कर, जरा मुँह मोड़, उसने विचारमें निमग्न हुई पुत्रवाली दृष्टि शुकनासके—अपनेसे ही—मुँह पर डाली। मित्र लोग आप दुःखी होने पर भी अपना दुःख छिपाकर मित्रका दुःख दूर करनेका ही यत्न करते हैं; इसी कारण शुकनासने ऐसी अवस्थामें भी स्मरण कर

ने कहा—

"दागाज, जिसमें देवता, पशु-पक्षी तथा मनुष्य भ्रमण करते हैं इस दुर्गम तथा विचित्र संसारमें त्रिगुणात्मक[1] मूल-प्रकृतिसे ... होनेसे, परमाणुसे लेकर ब्रह्माण्ड तककी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार ... ने ईश्वरकी[2] इच्छासे, अथवा धर्माधर्मके साधन—इष्ट अनिष्ट ... की

1—सा य मत।

प्राप्ति करानेवाले—शुभाशुभ[1] कर्मोंके—फल देनेके—स्वभावसे, अथवा[2] अपने आप ही अनेक प्रकारसे उत्पन्न होते, स्थित रहते या नाश पाते—नियत व्यवस्थावाले—स्थावर-जंगमोंकी कदाचित् कोई ऐसी अवस्था नहीं है जो सम्भव न हो। इसलिए क्यों आप इस बातके सत्यासत्यके विषयमें विचार करते हैं? यदि आप इसमें युक्ति ढूँढते हैं तो यहाँ कितनी ही युक्ति-रहित बातें हैं जो बिलकुल ठीक हैं और शास्त्रके प्रमाणसे ही समझी जा सकती हैं। मुद्राबंध[3] अथवा ध्यानसे विषसे मूर्च्छित हुए आदमीका विष उतारनेमें क्या युक्ति है? लोह-चुम्बकसे लोहेका आकर्षण अथवा भ्रमणमें क्या है? वैदिक अथवा अवैदिक मन्त्रोंसे अनेक प्रकारके कर्मोंकी सिद्धि होनेमें क्या है? अनेक प्रकारके द्रव्योंके संयोगसे मरण, घाम आदिकी उत्पत्ति, अपहरण, वशीकरण तथा विद्वेषणकी शक्ति उत्पन्न होती है। अन्य ऐसी ऐसी बहुतसी बातोंमें शास्त्रका ही प्रमाण है और पुराण, रामायण, महाभारत आदि सब शास्त्रोंमें तो अनेक प्रकारके ऐसे वृत्तान्त दिए ही गए हैं—जैसे महेन्द्र पद प्राप्त करनेवाला राजर्षि नहुष,[1] अगस्त्यके शापसे, अजगर हो गया था, वसिष्ठ पुत्रके शापसे सौदास[4]

1—मीमांसक मत।

2—स्वभाववाद।

राक्षस हो गया था; शुक्राचार्यके शापसे ययाति[१] जवानीमें ही बूढ़ा हो गया था, पिताके शापसे त्रिशंकु चांडाल हो गया था, सुना जाता है कि स्वर्गवासी महाभिष[२] नामका राजा इस लोकमें शांतनुके रूपमें पैदा हुआ था। उसके पत्नीत्वको प्राप्त हुई गंगाके आठों वसु शापदोषसे मनुष्य होकर पैदा हुए थे। औरोंको रहनेदो। यह आदिदेव भगवान् अज स्वयं ही जमदग्निके पुत्र हुए थे, और सुना जाता है कि अपने चार भाग करके दशरथ राजर्षिके यहाँ पैदा हुए थे, इसी तरह मथुरामें वसुदेवके यहाँ भी। इसलिए मनुष्य लोकमें देवताओंका पैदा होना जरा भी असंभव नहीं है और जिनका हाल ऊपर कहा गया है उन मनुष्योंसे आप गुणोंमें कुछ कम नहीं हैं, और चन्द्रमा भगवान् नारायणसे बढ़ कर नहीं है। तो अब इसमें असंभव क्या है? और गर्भ रहनेकोथा तब आपने देवीके मुखमें चन्द्रमाको प्रवेश करते देखा ही था। इसी तरह मैंने स्वप्नमें पुंडरीकको देखा था। इसलिए इन दोनोंकी उत्पत्तिके विषयमें तो कुछ संदेह ही नहीं है। विनष्ट होनेके अनंतर शरीरका अविनाश कैसे हुआ अथवा पुनरुज्जीवन कैसे होगा—इसमें सब लोकोंमें विदित प्रभाववाला केवल अमृत ही कारण है, और चन्द्रमामें अमृतका होना कहा ही जाता है, इस लिए यह सब बात जैसे कही गई वैसी ही आपको माननी चाहिए। फिर ऐसे सब लोकोंके आल्हाददायक, उसके जैसे आकार तथा कांतिवालेका अन्यथा होना संभव ही नहीं है। इसलिए थोड़े ही समयमें, आपका अंत होने पर, मंगलोंसे पूर्ण, गंधर्वपुत्रीके साथ विवाह होनेके बाद, बहूके साथ आँसू गिरा

१—ययाति शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीको छोड़कर असुर कन्या शर्मिष्ठा [प्यार] करने लगा। इस पर शुक्राचार्यने शाप देकर उसे वृद्ध बना दिया।

२—राजा महाभिषने एक हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञ किए। [उसका] फल यह मिला कि मृत्युके बाद उसने देवताओंके बीचमें स्थान प्राप्त [कि]या। एक दिन देवता महाभिषके साथ ब्रह्माके पास आए थे और वहीं गंगा भी आई। हवासे गंगाका वस्त्र उड़ गया तब सब देवताओंने तो अपने मुँह नीचे कर लिये पर महाभिष उसे देखता रहा। तब ब्रह्माने इसे शाप दिया कि तू फिर मनुष्य होकर जन्म लेगा तथा गंगा तेरी पत्नी होगी। तब महाभिषने शांतनु होकर जन्म लिया।

पर पैरों पड़ने, चंद्रापीड़ नाम धारण करके पुत्रके रूपमें आए हुए लोकपाल चन्द्रमाके दर्शनसे ही जन्मसे हुआ आपका मन संताप दूर हो जायगा। उनका यह आप हमको तो वर ही हुआ। इसलिए इस विषय में आप या महारानी जरा भी शोक न करें, बल्कि मंगल-क्रियाओं का आरंभ करें; इष्ट देवताओंकी आराधना तथा द्रव्यके दानसे अन्य जन्ममें उपार्जित पुण्यकी वृद्धि करें, अपुण्यका भी यम, नियम, कष्ट देनेवाले व्रत, तथा उपवासादि तप क्लेशसे नाश करें और जो कुछ इस समय और भी अच्छा काम सुना जाता हो या जाना गया हो उसे भी आजसे ही आरंभ कर दें तथा करा दें। वैदिक अथवा अवैदिक कर्मोंके लिए असाध्य कुछ भी नहीं है। महाकष्टसे प्राप्त हुए इन दोनोंकी उत्पत्ति भी इसी तरह हुई थी।

४०१—शुकनासके यों कहने पर राजाने दुःखित अवस्थामें ही उत्तर दिया—आपने जो कुछ कहा उसे अन्य कौन समझ सकता है, तथा अन्य कौन हमको समझा सकता है, अन्य किसका वचन हमको मानना चाहिए। परन्तु वैशम्पायनको हुआ यह देख कर मेरे पुत्रका हृदय फट गया—यह घटना मेरी दृष्टिके सामने फिर रही है। इसके सन्मुख और सब घटनाएँ तुच्छ मालूम होती हैं। मुझको वही दीखता है, वही सुनाई देता है, उसीकी तर्कना करता हूँ। इसलिए जब तक पुत्रका मुख प्रत्यक्ष नहीं दीखेगा तब तक मैं हृदयका समाधान नहीं कर सकूँगा। जहाँ मेरी ऐसी अवस्था है वहाँ देवीको समझानेकी तो बात ही दूर रही। इसलिए जीवन धारण करना है तो वहाँ जानेके सिवाय अन्य उपाय नहीं है। यह बात निश्चय समझना।

फिर चन्द्रापीडके दर्शनकी आशाका अवलंबन करते, सर्वनाशके निवारणके साधन, पुत्र-मुख देखनेके उत्सुक इस हृदयको गमनसे विनोद होने दो। उसके यों कहते ही शुकनासके एक अत्यंत विश्वस्त वृद्ध ब्राह्मणने पास आकर आशीर्वाद-पूर्वक कहा—देवी, सब लोगोंसे इस असत्य बातको कान-कान सुन कर हृदयमें व्याकुल हुई मनोरमा आप ही दौड़ती दौड़ती आ गई है, परन्तु राजाकी लज्जासे यहाँ नहीं आई। माताके मंदिरके पीछे खड़ी है और आपसे पूछती है कि इन लोगोंने क्या कहा? क्या मेरा पुत्र वैशम्पायन जीता जागता है? क्या वह शरीरसे स्वस्थ है? युवराजसे क्या वह फिर मिला था? कहाँ है? कितने दिन पीछे दोनों आवेंगे? उसके, मृत्युके समाचारसे भी अधिक कष्ट-दायक, इस प्रश्नको सुन राजा, शोकसे मानो विदीर्ण हो गया हो इस तरह, सौगुने बढ़े हुए शोकसे रोती विलासवतीसे कहने लगा देवी, तुम्हारी प्रियसखीने दोनों पुत्रोंके संबंधमें कुछ भी नहीं सुना है, और यदि सुनेगी तो कदाचित् प्राण ही छोड़ बैठेगी। इसलिए उठो, तुम आप ही, भीतर जाकर, सब हाल कहकर इस प्रकार अपनी प्रियसखीका आश्वासन करना, कि आर्य शुकनासके साथ वह भी चले। यों कहकर उसने परिवार सहित विलासवतीको उठाकर वहाँ भेजा और आपने भी शुकनासके साथ जानेकी सामग्री तैयार कराई।

१०३—फिर इस तरह राजाके चलने पर उसके अनुरागसे, चन्द्रापीडके स्नेहसे, आश्चर्य देखनेके कुतूहलसे तथा आगे गए पिता, पुत्र, भाई, मित्र और स्वजनोंसे मिलनेके लिए, गृहरक्षकोंके सिवाय उज्जयिनीके सब लोग तैयार हो गए। नगर तो जानेसे [illegible] होगा—यह सोच कर [illegible] भी परिवार सहित, मार्गका मानो पार करता हुआ, एक दिनमें ही पहुँच जाता था, [illegible] पीछे [illegible] बैठे हुए [illegible] पूछता पूछता कि—अब हम लोग कहाँ तक पहुँचे हैं, कितने दिनमें पहुँच जायँगे—इस प्रकार उत्कंठित हृदयसे [illegible] पूछता, लगातार [illegible] थोड़े ही दिनोंमें अच्छोदके पास आ पहुँचा। वहाँ आकर सबको [illegible] दूर ही ठहरा कर पहले उसने अपने अनुचर [illegible] भेजा।

४०४—फिर जब सत्कारका त्याग करनेसे मलिन तथा कृश शरीरवाले, पृथ्वी पर माथा नवाते, आँसुओंके कारण दीन दृष्टिवाले, जीवित रहनेकी लज्जासे मानो रसातलमें प्रवेश करना चाहते, आपसमें एक दूसरेकी ओटमें [illegible] अपना अपना मुँह छिपाते,—अक्षत होने पर भी मानो हत हुए हों, वस्त्रादि पास होने पर भी मानो लुट गए हों, जीते हुए भी मानो मरे हुए हों और सम्भ्रम-पूर्वक आते हुए भी मानो चरण पीछेकी तरफ रखते हुए से—प्राणोंके साथ ही गले हुए उत्साहवाले, आँसुओंके साथ ही मुक्त हुए आत्मावाले, विकलताके साथ ही आगे बढ़ते, चन्द्रापीडके आश्रयसे जीवन निर्वाह करनेवाले, आगे आते मेघनाद-सहित सब राजकुमारोंको [illegible] आता देखा तब, पुत्र-शोक-रूपी तरंगके उछलनेके वेगसे दुःखी होने पर भी मानो फिर सँभल कर, चन्द्रापीडके शरीरके अविनाशके विषयमें मनमें दृढ़ विश्वास हो जानेके कारण पीछे मुड़ कर, उसने परदेदार जीन पर बैठी विलासवतीसे कहा—देवि, तुम्हारे भाग्यकी वृद्धि हो। पुत्रका शरीर सचमुच अविनष्ट है। देखो, ये सब उसके चरण-कमलके आधारसे निर्वाह करनेवाले राजकुमार उसके चरणोंके पाससे आते हैं। यह सुन कर उसने अपने हाथसे ही परदेका पल्ला जरा हटा कर, निश्चल दृष्टिसे, पुत्रके समान [illegible] सामने बहुत देर तक देखा। फिर निरंतर अश्रुधारा बहाती हुई विलासवती धैर्य छोड़ कर ऊँचे स्वरसे चिल्ला कर रोई कि अरे पुत्र, तेरे साथ [illegible] इतने राजपुत्रोंके बीचमें केवल तू ही क्यों नहीं दीख

४०५—इतनेमें, चन्द्रापीड़के गुरुजनोंका आना एक साथ सुन कर आगे फैलते हुए बड़े बड़े मोतियोंके समान आँसू गिराती हुई महाश्वेता—हा! मैं पापिनी, दुःखभागिनी विनष्ट हुई, केवल अपकार करनेमें चतुर जला विधि जाने कब तक मुझ—मरण भूली हुई—को अनेक प्रकारसे जलाया ही करेगा—यों कहती हुई दौड़ कर लज्जासे गुफाके भीतर चली गई! कादम्बरी भी यह सुन सत्वर दौड़ती हुई सखियोंके शरीरका सहारा लेती लेती घुप चाप मूर्च्छाके अन्धकारमें जा गिरी। उन दोनोंकी ऐसी अवस्था हो रही थी तब शुकनासका सहारा ले कर राजा आश्रममें आया। उसके पीछे मनोरमाके सहारे चलती, आँसू भरी अत्यन्त लंबी दृष्टि आगे दौड़ाती—मेरा पुत्र कहाँ है?—यों पूछती पूछती विलासवती आई। आकर, मानो निद्रावश हो यों सहज कान्तिसे युक्त तथा देहकी सब चेष्टाओंसे रहित अपने पुत्रको देख पुत्र वत्सला विलासवती, तारापीड़ आया न था तब तक ही, सहारा देती मनोरमाको छोड़ कर दूरसे ही दोनों हाथ पसार कर, वेगसे गिरनेके कारण जर्जर हुए आँसुओंसे तथा स्तनप्रस्रवसे पृथ्वीको भिगोती—आ, दुर्लभ पुत्र, बहुत दिनसे तेरा दर्शन हुआ है, मुझे उत्तर दे, एक बार तो मुझे देख, बेटा, तुझे यों रहना नहीं सुहाता, उठ कर, गोदमें आकर पुत्रके योग्य स्नेह दिखा, बालकपन भी तूने कभी मेरा वचन नहीं टाला, फिर आज क्यों मुझ विलाप करती हुईको भी तू नहीं सुनता? बेटा, किसने तुझे गुस्सा दिलाया है? मैं पैरों पड़ कर तुझे मनाती हूँ, पुत्र चन्द्रापीड़, तेरे स्नेहके कारण ही इतनी दूर

पीड़ाका आलिंगन किए बिना ही अपने—सब प्रजाकी पीड़ा हरनेमें समर्थ—हाथोंसे सहारा देकर कहा—देवी, यद्यपि हमारे पुण्यसे पुत्र रूपमें प्राप्त हुए हैं तो भी यह देवता-मूर्ति हैं, इसलिए इनका सोच नहीं करना चाहिए। इस कारण मनुष्योंके योग्य शोक करना छोड़ दो। शोक करनेसे कुछ नहीं होता। रोने पीटनेसे केवल गला ही फटेगा, हृदय नहीं। निरर्थक[1] प्रलाप ही मुखमेंसे निकलेगा, प्राण नहीं; निरामय[2] नयन-जल ही गिरेगा, शरीर नहीं। फिर पुत्रका केवल अदर्शन ही हमको पीड़ा देता था सो तो मुख देखनेसे दूर हुआ। दूसरे, ऐसी अवस्थामें हम दोनोंको भी बड़ा धैर्य रख कर मनोरमा तथा शुकनासको धैर्य बंधाना चाहिए, क्योंकि उनका वैशम्पायन तो परलोकवासी हो गया। उन्हें भी रहने दो, पर जिसके प्रभावसे पुत्रके फिर जीवन-प्राप्ति-रूप अभ्युदयका महोत्सव किया जायगा वही यह गंधर्व-राजपुत्री—तुम्हारी बहू—हमारे आने से शोक-तरंगमें डूब कर मूर्छित हो गई है और नाम ले ले कर रोती जाती फिर सखियोंसे चेतना ग्रहण कराने पर भी होशमें नहीं आई है। इसलिए उसे तो उठा कर गोदमें बैठा लो और सचेतन करो। फिर चाहो जितना रो लेना।

यह उसे न सूझ पड़ा। मानो लज्जाके वश हो इस प्रकार उसे मदलेखाने गोदमेंसे उतार कर गुरुजनोंको क्रमपूर्वक वन्दना कराई। उस समय उन्होंने आशीर्वाद दिया—आयुष्मती, बहुत काल तक सौभाग्यवती रहो! इस प्रकार आशीर्वाद दे कर, धीरेसे उसे उठा कर विलासवतीके पीछे बहुत ही पास [illegible] कर पकड़ रक्खा। कादम्बरीको सचेतन देख, चन्द्रापीड़को ही फिर जीता हुआ मान, राजाने उसके मस्तकका गाढ़ आलिंगन किया तथा चुम्बन करता, देखता, स्पर्श करता राजा बहुत देर ठहर कर, मदलेखाको बुला कर कहने लगा—हमें केवल दर्शनोंका सुख ही प्राप्त करना था सो मिल गया, इसलिए जिस तरह इतने दिनसे बहू पुत्रके शरीरका उपचार करती थी उसे, हमारे आनेकी रुकावट या लज्जासे, जरा भी मत छोड़ना। हम तो केवल निष्प्रयोजन देखनेवाले ही हैं। यहाँ हमारे रहनेसे क्या और जानेसे भी क्या? जिसके हाथके स्पर्शसे पुष्ट होकर यह अविनाशी बना हुआ है वही बहू इसके पास बनी रहे। यों कह कर वह वहाँसे बाहर आया।

४०८—बाहर आकर, तैयार किए गए अपने डेरेमें न जाकर, [illegible] रहने योग्य, आश्रमके पास ही, एक शुभ्र शिलातल युक्त लतामण्डपमें जाकर, अपने समान दुःखवाले सब राजा लोगोंको बुला कर, [illegible] सम्मानपूर्वक कहने लगा—आप यह न समझना कि शोकके आवेगसे [illegible] मैं आज इसे अङ्गीकार करता हूँ। पहले ही मैंने यह विचार किया था कि [illegible] चन्द्रापीड़का मुख देखने पर [illegible] भार उसे सौंप कर, किसी आश्रममें जाकर बुढ़ापा व्यतीत करूँगा। सो तो भगवान् यमने [illegible] हुए विपरीत कर्मोंने यों बिगाड़ डाला। अ।

हो जाता है इसलिए किसी सुपात्रको निज पद देकर, जिनकी बाकी अवस्था बुढ़ापेके अधीन हो गई है ऐसे, निष्प्रयोजन स्थितिवाले, सब सुख रहित, मांस पिंडसे जो परलोकके सुखका उपार्जन हो तो वह लाभ ही है। इसलिए इस विषयमें आपसे प्रार्थना करता हूँ। इतना कह सब अपने अधीन उचित सुखोंका भी परित्याग कर, वनवासके अनुचित दुःखको अंगीकार कर, वृक्षोंके तलेको महल मान कर, रनिवासकी स्त्रियोंकी प्रीतिको लताओंमें लाकर, परिचित जनोंका स्नेह हिरनों पर, वस्त्रोंकी रुचि चीर-वल्कलोंमें, केश रचनाका प्रयत्न जटाओंमें, आहारका स्वाद कन्द-मूल-फलोंमें, शस्त्र धारण करनेका व्यसन रुद्राक्ष-मालाओंमें, प्रजा-पालन-शक्ति समित्, कुश तथा फूलोंमें, परिहास-युक्त आलाप धर्म-कथाओंमें, युद्ध-रस शान्तिमें, जयकी इच्छा परलोकमें, खजानेकी स्पृहा तपमें, आज्ञा मौनमें, सब उपभोगोंका प्रेम आश्रममें, और पुत्र-स्नेह शुकोंमें रख, तपस्वियोंके योग्य क्रियाएँ करता हुआ, कादम्बरी तथा महाश्वेताके द्वारा किसी तरहसे लज्जा छोड़ कर प्रति दिन किए जाते गन्धर्व लोकके योग्य उपचारको स्वीकार किए बिना, निरन्तर सायंकाल तथा प्रातःकाल चन्द्रापीडके दर्शनका सुख भोगता, वह राजा, दुःखकी परवा किए बिना विलासवती, शुकनास तथा परिवार-सहित वहीं रहा।

चित्तमें विज्ञान तथा स्मरण हुआ। अधिक कहनेसे क्या? मनुष्य शरीरके बिना उस क्षण ही मुझ वैशम्पायनको और सब उत्पन्न हो गया। वही चन्द्रापीडसे स्नेह, वही काम-पराधीनता, वही महाश्वेताका अनुराग, और वही उसके प्राप्त करनेकी उत्सुकता! पर पंख नहीं आनेके कारण मुझमें उस समय पूर्व जन्मकी शरीर-चेष्टा ही केवल नहीं आई।

४११—इस तरह अन्य जन्मका सब वृत्तान्त बुद्धिमें उपस्थित होनेके कारण उत्सुक चित्तसे—माता पिताका क्या हुआ होगा? तात तारापीड तथा विलासवतीका क्या हुआ होगा? मित्र चन्द्रापीडका क्या हुआ होगा? पहले जन्मके मित्र कपिञ्जलका अथवा महाश्वेताका क्या हुआ होगा?—या किस किसका कैसे कैसे मुझे स्मरण हुआ यह समझमें नहीं आया। इस तरह उत्कण्ठित होकर, भूतल पर गिर कर, बहुत देर पीछे, मानो भगवानके प्रतिकूल अपने आचरणके सुननेसे उत्पन्न हुई लज्जासे विलीन होता होकर पातालमें धसा जाता होऊं, इस तरह मैंने जैसे तैसे धीरे धीरे भगवान् जाबालिसे विनय किया—भगवान् आपकी कृपासे मुझे अब ज्ञानका उदय हो गया है। पूर्व जन्मके सब बान्धव मुझे याद आ गए हैं। मैं अज्ञान था तब जैसे मुझे उनकी याद नहीं थी वैसे ही विरहकी पीड़ा भी नहीं थी। पर अब तो उनकी याद करके मेरा हृदय मानो फटा जाता है। उनमेंसे जिसका दुःख मेरी मृत्युका हुआ ही फट गया उस चन्द्रापीडकी याद आनेसे जितना दुःख मुझको होता है उतना अन्य किसीके स्मरणसे नहीं होता। इसलिए उसके जन्मका क्या है

प्रश्न सुन कर भगवान् जाबालि, निर्मल दन्त-किरण-रूपी जल-धारासे पापका मल मानो धोते धोते बोले—वत्स, इसका कारण स्पष्ट है। यह केवल सुरत की अभिलाषासे मोहके विकारके कारण अल्प-सार स्त्री-वीर्यसे ही उत्पन्न हुआ है और नियम यह है कि जैसेसे प्राणी उत्पन्न होता है वैसा ही होता है। लोकमें भी प्राय: कारणके गुणके अनुसार ही कार्य होते दीखते हैं, और आयुर्वेदमें भी कहा है कि जो जन्तु केवल अल्प सार स्त्री-वीर्यसे ही उत्पन्न होता है वह सार-युत, स्थिरता-दायक, पुरुष-वीर्यके अभावके कारण, स्त्री-वीर्यके बलके अनुसार या तो गर्भमें विलीन हो जाता है, या मरा हुआ पैदा होता है अथवा पैदा होकर बहुत काल तक जीता नहीं है। इसलिए यह ऐसा ही पैदा हुआ है जिससे इसे ऐसी कामपरता हुई और मरण तो शापके वेगसे पैदा हुए ज्वरको न सहन कर सकनेसे इस तरह हुआ। अब भी यह ऐसा ही अल्पायु है परन्तु शापकी अवधिके पीछे इसकी आयु लम्बी होगी।

प्रवेश करने लगे हैं। पम्पा सरोवरके पास सोए हुए पक्षियोंके जगनेकी सूचना देता यह—कानोंको मधुर मालूम होता—कोलाहल सुनाई देने लगा है, प्रातःकालके सम्पर्कसे ठंडी तथा चञ्चल वन-कुसुमोंकी परिमल लाती प्रभातकालका पवन चलने लगी है। अब हवन करनेका समय हुआ। यह कहकर [illegible] सभाका विसर्जन कर वे स्वयं उठे।

४१३—फिर भगवान् जाबालिके उठने पर [illegible]—[illegible], [illegible] तथा मौन मार्गमें स्थित होने पर भी—कथाका [illegible] लगनेसे गुरुके [illegible] सेवा भूल कर अभी मानो सुनते हों इस प्रकार रोमाञ्चित शरीर तथा [illegible] प्रफुल्ल मुखवाले, शोक तथा आनन्दके आँसू एक साथ बहाते,—हा कष्ट! हा कष्ट!—ऐसे शब्द कहते कहते, मानो उस जगह [illegible] हों इस प्रकार बहुत देर तक ठहर कर अपनी अपनी जगह गए; और हारीत, [illegible] मुनिकुमार पास होने पर भी, अपने हाथसे ही मुझे [illegible] अपनी पर्णशालामें शैयाके एक भागमें धीरेसे रखकर, प्राभातिक [illegible] करनेके लिए बाहर गया। उसके जाने पर मुझे—सब काम करना असह्य।—[illegible] पढनेसे हृदयमें बना [illegible] हुआ और मैं [illegible] लगा—इस संसारमें अनेक जन्मोंमें किए हमारे पुण्योंसे मिलनेवाला [illegible], उसमें फिर सब जातियोंमें [illegible], [illegible] [illegible] पहुँचानेवाला [illegible], और उसमें भी [illegible] [illegible] निवास! [illegible] [illegible], [illegible]

भगवान् श्वेतकेतुके पाससे कपिंजल तुम्हें ढूँढता ढूँढता यहाँ आया है।

यह सुनकर इसी तरह मानो पर निकले हों इस प्रकार उड़ कर उसके पास पहुँच कर और ऊँची गर्दन करके देखते हुए मैंने उससे पूछा कि वह कहाँ है? उसने कहा—पिताजीके पास है। तब मैंने फिर उससे कहा—जो यह बात है तो मुझे वहाँ ले चलिए, उसे देखनेके लिए मेरा हृदय तड़प रहा है। मैं यों कह रहा था कि इतनेमें ही आकाशसेमे उतरनेके धक्केके कारण जिसकी जटा तितर बितर हो गई थी वायु मार्गमें चलनेसे जिसके कन्धेपर का पल्ला खिसक गया था, वल्कलसे परिकर दृढ़ बँधा हुआ था, जिसकी निसार छाती और टूटे जनेऊसे युक्त थी, देवताओंके रस्तेसे उतरनेकी थकावटके कारण जो हाँपने लगा था, ध्यानसे सुखाया जाने पर भी मार्ग पवनके उल्लंघन करनेसे उत्पन्न हुए स्वेदके कारण, मानो आकाश-गंगाके जलमें प्रवेशके कारण मुखसे पसीना तथा नेत्रोंमेंसे मुझे देखनेके दुःखसे पैदा हुए आँसुओंकी साथ ही टपकाता, मुमुक्षु होने पर भी मुझसे स्नेह करता, विरक्त होने पर भी मेरे प्रिय तथा हितमें अनुरक्त, निःसंग होने पर भी मेरे समागमके लिए उत्सुक, निःस्पृह होने पर भी मेरा काम पूरा करनेको उतावला, ममता रहित होने पर भी स्नेह युक्त, निरहंकार होने पर भी मुझे अपना ही कर मानता, क्लेश छोड़ने पर भी मेरे लिए क्लेश सहन करता,

कर मैं तुझे आसन पर बिठाऊँगा? क्या—जब तू सुखसे बैठेगा तब—तेरे चरणोंको दाब कर मैं थकावट दूर करूँगा? इस तरह मैं अपने चित्तमें चिन्ता कर रहा था कि इतनेमें ही मुझे दोनों हाथोंमें उठा कर तथा मेरे विरहके दुःखसे दुर्बल हुई छातीसे लगा कर बहुत देर तक, मानो भीतर प्रवेश कराता हो इस तरह, मेरे आलिंगनके सुखको अनुभव करके मेरे चरण मस्तक पर रख कपिंजल, शोकके बड़े वेगके कारण, साधारण मनुष्यकी तरह रोने लगा।

४२१—मैं तो केवल वाणीसे ही प्रतीकार कर सकता था इसलिए, उसको सान्त्वना देता फिर कहने लगा मित्र कपिंजल, जो तूने आरम्भ किया है वह सब क्लेशोंसे परिभूत हुए मुझ पापात्माके योग्य है। परन्तु तू बाल है तो भी इस संसारसे बाँधनेवाले तथा मोक्षमार्गको रोकनेवाले दोषोंने तेरा स्पर्श नहीं किया है। तो तू क्यों सज्जनोंके रास्ते चलता है? बैठ कर सब बात जैसी हुई है वैसी कह। तात तो कुशली हैं? क्या मुझे याद करते हैं? क्या मेरे दुःखसे दुःखी हैं? मेरा हाल सुन कर उन्होंने क्या कहा? गुस्सा हुए या नहीं? यों मैंने कहा तब हारीतके शिष्यकी लाई हुई पत्तोंकी चटाई पर बैठ कर, मुझे गोदीमें ले, हाथ तक लाए हुए जलसे मुँह धोकर वह कहने लगा—

जाति में पैदा हुआ है इसलिए जाकर भी तू उसे अभी पहचान न सकेगा, न वह तुझे पहचानेगा। इसलिए यहीं रह। फिर आज प्रातःकाल ही उन्होंने मुझे बुला कर कहा—वत्स कपिञ्जल, तेरा मित्र जाबालि महामुनि के आश्रममें पहुंच गया है और उसे जन्मान्तरका स्मरण हो गया है। इसलिए अब तू उससे मिलने भले ही चला जा। मेरे आशीर्वादके साथ उससे कहियो कि पुत्र, जब तक यह कर्म समाप्त हो तब तक जाबालिके चरणोंमें ही रहना चाहिए। तेरे दुःखसे दुःखी हुई तेरी माता लक्ष्मी भी उसी कर्ममें सहायता कर रही है। उसने भी मस्तकको सूंघ कर यह समाचार ही बार बार कहलाया है। इतना कह, कोमल शिरीषके फूलकी नालके समान सूक्ष्म रोमवाले मेरे अंग पर बार बार हाथ फेर कर वह हृदयमें आनन्द पाने लगा। यों उसको खिन्न होते देख कर मैंने कहा—सखे कपिञ्जल, तू क्यों खिन्न होता है? तूने भी मुझ पुण्यहीनके कारण घोड़ा बन कर पराधीन वृत्तिमें बड़े बड़े दुःख भोगे हैं। सोमपानके योग्य मुखसे फेनसहित रुधिर बहा कर तीक्ष्ण लगामकी रगड़ कैसे सहन की होगी? कोमल पत्तोंके बिछौने पर सोनेसे सुकुमार हुई पीठ पर सदा जीन [illegible] घायल हुए बिना कैसे रही होगी? फूल तोड़तेमें गिरती [illegible] स्पर्श भी न सह सकते थे उन्हीं इन अंगोंने चाबुकोंकी मार कैसे सही होगी? और वल्कल पहननेवाले इस शरीरने चमड़ेके तसमोंसे बन्धनकी पीड़ा कैसे भोगी होगी? ऐसी तथा अन्य पूर्ववृत्तान्तकी बातचीत [illegible] पहिले जातिका दुःख भूल कर सुखपूर्वक रहा।

होनेके कारण मानो केवल लोह-परमाणुओंसे बनाया गया दूसरा यम हो, पुण्य-राशिका मानो प्रतिपक्ष हो, पापका भंडार हो, क्रोधके कारणके बिना भी भीषण भृकुटी चढ़नेके कारण अत्यंत भयानक दीखते मुख से तथा अत्यंत लाल और टेढ़ी पुतलीवाले नेत्रोंसे—सबके चित्तमें भय पैदा करनेवाले—भगवान यमको भी मानो ठगनेवाला, अभिप्रायमें तथा केशोंमें अस्निग्ध[1], मुखमें तथा ज्ञानमें अंधकार-युक्त[2], वर्णसे तथा चरितसे कृष्ण[3], वस्त्रों तथा कार्योंसे मलिन, और शरीरसे तथा वाणीसे कठोर पुरुष खड़ा था जिसकी क्रूरताका अनुमान पहले देखे या सुने बिना भी आकारसे ही हो सकता था। उसको देख सब आशा छोड़ कर मैने पूछा—भद्र, तू कौन है? क्यों तूने मुझे पकड़ा है? जो मांसकी तृष्णासे पकड़ा है तो मुझे सोतेमें ही क्यों न मार डाला? मुझ निरपराधीको बाँध कर क्यों दुःख देता है? जो केवल कौतुकसे ही बाँधा हो तो अब बहुत हुआ, भद्र मुख, अब मुझे छोड़ दे। वल्लभ जनोंकी उत्कण्ठासे जी टूट जाता है और मेरा हृदय विलम्ब सहन नहीं कर सकता। तू भी प्राणियोंके मर्म जानता है।

बिजली गिरी हो और मैं हृदयमें भयसे व्याकुल हो विचार करने लगा—अहो! मुझ पुण्यहीनके कर्मोंका परिणाम अत्यन्त दारुण है! देव दानव जिनके चरण कमलोंको मौलि मुकुटोंसे प्रणाम करते हैं ऐसी लक्ष्मीसे तो मैं उत्पन्न हुआ, तीनों जगत्के नमस्कार करनेके योग्य महामुनि श्वेतकेतुने अपने हाथोंसे मेरा संवर्धन किया, और दिव्य लोकके आश्रममें मैं रहा। अब मुझे, म्लेच्छ भी जिनका दूरसे त्याग करते हैं ऐसे चाण्डालोंके घरमें जाना पड़ेगा! चाण्डालोंके साथ एक जगह रहना पड़ेगा! बूढ़ी चाण्डालिनोंके हाथसे दिये गए मांसोंसे निर्वाह करना पड़ेगा! चाण्डाल बालकोंका खिलौना बनना पड़ेगा! दुरात्मन पापी पुण्डरीक! धिक्कार है तेरे जन्म ग्रहणको! तेरे कारण ऐसा परिणाम हुआ! पहले गर्भमें ही तेरे हजारों टुकड़े क्यों न हो गए? हे शीत-[illegible] शरण देनेवाले चरण-कमलवाली लक्ष्मी माता, इस [illegible] [illegible] तात, आप त्रिभुवनकी रक्षा करनेवाले हैं, अपने इसको एक [illegible] रक्षा करिए, आपने ही [illegible] किया। मित्र कपिञ्जल, अगर तू दौड़ कर मुझे इस पापसे न बचावेगा [illegible] आशा मत करियो। यह [illegible] विचार [illegible], फिर मैंने दीन स्वरसे प्रार्थना की—

[illegible] हो गया और कौनसे कर्मोंका मुझे यह फल मिला ?—यों मनमें [illegible] विचारने मने प्राण त्याग करनेका निश्चय कर लिया । तब वह [illegible] चला तब उससे छुटकारा पानेकी आशासे ही आगे दृष्टि फेंकने पर, मानो [illegible] पापका बाजार हो ऐसा चांडालोंका घेर मैंने देखा । वह दूरसे ही मालूम पड़ जाता था कि चांडालोंका घेर है, क्योंकि वहाँ चाडालोंके बालक, [illegible] शिकार [illegible] हो इस प्रकार [illegible] रचना कर रहे थे, मृगयासे लौट कर [illegible] पकड़नेके लिए जलके भँवरमें जाल फैलानेमें लगे थे, मृगोंसे फाड़े गए [illegible] व्यग्र हो रहे थे, चूहेदान आदिमें बंधे हुए चमड़ेके टूटे [illegible] सम्भाल कर रहे थे, उनके हाथोंमें धनुषबाण थे, [illegible] [illegible] भयंकर लगते थे, वे [illegible] धारण करते थे । अन्य पक्षियोंके पकड़ने- वाले [illegible] बाज आदि पक्षियोंको चालाक करनेमें कुशल थे, कुत्तोंको [illegible] और टोली बना बना कर प्रत्येक दिशामें मृगया [illegible] । इधर उधरसे पकते मांसकी दुर्गंधि फैलाते धूमसे ऐसा अनुमान [illegible] पर्णोंसे [illegible] हैं जो बाँसोंके घने वनके बीचमें आ [illegible] नहीं है । उसके रास्ते प्रायः कपालोंसे [illegible] गलियोंमें हड्डियाँ [illegible] चौकसे साथ काटे हुए मांस [illegible], [illegible] कीचड़ [illegible], वहाँके लोग प्रायः मृगयासे अपना

वह कभी मुझे न छोड़ेगी। मैं दिव्य लोकमेंसे भ्रष्ट हुआ, मृत्युलोकमें पैदा हुआ, तिर्यग् जातिमें पड़ा, चाण्डालके हाथमें गया, और अब पिंजरेमें बद्ध होकर इस प्रकारका दुःख भोग रहा हूँ। यह सब इन्द्रियोंको नहीं रोकनेका दोष है। इसलिए केवल वाणीको ही नहीं पर सब इन्द्रियोंको मुझे नियममें रखना चाहिए। यह निश्चय कर मैं चुप रहा। वह बातचीत करने, तर्जना करने, मारने, तथा जबरदस्ती मेरे पंख तोड़ने लगी तो भी मैं कुछ न बोला। केवल ऊँचे स्वरसे चीत्कार करने लगा। अन्न-पानी ले आने पर भी मैं उस दिन निराहार रहा।

[illegible]—दूसरे दिन मेरे खाने का समय बीत जाने पर, हृदयमें खिन्न होकर, वह कन्या अपने हाथमें अनेक प्रकारके पके तथा कच्चे फल और सुवासित ठंडा पानी ले कर आई। परन्तु जब मैंने उनका ग्रहण नहीं किया तब मुझे सामने देखकर, मानो स्नेहसे, कहने लगी—'पोपट! भक्ष्याभक्ष्यके विचारसे रहित तिर्यग् जातिवाले तथा क्षुधा पिपासासे व्याकुल हुए पशुपक्षियोंके लिए [illegible] आहारका उपयोग न करना असम्भव है। अगर तू कोई [illegible] विशेष करनेवाला है, तुझे पूर्व जातिका स्मरण है और तू [illegible] आहार नहीं लेता है तो भी भक्ष्याभक्ष्य विवेक रहित पक्षि जातिमें [illegible] होनेके लिए [illegible] क्या है जो तू भक्षण नहीं करता? जिसने [illegible] होकर पहले ही ऐसा कर्म किया कि पक्षियोंकी जातिमें [illegible] विचार करता है? पहले ही तूने विवेकके अनुसार

[illegible] मैं इन्हें आपके पास लाई हूँ। मैंने जो अपनी चाण्डाल जाति बतलाई थी [illegible] केवल लोकसंपर्कसे बचनेके प्रयोजनसे। इसलिए अब आप और [illegible] दोनों साथ ही जन्म-जरा-व्याधि-मरण आदि दुःखोंसे पूर्ण शरीर छोड़ कर प्रियजनोंके समागमका सुख भोगिए। इस तरह कहती कहती वह, झनझनाते [illegible] स्वरसे अन्तःकरणको सुन करती, पृथ्वीसे झट आकाशमें उड़ गई और लोग ऊपर पाड़ फाड़ कर उसकी तरफ देखने लगे।

[illegible]—लक्ष्मीका यह वचन सुनते ही राजाको पूर्व जन्मकी याद आगई और वह बोल उठा—मित्र वैशम्पायनाख्य पुण्डरीक, अच्छा हुआ कि हम दोनोंका [illegible] अन्त एक साथ ही हुआ! यों कहते ही उसके अन्तःकरणमें, [illegible] धनुष तान कर, कादम्बरी रूप परम अस्त्र आगे कर, प्राण लेनेके लिए, [illegible] समान सब आशाओंको [illegible] कर, कामदेवने स्थान प्राप्त किया। [illegible] ही मानो निकाला गया हृदय कादम्बरीकी शरणमें [illegible] बाणोंके चोटसे मानो भयसे ही शरीर छोड़ कर श्वासकी गरम [illegible] बाहर आने लगी, उसके बाणोंके पंखोंकी पवनसे मानो ताड़ित हुआ [illegible] शरीर काँपने लगा, उसके बाणोंसे बाँटोंसे मानो व्याप्त हुआ शरीर [illegible] हो गया, उसके [illegible] रजसे मानो ढके हुए नेत्र आँसू बहाने [illegible] पीली पड़ गई, उसके धनुषकी टङ्कारसे [illegible] मानो गम्भीर हुए दोनों नेत्र हृदय-वेदनाके कारण तिहाई [illegible] दुःखाग्निके धूमसे मानो पीड़ित होकर काँपता [illegible] तापसे खिन्न हुआ, मानो निष्पीड़ित[3] [illegible] गिर पड़ा, आर्द्र[4] वाष्पके जलनेसे [illegible] निकलने लगा मानो कामज्वरके अर्धान [illegible] हो गए, और कादम्बरीसे

आगे करके कामदेव जो पीड़ा देने लगा उसे ताप हरनेवाली वस्तुएँ भी शान्त करनेमें समर्थ नहीं हुईं, क्योंकि कादम्बरीके अवयवोंके रूपकी शोभाने उनको जीत लिया था—जैसे कमलके कोमल पत्तोंको हाथ पैरोंसे, कुवलय दलकी मालाओंको दृष्टिसे, मणि दर्पणोंको गालसे, मृणालोंको बाहु-लतासे, चन्द्र किरणोंको नख किरणोंसे, कपूरके चूर्णको स्मित-प्रभासे, मुक्ताहारोंको दंत किरणोंसे, चन्द्र-बिम्बको मुखसे, चाँदनीको लावण्यसे और मणि वेदिकाके फर्शको नितम्बसे। इस तरह सब बाहरी उपाय निष्फल हो गए और हृदयमें भी अन्य किसी विनोदसे सुख नहीं हुआ। वह केवल उसीका ध्यान करने लगा, उसीकी उत्प्रेक्षा करने लगा, उसीकी अभिलाषा करने लगा, उसीको देखने लगा उसीके साथ बातचीत करने लगा, उसीका आलिंगन करने लगा, उसीके साथ रहने लगा, उसीको गुस्सा दिखाने लगा, उसीसे विनय करने लगा, उसीके पैरों पर गिरने लगा, उसीके साथ लीला करने लगा, और उसीके साथ रमण करने लगा, अन्य सब व्यापार उसने छोड़ दिए। दिनमें वह आँख नहीं खोलता, रातको सोता नहीं, मित्रोंके साथ बात नहीं करता, कार्यके लिए आए हुओंकी परवा नहीं करता, गुरुओंको नमस्कार नहीं करता, धर्म-क्रिया तक नहीं करता, सुखकी इच्छा नहीं करता, दुःखसे उद्वेग नहीं पाता, मरनेसे डरता नहीं, गुरुओंकी लज्जा नहीं करता, अपनेसे भी स्नेह नहीं करता—सारांश यह है कि कादम्बरीके समागमके लिए भी वह उद्यम नहीं करता था। परन्तु राग [illegible] अपनी मूर्च्छाके बहाने, केवल, शरीरके त्यागनेका अभ्यास करता था।

[illegible][1] होने पर भी अनेक प्रकारके उपकरण धारण करते, नयनोंसे आँसू [illegible]रने पर भी शुष्क[2] मुख वाले, आप बोलने का अवकाश न पाने पर भी [illegible]शम्पायनकी निन्दा[3] करते उसके प्रिय परिजन निरंतर चरणों तक चन्दन लगाते, चरण-तल पर कमलके गीले पत्ते रखते, हाथों पर कपूरके चूरेमें सने हुए [illegible] के टुकड़े रखते, हृदय पर बर्फके समान मुक्ताहार रखते, गालों पर स्फटिक

१—हस्त रहित, व्याकुल।

२—जल-शून्य, फीका।

३—क्योंकि वैशम्पायनकी कहानी सुन कर ही राजाकी यह दशा हुई थी।

४३१—कामदेवके परम अस्त्र—वसन्त समय—के कारण हृदयमें व्याकुल हुई कादम्बरीने भगवान् कामदेवके महोत्सवके आने पर बड़ी कठिनतासे ज्यों त्यों कर दिन बिताया। जब दशों दिशाएँ श्याम हुईं तब सायंकालके समय नहा कर, कामदेवकी पूजा कर, उसके आगे अत्यंत सुगन्धित ठंडे जलसे चन्द्रापीड़को स्नान कराया, कस्तूरीकी महक फैलाता हरिचन्दन उसके चरणों तक लगाया, सुगंधित फूलोंके हार उसके केश-कलापमें गूँथे, सुन्दर किसलय युक्त अशोकके फूलोंके गुच्छेका कर्णपूर एक कानमें पहनाया, कपूर तथा पुष्प आदिके गहने पहनाये और निमेष-रहित तथा प्रेमसे स्निग्ध हुई दृष्टिसे उसका मानो पान करती हो यों बहुत देर तक देख कर, उत्कंठासे बार बार साँस लेकर काँपती काँपती, महाश्वेता कहीं देख न ले इस भयसे बार बार दिशाओंमें चकित दृष्टि फेंकती, बार बार उसके पास जाकर, मानो आविष्ट हो यों पराधीन होकर बहुत देर तक खड़ी रही, त्रिभुवनको उन्मत्त करनेवाले भगवान् कामदेवने बल पूर्वक लज्जाके साथ अबला जनोंका स्वाभाविक भय छुड़ा दिया। इस कारण अपनेको धारण करनेमें असमर्थ होकर, एकान्तमें अपने चित्तके भावोंको रोकनेमें अशक्त हुई कादम्बरी एक साथ उसके ऊपर गिरकर, आँखें मींच कर, मानो वह जीवित हो इस प्रकार, गलेसे लिपट गई।

४३२—अमृत-रससे आल्हादन करते कादम्बरीके आलिंगनसे चन्द्रापीड़के तो दूर[1] गए हुए प्राण भी कंठमें फिर शीघ्र आ गये। दिनके तापसे बंद हुआ कुमुद जैसे शरत्कालकी चाँदनीमें प्रफुल्लित हो उसी तरह चन्द्रापीड़के यमें साँस चलने लगा। प्रातःकाल कमलकी कली खिलनेकी लीलासे तक पहुँचते नेत्र खुल गए और कमलकी लीलासे मुख प्रफुल्लित हो। इस तरह मानो सोकर उठा हो यों फिर सब अंग-चेष्टा प्राप्त कर, पीड़, कंठसे लगी हुई कादम्बरीको बहुत दिनोंके विरहसे दुर्बल हुई बाहुओंसे गलेसे चिपटा कर, पवनसे हिली हुई बाल कदली की तरह भयसे शरीर ती, आँखें खूब मींचती, हृदयमें ही प्रवेश करना चाहती, अपने आप न छोड़नेको और न पकड़नेको समर्थ हुई, उसे कानोंको अच्छा लगनेवाले, हृदयानंदक, पहले अनुभव किए स्वरमें हर्षित करता कहने लगा—

१—शूद्रकके शरीरसे।

१३३—भीरु, भय दूर करो। तुम्हारे ही कंठालिंगनसे मैं फिर जीवित हुआ हूँ। तुम तो अमृतमेंसे उत्पन्न हुए अप्सराओं के कुलमें पैदा हुई हो। क्या तुमको मेरा वचन याद नहीं है कि उसी तेजका बना हुआ यह शरीर अपने आप ही अविनाशी है; फिर विशेष करके कादम्बरीके कर-स्पर्शसे निर्विकार रहेगा। इतने दिन तक तुम्हारे हाथका स्पर्श होनेसे मेरे फिर जीवन न होनेमें आपका दोष था। आज तुम्हारे लिए ही दुःसह कामज्वरके ... वेदनासे अत्यंत दुःखी हुए मेरा वह आप दूसरी बार नष्ट हुआ। ... विरहका दुःख देनेवाला शूद्रक नामका अपना मानुषी शरीर मैंने ... दिया है। तुमको इसमें अनुराग हो गया देख तुम्हारी प्रीतिके कारण इस शरीरको अच्छी तरह रक्खा है तथा इसका पालन किया है। इसलिए ... लोक और चन्द्रलोक दोनों सर्वथा सेवनीय हैं। तुम्हारी प्रियसखी मेरा ... भी प्रियतम मेरे साथ ही आपसे छूटा है।

१३४—इस तरह, चन्द्रापीटके शरीरमे स्थित चन्द्रके कहते ही चन्द्रलोकसे ... अंगमें लगी हुई केवल अमृतकी परिमल ही अधिक फैलाता, जिस वेषमें ... उत्कंठामें मरण पाया था उसीको धारण करता, उसी तरह कंठमें ... की माला धारण करता, वैसे ही दुर्बल और शिथिल अंगवाला, वैसे ही ... निर्मांस कपोल-युक्त मुखवाला पुण्डरीक, कपिंजलका हाथ पकड़ ... उतरता उनको देख पड़ा।

कर कहने लगी—महाराज, देवीके साथ आपको बधाई है! युवराज वैशम्पायनके साथ फिर जीवित हुए हैं! राजा तो यह सुन कर, शरीर-संस्कार न होनेसे उगे हुए अविरल, लम्बे तथा रूक्ष सफेद बालोंसे ढके हुए प्रकोष्ठवाली भुजाओंसे उसका आलिंगन कर, फिर हर्षमें निमग्न हो, विलासवतीको कण्ठसे अवलम्बन कर, बुढापेकी सिलवटोंसे शिथिल हुई बाहुसे दुपट्टेके पल्लेको ऊँचा करके, लयकी शिक्षा न मिलनेसे इधर उधर पड़ते चरणोंसे मानो नृत्य करता, प्रफुल्लित मुखवाले हजारों राजाओंके साथ, मलयपवनसे हिलाए जानेके कारण चलायमान हुए कमलाकरके समान, वह कहाँ है? कहाँ है?—यों बार बार सबलोगोंसे पूछता पूछता, अपनी ही तरह हर्षमें मग्न हुए शुकनासका आलिंगन करता करता वहाँ आया। चन्द्रापीड़को उसी तरह पुंडरीकके गलेसे लगा हुआ देख वह अत्यंत आनंदसे शुकनाससे कहने लगा—यह भाग्यकी बात है कि पुत्रके फिर जीवित होनेके उत्सवका सुख मैंने अकेले ही नहीं भोगा! यों हर्षमें निमग्न हुए पिताको देख कर तथा संभ्रम सहित पुंडरीकको छोड़ कर चन्द्रापीड़, पहलेके समान ही भूतल पर मस्तक रख, चरणोंमें गिर पड़ा।

४३७—उस समय झट पास जाकर, प्रणाम करते हुए चन्द्रापीड़को उठा कर, [illegible]पीड़ बोला—पुत्र, या तो शाप दोषसे या अपने पुण्यसे मैं तेरा पिता हूँ तो भी तू तो जगद्वन्दनीय लोकपाल है और मुझमें भी जो अंश नमस्कारके योग्य था वह भी मैंने तुझमें संक्रान्त कर दिया है। इसलिए दोनों तरह तू ही [illegible]स्कारके योग्य है। यों कहते ही हजारों राजपुत्रों सहित वह उसके [illegible] चरणोंमें गिर पड़ा। विलासवती, यों पिताके प्रणाम करने पर [illegible] अपने अंगमें नहीं समाती, बार बार मस्तक, ललाट, और [illegible] [illegible] कर, बहुत देर तक गाढ़ आलिंगन करती रही। माताके पाससे मुक्त होने पर शुकनासके पास जाकर चन्द्रापीड़ने बार बार नमस्कार करके उसे प्रणाम किया। शुकनासने उसे बहुतसे आशीर्वाद दिए तब क्रमसे पास जाकर उसने—यह तुम्हारा वैशम्पायन है—यों कह, विनयके कारण लज्जायुक्त नम्र [illegible] मुखवाले पुंडरीकको माता पिता, शुकनास और मनोरमाको दिखाया।

८३८—इसी समय कपिंजलने पास आकर शुकनाससे कहा—महाराज [illegible] श्वेतकेतुने आपको यह संदेसा भेजा है कि मैंने तो पुंडरीकको केवल [illegible]

अनुरूप पतियोंके लाभ मात्रसे ही कृतार्थ होकर और कुछ स्वीकार नहीं किया।

४४०—एक समय, जन्मसे ही जिसकी अभिलाषा थी ऐसे हृदयवल्लभके मिलनेसे आनंदित हुई और सब स्वजनोंके बीचमें पहुँच कर सुखी हुई भी कादम्बरी, आँखोंमें आँसू भर कर, दीन मुखसे चन्द्रापीड़-रूप चन्द्रमासे महलमें पूछने लगी—आर्यपुत्र, हम सब मर कर फिर जी उठे और परस्पर संयुक्त हुए, परन्तु वह विचारी पत्रलेखा हमारे बीचमें नहीं दीखती। उस अकेलीका क्या हुआ सो नहीं मालूम? यह सुन चन्द्रापीड़-मूर्ति चन्द्रमाने हृदयमें प्रसन्न हो उत्तर दिया—प्रिये, यहाँ वह कहाँ? वह तो मेरे दुःखसे दुःखित हुई रोहिणी थी। जब मुझे आपसे ग्रस्त हुआ सुना तब उसने विचारा कि मैं अकेला मृत्युलोकमें रहनेका दुःख कैसे भोग सकूँगा? यह सोच कर, मेरे मना करने पर भी, उसने पहलेसे ही मेरे चरणोंकी सेवा करनेके लिए मृत्युलोकमें जन्म ले लिया था। मेरा जन्मान्तर होने पर मेरी मृत्युके साथ ही शरीर त्याग कर वह फिर मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाली थी, पर मैंने हठ पूर्वक उसे रोक कर चन्द्रलोकमें भेज दिया। इस कारण तुम उसे यहां देखोगी। यह सुन कादम्बरी रोहिणीकी उदारता, स्नेहालुता, महानुभावता, पातिव्रत्य और दक्षतासे हृदयमें विस्मित होकर बहुत लज्जित हुई और कुछ कह न सकी।

४४१—इतनेमें समयके विधाता चन्द्रमाको मानो दो जन्मोंसे आकांक्षित, कादम्बरी संयोग सुख देनेके लिए दिन ढल गया। प्रकाशित होती हुई पश्चिम सन्ध्या-रूप वधूकी लज्जाको मानो ढकनेके लिए अनुराग पताकाके समान रात्रि विस्तार पाने लगी। सब जगत चन्द्रोदयसे रमणीय हो गया। इस प्रकार जब रात्रि कुछ बीत गई तब चन्द्रापीड़ने कपड़ेकी गाँठ ढीली करनेके लिए लम्बे किए हाथको रोकती कादम्बरीका—चिरकालसे आर्द्र, निमीलित नेत्र-कमल युक्त, प्रत्यालिंगन सुखके अनुभवसे युक्त, सुखकी समाप्ति चाहनेकी लज्जासे रमणीय—प्रथम सुरत-सुखका अनुभव किया, और मानो एक दिन सदा हो यों दस दिन रह कर, हृदयसे सन्तुष्ट हुए सास ससुरसे विदा हो, वह पिताके पास आ गया।

मुँह के बल लथड़ा जाता था। बार बार जब मैं तिरछा होकर गिरनेको होता था तब एक करवटसे अपनेको सँभाल लेता था। भूमि पर चलनेसे थक जाता था। अभ्यास न होने के कारण एक एक पद रख कर फिर भी बार-बार ऊपरकी ओर देखता था। मेरा साँस फूलने लगा था। शरीर धूलसे मटियाला हो गया था। इस प्रकार चलते चलते मैंने सोचा—संसारमें अत्यंत कष्ट पाने पर भी प्राणी जीवनकी आशा नहीं छोड़ते, संसारमें सब जंतुओंको जीवनसे अधिक प्रिय अन्य कुछ नहीं है, क्योंकि जिसका नाम याद करनेसे सुख हो ऐसे पिताके यों मरने पर भी मैं अब तक अच्छी तरह जीता हूँ! धिक्कार है मुझ करुणा हीन, कठिन और कृतघ्नको! पिता की मृत्युके शोकसे दुःखी होकर भी मैं प्राण धारण करता हूँ और उपकार नहीं मानता! मेरा हृदय सचमुच दुष्ट है। मेरी माताके मरने पर पिताने अपने शोकका वेग रोका। स्वयं वृद्ध होने पर भी जबसे मैं पैदा हुआ तबसे लेकर वे जीते रहे तब तक, उन्होंने स्नेहसे मेरा पालन किया और श्रमकी कुछ परवा नहीं की, उन्होंने बहुतसे उपायोंसे मेरा संवर्धन किया। यह सब मैं एक साथ भूल गया! ठीक है, ये प्राण अत्यन्त कृपण हैं, क्योंकि ऐसे उपकारी पिताके कहीं चले जाने पर अब भी उनके पीछे नहीं जाते। जीवनकी तृष्णा सर्वथा सबको दुष्ट बना देती है, क्योंकि मैं ऐसी दशामें हूँ तो भी प्यास मुझे सताती है। पितृ-मरणके शोककी तो मुझे कुछ परवा नहीं, पर जल पीनेकी इच्छा है। यह सब केवल निर्दयता है, इसमें संदेह नहीं। अभी तालाबका किनारा तो दूर मालूम होता है, क्योंकि जलदेवीके पायजेबोंकी झनझनाहटके समान कलहंसोंकी ध्वनि बहुत दूर सुनाई देती है। सारसोंकी आवाज साफ नहीं सुन पड़ती है, अन्तर बहुत होनेसे दिशाओंमें फैल जानेके कारण कमलोंकी गंध भी कम आती है; और दिनका यह समय अत्यंत कष्टदायक है, क्योंकि आकाशके बीचमें आया सूर्य अपनी किरणोंसे—अंगारोंकी राखके समान चमकती-धूप सब जगह निरन्तर बिछा रहा है, धूल धूपसे गरम हो गई है, जमीन पर पैर नहीं रक्खा जाता, प्यास और भी अधिक लगती है। बड़े जोरकी प्याससे मैं शिथिल हो गया हूँ। मेरे हाथ पैर अब जरा भी सरकनेके लायक नहीं है। आत्मा वशमें नहीं है। हृदय फटा जाता है। आँखोंके सामने अँधेरा छा रहा है। अच्छा हो कि विधाता मेरी इच्छाके बिना ही इस समय मेरे प्राण लेले!

४४—मै इस भाँति विचार कर रहा था कि इतनेहीमे कमल सरोवरसे थोड़ी दूर तपोवनमे रहते महा तपस्वी जाबालिका पुत्र हारीत उसी तालाबमे नहाने के लिये आया। उसीकी उम्रके अन्य ऋषि कुमार भी उसी रास्तेसे उसके पीछे पीछे आ रहे थे। उसका अंतःकरण, सनत्कुमारकी भाँति, सब विद्याओंके पढनेसे शुद्ध हो गया था। अत्यंत तेजके कारण उसकी मूर्ति देखी नहीं जा सकती थी। वह ऐसा मालूम होता था मानो दूसरा अग्नि हो। उदय होते सूर्य मण्डलमेंसे वह मानो निकाला गया था, बिजलीसे मानो उसके अवयव बनाए गए थे, तपे हुए सोनेके रसका मानो उसके शरीर पर झोल फेरा गया था। उसकी देह प्रभा जरा पीली और निर्मल चमकती थी। उससे वह ऐसा मालूम होता था जैसे नई धूपसे दिन और दावानलसे वन प्रकाशमान हो। तपाए हुए लोहेके समान लाल और अनेक तीर्थोंके स्नानसे पवित्र हुई उसकी जटा कंधे पर लटक रही थी, चोटीको उसने बाँध रक्खा था। खाण्डव वन जलानेकी इच्छासे कपट पूर्वक ब्राह्मणका[1] रूप धरनेवाले अग्निके समान वह देख पड़ता था। तपोवनकी देवीके नूपुर और धर्मोपदेशोंकी राशिके समान स्फटिक रुद्राक्षकी माला उसके दाहिने कानमें लटक रही थी, माथेमे भस्मका त्रिपुण्ड ऐसा मालूम होता था मानो सब सासारिक भोगोंसे निवृत्ति पानेके लिये उसने कायिक, वाचिक तथा मानसिक सत्यका चिन्ह बना लिया हो, आकाशमे उड़नेके लिये ऊपर देखते बगुलेके समान उसकी गर्दन उठी हुई थी, जिससे वह ऐसा मालूम होता था मानो स्वर्गका रास्ता देखता हो। स्फटिकमणिका कमण्डल उसके बायें हाथमें था, कंधे पर पड़ा हुआ काला मृग-चर्म ऐसा लगता

१—महाभारतमें लिखा है कि राजा श्वेताकिने बारह वर्ष तक यज्ञ। उसमे निरन्तर घीकी आहुति दी गई जिससे अग्निके उदरमें विकार। इस विकारके दूर करनेके लिए ब्रह्माने अग्निको खाण्डव वन जलाने दी। पर इन्द्रने खाण्डव वन नहीं जलाने दिया और आँच बुझानेके खूब वर्षा की। तब अग्निने ब्राह्मणका रूप धर कर कृष्ण और अर्जुनकी माँगी। उन्होंने खाण्डव वनके ऊपर तीरोंका एक वितान बना दिया जिससे वर्षाका जल खाण्डव बनमें नहीं पहुच सका और अग्निने उसे जला डाला।

या मानो तप करतेमें पिये हुए तपके धूमने बाहर निकल कर उसके शरीरको घेर लिया हो, उसके बायें कंधे पर जनेऊ पड़ा था जो हवासे हिल रहा था, निर्मांस पार्श्वकी अस्थियोंको मानो अलग-अलग गिन रहा था और इतना महीन था कि नये मृणाल सूत्रका बना मालूम होता था। पूजाके लिए इकट्ठे किये वनलताओंके फूलोंसे भरे पत्तोंके दोनेको पलाशके दंडकी नोंक पर बाँध कर उसने दाहिने हाथमें थाम लिया था। उसके पीछे-पीछे चंचल नेत्रोंवाला तपोवनका हिला हुआ हिरन दर्भ, लता और फूलोंको देखता देखता आ रहा था। हिरनके सींग पर खोदी हुई स्नान-मृत्तिका लग रही थी और मुट्ठी मुट्ठीभर नीवारसे उसका पालन किया गया था। वृक्षकी तरह मुनि-कुमारका शरीर कोमल वल्कलसे[1] आच्छादित था। पर्वतके समान वह मेखला[2]-युक्त था। राहुके समान वह बार बार सोमरसका[3] स्वाद लेता था। कमल-समूहकी तरह वह सूर्य किरणोंको[4] पीता था। नदी-तटके वृक्षोंके समान उसकी जटा[5] सदा जलमें धुलनेसे निर्मल हो गई थी। हाथीके बच्चेके समान उसके दाँत विकसित कुमुद पत्रके टुकड़ेके सदृश श्वेत थे। अश्वत्थामाकी तरह वह कृपानु-[6] गत था। नक्षत्र राशिकी तरह वह चित्र-मृग[7] कृत्तिका-श्लेषसे शोभित था। ग्रीष्मके[8] दिनकी भाँति वह क्षपित बहु दोष था। वर्षाकालकी तरह उसमें

१—वृक्ष छालसे ढका होता है, हारीतके पास छालके वस्त्र थे।

२—पर्वत अद्रि-नितम्बसे युक्त होता है, हारीत कटि-सूत्र युक्त था।

३—राहु चन्द्रका स्वाद लेता है, हारीत सोमलताका रस पीता था।

४—कमल सूर्यकी किरणोंका ग्रहण करते हैं; हारीत पञ्चाग्नि-साधन यज्ञमें सूर्य किरणें पीता था।

५—वृक्षकी जड़ें धुल जाती हैं, हारीतकी लटें।

६—अश्वत्थामा कृपके साथ था, हारीत कृपालु था।

७—नक्षत्रोंमें चित्रा, मृग, कृत्तिका और आश्लेषा नक्षत्र हैं हारीत चितकबरे हिरनकी खाल पहन रहा था।

८—गरमीमें रात छोटी हो जाती है, हारीतने बहुतसे दोषोंको दूर कर दिया था।

४४—मैं इस भाँति विचार कर रहा था कि इतनेहीमें कमल सरोवरसे थोडी दूर तपोवनमें रहते महा तपस्वी जाबालिका पुत्र हारीत उसी तालाबमें नहाने के लिये आया। उसीकी उमरके अन्य ऋषिकुमार भी उसी रास्तेमें उसके पीछे पीछे आ रहे थे। उसका अंतःकरण, सनत्कुमारकी भाँति, सब विद्याओंके पढनेसे शुद्ध हो गया था। अत्यंत तेजके कारण उसकी मूर्ति देखी नहीं जा सकती थी। वह ऐसा मालूम होता था मानो दूसरा अग्नि हो। उदय होते सूर्य-मंडलमेंसे वह मानो निकाला गया था, बिजलीसे मानो उसके अवयव बनाए गए थे, तपे हुए सोनेके रसका मानो उसके शरीर पर झोल फेरा गया था। उसकी देह प्रभा जरा पीली और निर्मल चमकती थी। उससे वह ऐसा मालूम होता था जैसे नई धूपसे दिन और दावानलसे वन प्रकाशमान हो। तपाए हुए लोहेके समान लाल और अनेक तीर्थोंके स्नानसे पवित्र हुई उसकी जटा कंधे पर लटक रही थीं, चोटीको उसने बाँध रक्खा था। खाडव-वन जलानेकी इच्छासे कपट पूर्वक ब्राह्मणका[1] रूप धरनेवाले अग्निके समान वह देख पड़ता था। तपोवनकी देवीके नूपुर और धर्मोपदेशोंकी राशिके समान स्फटिक रुद्राक्षकी माला उसके दाहिने कानमें लटक रही थी, माथेमें भस्मका त्रिपुंड ऐसा मालूम होता था मानो सब सासारिक भोगोंसे निवृत्ति पानेके लिये उसने कायिक, वाचिक तथा मानसिक सत्यका चिन्ह बना लिया हो, आकाशमें उड़नेके लिये ऊपर देखते बगुलेके समान उसकी गर्दन उठी हुई थी, जिससे वह ऐसा मालूम होता था मानो स्वर्गका रास्ता देखता हो। स्फटिकमणिका कमंडल उसके बायें हाथमें था, कंधे पर पड़ा हुआ काला मृग-चर्म ऐसा लगता

१—महाभारतमें लिखा है कि राजा श्वेतार्कने बारह वर्ष तक यज्ञ किया। उसमें निरन्तर घीकी आहुति दी गई जिससे अग्निके उदरमें विकार होगया। इस विकारके दूर करनेके लिए ब्रह्माने अग्निको खाडव वन जलाने की सलाह दी। पर इन्द्रने खाडव वन नहीं जलाने दिया और आँच बुझानेके लिए खूब वर्षा की। तब अग्निने ब्राह्मणका रूप धर कर कृष्ण और अर्जुनकी सहायता माँगी। उन्होंने खांडव वनके ऊपर तीरोंका एक वितान बना दिया जिससे वर्षाका जल खाडव वनमें नहीं पहुंच सका और अग्निने उसे जला डाला।

था मानो तप करतेमें पिये हुए तपके धूमने बाहर निकल कर उसके शरीरको घेर लिया हो, उसके बायें कंधे पर जनेऊ पड़ा था जो हवासे हिल रहा था, निर्मांस पार्श्वकी अस्थियोंको मानो अलग-अलग गिन रहा था और इतना महीन था कि नये मृणाल सूत्रका बना मालूम होता था। पूजाके लिए इकट्ठे किये वनलताओंके फूलोंसे भरे पत्तोंके दोनेको पलाशके दंडकी नोंक पर बाँध कर उसने दाहिने हाथमें थाम लिया था। उसके पीछे-पीछे चंचल नेत्रोंवाला तपोवनका हिला हुआ हिरन दर्भ, लता और फूलोंको देखता देखता आ रहा था। हिरनके सींग पर खोदी हुई स्नान-मृत्तिका लग रही थी और मुट्ठी मुट्ठीभर नीवारसे उसका पालन किया गया था। वृक्षकी तरह मुनि-कुमारका शरीर कोमल वल्कलसे[1] आच्छादित था। पर्वतके समान वह मेखला[2]-युक्त था। राहुके समान वह बार बार सोमरसका[3] स्वाद लेता था। कमल-समूहकी तरह वह सूर्य किरणोंको[4] पीता था। नदी तटके वृक्षोंके समान उसकी जटा[5] सदा जलमें धुलनेसे निर्मल हो गई थी। हाथीके बच्चेके समान उसके दाँत विकसित कुमुद पत्रके टुकड़ेके सदृश श्वेत थे। अश्वत्थामाकी तरह वह कृपानु-[6] गत था। नक्षत्र राशिकी तरह वह चित्र-मृग[7] कृत्तिका-श्लेषसे शोभित था। ग्रीष्मके[8] दिनकी भाँति वह क्षयित बहु दोष था। वर्षाकालकी तरह उसमें

१—वृक्ष छालसे ढका होता है, हारीतके पास छालके वस्त्र थे।

२—पर्वत अद्रि-नितंबसे युक्त होता है, हारीत कटि-सूत्र युक्त था।

३—राहु चन्द्रका स्वाद लेता है, हारीत सोमलताका रस पीता था।

४—कमल सूर्यकी किरणोंका ग्रहण करते हैं; हारीत पञ्चाग्नि-साधन यज्ञमें सूर्य किरणें पीता था।

५—वृक्षकी लटें धुल जाती हैं, हारीतकी लटें।

६—अश्वत्थामा कृपके साथ था, हारीत कृपालु था।

७—नक्षत्रोंमें चित्रा, मृग, कृत्तिका और आश्लेषा नक्षत्र हैं हारीत चितकबरे हिरनकी खाल पहन रहा था।

८—गरमीमें रात छोटी हो जाती हैं, हारीतने बहुतसे दोषोंको दूर कर दिया था।

रजःप्रसर[1] नहीं होता था । वरुणकी तरह वह उद्वास[2] करता था । विष्णुकी तरह उसने नरक[3]-भयका निवारण किया था । निशाके आरभकी तरह उसके तारे[4] सध्या-पिंगल थे । प्रभातके समान वह बालातप[5] कपिल था । सूर्य रथ की तरह उसका अक्ष-चक्र[6] नियमित था । बुद्धिमान् राजाके समान उसने गूढ मत्र[7]-साधनसे विग्रहका क्षय किया था । समुद्रकी तरह वह विकराल[8]-शख-मडल आवर्त गर्त था । भगीरथकी तरह उसने गगावतारका[9] दर्शन किया था । भ्रमरोंकी तरह वह बार बार पुष्कर[10] वनमें वास करता था । वनचर होने पर भी उसने महालयमें[11] प्रवेश किया था । असयन[12] होने पर भी वह मोक्षकी इच्छा रखता था । सामका[13] प्रयोग करता हुआ भी सदा दड ग्रहण

१—वर्षाकालमें धूल नहीं उड़ती, हारीतमें रजोगुण नहीं था ।

२—वरुण जलमें वास करता है, हारीत व्रत करता था ।

३—विष्णुने नरकासुरसे जो भय था उसे दूर किया था, हारीतने नरकका ।

४—निशाके आरभमें तारे सध्यासे पिंगल होते हैं, हारीतके नेत्रोंकी पुतलियाँ सध्याके समान पिंगल थीं ।

५—प्रभात नई धूपसे कपिल होता है, हारीत बालातपके समान [illegible] था ।

६—सूर्यके रथके पहिये और चक्र दृढ़ हैं, हारीतकी इन्द्रियाँ वशमें थीं ।

७—राजा गुप्त सलाहोंसे लड़ाई नहीं होने देता है, हारीत गुप्त मत्रोंके [illegible] शरीरका क्षय करता है ।

८—समुद्र बहुतसे शख तथा जल भ्रमरसे युक्त गड्ढोंवाला है, हारीतके और भालके मध्यकी जगह बीचमें नीची तथा चारों ओर उठी हुई थी ।

९—भगीरथने गंगाका उतरना देखा था, हारीतने गगावतार तीर्थ देखा था ।

१०—भ्रमर कमल-वनमें रहते हैं, हारीत जल-युक्त वनमें रहता था ।

११—महल, ब्रह्म-समाधि ।

१२—सयम-हीन, ससारसे विरक्त ।

१३—साम उपाय, साम-वेद । दड उपाय, लकड़ी ।

करता था। निद्रा वश होने पर भी वह प्रबुद्ध[1] रहता था और दो नेत्र होने पर भी उसने वामलोचनका[2] परित्याग किया था।

४५—सज्जनोंका चित्त प्रायः बिना कारण प्रीति करनेवाला और करुणासे आर्द्र होता है क्योंकि जब मुनि कुमारने मुझे ऐसी दशामें देखा तब उसे दया आई और उसने अपने पास खड़े एक ऋषि कुमारसे कहा—इस तोतेके बच्चेके पख तो अभी निकले नहीं हैं, पर न जाने यह कैसे इस वृक्षकी चोटी परसे या बाजके मुँहमेंसे नीचे गिर पड़ा है क्योंकि दूरसे गिरनेके कारण इसमें अब थोड़ी ही जान बाकी है, आँखें बद हो रही हैं, साँस फूल रहा है, बार-बार मुँह पर लथड़ाता है, चोंच फाड़ता है और इसमें अपनी गर्दन उठानेकी भी ताकत नहीं है, इसलिए, आओ, जब तक इसके प्राण न निकलें तब तक इसे उठा कर जलके पास पहुँचा दें। यों कह कर उसने ऋषि कुमारके द्वारा मुझे तालाबके किनारे पहुँचवा दिया। फिर जलके पास जाकर, अपना दड और कमडल एक किनारे रख, वह आप ही मुझे उठा लाया और मेरे सब आशा छोड़ देने पर भी मेरा मुँह ऊँचा कर, अपनी उँगलियोंसे उसने कितनी ही पानीकी बूँदें मुझे पिलाईं छींटोंसे मुझे नहलाया और जब मुझमें फिर जान आ गई तब किनारेके पास लगे कमलके पत्तोंकी-जलसे ठण्डी छायामें मुझे रख कर उसने यथोचित स्नान किया। नहानेके बाद अनेक प्राणायाम करके, शुद्ध हो, पवित्र अघमर्षणका जप कर, ऊँचा मुँह करके, नलिनीके पत्तोंके दोनेके द्वारा, तत्काल तोड़े हुए लाल कमलोंसे सूर्यको अर्घ देकर वह खड़ा हो गया। फिर धुले हुए सफेद वल्कल पहननेसे वह चद्रिका-युक्त सध्यातपके समान शोभायमान हुआ। उसने अपनी हथेलीसे जटाको फटकार कर साफ किया, कमडलमें तालाबका पवित्र जल भरा, तथा वह मुझे लेकर तपोवनकी ओर धीरे-धीरे चलने लगा और तत्काल नहानेके कारण गीली जटावाले ऋषि कुमारोंका झुण्ड उसके पीछे हो लिया।

४६—सरोवरसे हम बहुत दूर न पहुँचे थे कि इतनेमें मैंने एक अत्यन्त रमणीक आश्रम देखा। वह मानो दूसरा ब्रह्मलोक था। उसके चारों ओर वन

१—जागता, ज्ञानी।

२—वाम नेत्र; स्त्री।

थे। उनमें बहुतसे वृक्ष लगे थे। वे फल-फूलोंसे लद रहे थे वहाँ ताड़, तिलक, तमाल, हिंताल और मोलसिरीके वृक्ष बहुत थे। नारियलों पर इलायचीकी बेल चढ रही थी। लोध्र, लवली और लौंगके पत्ते हिल रहे थे। आमकी मंजरीकी रज ऊँची उड़ रही थी। भ्रमरोंकी झनकारसे आमके वृक्षोंमे शब्द हो रहा था। उन्मत्त कोकिलाओंका समूह कोलाहल कर रहा था। फूले हुए केवड़ेकी रजके ढेरसे वहाँके वन पीले दीखते थे। सुपारीके लता-रूपी हिंडोलेमें वनदेवियाँ झूलती थीं। पवनसे हिलाए हुए बहुत से सफेद फूल, अधर्म[1]-विनाश-सूचक उल्कापातके समान, बार बार वृक्षोंसे गिरते थे। दण्डकारण्यकी भूमिसे उस आश्रमका पिछला भाग सुहावना लगता था। वह भूमि निर्भय होकर दौड़ते सैकड़ों काल मृगोंके कारण विचित्र थी। खिली हुई कमलिनियोंसे लाल लाल थी। कपट मृगका रूप धर कर मारीचने बड़ी बड़ी लताओंके पत्ते काट लिये थे। राम-लक्ष्मणने धनुषकी नोकसे वहाँ कंद उखाड़ा था। इससे भूमितल ऊँचा नीचा हो गया था। लकड़ी, कुशा और मट्टी लेकर सब दिशाओंसे आते तथा ऊँचे स्वरसे पाठ याद करते शिष्योंके आगे आगे चलते हुए मुनि उसके पास ही दिखाई देते थे। पानीका कलसा भरनेमें ` । ध्वनिको मेघकी गर्जना समझ वहाँके मोर गर्दन उठा कर सुनते थे। दिन- । पड़ती घीकी आहुतिसे सतुष्ट हुए अग्निने, सब मुनियोंको शरीर सहित स्वर्ग जानेकी इच्छासे, उँची चढती धूम-लेखाके बहाने मानो मार्गमें सीड़ियोंका । बाँधा हो—ऐसा दिखाई देता था।

४७—आश्रमके पास ही चारों ओर बावलियाँ थीं। उनकी मलिनता मानो ये` संसर्गसे जाती रही थी। तरंग-मालामें सूर्यका प्रतिबिंब पड़नेसे ऐसा लू होता था मानो मुनियोंके दर्शनोंके लिये आए सात ऋषि उनमें स्नान ` हों। उनमें फूले हुए कुमुद ऐसे देख पड़ते थे मानो गगनमें ऋषियोंकी सेवा करनेके लिये नीचे उतरे तारे हो। हवासे झुकी चोटियोंसे वनलताएँ मानो उसे प्रणाम करती थीं। दिन-रात फूल गिरा-गिरा कर सब वृक्ष मानो उसकी पूजा करते थे। पल्लवोंकी अजलि बना कर डालियाँ मानो उसकी सेवा करती

१—उल्कापात धर्म विनाश-सूचक होता है, पुष्प-वृष्टि अधर्म विनाश सूचक थी।

थीं। मुनियोंके आँगनोंमें, सूखनेके लिये, श्यामाक धान बिछा था। इमली, लवली, बेर, केले, लकुट, कटहर, आम और तालके फल इकट्ठे रक्खे थे। बालक स्वरसे पाठ पढते थे। बार-बार सुने हुए वषट्कार शब्दका उच्चारण करनेसे तोते वाचाल हो रहे थे। असख्य मैना वेदका घोष कर रही थीं। जगली मुर्गे वैश्वदेवमें दिया हुआ बलि खाते थे। पासकी बावलीमें रहते कल-हसके बच्चे नीवारकी बलिका आहार करते थे। हिरनियाँ अपनी पल्लवके समान कोमल-जिह्वाओंसे मुनियोंके बालकोंको चाटती थीं। हवनमें अधजले कुश, समिध और फूल चड़चड़ाते थे। पत्थरसे तोड़े गये नारियलके पानीसे शिला-तल गीले हो रहे थे। हाल ही निचोड़े गये वल्कलोंके जलसे भूतल लाल हो गया था। लाल चंदनसे चिन्ति सूर्य मडल पर कनेरके फूल चढाए गए थे। इधर उधर राख बिछा कर मुनियोंके भोजन स्थलोंकी आड बाँध दी गई थी। हिले हुए बदर वहाँके बूढे और अधे तपस्वियोंको अपने हाथसे पकड़ कर बाहर ले जाते और भीतर ले आते थे। हाथीके बच्चोंने मृणालके टुकड़े आधे चबा-चबा कर छोड़ दिये थे। वे सरस्वतीकी भुज-लतामेंसे निकले शंखोंके कंकणके समान लगते थे और उनसे आश्रम चित्रित हो रहा था। हिरन अपने सींगोंसे ऋषियोंके लिये कदमूल खोद देते थे। हाथी अपनी सूँड़ोंमें जल भर कर वृक्षोंकी क्यारियाँ भर देते थे। जगली शूकरोंके दाँतोंके बीच-बीचमें भरे कमलकंदको ऋषि-कुमार खैंच लेते थे। पालतू मोर अपने परोंसे हवा करके मुनियोंकी होमाग्नि सुलगाते थे। अमृतके समान चरुकी मनोहर सुगध फैल रही थी। आधे पके पुरोडाशकी पवित्र परिमलसे वह आश्रम सुगधित हो रहा था। अग्निमें निरतर घीकी आहुति दी जा रही थी। उसकी सनसनाहट सुनाई देती थी।

४८—वहाँ अतिथियोंकी सेवा की जाती थी, पितृ-देवताओंकी पूजा होती थी, ब्रह्मा, विष्णु, महेशका अर्चन होता था, श्राद्धका उपदेश होता था, यज्ञ विद्या पर व्याख्यान दिया जाता था; धर्मशास्त्रकी आलोचना होती थी, अनेक पुस्तकोंका पाठ होता था, सब शास्त्रोंके अर्थका विचार होता था, पत्तोंकी कुटियाँ बनाई जाती थीं, आँगन लीपे जाते थे, मुनियोंके घर भीतरसे साफ किये जाते थे, ध्यान होता था, मन्त्रोंका साधन होता था, योगका अभ्यास होता था, वन-देवियोंको बलि दिये जाते थे, मूँजकी मेखला बनाई

जाती थी, वल्कल धोए जाते थे, समिधका संग्रह होता था, कृष्ण मृगचर्म साफ किये जाते थे, पशुओंके खानेकी घास ली जाती थी, कमल-बीज सुखाए जाते थे, अक्षमाला गूँथी जाती थी, बेतके दंड रक्खे जाते थे, परिव्राजकोंका सत्कार किया जाता था, कमंडलुमें जल भरा जाता था। कलिकालने उस आश्रमको कभी देखा नहीं था। असत्यका उसमें परिचय नहीं था। कामदेवने उसका नाम भी नहीं सुना था। ब्रह्माकी तरह वह त्रिभुवन-वंदित था। विष्णुके समान उसने [1]नृसिंह-वाराह रूप प्रकट किया था। सांख्यकी तरह वह [2]कपिलाधिष्ठित था। मथुराके उपवनकी तरह वह [3]बलाव-लीढ दर्पित धेनुक था। उदयनकी तरह वह वत्स-कुलको[4] आनंद देता था। किम्पुरुष राज्यके समान वहाँ जल-कलश लेकर मुनि द्रुमाभिषेक[5] करते थे। ग्रीष्म ऋतुके अंतकी तरह [6]जल-प्रपात पास ही था। वर्षाकालकी तरह वहाँ [7]वन-गहनके बीचमें हरि आरामसे सोते थे। हनूमान्‌के समान वहाँ पत्थरोंके टुकड़ोंकी चोटीसे अक्षके[8] अस्थि-संचयका चूरा किया जाता था। खांडव-वन

१—विष्णुने नृसिंह तथा वाराह अवतार लिया था, आश्रममें मनुष्य, सिंह, शूकर तथा अन्य पशु थे।

२—कपिल मुनिने सांख्य शास्त्रका प्रवर्तन किया था, आश्रम कपिला युक्त था।

३—मथुरामें बलरामने उद्धत धेनुकको मारा था, आश्रममें बल युक्त दर्पित हथिनियाँ थीं।

४—उदयनने अपने वत्स-कुलको आनंद दिया था, आश्रममें बछड़ोंको होता था।

५—राज्यमें द्रुम राजाका अभिषेक हुआ था, आश्रममें मुनि वृक्ष ...ते थे।

६—ग्रीष्मके अंतमें वर्षा होती है, आश्रमके पास ही पानीका झरना था।

७—वर्षाऋतुमें समुद्रमें विष्णु सोते हैं, आश्रमके वनमें सिंह सोते थे।

८—हनूमान्‌ने रावणके पुत्र अक्षयकुमारकी हड्डियाँ तोड़ी थीं, आश्रममें बहेड़ेकी गुठलियाँ तोड़ी जाती थीं।

जलानेमे तत्पर हुए अर्जुनके समान वहाँ अग्नि-कार्यका[1] आरभ हुआ था। सुरभि विलेपनके[2] होने पर भी वहाँ सदा धूमकी गध निकलती थी। मातग-[3] कुलका वास होने पर भी वह पवित्र था। सैकड़ों धूमकेतु[4] वहाँ दीखते थे तथापि उपद्रव कुछ भी नहीं होता था। द्विजपतिका[5] सब मडल वहाँ होने पर भी पासके वृक्षोंकी झाड़ीमें सदा अंधेरा ही रहता था।

४६—वहाँ मलिनता[6] केवल यज्ञ धूममें थी, चरित्रमें नहीं, मुख-राग[7] तोतोंहीमें था, कोपसे नहीं, तीक्ष्णता[8] दर्भाग्रमें ही थी, स्वभावमें नहीं, चचलता[9] केलेके पत्तोंमें ही थी, मनमें नहीं, चक्षू-राग[10] कोकिलोंमें ही था, पर स्त्रियोंमें नहीं, कठग्रह[11] कमडलहीमें था, रति विलासमें नहीं, मेखला बन्ध[12] व्रतहीमें था, ईर्षा कलहमें नहीं, होमकी गायोंके स्तनका ही स्पर्श होता था, स्त्रियोंके नहीं, मुर्गोंहीका पक्षपात[13] होता था, विद्या विवादमें नहीं, अग्निकी

१—वनमें अर्जुनने अग्निको जलानेमें मदद दी थी, आश्रममें होम आरभ हुआ था।

२—सुगधित लेप, गोवर।

३—चाडाल, हाथी।

४—केतु, अग्नि।

५—चद्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण।

६—मलिनता=कालोंच, दोप। वहाँ धूममें ही कालोंच थी, किसीके चरित्रमें दोप नहीं था।

७—तोतोंके मुँह पर ललाई थी, क्रोधसे मुँह लाल नहीं होता था।

८—दर्भाग्र ही तेज थे, किसीके स्वभावमें सख्ती नहीं थी।

९—तरलता, अस्थिरता।

१०—नेत्रोंमें ललाई, नयन-प्रीति।

११—गर्दन पकड़ना, कंठालिंगन।

१२—मोजी-बधन, जंजीर बाँधना।

१३—पंखोंका गिराना, तरफदारी।

लक्ष्मीके समान मालूम होती है। एक तोतेको पिंजरेमें रख कर लाई है और महाराजसे प्रार्थना करती है कि पृथ्वीतल पर, महाराज, समुद्रके समान सब रत्नोंके आकर हैं और मेरा आश्चर्य-जनक तोता भी सब भुवनोंका एक रत्न है। यह समझ महाराजके दर्शन सुखकी अभिलाषासे मैं उसे लेकर महाराजके चरणोंमें आई हूँ। महाराजकी क्या आज्ञा है?

८—प्रतीहारीके इतना कह चुकने पर राजाको भी उसके देखनेकी लालसा हुई और आस-पास बैठे सब राजा लोगोंके मुखकी ओर देख उसने आज्ञा दी—कुछ दोष नहीं, भीतर आने दो।

९—राजाका वचन सुनते ही प्रतीहारी उठ कर चाण्डाल कन्याको भीतर ले आई। आते ही कन्याने हजारों नृपोंके मध्यमें विराजमान राजा शूद्रकको देखा। वह ऐसा लगता था मानो वज्रके[1] भयसे एकत्रित हुए कुल-पर्वतोंके बीचमें सुमेरु बैठा हो। अनेक रत्नाभूषणोंके किरण जालमें अवयवोंके ढक जानेसे वह ऐसा शोभायमान लगता था मानो हजारों इन्द्र-धनुषसे व्याप्त आठ दिशावाला वर्षा ऋतुका दिन हो। वह चन्द्रकान्त मणिके सिंहासन पर विराजमान था। उसमें बड़े-बड़े मोतियोंकी झालर लटक रही थी और उसके चारों मणि-दण्ड सोनेकी जंजीरोंसे बँधे थे। उसके ऊपर मंदाकिनीके झागके समान सफेद महीन वस्त्रका चंदोवा टँग रहा था। राजा शूद्रक पर सोनेकी डंडीके चमर झल रहे थे और स्फटिक-मणिके पायदान पर उसका बायाँ चरण रक्खा था। वह पायदान ऐसा लगता था मानो उसके चारों ओर फैलती हुई किरणोंवाले-मुखकी कान्तिसे पराभव पाकर नम्र हुआ चन्द्रमा

नहीं आये। विश्वामित्रने क्रोध करके उसे अपने बलसे स्वर्ग भेजा। इन्द्रने उसे स्वर्ग में न घुसने दिया। तब उसे नीचे गिरतेमें विश्वामित्रने अन्तरालमें स्थिर किया।

१—पहले पर्वतोंके पङ्ख थे। इनसे वे चाहे जहाँ चले जाते थे तथा मनुष्योंको और ऋषियों को कष्ट देते थे। तब मनुष्यों और ऋषियोंने इस भयसे पीछा छुड़ाने के लिए इन्द्रसे प्रार्थना की। इन्द्रने अपने वज्रसे उनके पंख काटकर उन्हें अपने स्थानों से हटने लायक नहीं रक्खा।

हो। उसके चरण नखोंकी किरणें नीलमके फर्शकी प्रभाके सम्पर्कसे कुछ श्याम हो गई थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो वशीभूत शत्रुओंके निश्वाससे मलीन हो गई हों। सिंहासनमेंसे फैलती हुई मानककी किरणोंसे उसकी दोनों जंघाएँ लाल-लाल हो गई थीं, जिनसे वह—कुछ समय पहले मारे गए मधुकैटभके रुधिरसे लाल हुई जंघाओंवाले—विष्णुके समान लगता था। वह अमृतके झागके समान सफेद दो वस्त्र पहन रहा था। उनकी कोर पर गोरोचनसे हंसोंके जोड़े चित्रित थे और उनके पल्ले चमरकी हवासे उड़ रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चंदन रसके लेपसे उसकी छाती गोरी हो गई थी और उस पर उसने केशर छिड़क ली थी जिससे—प्रातःकालकी धूप जिस पर कहीं कहीं पड़ी हो ऐसे—कैलास पर्वतके समान वह शोभायमान लगता था। मोतियोंकी मालाने उसके मुखके इधर उधर परिवेश कर रक्खा था। वह ऐसी लगती थी मानो उसके मुखको दूसरा चन्द्र समझ कर नक्षत्र माला आई हो। दो इन्द्रनील मणि जटित बाजूबंद उसकी भुजाओंमें बंधे थे। वे चन्दन रसकी सुगंधके लोभसे आए दो सर्पोंके समान लगते थे और उन्हें देखकर अत्यन्त चञ्चल राज-लक्ष्मीको बाँधनेकी जञ्जीरोंकी शंका होती थी। उसका कर्ण [illegible] कुछ लटक रहा था नाक ऊँची थी, खिले हुए सफेद कमलके समान नेत्र थे, चन्द्रमाके आधे टुकड़ेके आकारका ललाट था—वह निर्मल सुवर्ण पट्टके समान विशाल था और सब भुवनोंके राज्याभिषेकके जलसे पवित्र हुआ था। भौंओंके बीचमें रोमावली [illegible] था। उसने सुगन्धित चमेलीके फूलोंका मुकुट पहन रक्खा था, जिससे वह शिखर पर प्रातःकाल एकत्रित हुए तारागणसे अस्ताचलके समान शोभायमान लगता था। गहनोंके प्रकाशसे उसके सब अंग पीले हो रहे थे, जिससे वह—महादेवके तीसरे नेत्रसे निकली हुई अग्निसे जलते हुए—कामदेवके समान दिख पड़ता था। उसके [illegible], दिशा-रूप स्त्रियोंके समान, सेवाके लिए उत्कंठित थीं। निर्मल मणिके फर्शमें उसका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा मालूम होता था मानो पृथ्वीने अपने पतिको प्रेमपूर्वक छातीसे लगा लिया हो। उसका तेज अन्य राजाओंके समान साधारण नहीं था, इस कारण—अनेक [illegible] हुए [illegible]—असाधारण राजलक्ष्मीने उसे धारण [illegible] था।

१०—परिवार असंख्य होने पर भी वह अद्वितीय[1] था। अगणित हाथी-घोड़ोंका साधन होने पर भी केवल खड्ग उसका सहायक था। एक ही जगह बैठ रहने पर भी सब पृथ्वी उससे[2] व्याप्त थी। आसन-स्थित होने पर भी वह धनुषमें[3] स्थित रहता था। सब शत्रु-रूपी ईंधनको भस्म कर डालने पर भी उसके प्रतापकी अग्नि जला ही करती थी। नेत्र बड़े होने पर भी वह सूक्ष्मदर्शन[4] था। महादोष[5] होने पर भी वह सब गुणोंका आकर था। कुपति[6] होने पर भी वह सब स्त्रियोंका प्रिय था। निरन्तर दानसे[7] भी उसमें मद-विकार नहीं था। स्वभाव अत्यन्त शुद्ध होने पर भी वह कृष्ण चरित[8] करता था और कर[9] बिना भी सब पृथ्वी उसके हाथमें थी।

११—दूरसे राजाको देखते ही चाण्डाल कन्याने, लाल कमलके पत्तेके समान कोमल हाथमें फटे बाँसकी छड़ी ले कर, राजाकी दृष्टि अपनी ओर फेरनेकी इच्छासे, फर्श पर एक बार शब्द किया—जिससे उसका रत्न कङ्कण हिलने लगा। जंगलमें ताल-शब्द होनेसे जैसे सब हाथी उसकी ओर देखने लगते हैं उसी भाँति बाँसकी छड़ीका शब्द सुन कर सब भूपाल एक साथ राजाकी तरफसे अचानक दृष्टि फेर कर उसीकी ओर देखने लगे।

१२—प्रतीहारीने दूरसे "देखो" कह कर उसे राजाको दिखलाया। राजा ने

१—अद्वितीय=जिसका कोई अन्य साथी न हो, अप्रतिम। यहाँ विरोधा-है। असंख्य परिवार होना और अद्वितीय (अर्थात् बिना किसीके) —इन दोनों में विरोध है पर अद्वितीयका यह अर्थ करनेसे कि—उसकी बराबरीका कोई नहीं था—विरोध जाता रहता है।

२—अर्थात् उसके प्रताप से।

३—अर्थात् धनुष पर उसका आधार था।

४—छोटी आँखोंवाला, तीक्ष्ण दृष्टिवाला।

५—बड़े-बड़े अवगुण, बड़ी भुजा-युक्त।

६—बुरा पति, पृथिवी पति।

७—मद-जल, त्याग।

८—श्याम (बुरे), कृष्ण के समान।

९—हाथ, महसूल।

नव यौवनमें भरी हुई, परम सुंदर आकारवाली उस कन्या को टकटकी बाँध कर बड़े ध्यानसे देखा। उसके आगे—आर्य-वेशम—सफेद कपड़े पहने एक आदमी था। उसके सिरके बाल बुढ़ापेके कारण सफेद हो गए थे, आँखोंके कोने लाल कमल के समान थे, शरीरके बंध, तारुण्य न रहने पर भी, बार बार कसरत करने के कारण शिथिल नहीं पड़े थे और चांडाल होने पर भी उसका आकार क्रूर नहीं था। उसके पीछे चांडाल-जातिका एक लड़का था, जिसकी जुल्फें बिलकुल अस्तव्यस्त थीं। उसके हाथमें एक पिंजरा था। वह सुवर्ण की सलाइयों से बना था, पर भीतर बैठे तोतेकी झलकसे पन्ने का बना हुआ सा—कुछ श्याम—देख पड़ता था। वह कन्या गमन शक्तिवाली नीलमणि की पुतली सी लगती थी। उसका रंग श्याम था, इस कारण वह—दैत्योंने लिये गए अमृतको हरण करनेके लिये मायासे मोहिनी रूप धारण करनेवाले—विष्णु का मानो अनुकरण करती थी। पैरकी गाँठ तक पहुँचते नीले लहँगेसे उसका शरीर ढका हुआ था और ऊपर उसने लाल दुपट्टा ओढ़ लिया था। इससे वह ऐसी लगती थी मानो—सूर्य की किरणें जिस पर पड़ी हों ऐसी—नील कमलोंकी एक भूमि हो। एक कानमें पहने हुए कर्णभूषणकी प्रभासे उसके गाल गोरे दिखाई देते थे, इस कारण वह मानो—उदय होते हुए चंद्र-बिम्बकी किरणोंसे ढके मुखवाली—रात्रि थी। कुछ कुछ पीले रंगके गोरोचनसे उसने तिलक का तीसरा नेत्र बना लिया था, जिससे मानो वह—महादेवके बेवरे समान ही भीलनीका वेष धारण करनेवाली—पार्वती थी। नारायणके वक्षःस्थलमें निवास करनेसे लगी—उनकी देह-प्रभाके कारण काली पड़ी—मानो वह साक्षात् लक्ष्मी थी। कुपित हुए महादेवकी आँखसे जलते कामदेवके धुएँसे मलिन हुई मानो रति थी। बलदेवके हलसे खिंच आनेके डरसे भागी हुई मानो वह यमुना[1] थी। उसके चरण कमलोंपर बहुत गाढ़ा लाल लाखके रंगसे शृंगार किए गए थे। इससे वह—अभी मारे हुए महिषासुरके रुधिरसे लाल चरणवाली—दुर्गा के समान लगती थी। [illegible]

१—बलदेव ने जल-क्रीड़ा के लिए यमुना को बुलाया। यमुना उनके वाक्य का अनादर करके नहीं आई तब उन्होंने कुपित होकर उसे हल से खींच लिया।

उँगलियोंकी प्रभासे उसकी नख किरणें गुलाबी हो गई थीं। उसके चरणोंमें जो फूल-पत्ते कढ़ रहे थे उनकी परछाईं जमीन पर पड़ती थी। इससे ऐसा लगता था मानो बहुत कठिन मणि मय भूमिका स्पर्श असह्य होनेके कारण वह फूल-पत्ते बिछाती हुई उन पर चलती है। नूपुर-मणियोंमेंसे फैलते हुए कुछ पीले रँगके प्रकाशसे उसका शरीर रँग गया था—जिससे ऐसा लगता था मानो भगवान् अग्निने, केवल उसकी कान्तिका पक्षपात कर और प्रजापतिकी आज्ञाका लोप कर, उस जातिको पवित्र करनेके लिए, उसके शरीरका आलिंगन किया है। उसकी कमरमें तागड़ीकी लड़ पड़ी थी। वह कामदेव-रूपी हाथीके मस्तकके ऊपरकी मोतियोंकी माला और रोमावली रूप लताकी क्यारीके समान लगती थी। बड़े-बड़े मोतियोंकी स्वच्छ माला उसने गलेमें पहन रक्खी थी। वह ऐसी लगती थी मानो उसे यमुना जानकर गंगा मिलनेके लिए आई हो।

१३—शरद्के समान उसके कमल नयन[1] प्रफुल्ल थे, वर्षाऋतुकी भाँति उसके केश[2] घन थे, मलयाचलके मध्यभागके समान वह चंदनपल्लवोंसे[3] भूषित थी, नक्षत्र-मालाके समान वह चित्र-श्रवणाभरणसे[4] अलंकृत थी, लक्ष्मीकी भाँति वह हस्त-स्थित[5]-कमल-शोभा थी, मूर्च्छाके समान वह मनको[6] र लेती थी, वन-भूमिके समान वह अक्षतरूप[7]-सम्पन्न थी, देवाङ्गनाके समान

१—शरद्में कमलरूपी नेत्र खिले होते हैं, कन्याके बड़े-बड़े नेत्र खिले कमलके समान थे।

२—वर्षा ऋतुके मेघ रूपी केश होते हैं, कन्या के घने केश थे।

३—मलयाचलका मध्यभाग चंदनके पत्तोंसे शोभित है, कन्या चंदनके पत्तोंके गहनोंसे युक्त थी।

४—नक्षत्र-मालामें चित्रा, श्रवण तथा भरणी नक्षत्र होते हैं, कन्या कानोंके विचित्र गहनोंसे युक्त थी।

५—लक्ष्मी हाथमें लिए कमलकी शोभासे युक्त है, कन्याके हाथोंमें कमलकी शोभा थी।

६—मूर्छा चेतनाको हर लेती है, कन्या चित्तको हर लेती थी।

७—वनभूमि अक्षके वृक्षोंसे युक्त होती है, कन्या निर्दोष सौन्दर्य युक्त थी।

अकुलीन[1] थी, निद्राकी भाँति वह नेत्र[2]-ग्राहिणी थी, वन-कमलिनीकी भाँति वह [3]मातङ्ग कुलसे दूषित थी, उसका स्पर्श[4] नहीं किया जा सकता था, इस कारण वह मानो निराकार थी, उसका केवल दर्शन ही हो सकता था, इस कारण वह मानो तस्वीर थी, चैतमासकी पुष्प समृद्धिकी तरह वह विजाति[5] थी, कामदेवके पुष्प-धनुषकी डोरीके समान उसकी कमर मुट्ठीमें आनेके योग्य थी और कुबेरकी लक्ष्मीके समान वह अलकोद्भासिनी[6] थी।

१४—उसे देखकर राजा बड़ा विस्मित हुआ और मनमें विचार करने लगा—अहो! रूप निर्माण करनेका विधाताका प्रयत्न कैसे अयोग्य स्थान पर है! यदि उसने इसे अपने रूपसे सब मनोहर वस्तुओंका उपहास करने लायक बनाया तो—जिससे स्पर्श तथा सम्भोगका सुख न मिले—ऐसे कुलमें क्यों उत्पन्न किया! मेरा यह ख्याल है कि चाण्डाल जातिके स्पर्श दोषके भयसे ब्रह्माने इसे छुए बिना ही बनाया है, नहीं तो इतना निर्दोष लावण्य कैसे हो सकता है? हाथके स्पर्शसे दूषित अवयवोंकी ऐसी कान्ति कभी नहीं हो सकती। प्रजापतिको सर्वथा धिक्कार है जिसने ऐसा अघटित संयोग किया और ऐसी मनोहर मूर्तिको ना दुष्ट कुलमें उत्पन्न किया, जिससे यह—असुर श्रीके समान अत्यन्त रमणीय होने पर भी—निन्दित सुरता[7] होनेके कारण खेद उत्पन्न करती है।

१—देवाङ्गना पृथ्वीकी नहीं—स्वर्गीय—होती है, कन्या नीच कुलकी थी।

२—निद्रा नेत्रोंको बन्द करती है, कन्या नेत्रोंका आकर्षण करती थी।

३—वन कमलिनीको हाथियोंके यूथ मसल डालते हैं, कन्या चाण्डाल-कुलमें जन्म होनेसे दोष युक्ता थी।

४—निराकारका स्पर्श नहीं किया जा सकता, कन्याके साथ सम्पर्क नहीं किया जा सकता।

५—चैतमें चमेली नहीं खिलती इस कारण चैतकी पुष्प समृद्धि चमेली रहित होती है, कन्या हीन जातिकी थी।

६—कुबेरकी लक्ष्मी उसकी राजधानी अलकासे शोभायमान है, कन्या अलकों अर्थात् लटोंसे शोभायमान थी।

७—असुर श्री देवताओंकी निन्दा करती है, चाण्डाल-जातिके साथ संयोग निन्दित है।

१५—राजा इस भाँति कल्पना कर ही रहा था कि उसी समय कन्याने प्रगल्भ स्त्रीके समान प्रणाम किया, जिससे उसके कानका पल्लवाभूषण जरा लचका। प्रणाम करके मणिमय फर्श पर उसके बैठते ही आदमीने तोतेके पिंजरेको लाकर, जरा आगे आकर और राजाको दिखला कर कहा—महाराज, यह तोता सब शास्त्रों का अर्थ जानता है, राजनीति के प्रयोग में कुशल है, पुराण इतिहास आदि की कथा कहने में बड़ा निपुण है, गान-विद्या के स्वर समझता है, काव्य, नाटक, प्राचीन और अर्वाचीन कथा आदि अनन्त सुभाषित पढ़ा हुआ है और स्वयं बनाता है, परिहास करने में पक्का है, वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदि बाजो का अद्वितीय श्रोता है, नाच देखने में निपुण है, चित्र के काम में चतुर है, जुआ खेलने में प्रवीण है, प्रेम कलह से अप्रसन्न हुई स्त्री को मनानेके अनेक उपाय जानता है, हाथी, घोड़े, पुरुष और स्त्री—इनके लक्षण समझता है, सब भूतलका यह एक रत्न है और इसका नाम वैशम्पायन है। आप, समुद्रके समान, सब रत्नोंके आकर हैं—यह जानकर मेरे स्वामी की कन्या इसे लेकर आपके चरणोंमे उपस्थित हुई है। अत आप इसे स्वीकार करनेका अनुग्रह करें। इतना कह राजाके सामने पिंजरा रखकर वह दूर हट गया।

उसके हट जाने पर तोतेने राजाकी ओर देख, दाहिना चरण उठा, अन्त स्पष्ट वर्ण स्वर युक्त वाणीसे "जय" कहकर, राजाहीके सबन्धमें इस आर्या छन्दका उच्चारण किया—

[1]स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥

१६—यह सुन राजा बड़ा विस्मित हुआ और एक बहुमूल्य आसन पर पास ही बैठे हुए—बृहस्पतिके समान सकल नीति-शास्त्रमें प्रवीण और सब

१—जब कोई मनुष्य व्रत करता है तब वह बार बार नहाता है, (हवन करनेके लिए) अग्निके पास बैठता है। और विमुक्ताहार रहता है अर्थात् कुछ खाता-पीता नहीं है। इसी भाँति आपके शत्रुओ की स्त्रियोंके स्तनोंने मानों व्रत किया है क्योंकि वे बारबार आँसुओंसे नहाते हैं, हृदयस्थित शोकाग्निके निकटवर्ती हैं और विमुक्ताहार हैं अर्थात् उनका मुक्ताहार उतार लिया गया है।

मन्त्रिराम प्रधान—कुमारपाल नामक वृद्ध ब्राह्मण से सहर्ष कहने लगा—इस पक्षी की वर्णोच्चारण की स्पष्टता और स्वर की मधुरता सुनी! प्रथम तो यही एक बड़ा आश्चर्य है कि यह तोता अलग अलग वर्ण विभाग, मात्रा, अनुस्वार और शब्द शुद्धि सहित, अलङ्कार युक्त, अत्यन्त स्पष्ट वाणी बोल सकता है, और दूसरा यह कि अभिमत विषय में, शिक्षित मनुष्यों की भाँति, पक्षियों की प्रवृत्ति भी बुद्धि पूर्वक होती है क्योंकि इसने अपने दाहिने चरण को ऊँचा उठाकर जय जय शब्द कहकर, मेरे सम्बन्ध में ही इस आर्या को अत्यन्त स्पष्ट अक्षरों में गाया। और पशु पक्षियों को केवल भय, आहार, मैथुन और निद्रा के संकेत का ही ज्ञान होता है। यह तो बहुत ही अद्भुत है! राजा के वचन सुनकर कुमारपाल मन्त्री जरा मुसकराकर बोला—महाराज, इसमें विचित्रता क्या है? आपने सुना होगा कि तोता मैना आदि कितने ही पक्षी सुने हुए शब्दों को बोल सकते हैं। फिर पूर्वजन्म के संस्कार से अथवा मनुष्य के यत्न से उनमें अधिक चातुर्य आ जाय तो क्या आश्चर्य है? पशु पक्षियों की वाणी भी, मनुष्यों की भाँति, पहले ऐसी थी कि वे अत्यन्त स्पष्ट उच्चारण कर सकते थे परन्तु अग्निक आदि के [illegible] की वाणी की स्पष्टता जाती रही और [illegible] की जीभ उलटी फिर गई। यह बात हो रही थी कि इतने में आकाश के बीच में सूर्य के आ पहुँचने की सूचना देने के लिए द्वार पर राज्य बजा और पहर के अन्त की नौबत भी उन्हीं के साथ बजा। उसे सुनकर स्नान का समय आया जान, सब सभासदों को विदा कर, राजा शूद्रक सभा-मण्डप से उठा।

पीनेसे मत्त हुए वृद्ध कलहंसो की ध्वनि सुनाई दे रही थी। चलती हुई वेश्याओं की जाँघो पर टकरानेसे बजतीं मणि-जटित मेखलाओंका मनोहर झंकार हो रहा था। पायजेबोंकी झनझनाहट सुनकर गृह सरोवरके कल-हंस दौड़ आए थे। वे सभा-मण्डपकी सीढ़ियों पर बैठ कर कोलाहल कर रहे थे। उनके बैठनेसे सीढ़ियाँ सफेद हो गई थी। तागड़ीकी झनकारसे उत्सुक हुए पालतू सारस बहुत ऊँचा शब्द कर रहे थे जो घिसे हुए काँसेके शब्दके समान था। जल्दीमें चलते सैकड़ों सामन्तोंके चरणोंसे ताड़न किये गये सभा मण्डपकी, पृथ्वीको कँपा देने-वाली, ध्वनि हो रही थी। वह वज्र-घोषके समान गम्भीर लगती थी। खेल करते और चिल्ला कर—देखो, देखो—कहते प्रतिहारियोंका तीक्ष्ण शब्द हो रहा था। वे हाथमें छड़ी लेकर आगे रास्तेमेंसे एकदम लोगोंको हटाते थे। उनके शब्दके साथ ही, महलकी कुञ्जोंमेंसे निकलते प्रति शब्दके साथ दीर्घ हुआ—देखो, देखो—शब्द सुनाई देता था। प्रणाम करनेके सम्भ्रममें सिर झुकानेसे कुछ नरपतियोंके चूड़ामणि हिलने लगे थे और उनके मुकुट निर्मल मणियोंकी पैनी नोकोंसे दन्तुर हो रहे थे। उनके मुकुटोंसे घिसी गई मणिभूमिका शब्द हो रहा था। प्रणाम करनेमें अस्त व्यस्त हुए मणि-कर्णपूर—अत्यन्त कठिन रत्न भूमि पर पड़नेके कारण—शब्द कर रहे थे। मंगल-पाठक—जय-चिरजीव इत्यादि—मधुर वचन कहते-कहते आगे चल रहे थे। उनकी कल कल सब दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। चलते हुए मनुष्योंके सैकड़ों पैरोंके तलेमें कुचल जानेके डरके कारण फूलोंके ढेरमेंसे भ्रमर उड़ रहे थे। उनका गुञ्जार हो रहा था। नरपति सम्भ्रममें बहुत जलदी जलदी पैर रखते थे। उनके बाजूबंदोंकी रगड़से रत्नहार-युत मणि-स्तंभ रणत्कार कर रहे थे।

१८—सब राजाओंको विदा करने के बाद राजा शूद्रकने चाण्डाल-कन्यासे आराम करनेको कहा और ताम्बूलवाहिनीको वैशम्पायनके भीतर ले जानेकी आज्ञा दी। फिर वह कितने ही अत्यन्त प्रिय राजकुमारोंके साथ भीतर गया। वहाँ सब गहने उतार कर अखाड़ेमें गया। उसमें कसरत करनेका सब सामान रक्खा था। गहने उतार देनेमें राजा शूद्रक किरण हीन सूर्य चन्द्र तथा तारा-गण रहित आकाशके समान लगने लगा। वहाँ अपने बराबरवाले राजकुमारोंके साथ उसने कुछ कसरत की। मिहनतके कारण उसका शरीर

पसीने में तर हो गया। पसीनेकी बूँदे उसके गालों पर कुछ कुछ खिले हुए सफेद सिन्धुवारके फूलकी मंजरीके समान शोभायमान थीं, छाती पर कठिन श्रमके कारण टूटे हारमेंसे गिरे मोतियोंके गुच्छेके समान दिखलाई देती थीं और ललाटमें अष्टमीकी चन्द्रकला पर शोभायमान अमृतकी बूँदोंका मान करती थीं। फिर स्नानकी सामग्री तैयार करनेकी जल्दीमें इधर उधर दौड़ते सेवकोंके साथ वह स्नान भूमिमें गया। उस समय महलमें आदमी कम होने पर भी छड़ीदार भीड़ हटानेका काम उचित रीतिसे कर रहे थे। उन्होंने उसे मार्ग बताया। स्नान भूमिमें सफेद कपड़ेका एक चँदोवा बँधा था, असंख्य चारण टोली बाँध बाँध कर बैठे थे, बीचमें सुगन्धित जलसे भरी एक सोनेकी नाँद रक्खी थी, पास ही स्फटिकमणिकी एक स्नान करनेकी चौकी रक्खी थी, उसके एक ओर स्नान-कलश रक्खे थे, उनमें अत्यन्त सुगंधित जल भरा था। [illegible] कारण आए भौंरोंसे उनका मुँह काला हो रहा था। वे ऐसे लगते थे मानो पानी गरम हो जानेके डरसे उन पर काले कपड़े बाँध दिये हों।

१६—जब राजा पानीकी नाँदके पहुँचा तब वेश्याओंने [illegible] सुगंधित आमले लगा कर उसके सिर पर लेप किया। फिर कितनी ही वेश्याएँ उसके आस पास खड़ी हो गईं। वे स्नान करानेके लिए आई हुई [illegible] देवियोंके समान लगती थीं। उन्होंने अपने स्तन और कमर मजबूत बाँध लिए थे, हाथोंके कंकण बहुत ऊँचे चढ़ा लिए थे, कानोंके गहने उतार दिये थे, कपाल पर पड़े हुए बालोंकी लटोंको कानकी तरफ मोड़ दिया था और हाथोंमें पानीके कलसे उठा लिये थे। उठे हुए कुच [illegible] कलशों [illegible] [illegible] घुसा हुआ राजा ऐसा लगता था मानो हथिनियोंके बीचमें [illegible] हो। जलकी नाँदसे उठ कर वह स्वच्छ स्फटिकमणिकी स्नान करनेकी चौकी पर बैठा, उस पर वह ऐसा लगता था मानो श्वेत [illegible] पर वरुण [illegible] हो। वहाँ कितनी ही वेश्याएँ—उन पर पानीकी धारा डालतीं—[illegible] कलशोंकी प्रभाके कारण [illegible] हो गई थीं। वे ऐसी [illegible] प्रत्यक्ष [illegible] [illegible] [illegible] वेश्याएँ [illegible] [illegible] मानो पूर्ण चन्द्रमण्डल [illegible]

ही वेश्यायें कलश उठानेके श्रमसे पसीनेमें तर हो गई थीं। वे जलदेवियोंके समान लगती थीं। उन्होंने स्फटिकमणिके कलश लेकर तीर्थोदकसे स्नान कराया। मलयाचलकी नदियोंके समान कितनी ही वेश्याओंने चंदन रस मिले जलसे स्नान कराया। कितनी ही वेश्याओंने कलसे उठा कर उन्हें अपने दोनों हाथोंसे थाम लिया था। उनके हस्त पल्लवोंके नखोंमेंसे किरणें फैल रही थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो प्रत्येक उँगलीके छिद्रोंमेसे निकलती जलधारा वाली जल-यंत्र देवियाँ हों। कितनी ही वेश्याएँ सुवर्णके कलश हाथमें लेकर केसरिया पानी छिड़कती थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो सरदी दूर करनेके लिए दिवस-श्री लाल लाल सूर्यकी धूप छिड़क रही हो। इन सबने उसका क्रम क्रमसे अभिषेक किया। उसी समय बहुतसे स्नान शंखोंकी गर्जना इस प्रकार सब भुवनोंमें व्याप्त हो गई मानो कान फोड़ें डालती हो। उसीके साथ बहुतसे नक्कारे, झाँझ, मृदंग, वेणु और वीणाका शब्द और बंदीजनोंका कोलाहल सुनाई देने लगा।

२०—इस भाँति स्नान कर चुकनेके बाद पानीमें धुल जानेके कारण राजाका शरीर निर्मल हो गया। वह ऐसा दीखने लगा जैसे शरद् ऋतुमें आकाशका एक भाग हो। साँपकी काँचलीके समान महीन और स्वच्छ दो वस्त्र उसने पहन लिये और अत्यन्त सफेद—बादलके टुकड़ेके समान स्वच्छ—रेशमी वस्त्रका साफा सिर पर बाँध लिया। इससे वह ऐसा शोभित हुआ जैसे [illegible]किनीके प्रवाहसे हिमाचल शोभायमान हो। फिर पितृ तर्पण कर तथा [illegible]त्र सहित पवित्र जलकी अंजलिसे सूर्यको नमस्कार करके वह देवालयमें गया। वहाँ महादेवका पूजन कर, मंदिरसे निकल, होम आदि करके वह विलेपन भवनमें गया। वहाँ उसने सब शरीरमें चंदनका लेप किया। वह चंदन, कस्तूरी, कपूर और केसरसे सुगंधित था और परिमलके कारण भ्रमर उसके चारों ओर गुंजार कर रहे थे। फिर सुगंधित चमेलीके फूलोंका मुकुट पहन, वस्त्र बदल कर उसने गहनोंमेंसे केवल रत्नोंका कर्ण-पूर धारण किया। तब जिन राजाओंको भोजन कराना योग्य था उनको भी अपने साथ बैठा लिया और उसने अभीष्ट रसके स्वादसे आनंदित होकर भोजन किया।

२१—भोजनके पीछे मंद होकर, सुगंधित सिगार पीकर, पान लेकर, चमकते हुए मणियोंके फर्शसे उठ कर राजा सभा मंडपकी ओर चला। उसके

चलते ही थोडी दूर खडी हुई प्रतीहारी सम्भ्रमसे दौड़ी और उसने अपना हाथ आगे बढा दिया। राजाने उसके हाथका सहारा ले लिया। भीतर प्रवेश करने लायक परिजन राजाके पीछे पीछे चलने लगे। उनके हाथकी हथेली निरन्तर छडी पकडनेके कारण बहुत कठोर पत्तेके समान हो गई थी। मना- मडपके चारो ओर सफेद कपडोंके परदे लगे थे, जिनसे वह स्फटिकमणिकी दीवारोंका बना हुआ लगता था। चन्द्रकान्तमणिके फर्श पर अत्यन्त सुगन्धित- कस्तूरीयुक्त—चदन जल छिडका गया था। आसपास फूलों के ढेर फैले हुए थे। वे ऐसे लगते थे जैसे आकाश मे तारागण हो। सोनेके खभ सुगन्धित जलसे धोए गये थे। उनमे खुदी हुई पुतलियाँ गृहदेवियोके समान लग रही थी। अगरबत्तीकी धूपका धुआँ वहाँ चक्कर भर रहा था। चबूतरे पर [illegible] शिलातलके समान एक पलग बिछा था। वह ऐसा लगता था मानो [illegible] बरस जाने के कारण सफेद हुआ बादलका टुकडा हो। उस [illegible] सुगन्धिमे बसी एक चादर बिछी थी। महीन कपडेका एक तकिया [illegible] रक्खा था। पार्श्वकी तरफ मणिमय खडाऊँ रक्खी थी। दोनो ओर [illegible] चौकियाँ धरी थी।

जातिसे प्रीतिके कारण वहाँ आया हो। उसने फर्श पर अपना हाथ टेक राजासे निवेदन किया—महाराज, रानियाने कहलाया है कि वैशंपायनको आज्ञानुसार स्नान-भोजन करा दिया और प्रतीहारीके साथ आपके पास भेजा है। इतना कह कर कंचुकी चल दिया। फिर राजाने तोतेसे पूछा कि क्या अन्तःपुरमें अभीष्ट भोजन मिले? तोतेने उत्तर दिया कि महाराज, मने क्या नहीं खाया? मत्त कोकिलके नेत्रोंके समान नीली और गुलाबी जामनोंका खट मिट्ठा रस खूब पिया। सिंहके पंजेसे तोड़े गये मत्त हाथी के कुंभ-स्थलोंमेंसे निकले—रुधिरमें भीगे—मोतियोंके समान चमकते अनारके दाने कुतरे। कमलके पत्तेके समान हरे और दाखके समान मीठे पुरानी इमलीके फल इच्छानुसार खाये। अधिक कहनेसे क्या मतलब—रानियोंने जो जो चीज अपने हाथसे दी वह अमृतके समान लगी। तोतेके इस वचन पर कुछ ध्यान न देकर राजाने कहा कि यह तो सब हुआ। पर अब तुम हमारा कुतूहल दूर करनेके लिए पहले शुरूसे ही सविस्तर यह बताओ कि तुम्हारा जन्म किस देशमें और किस प्रकारसे हुआ? किसने तुम्हारा नाम रक्खा? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? तुमने वेदाभ्यास कैसे किया? तुम शास्त्रमें किस रीतिसे प्रवीण हुए? कहाँ तुमने सब कलायें सीखीं? क्या तुम्हें पूर्व-जन्मका स्मरण है या किसीका वर-दान है? क्या तुम पक्षीके गुप्त रहते हो? पहले तुम कहाँ रहते थे? तुम्हारी उम्र कितनी है? किस चाण्डालके हाथमें पड़ कर तुम पिंजरेमें बंद हुए? यहाँ किस मतलबसे आना हुआ? जब राजाने इस प्रकार स्वयं कुतूहलसे सम्मान-पूर्वक पूछा जरा सोच कर वैशंपायन ने सादर कहा—महाराज, यह कथा बहुत लम्बी है यापि जो आपको बड़ा कुतूहल है तो सुनिये—

२४—विंध्याचलकी वनभूमि पूर्वीय और पश्चिमीय समुद्रके किनारों तक चली गई है। वह मध्य देशका आभूषण है और पृथ्वीकी मानो मेखला है। उसमें जंगली हाथियोंके मद-जलके सिंचनसे वृक्षोंका संवर्धन हुआ है। वृक्षोंकी चोटियों पर अत्यन्त प्रफुल्लित सफेद फूलोंके गुच्छे लग रहे हैं जो ऊँचाई अधिक होनेके कारण तारागणके समान देख पड़ते हैं। वहाँ मदमत्त कुरर पक्षी मिर्चके पत्तोंको कुतरते हैं, हाथीके बच्चोंकी सूँडमें मसले गए तमालके पत्तोंकी सुगंध फैल रही है और मदिराके मदसे लाल हुए मनुष्योंकी स्त्रियोंके

गालके समान कोमल कान्तिवाले पत्तोंसे वहाँकी भूमि आच्छादित है। वे पत्ते भ्रमण करती हुई वन देवियोंके पैरोंकी महावरसे रँगे हुए से मालूम होते हैं। वह भूमि तोतासे काटे गये अनारोंके रससे गीली रहती है तथा कूदते फाँदते बन्दरोंसे हिलाए गए कोश फल वृक्षोंमेसे गिरे पत्तों और फलोंके कारण रंग बिरंगी दिखाई देती है। दिन रात उड़ती फूलोंकी रजसे वहाँके लता मण्डप मलिन हो गए हैं। वे वन लक्ष्मीके रहनेके महलोंके समान मालूम होते हैं। उनमें सुपारीके वृक्षों पर पानकी बेलें चढ रही हैं, यात्रियोंने लोगके पत्तोंके बिछौने बिछाए हैं और उनके सिरे पर बहुत पुराने नारियल, केतकी, करीर और बकुल लग रहे हैं।

२५—उस वनमे इलायचीकी लताओंसे अँधेरा हो रहा है और मदके समान सुगंध निकलनेके कारण ऐसा मालूम होता है मानो उन्मत्त हाथियोंके गंड स्थलमेंसे झरते हुए मद जलसे सिंचन हुआ हो। [illegible] हाथियोंके कुंभ-स्थलमेंसे निकले मोतियोंके दाने लगे रहते हैं। [illegible] भील सेनापति वहाँ सिंहों का शिकार करते हैं। सदा निकट रहने [illegible] और महिषयुक्त वह मानो प्रेतराजकी नगरी है। युद्धमें सजी हुई सेनाके [illegible] वहाँ बाणासना[2] पर शिलीमुख रहते हैं और सिंहनाद सुनाई दे[illegible] वह दुर्गाके समान चलते खड्गोंसे[3] भयानक और रक्त चन्दनसे [illegible] है। पर्णानुरक्की [illegible] के समान वह विपुलाचल[4] युक्त है और वहाँ [illegible] है।

१—नगरोंमे यम और यमका वाहन महिष रहता है, वनमें सर्प [illegible] आदि हिंस्र पशु और भैंसे रहते हैं।

२—युद्धमें धनुषों पर तीर चढ़े रहते हैं, वनमें बाण तथा आसन वृक्षों पर भ्रमर बैठे रहते हैं। वहाँ वीर योद्धाओंका नाद होता है, वहाँ सिंहोंकी गर्जना।

३—दुर्गा तलवारके कारण भयानक है और उसके [illegible] वनमें गेंडे फिरते हैं और [illegible] चन्दनके वृक्ष हैं।

४—विपुल और अचल [illegible] और [illegible] वनमें विशाल पर्वत हैं और [illegible] घूमते हैं।

महा प्रलय कालकी सन्ध्याके समान वहाँ नीलकण्ठ[1] नाचते हैं और वह पल्लव-रक्त है। अमृत मथन वेलाके समान वह श्री द्रुमोंसे[2] सुशोभित है और वारुणी युक्त है। वर्षाऋतुके समान वह घनश्याम[3] है और अनेक शतह्रदोंसे अलकृत है। चद्र मूर्तिकी भाँति वह ऋक्षगणानुगत[4] है और वहाँ हरिनका वास है। राजस्थितके समान वह चमर मृगके[5] बाल-व्यजनसे शोभित है और मद मत्त गजघटा उसकी रक्षा करती है। पार्वतीके समान वह स्थाणु[6]-सहित है और मृगपति सेवित है। सीताकी भाँति उसने कुश[7] लवको जन्म दिया है और वह निशाचर गृहीत है। कामिनीकी तरह वह चंदन और कस्तूरीकी सुगधसे युक्त है और सुदर अगरु[8]-तिलकसे अलकृत है। काम-वश स्त्रीकी भाँति वह विविध पल्लव-पवनसे शीतल और मदन[9] युक्त है। बालककी ग्रीवाके समान वह

१—सध्याको महादेव नाचते हैं और वह (सन्ध्या) पल्लवोंके समान लाल है, वनमें मोर नाचते हैं और वह पल्लवोंसे लाल है।

२ वेला लक्ष्मी, पारिजात और मदिरासे युक्त थी, वनमें नारियलके वृक्ष और वरुण वृक्षोंकी कतार है।

३—वर्षा मेघोंसे श्याम होती है और उसमें बिजलीकी चमक होती है, वन बहुत श्याम है और उसमें सैकड़ों तालाब हैं।

४—मूर्तिके साथ बहुतसे नक्षत्र हैं और उसमें लाछन है, वनमें बहुतसे ; और मृग हैं।

५—राज्यमें चमर-मृगोंके बालोंकी बनी चौरियाँ होती हैं, वनमें चमर-गोंके बालरूपी पत्ते हैं।

६—पार्वतीके साथ महादेव और उनका वाहन सिंह है, वनमें ठूँठ हैं और बहुतसे सिंह हैं।

७—सीताके दो पुत्र कुश-लव हुए थे और राक्षस उसे हर ले गया था, वनमें बहुतसे कुशके पौधे और उलूक हैं।

८—कामिनी मलयागरके तिलकसे युक्त है, वनमें अगर तथा तिलक वृक्ष हैं।

९— स्त्री काम-युक्त है, वनमें मदनके वृक्ष हैं।

व्याघनख[1]-पंक्तिसे शोभित और गंडकसे अलंकृत है। पान भूमिकी तरह वहाँ सैकड़ों मधु कोश[2] दिखाई पड़ते हैं और भाँति भाँतिके पुष्प बिछे हैं। कहीं कहीं महावराहकी[3] दंष्ट्राने समुत्खात भूमिके कारण वह प्रलयवेलाके समान दीखती है। कहीं कहीं रावणकी नगरीके समान वह कूदते फाँदते बंदरोंसे टूटे तोड़े गये शिखरोंसे युक्त शालसे[4] व्याप्त है। विवाहकार्य मानो थोड़ा ही समय पहले समाप्त हुआ हो इस भाँति वह कहीं कहीं हरे दर्भ, समिध, फल, शमी और पलाशसे सुशोभित है। उन्मत्त सिंहके नादसे मानो भीत हुई वह कहीं कहीं कंटकित[5] हुई है। मदमत्त स्त्रीकी तरह कहीं कहीं वह कोकिलारुत[6] प्रलाप करती है। उन्मत्त स्त्रीकी तरह कहीं कहीं वह वायुके[7] वेगसे ताल शब्द करती है। विधवा स्त्रीकी तरह कहीं कहीं वह ताल[8]-पत्र-विहीन है। रणभूमिके समान कहीं कहीं वह सैकड़ों शरोंसे[9] निरन्तर व्याप्त है। इन्द्रके शरीरके समान कहीं कहीं उसके हजार[10] नेत्र हैं। विष्णुकी मूर्तिके समान कहीं कहीं ...

१—बालकके गलेमें बाघके नख और गंडक नामक आभूषण पहनाया जाता है, वनमें बाघके नख पड़े हैं और गैंड़े घूमते हैं।

२—पान-भूमिमें शराब पीनेके गिलास होते हैं, वनमें मक्खियोंके छत्ते।

३—प्रलय-वेलामें वाराहावतारकी दंष्ट्रासे पृथ्वी उठाई गई थी वहाँ बड़े बड़े शूकरोंकी दंष्ट्रासे पृथ्वी खोदी गई है।

४—रावणकी नगरीमें शहरपनाह तोड़ी गई थी, वनमें शालवृक्ष।

५—उन्मत्त सिंहसे भीत होने पर मनुष्य रोमांचित हो जाता है, वन काँटोंसे युक्त है।

६—स्त्री कोकिलके समान शब्द करती है, वनमें कोकिल शब्द करती है

७—स्त्री वायुके जोरसे तालियाँ बजाती है, वनमें हवाके जोरसे ताड़ वृक्षोंका शब्द होता है।

तमाल[1] श्याम है। अर्जुनके रथकी ध्वजाके समान कहीं कहीं वह वानराक्रान्त[2] है। राजद्वारकी ड्योढीके समान कहीं कहीं सैकडों वेत्र लताओंके[3] कारण प्रवेश-दुर्लभ है। विराट् नगरीकी तरह कहीं कहीं सैकडा कीचक[4] देख पडते हैं। आकाश-लक्ष्मीकी तरह वहाँ कहीं कहीं तरल तारक[5] मृगके पीछे व्याध फिरता है। व्रत करनेवाली स्त्रीके समान कहीं कहीं वह दर्भ, चीर[6], जटा और वल्कल धारण करती है। असख्य काले पत्ते होने पर भी वह सप्त पत्रोंसे[7] शोभित है। क्रूर सत्व[8] होने पर भी मुनिजन सेवित है और पुष्पवती[9] होने पर भी पवित्र मानी जाती है।

२६—उसमे दण्डकारण्यके भीतर अगस्त्यका एक आश्रम था। वह सब पृथ्वी पर विख्यात था और भगवान् धर्मके उत्पत्ति-स्थानके समान मालूम होता

रहा था कि इतनेमे गौतम आगये। उन्होंने इन्द्रको श्राप दिया कि तेरे सहस्र भग हो! फिर जब इन्द्रने खुशामद करी तब उन्होंने अपने श्रापको सहस्र नेत्रोंमें बदल दिया।

१—विष्णु तमालके समान श्याम हैं, वन तमालोंसे श्याम है।

२—ध्वजामें हनूमान बने हुए हैं, वनमें बदर हैं।

३—ड्योढी पर द्वारपाल हाथोंमे बेतकी छड़ी रखते हैं, वनमें बेत हुए हैं।

४—विराट् नगरीमे राजाका साला कीचक था, वहाँ पोले बास हैं।

५—आकाशमें तरल तारोंसे युक्त मृगशिर नक्षत्रके पीछे व्याधका रूप धारण करके महादेव गये थे, वनमें चचल आखो वाले मृगोंके पीछे बहेलिया फिरता है।

६—स्त्री दर्भ, चीर, जटे और वल्कल धारण करती है, वनमें दर्भ, घास, जड़े और वल्कल हैं।

७—सात पत्तोंसे, सप्तपत्र वृक्षोंसे।

८—क्रूर प्राणियोंसे युक्त, क्रूर स्वभाव।

९—रजस्वला, फूलोंसे युक्त।

था। विन्ध्याचलने मेरु[1] पर्वतकी ईर्षासे अपने हजारों विकट शिखर आकाश तक फैला दिये थे। वह सूर्यके रथका रास्ता रोकनेको तैयार हो गया था, और उसने सब देवताओंको भी कुछ नहीं गिना था। वह भी अगस्त्यकी आज्ञा नहीं टाल सका था। अगस्त्यने ही इन्द्रकी प्रार्थनासे समुद्रका[2] पानी पी लिया था। उन्हींकी जठराग्निने वातापि[3] नामक असुर भस्म कर डाला था। देवदानवोंके मुकुटोंके मरकतमणि मय पत्र उनके चरणोंकी रजका चुंबन करते थे। वह दक्षिण दिशाके मुखका तिलक थे और उन्होंने एक ही हुंकारसे नहुषको स्वर्गसे पृथ्वी पर गिरा कर अपना प्रभाव प्रकट किया था। ऐसे महामुनिकी ... लोपामुद्राने अपने मनसे ही क्यारियाँ बनाई थीं, अपने ही हाथसे पानी दे ... वृक्षोंका संवर्धन किया था और उनको वह पुत्रके समान मानती थी। ...

१—एक बार विन्ध्यपर्वत मेरुपर्वतसे ईर्ष्या करने लगा और उसने सूर्यसे कहा कि जिस तरह वह मेरुके चारों ओर चक्कर लगाता है उसी तरह मेरे ओर लगावे। सूर्यने मना कर दिया तब विन्ध्यने अपनेको इतना ऊँचा कर लिया कि जिससे सूर्यका रास्ता रुक गया। तब तो सब संसारमें हाहाकार होगया। देवताओंने विन्ध्यसे बहुत कहा पर उसने नहीं माना। तब उसका गुरु ... ने अगस्त्यसे कहा कि विन्ध्यका ऊँचा चढ़ना रोक लो। अगस्त्यने ... कहा कि जबतक उनका दक्षिणसे लौटना न हो तबतक वह नीचा रहे। विन्ध्य उनका कहना मान लिया पर अगस्त्य फिर वापिस नहीं आये।

२—एक बार जब इन्द्रने वृत्रको मार दिया तब उसके अनुजीवी-दानव देवताओंकी पकड़से बचनेके लिए समुद्रमें जा छुपे। वहाँसे रातको निकलकर वे ऋषि-मुनियोंको मारने लगे। तब देवताओंकी प्रार्थनासे अगस्त्यने समुद्रका जल पी लिया और देवताओंने दैत्योंको मार दिया।

३—वातापि और इल्वल दो राक्षस थे। इल्वल ब्राह्मणका रूप रख लेता था और वातापि मेंढा बन जाता था। इल्वल मेंढेको मारकर उसका मांस पकाता था और उससे ब्राह्मणोंको भोजन कराता था। इसके बाद वातापिको बुलाता था और वातापि ... पेट फाड़कर निकल ... था। इस तरह इन दोनोंने हजारों ब्राह्मण मार डाले। एक बार अगस्त्यने ... भोजन की इच्छासे वातापिका भोजन किया और उसे पेटमें पचा लिया ...

दृढदस्यु नामक पुत्रने वह स्थान पवित्र हुआ था। उसने व्रत ग्रहण किया था, पलाशका दंड धारण किया था, पवित्र भस्मसे त्रिपुंडका आभूषण बनाया था, दर्भका वस्त्र पहना था, मूंजकी मेखला कमरमें बाँधी थी और वह हरे पत्तोंका दोना लेकर भीख माँगनेके लिये झोपडी झोपडी फिरता था तथा अग्निके ईंधन लानेके कारण पिताने उसका दूसरा नाम इध्मवाह रख दिया था। उस आश्रमके चारो ओरकी भूमि सब दिशाओंमें फैले हुए-तोते के समान हरे रंगके-केलोंके वनसे जरा काली पड गई थी। गोदावरी नदी उस आश्रमके आस-पास बह रही थी। वह ऐसी मालूम होती थी मानो अगस्त्यसे आचमन किये गये समुद्रके पीछे पीछे वेणी[१] बाँध कर जाती हो।

२७—यहाँ राजा दशरथके वचनका पालन करते हुए, राज्यका त्याग कर, रावणकी लक्ष्मीके विलासका अंत करनेवाले रामचंद्र, महामुनि अगस्त्यकी सेवा करते, सीताके साथ, पंचवटीमें लक्ष्मणकी बनाई हुई कुटीमें कुछ समय तक आरामसे रहे थे। बहुत कालसे उजडे हुए उस प्रदेशमें आज भी शाखाओंमें चुपचाप बैठे हुए कबूतरोंकी पंक्तियोंसे युक्त ऐसे दीखते हैं मानो तपस्वियोंके अग्निहोत्रके धूमकी घटासे युक्त हो। वहाँ पूजाके लिये फूल तोडती हुई सीताके हाथोंमेंसे मानो लगा हुआ लाल रंग लता और पत्तोंमें चमकता है। पीकर फिर निकाला हुआ मानो समुद्रका ही जल अगस्त्यने अपने आश्रमके आसपासके [illegible] सरोंमें बाँट दिया है। वहाँका वन ऐसा दीखता है मानो रामचंद्रके बाणोंके प्रहारसे मरे हुए राक्षसोंके गाढे रुधिरसे जडकी सिंचाई होनेके [illegible] अब भी उसमें उसी रंगके पत्ते फूलते हों। सीताके पाले हुए पुराने [illegible]नोंके सींगोंकी नोक बुढापेके कारण जर्जरित हो गई है। वे जब वर्षाऋतुमें [illegible] मेघकी गम्भीर गर्जना सुनते हैं तब भगवान रामचंद्रके त्रिभुवनव्यापी धनुष-टंकारका आज भी स्मरण करते हैं, पर दिन रात बहती अश्रुधारासे व्याप्त [illegible] नेत्रोंसे दशो दिशाएँ शून्य देख कर घासकी एक मुट्ठी भी नहीं खाते हैं। वहाँ रामचंद्रने बार बार आखेट खेल कर नगरके हरिणोंको बिलकुल निर्मूल कर

१—वेणी = पंक्ति, विधवा स्त्रियोंकी एक ही लटमें गूँथी हुई चोटी। समुद्ररूपी भर्ताके नष्ट हो जानेसे गोदावरी-रूप विधवाने मानो चोटी बाँधी थी अर्थात् वह बडे वेगसे एक धारामें बहती थी।

दिया था, इससे ही मानो उत्तेजित होकर सुवर्णके मृगने सीताको धोखा दिया और वह रामको बहुत दूर ले गया। वहाँ सीताके वियोगसे दुःखी, रावणके विनाशकी सूचना देते हुए तथा सूर्य चद्रकी[1] तरह कबन्धसे घिरे हुए राम लक्ष्मण ने तीनों भुवनोंको भयभीत कर दिया था। रामचद्रके बाणसे कट कर गिरे हुए योजन[2]-बाहुकी अत्यन्त लम्बी बाहुको देख कर ऋषियोंको ऐसी शका होती थी मानो अगस्त्यको प्रसन्न करनेके लिये अजगर शरीर धारी नहुष आया था। यहाँ रामचन्द्रने वियोग समयमें मनोरञ्जनके लिये पर्णकुटीके भीतर सीताका चित्र [illegible] लिया था। उसे वनचर लोग अब तक इस भाँति देखते हैं मानो रामके [illegible] को देखनेकी उत्कठासे सीता फिर पृथ्वीमेंसे निकल आई हो।

कमला के वनके बीचमें विचरते और समान रंगके कारण केवल स्वरसे ही पहचाने जाते कलहंसोंसे वह खूब व्याप्त है, नहानेके लिए उतरी हुई किरातराजकी सुन्दरियोंके स्तनोंके चंदनकी रजसे उसकी तरगें सफेद हो गई हैं, पासही उगे हुए केवड़ेके परागसे उसके तीर रेतीले हो रहे हैं, पासके आश्रमसे आए हुए तपस्वियोंके वल्कलोंके धुलनेसे उसके तीरका जल मैला और गुलाबी हो गया है, तटके पास उगे हुए वृक्षोंके पत्तोंमें होकर आती हुई हवाके कारण उसका जल स्थिर नहीं रहता है, उसके तीर पर वृक्षोंकी कुंजें लगातार बनी हुई हैं, उनमें तमाल-वृक्षोंकी कतारोंसे अंधेरा हो रहा है, बाली द्वारा निकाले जाकर फिरते हुए ऋष्यमूकवासी सुग्रीवके प्रति दिन फल तोडनेके कारण उनकी डालियाँ बहुत हलकी हो गई हैं, जलमें खड़े होकर तप करते हुए तपस्वी उनके फूलोंको देव पूजाके काममें लाते हैं, उड़ते हुए जलचर पक्षियोंके परोंमेंसे गिरती हुई पानीकी बूंदें पडनेसे उनकी छोटी छोटी टहनियाँ नरम हो गई हैं, लतामण्डपोंके नीचे मोरोंके झुण्ड नाच रहे हैं, और असंख्य फूलोंकी सुगन्ध निकलनेके कारण वे ऐसे मालूम होते हैं मानो वनदेवियोंके धाममें सुगन्धित हुए हों। उस सरोवरको दूसरा समुद्र जान कर पानी लेनेके लिए आए हुए मेघके समान, घनी कीचड़से मलिन हुए जंगली हाथी उसका पानी दिन रात पीते हैं। वहाँ बीच बीचमें चकवा चकवी घूमते हैं। खिले हुए काले कमलोंकी प्रभामें उनके पंख कालेसे हो जाते हैं। वे ऐसे मालूम होते हैं मानो अब भी साक्षात् रामके शापसे[1] ग्रस्त हों।

२९—उस पम्पा सरोवरके पश्चिम किनारे पर—रामके बाणोंसे जर्जरित हुए पुराने तालवृक्षोंकी कुंजके पास—एक बड़ा जीर्ण सेमरका वृक्ष है। उसकी जड़के आस-पास एक बूढ़ा—दिग्गजकी सूंडके समान—अजगर सदा लिपटा रहता है, जिससे ऐसा मालूम होता है मानो एक बड़ा थाँवला बनाया गया हो। ऊँचे वृक्ष पर लटकती और पवनसे हिलती साँपकी काँचुलियोंसे मानो उसने दुपट्टा धारण किया है। उसकी डालियाँ अन्तरिक्षमें फैल रही हैं। वे मानो

[1]—एक बार रामचन्द्र सीताके वियोग में विलाप कर रहे थे तब चकवाक उन पर हँसे। रामचन्द्रने क्रुद्ध होकर उनको शाप दिया कि मेरे समान तुमको भी प्रियाके वियोगका दुःख होगा।

दिशाओंका मण्डल नाप रही हैं। प्रलयकालके ताण्डवनृत्यमें फैलाए गए सहस्र भुजावाले महादेवका मानो वह ऐसी डालियोंसे तिरस्कार करता है। प्राचीन होनेके कारण मानो गिर पड़नेके डरसे उसने आकाशका सहारा लिया है। दूर-दूर तक फैली हुई लम्बी लम्बी लताएँ उसके सब शरीर पर व्याप्त हैं। वे ऐसी मालूम होती हैं मानो जीर्णताके कारण नसें दीखती हों। उसका शरीर कण्टकोंसे व्याप्त है। वे कण्टक बुढ़ापेके सफेद-काले दागोंके समान लगते हैं। पानीके बोझसे मन्द मन्द चलते बादल उसकी डालियोंमें जलपानके लिए ठहर जाते हैं और पत्तोंको भिगो देते हैं, पर उसकी चोटी तक नहीं पहुँच सकते। वे ऐसे मालूम होते हैं मानो समुद्रका पानी पीकर आकाशमें उतरे पक्षी हों। वह अत्यन्त ऊँचा है। उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो वह नन्दन वनकी शोभा देखनेकी कोशिश करता हो। उसकी चोटीकी डालियाँ [illegible] गालोंसे सफेद हो गई हैं। उनसे ऐसी शंका होती है मानो आकाशमें [illegible] हुए—उसके पास ही पास ऊपर चलनेवाले—सूर्यके रथके घोड़ोंके [illegible] प्रान्त भागमेंसे निकले झाग हों। जंगली हाथियोंके गण्डस्थल घिसनेसे उसकी जड़ पर मद चिपक जाता है। उस पर मस्त भौंरे बैठे रहते हैं। उनसे ऐसा मालूम होता है मानो उसकी जड़ लोहेकी जंजीर बाँधनेसे निश्चल होकर [illegible] हो गई हो। खोखलोंके भीतर घुसे हुए चंचल नागोंसे वह [illegible] सजीव सा मालूम होता है। दुर्योधनकी तरह उसमें शकुनिका [illegible] पड़ता है। विष्णुकी तरह वह वनमालासे युक्त है। नये मेघकी तरह [illegible] होता है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] आनेसे [illegible] रखता है।

बीचमे, गुद्दोकी सवियोमे और पुरानी छालके छेदोमे, स्थान अधिक होनेके कारण, वेलटके हजारो घोसले बना कर देश-देशसे आए हुए तोते आदि पक्षियोंके झुड रहते थे। उस पर किसीका चढना अत्यत कठिन था, इस कारण उनको अपने विनाशका डर नहीं था। उनके दिन-रात वहाँ रहनेसे वह वनस्पति, जीर्णावस्थाके कारण थोड़े पत्ते रह जाने पर भी, बहुतसे पत्तोसे श्याम सा देख पड़ता था। वे उसमे बनाए हुए अपने अपने घोसलोंमे रात काट कर, प्रति दिन उठ कर, आहारकी तलाशमे, आकाशमे गोल बाँध कर उड़ा करते थे और ऐसे मालूम होते थे जैसे उन्मत्त बलरामके हलके अग्रभागसे ऊपर फेंकी गई यमुना आकाशमे बहुतसे प्रवाहोमे बहती हो, ऐरावतके उखाड़ डालनेसे गिरी हुई मदाकिनीकी कमलिनियाँ हों, और गगनतलको सूर्य-रथके घोडोकी प्रभासे लीप दिया हो, वे चलती हुई मरकतमणिकी भूमिका मानो तिरस्कार करते थे, शैवलके पत्तोकी पक्ति मानो आकाशरूपी सरोवरमे फैलाते थे, केलेके पत्तोके समान अपने परोको आकाशमे फैलानेसे वे ऐसे लगते थे मानो सूर्यकी गरम किरणोंसे खिन्न हुए दिशाओंके मुखको पंखा कर रहे हो। वे उड़तेमे ऐसे दीखते थे मानो आकाशमे कोई दूबका खेत उड़ा चला जाता हो और अतरिक्षमे मानो इन्द्र-धनुष पड रहे हो। मारे हुए हिरनके रुधिरसे लाल हुए सिंहनखके अग्रभागके समान उनकी चोचें लाल थीं। सब पक्षी चुगनेके बाद लौट लौट कर अपने कोटरोमे बैठे हुए बच्चोको भाँति भाँतिके फलोके रस और धानको बहुत बार बार खिला कर, सब स्नेहोंमे श्रेष्ठ, असाधारण पुत्र-स्नेहसे उनको परोंके नीचे रख उसी वृक्ष मे रात काटते थे।

३१—मेरे बूढे पिता मेरी माताके साथ वहा एक जीर्ण कोटरमे रहते थे। दैवयोगसे मै ही अकेला उनका पुत्र था। मेरे जन्म-समय बहुत प्रसव वेदना होनेके कारण मेरी माताका देहान्त हो गया था। अपनी प्यारी स्त्रीके मरनेके शोकसे मेरे पिता बहुत दुखी हुए तो भी पुत्र-स्नेहके सामने शोकके उमड़ते हुए तीव्र वेगको भीतर दाब रक्खा और वे केवल मेरे पालनेका ही यत्न करने लगे। उनके दर्भ-चीरके समान पंख, बहुत थोड़े बच रहनेके कारण ...... और कंधेके नीचे झुक जानेके कारण शिथिल हो गये थे तथा उनमे जरा भी उड़नेकी शक्ति नहीं रही थी। बहुत वृद्ध हो जानेके कारण उड़नेमे उनका शरीर काँपने

लगता था, जिससे मालूम होता था मानो वे शरीरमें व्याप्त होकर संताप देने वाली वृद्धावस्थाको ही कँपाते हों। उनकी चोंच कोमल निर्गुण्डीके फूलके डंठलके समान पीली थी और उसका बीचमेंसे चिरा हुआ अग्रभाग धानकी मंजरी काटनेके कारण चिकना और घिसा हुआ था। वे अपनी चोंचसे दूसरोंके घोंसलोंमेंसे नीचे गिरी हुई धानकी लताओंमेंसे चावलोंकी किनकी बीन कर और घासकी जड़के आगे पड़े, तोतोंके कुतरे, फलोंके टुकड़े इकट्ठे कर मुझे खिलाते थे, क्योंकि उनमें आकाशमें उड़नेकी शक्ति नहीं रही थी। इस रीतिसे प्रति दिन मुझे खिला कर बचा-खुचा वे आप खाते थे।

३२—एक दिन मैंने उस महा वनमें सहसा शिकारियोंका कोलाहल सुना। उस समय प्रभात-सन्ध्याके रंगसे लाल हुआ चन्द्रमा मन्दाकिनीके किनारेसे पश्चिमीय समुद्रके तट पर उतर रहा था। वह आकाशरूपी पद्मिनीके रंगसे लाल पङ्खोंवाले वृद्ध हंसके समान मालूम होता था। वृद्ध रंकु मृगके बालोंके समान श्वेत दिशाओंका मण्डल विशाल होता जाता था, सूर्यकी लम्बी लम्बी किरणें हाथियोंके रुधिरसे लाल हुए सिंहकी गर्दनके बालोंके समान लाल और तपाई हुई लाखके तारके समान गुलाबी मालूम होती थीं—वे आकाशमेंसे ताराओंको दूर कर रही थीं, जिससे ऐसा मालूम होता था मानो पद्मराग मणिकी सींकोंवाली बुहारियाँ फर्श पर बिखरे हुए फूल बुहार कर फेंक रही हैं, सात ऋषियोंके सात तारे उत्तर दिशाकी ओर जाते हुए ऐसे मालूम होते थे मानो सन्ध्या करनेके लिए मानसरोवरके किनारे पर उतर रहे हों, किनारे पर आकर फटे हुए सीपोंके सम्पुटसे तड़क कर गिरे हुए मोतियोंसे पश्चिमीय समुद्रका किनारा सफेद हो गया था—वे मोती नक्षत्र-निकरकी ओर पाससे नीचे गिरे हुए तारोंके समान मालूम होते थे, पालेकी बूँदें टपक रही

हिरनोंकी जुगालीसे गिरे हुए झागोंका ढेर, यहाँ सुगंधित मदवाले उन्मत्त हाथियोंके गंडस्थल घिसनेसे निकली हुई गंध पर लट्टू हुए वाचाल भौंरोंका गुंजार सुनाई देता है, देखो, यह टपकी हुई रुधिरकी बूँदोंसे भीगे हुए पत्तोंसे लाल हुआ रुरुमृगका मार्ग है, यह रहा, हाथियोंके नीचे कुचले हुए वृक्षोंके पत्तोंका बड़ा ढेर, इस जगह गैंडों ने खेल किया है, यह रहा, सिंह का मार्ग—इसमें नखोंके अग्रभागसे विकट चिन्ह बन गए हैं, यह गजमुक्ताओंके टुकड़ों-से ऊँचा नीचा और रुधिरसे लाल है। देखो, यह अभी ब्याई हुई हिर-नीके गर्भमेंसे बहते रुधिरसे लाल हुई भूमि, यह रही—वनभूमिकी चोटीके समान लगती—यूथसे बिछड़े गजपतिकी मदसे मलीन हुई पद-पंक्ति, हिरनियोंके पैरोंकी इस पंक्ति पर चलो, हिरनोंकी सूखी हुई मेंगनीकी धूलवाली इस वनस्थली पर जलदी बैठ जाओ, वृक्षकी चोटी पर चढ़ जाओ, दृष्टिको इस दिशामें फेंको, इस शब्द को सुनो, धनुष लो, सावधान होकर खड़े रहो, कुत्तोंको छोड़ दो। इस कोलाहलसे सब वन क्षुभित हो गया।

३५—इतनेहीमें वनमें अनेक प्रकारके शब्द होने लगे। भीलोंके बाणोंसे घायल हुए सिंहोंका नाद होने लगा। वह लेप करनेसे आर्द्र हुए मृदंग-की ध्वनिके समान धीर था और पर्वतोंकी गुफामेंसे उठते हुए प्रतिशब्दसे [illegible]मीर हो गया था। त्रास पाये हुए झुंडोंसे बिछड़े हुए अकेले भटकते गज-[illegible]ोंकी कंठगर्जना हो रही थी। वह मेघनिर्घोषके समान थी। उसीके [illegible] बार-बार ताड़ना की गई सूँड़ों का शब्द सुनाई दे रहा था। हिरनोंके [illegible] चीत्कार हो रहे थे। इन हिरनोंके अवयव लहकाए गए कुत्तोंने काट डाले थे और इनकी आँखोंकी पुतलियाँ चंचल, कातर और तुरत थीं। मारे गए हाथियोंकी वियोगिनी हथिनियोंका चिंघाड़ हो रहा था। वह पति-विनाशके ताजे शोकसे बढ़ गया था। ये हथिनियाँ इधर उधर घूमती थीं, इनके कान खड़े हो गये थे और कोलाहल करते हुए बच्चे इनके पीछे पीछे चले आते थे। गद्गद् कंठसे करुणापूर्वक चीखें मारती हुई [illegible] [illegible] विलाप हो रहा था। ये डरसे घबराए हुए और [illegible] [illegible] पहले [illegible] हुए अपने बच्चोंको ढूँढ रही थी। [illegible] चोटोंसे [illegible] [illegible] कुछ छिपे पक्षियोंका कोलाहल हो रहा था। [illegible] [illegible] [illegible]

चरणोंका शब्द हो रहा था। वह बड़े वेगसे ताड़ना की गई भूमिको मानो कँपा देता था। कानों तक खेंची हुई प्रत्यञ्चावाले धनुषोंका शब्द हो रहा था। धनुष बाणोंकी वर्षा कर रहे थे और इनका शब्द मदमत्त कुररोंके कंठ-स्वरसे मिलता था। पवनकी ताड़नासे खड़खड़ाती बारमानों और भैंसोंके कठिन कधों पर गिरती हुई तलवारोंका खणत्कार हो रहा था। जोरसे भौंकते कुत्तोंका शब्द सब वनमें व्याप्त हो रहा था। ऐसे शब्दोंके कोलाहलसे वह वन मानो थरथरा गया।

३६—थोड़ी देर पीछे शिकारियोंका कोलाहल जाता रहा और वन [illegible] शान्त हो गया। वह वर्षाके बाद शांत हुए मेघ के समान, तथा [illegible] स्ततमें स्थिर जलवाले समुद्रके समान मालूम होने लगा। तब [illegible] कम हुआ और बालकपन के कारण कुतूहल पैदा होनेसे मुझे [illegible] कि यह क्या है? उसे देखनेके लिये आतुर होकर [illegible] बाहर निकला और घोसलोंमेंसे ही अपनी गर्दन आगे बढ़ा कर [illegible] ओर देखने लगा।

हिरनोंकी जुगालीसे गिरे हुए झागोंका ढेर, यहाँ सुगंधित मदवाले उन्मत्त हाथियोंके गंडस्थल घिसनेसे निकली हुई गंध पर लट्टू हुए वाचाल भौंरोंका गुंजार सुनाई देता है, देखो, यह टपकी हुई रुधिरकी बूँदोंसे भीगे हुए पत्तोंसे लाल हुआ रुरुमृगका मार्ग है, यह रहा, हाथियोंके नीचे कुचले हुए वृक्षोंके पत्तोंका बड़ा ढेर, इस जगह गेंडों ने खेल किया है, यह रहा, सिंह का मार्ग—इसमें नखोंके अग्रभागसे विकट चिन्ह बन गए हैं, यह गजमुक्ताओंके टुकड़ोंसे ऊँचा नीचा और रुधिरसे लाल है। देखो, यह अभी व्याई हुई हिरनीके गर्भमेंसे बहते रुधिरसे लाल हुई भूमि, यह रही—वनभूमिकी चोटीके समान लगती—यूथसे बिछुड़े गजपतिकी मदसे मलीन हुई पद-पंक्ति, हिरनियोंके पैरोंकी इस पंक्ति पर चलो, हिरनोंकी सूखी हुई मेंगनीकी धूलवाली इस वनस्थली पर जलदी बैठ जाओ, वृक्षकी चोटी पर चढ जाओ, दृष्टिको इस दिशामें फेंको, इस शब्द को सुनो, धनुष लो; सावधान होकर खड़े रहो, कुत्तोंको छोड़ दो। इस कोलाहलसे सब वन क्षुभित हो गया।

३५—इतनेहीमें वनमें अनेक प्रकारके शब्द होने लगे। भीलोंके बाणोंसे घायल हुए सिंहोंका नाद होने लगा। वह लेप करनेसे आर्द्र हुए मृदंगकी ध्वनिके समान धीर था और पर्वतोंकी गुफामेंसे उठते हुए प्रतिशब्दसे गंभीर हो गया था। त्रास पाये हुए झुंडोंसे बिछुड़े हुए अकेले भटकते गजपतियोंकी कंठगर्जना हो रही थी। वह मेघ-निर्घोषके समान थी। उसीके साथ बार-बार ताड़ना की गई सूँड़ों का शब्द सुनाई दे रहा था। हिरनोंके करुणामय चीत्कार हो रहे थे। इन हिरनोंके अवयव लहकाए गए कुत्तोंने .. डाले थे और इनकी आँखोंकी पुतलियाँ चंचल, कातर और क्षुब्ध थीं। . गए हाथियोंकी वियोगिनी हथिनियोंका चिंघाड़ हो रहा था। यह पतिविनाशके ताजे शोकसे बढ गया था। ये हथिनियाँ इधर उधर घूमती थीं, इनके कान खड़े हो गये थे और कोलाहल करते हुए बच्चे इनके पीछे पीछे चले आते थे। गद्गद् कंठसे करुणापूर्वक चीखें मारती हुई गेंडोंकी स्त्रियोंका विलाप हो रहा था। ये डरसे घबराए हुए और थोड़े ही दिनों पहले पैदा हुए अपने बच्चोंको ढूँढ रही थीं। वृक्षोंकी चोटियोंसे उड़ कर व्या कुल फिरते पक्षियोंका कोलाहल हो रहा था। पशुओंके पीछे दौड़ते व्याधोंके

चरणोंका शब्द हो रहा था। वह बड़े वेगसे ताड़ना की गई भूमिको मानो कँपा देता था। कानों तक खेंची हुई प्रत्यचावाले धनुषोंका शब्द हो रहा था। धनुष बाणोंकी वर्षा कर रहे थे और इनका शब्द मदमत्त कुररीके कंठ-स्वरसे मिलता था। पवनकी ताड़नासे खड़खड़ाती धारवाली और भैंसोंके कठिन कंधों पर गिरती हुई तलवारोंका रणत्कार हो रहा था। जोरसे भोंकते कुत्तोंका शब्द सब वनमें व्याप्त हो रहा था। ऐसे शब्दोंके कोलाहलसे वह वन मानो थरथरा गया।

३६—थोड़ी देर पीछे शिकारियोंका कोलाहल जाता रहा और वन भी शान्त हो गया। वह वर्षाके बाद शांत हुए मेघ के समान, तथा मथनके बाद स्थिर जलवाले समुद्रके समान मालूम होने लगा। तब मेरा भय कुछ कम हुआ और बालकपन के कारण कुतूहल पैदा होनेसे मुझे आश्चर्य हुआ कि यह क्या है? उसे देखनेके लिये आतुर होकर मैं पिताकी गोदमेंसे जरा बाहर निकला और घोंसलोंमेंसे ही अपनी गर्दन आगे बढा कर उसी दिशाकी ओर देखने लगा। उस समय मेरी आँखोंकी पुतलियाँ डरसे चकित हो गई थीं। मैंने दूसरे वनमेंसे सामने आती हुई हजारों भीलोंकी एक सेना देखी। वह कार्तवीर्यके सहस्र हाथोंसे छिन्न भिन्न हुए नर्मदा-प्रवाहके समान, पवनसे इधर उधर उड़ाए गए तमाल वनके समान, काल रात्रियोंके प्रहरोंके एकत्र हुए समूहके समान, भूकंपसे हिले हुए कज्जल शिलाके स्तभोंके संचयके समान, सूर्यकी किरणोंसे व्याकुल हुए अंधेरेके पुंजके समान, यमके भटकते हुए परिवारके समान, पाताल फोड़ कर बाहर निकले हुए दानवोंके समान, एक जगह इकट्ठे हुए अशुभ कर्मोंके समूहके समान, दंडकारण्यमें बसते हुए सब ऋषियोंके शापोंके विचरते हुए संघके समान, बार बार बाणोंकी वर्षासे रामके द्वारा मारे गए खर दूषणकी—रामकी अनिष्ट चिन्ताके कारण पिशाचताको प्राप्त हुई—सेनाके समान, कलियुगके इकट्ठे हुए बंधुवर्गके समान, स्नान करनेके लिए निकले हुए काली भैंसोंके झुंडके समान, पर्वतके शिखर पर खड़े हुए सिंहके पंजों द्वारा खींचनेसे छिन्न भिन्न हुए काले मेघोंके पटलके समान, सब लूनका[1] विनाश

१—धूमकेतुओंसे सबका विनाश होता है, भीलोंके द्वारा पशुओंका नाश होता है।

करनेको आए हुए धूमकेतुओंके सबके समान और प्रलय-कालके वैताल वृन्दके समान सब वनमें अंधकार और अत्यंत भय उत्पन्न करती थी।

३७—उस बहुत बड़ी शबर-सेनाके बीचमें मैने तरुण भील सेनापतिको देखा। उसका नाम मातंग था और आकार भयंकर था। नाम तो उसका मैंने पीछे सुना था। वह अत्यंत कठोरताके कारण ऐसा मालूम होता था मानो लोहेका बना हो। वह दूसरा जन्म लेकर आए एकलव्यके[1] समान देख पड़ता था। उसके दाढी मूँछ निकलने लगी थीं, जिनके कारण वह, पहली मद रेखासे शोभित गंडस्थलवाले, गज-कुमारके समान लगता था, काले कमलके समान श्याम देह-प्रभाके प्रवाहसे वह मानो यमुनाका जल सब वनमें भरे देता था, सिर पर कुछ मुँड़े तथा कंधे पर पड़े घूँघरवाले बालोंसे वह ऐसा दीखता था मानो गज-मदसे मलीन केसरवाला सिंह हो, उसका ललाट चौड़ा था, नाक ऊँची और डरावनी थी, एक कानमें पहनी हुई नागमणिकी झलकती किरणोंसे उसका वाम भाग लाल हो गया था, जिसके कारण वह ऐसा मालूम होता था मानो पत्तों पर लेटनेसे उनका रंग लग गया हो, थोड़ी देर पहले मारे गये हाथीके गंडस्थलमेंसे निकले मदका उसने लेप किया था। इस मदमेंसे सप्त-पत्रकी परिमल निकलती थी और यह मद काले अगरके लेपके समान सुगंधित था, इसके परिमलसे अंधे होकर ऊपर घूमते भ्रमर मोरपंखके समान मालूम होते थे—उन्होंने सेनापति पर तमालके पत्तोंकी मानो छाया कर दी थी। उसके गंडस्थलकी पसीनेकी रेखा हिलते हुए कर्ण-पल्लवसे पुँछ जाती थी, जिससे ऐसा मालूम होता था मानो भुजबलसे जीती गई और भयसे सेवा करने आई [illegible] ।८वी अपने हाथसे उसका पसीना पोंछ रही हो, हिरनोंके बधकी सूचक और रुधिरसे ही मानो गीली दृष्टिसे वह दिशाओंके सब भागोंको रँग देता [illegible]टने तक पहुँचतीं और चंडिकाको रुधिरका बलि देनेके लिये बार बार [illegible] गए पैने शस्त्रोंके चिन्हसे विषम कंधेवाली उसकी दोनों भुजाएँ ऐसी [illegible]ायमान लगती थीं मानो हाथीकी सूँड़की नाप लेकर बनाई गई हों। उसकी छाती विंध्य-शिलातलके समान विशाल दीखती थी। वह पसीनेकी बूँदोंसे तर

१—एक निषाद जिसने द्रोणाचार्य की मूर्तिको गुरु मान उसके सामने शस्त्राभ्यास किया था।

हो रही थी और उसमें बीचबीचमें कुछ कुछ गाढे हरिण रुधिरकी बूँदें लग रही थीं, जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो उसने चिरमिटी-सहित गज-कुम्भस्थलके मोतियोंका आभूषण पहना हो, दिन रात कसरत करनेसे उसका उदर बहुत कृश हो गया था, अपनी आँखोंसे वह हाथियोंको बाँधनेके—गज मदसे मलिन हुए—खंभोंकी, मानो, हँसी करता था, उसने लाखके समान लाल रेशमी वस्त्र पहन रक्खा था, अकारण क्रूर होनेके कारण उसका माथा ऊँची भ्रकुटीसे विकराल था और उस पर तीन सिलवटें थीं, वह ऐसा मालूम होता था मानो दृढ भक्तिसे प्रसन्न हुई दुर्गाने उसे अपना भक्त जान त्रिशूलका चिन्ह बना दिया हो। उसके पीछे हिले हुए रंग बिरंगे कुत्ते चले आते थे, वे श्रमके कारण बाहर निकली जिव्हाओंसे अपना खेद प्रकट करते थे। यद्यपि उनकी जिव्हाएँ उस समय सूखी थीं तथापि जन्मसे ही लाल होनेके कारण ऐसी मालूम होती थीं मानो हिरनोंके रुधिरकी बूँदें टपकाती हों, मुँह खुले होनेसे दाँतोंकी किरणें साफ दिखाई देती थीं, ओठोंके दोनों हिस्सोंसे ऐसा मालूम होता था मानो उनकी दाढोंके बीच बीचमें सिंहकी सटा भर गई हो। उनके गलेमें बड़ी बड़ी कौड़ियोंके कंठे पड़े थे वे कुत्ते बड़े बड़े शूकरोंकी दाढोंकी चोटोंसे जर्जरित हो गए थे, शरीर तो उनका छोटा था परन्तु सामर्थ्य अधिक होनेसे वे केसर-विहीन सिंहके बच्चोंके समान दिखलाई देते थे, वे हिरनोंका मारकर हिरनियोंको विधवा बनानेमें कुशल थे, उनके पीछे पीछे बडे शरीरवाली कितनी ही कुतियाँ भी आ रही थीं। वे सिंहोंके लिए अभयकी प्रार्थना करने आई हुई सिंहनियोंके समान मालूम होती थीं

३८—सेनापतिके आसपास बहुतसे भीलोंके झुंड चल रहे थे, उनमेंसे कितनों हीके पास चमर मृगके बाल और हाथीदाँतकी गठरियाँ थीं, किसीने छिद्र-रहित पत्तोंमें मधु भर लिया था, कितनोंहीने हाथीके कुम्भस्थलमेंसे निकले मोती अपने हाथमें ले रक्खे थे, कितनोंहीने राक्षसोंकी तरह मांस ले रक्खा था, कितनोंहीने महादेवके गणोंकी तरह सिंह चर्म ले रक्खे थे, किसीने बौद्ध-भिक्षुओंकी भाँति गोरचना ले रक्खे थे, कोई कोई बालकोंकी तरह काक-पक्षधारी[1] थे, कोई कोई गजको मारकर और उनके दाँत लेकर मानो कृष्ण[2]-चरित दिखाते थे, कोई कोई वर्षा

१—बालकोंके पूँछवाले बाल होते हैं, भीलोंके पास कौओंके पर थे।

२—कंस-वधके समय कृष्णने भी हाथीका दाँत उखाड़ लिया था।

ऋतुके दिनोंकी तरह मेघ मलिन[1] अम्बर थे, अरण्यके समान, सेनापति खड्ग-धेनुका[2] सहित था, नये बादलके समान वह मयूर[3]-पिच्छ चित्र धनुष धारी था, बक राक्षसकी तरह उसने एक चक्र[4] लिया था, गरुड़की तरह उसने अनेक बड़े बड़े नागोंके[5] दाँत तोड़ दिये थे, भीष्मके समान वह शिखण्डि-शत्रु[6] था, गरमीके दिनकी तरह वह हमेशा मृगतृष्णा[7] प्रकट करता था, विद्याधरोंके समान उसे मानसवेग[8] था, पराशरकी तरह वह योजनगंधाका[9] अनुसरण करता था, घटोत्कचके समान उसने भीमरूप[10] धारण किया था, पार्वतीके केशपाशके समान वह नीलकंठ[11] चंद्रकाभरण था, हिरण्याक्षके समान महावाराह[12]-दंष्ट्रासे उसकी छाती भिन्न हुई थी, विषयासक्त पुरुषके समान उसने बहुतसी बंदियोंका[13]

१—वर्षा ऋतुमें आकाश मेघोंसे मलिन हो जाता है, भीलोंके वस्त्र मेघोंके समान मलिन थे।

२—वनमें गेंडे और हथनियाँ होती हैं, सेनापतिके पास खञ्जर था।

३—मेघ मोरपखके समान विचित्र धनुष धारण करते हैं, भीलके पास मोरपंखसे अलंकृत धनुष था।

४—बक राक्षसने एकचक्रा नगरी जीत ली थी, भीलके पास एक चक्र था।

५—गरुड़ने साँपोंके दाँत तोड़े थे, भीलने हाथियोंके।

६—भीष्म द्रुपदके पुत्र शिखण्डीका शत्रु था, भील मोरोंका शत्रु था।

७—गरमीमें मरीचिका दीखती है, भीलको मृगोंकी तृष्णा रहती थी।

८—विद्याधर मानसरोवरकी ओर शीघ्र जाते हैं, भीलको गर्व था।

९—पराशर योजनगंधाके पीछे प्रेमसे दौड़े थे, भील कस्तूरी मृगोंके पीछे था।

१०—घटोत्कचने अपने पिता भीमका रूप धारण किया था, क्योंकि पुत्र पिताका रूप होता है, भीलने भयकर रूप धारण किया था।

११—पार्वतीके केशोंमें शिवका चंद्रमा गहनेका काम देता था, भील मोर पंखोंके चन्द्रकोंके अलकार धारण करता था।

१२—वाराहावतारकी दंष्ट्रासे हिरण्याक्षकी छाती विदीर्ण हुई थी, बड़े बड़े शूकरोंकी दंष्ट्रासे भीलकी छाती व्रणयुक्त हुई थी।

१३—पुरुषके पास बाँदियाँ होती हैं, भीलके पास जजीरें थीं।

ग्रहण किया था, राक्षसके समान वह रक्त-लुब्धक[1] था, संगीत-कलाके विलासकी तरह उसके साथ निषाद[2] थे, अम्बिकाके त्रिशूलके समान उसका शरीर महिष[3]-रुधिरसे भीगा हुआ था, नवयौवनमें होने पर भी उसने बहुत वयस्का[4] क्षय किया था, सारमेय[5] संग्रह करने पर भी वह स्वयं फल-मूलका ही भक्षण करता था, वह कृष्ण[6] था तथापि सुदर्शन-विहीन था, स्वच्छंदचारी होने पर भी वह दुर्गके[7] शरण था, क्षितिधरके[8] पादका अनुसरण करता था तथापि राजसेवासे अनभिज्ञ था, विन्ध्याचलका मानो वह पुत्र था, यमका अंश लेकर मानो उसने अवतार लिया था, पापका मानो वह सहोदर था, कलियुगका मानो सर्वस्व था और भयंकर होने पर भी अत्यन्त बलके कारण वह गंभीर सा दीखता था।

३६—मेरे मनमें विचार हुआ—अहो! इन लोगोंका जीवन अज्ञानसे पूर्ण है और इनके कर्म साधुजनोंसे निंदित हैं, क्योंकि ये मांसकी बलि देना धर्म समझते हैं, पण्डितोंसे निंदा किए गए मधु मांसादिका आहार करते हैं, मृगयाको व्यायाम समझते हैं, शृगालोंके रोदनसे प्रातःकाल जागते हैं, उल्लू इनके भले बुरेके उपदेशक हैं, क्योंकि उनसे ही ये शकुन विचारते हैं, पक्षियोंका ज्ञान ही इनकी बुद्धिमानी है, कुत्तोंके साथ मेल है, खाली वनोंमें इनका राज्य है, मद्यपानकी गोष्ठी इनका उत्सव है, क्रूर कर्म करनेवाले धनुष इनके मित्र हैं, विषैले सर्पोंके समान बाण इनके सहायक हैं, मुग्ध मृगोंका नाशक इनका गान है, हठसे पकड़ कर लाई गई पर-स्त्रियाँ कलत्र हैं, क्रूर

१—राक्षस रुधिरका लोभी होता है, भीलसे व्याघ्र अनुराग करते थे।

२—संगीतमें निषाद स्वर होते हैं, भीलके साथ निषाद (एक प्रकारके भील) थे।

३—त्रिशूल महिषासुरके रुधिरसे भीग गया था, भीलका शरीर भैंसोंके रुधिरसे भीला हो गया था।

४—अवस्था, पक्षी।

५—धन, धान्य, कुत्ते।

६—वासुदेव, कुरूप। सुदर्शन चक्र रहित देखनेमें सुन्दर नहीं।

७—किलेमें शरण लेनेवाला, केवल दुर्गाका भक्त।

८—राजा, पर्वत।

व्याघ्रोंके साथ इनकी रहन-सहन है, पशुओंके रुधिरसे ये देवताओंकी पूजा करते हैं, मासकी बलि देते हैं, चोरीसे गुजारा करते हैं, सर्प मणिके गहने पहनते हैं, वन गजके मदका शरीरमे लेप करते हैं और जिस वनमें रहते हैं उसे ही निर्मूल कर देते हैं। इस तरह मैं विचार कर ही रहा था कि इतनेमें वह सेनापति वनमे फिरनेकी थकावट दूर करनेकी इच्छासे उसी सेमरके वृक्षकी छाया में आया और अपना धनुष नीचे रख, परिजनोंसे शीघ्र लाई गई तत्तोंकी चटाई पर बैठ गया। एक तरुण भीलने उस तालाबमें झटपट उतर अपने दोनो हाथोंसे कमलकी कलियोंकी रजसे सुगन्धित हुए ठण्डे जलको खूब हिलोड़ा। वह जल वैडूर्यमणिके रसके समान, प्रलय—कालके सूर्यकी किरणोंके तापसे गल कर गिरे आकाशके टुकड़ेके समान, और चद्र मण्डलमेंसे टपके मौक्तिक रसके समान इतना निर्मल था कि छूनेसे ही पहचाना जाता था। उसे कमलके पत्तोंके दोनेमें भर कर और तुरन्त चूँटी हुई कमलकी नरम नरम जडोंको, कीचड़ धोकर, वह साथ ले आया। पानी पीनेके बाद सेनापतिने इस प्रकार उस मृणालिकाको धीरे धीरे खाया जैसे राहु चन्द्र-कलाका ग्रास करता हो। फिर जब वह सुस्ता चुका तब उठ कर चल दिया और सब सेना भी जल पीकर उसके पीछे धीरे-धीरे अभीष्ट दिशामें गई।

४०—परन्तु चाण्डालोंके उस झुण्डमें एक बूढा भील था। वह राक्षसके समान अत्यंत भयंकर देख पड़ता था। उसे हिरनोंका मास नहीं मिला था, इसलिए वह मास लेनेके इरादेसे उसी वृक्षके नीचे थोड़ी देर तक खड़ा रहा। जब सेनापति दृष्टिके बाहर हो गया तब—पक्षियोंका मास खानेके लालची ... समान—उस बूढे भीलने ऊपर चढनेके इरादेसे बहुत देर तक उस ... जड़से देखा। रुधिरकी बूँदके समान उसकी गुलाबी दृष्टि पिंगल ...के परिवेपसे भयकर लगती थी। जब वह वृक्षको देख रहा था तब ... मालूम होता था मानो वह हमारी आयु पी रहा हो और तोतोंके कोटर ...न रहा हो। उसकी दृष्टिसे भयभीत होकर तोतोंके प्राण तो मानो उसी दम निकल गये। निर्दय मनुष्यको कुछ असाध्य नहीं है! वह वृक्ष अनेक ताड़-वृक्षोंके समान ऊँचा था और उसकी चोटीकी डालियाँ आकाशसे टकराती थीं तो भी वह भील इस तरह आसानीसे उस पर चढ गया जैसे नसेनी पर चढता

हो। फिर वह तोतेके बच्चोंको, एक एक करके,—जैसे मानो उस वृक्षके फल तोड़ता हो इस भाँति—डालियोंकी सन्धिमेंसे और कोटरोंके भीतरसे निकाल-निकाल कर और प्राण ले लेकर भूमि पर पटकने लगा। उनमेंसे कितने ही बच्चोंको उड़नेकी ताकत नहीं थी, वे थोड़े ही दिन पहले जनमे थे, गर्भके समान लाल थे और सेमरके फूलोंके समान लगते थे, कितने ही पर निकल आनेके कारण कमलके नरम पत्तोंके समान दीखते थे, कितने ही आकके फलके समान थे, कितने ही चोंचकी नोक लाल होनेसे थोड़ी खिली हुई पखुड़ियोंमें लाल मुखवाली कमलकी कलियोंकी शोभा धारण करते थे, और कितने ही बार बार होते शिर कँपके बहाने मानो उपाय करनेमें असमर्थ होकर नहीं-नहीं कहते थे।

४१—ऐसा प्राणहारी और उपाय रहित महा उपद्रव अचानक आया देख कर मेरे पिताको दूना कंप हो आया। मरणके डरसे ऊँची और चंचल पुतलीवाले, शोकसे निस्तेज और आँसुओंसे भरे नेत्रोंको उन्होंने दिशाओंमें इधर उधर फेंका। उनका तालु सूख गया। भयके कारण सन्धियाँ ढीली हो जानेसे पंख शिथिल हो गए। उनमें अपनी रक्षा करनेकी शक्ति न रही और कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। तो भी स्नेहके कारण मेरी रक्षाके लिये व्याकुल होकर उन्होंने अपने पंखोंसे मुझे ढक लिया। केवल इस उपायको ही उचित जान कर वे मुझे अपनी गोदमें लपेट कर बैठे रहे। इतनेमें अत्यन्त पापी और क्रूर भीलने क्रमसे डालियोंके बीच-बीचमें चढ़ हमारे घोसलेके छेदके पास आकर यमदण्डके समान अपना बायाँ हाथ लंबा किया। उसका हाथ बूढ़े काले सर्पके शरीरके समान भयंकर था, हथेलीमें जंगली सूअरोंकी चर्बी और मांसकी बास आ रही थी और कोहनीमें धनुषकी डोरी रगड़नेके निशान हो रहे थे। फिर उसने बार-बार चोंचका प्रहार करते और चिल्लाते हुए भी मेरे पिताको बाहर खींच कर उनके प्राण ले लिये। पर मेरा अंग नहीं दीखा था। मेरे सब अंग भयसे सुकड़ गये थे और उम्र थोड़ी थी, इससे उसने पत्तोंके भीतर मुझे नहीं देखा।

ही नीचे गिर पड़ा। मेरे कुछ पुण्य बाकी थे, इससे मैं हवासे इकट्ठे हुए सूखे पत्तोंके ढेर पर जा पड़ा। मेरे शरीरमें चोट नहीं लगी। सूखे पत्तोंके समान ही रंग होनेसे मेरा शरीर साफ-साफ नहीं दीखता था। फिर वह भील वृक्षकी चोटी परसे जब तक नीचे नहीं आया तब तक ही मैंने, जैसे कोई क्रूर मनुष्य छोड़ता हो उसी तरह, अपने मरे हुए बापको मृत्युके समय भी छोड़ दिया, क्योंकि आगे होनेवाले स्नेहका मुझे ज्ञान नहीं था। सहज भयसे अत्यंत व्याकुल होनेके कारण जरा निकले परोंका कुछ कुछ सहारा लेता, और इधर उधर लोटता, अपनेको मृत्युके मुखमेंसे निकला समझ कर पासके एक बड़े तमाल वृक्षकी जड़में मैं इस भाँति घुस गया मानो दूसरे पिताका उत्संग हो। वह जड़ इतनी गहन थी कि उसमें सूर्यकी किरणें भी प्रवेश नहीं कर सकती थीं। उस वृक्षके पत्ते भीलनियोंके कर्णपूर बनाने के लायक थे, बलरामके वस्त्रके समान नीली छायासे वह श्रीकृष्णके शरीरकी कान्तिकी, मानो, हँसी करता था, निर्मल यमुना जलके टुकड़ेहीके, मानो, उसके पत्ते बनाए गए थे, उन पर जंगली हाथियोंका मद छिड़का हुआ था, उस वृक्षने विन्ध्याटवीके केश पाशकी शोभाको धारण किया था और दिनमें भी उसकी डालियोंके बीच-बीच में अँधेरा रहता था।

४२—फिर वह भील वृक्ष से उतर कर, भूमि पर अलग-अलग पड़े तोतेके बच्चोंको जलदी इकट्ठा करके, अनेक लता-रूपी पाशोंमें लपेट, पत्तोंमें बाँध, जिस रास्ते सेनापति गया था उसी रास्ते, उसी तरफ फौरन चला गया। मुझे अब जीनेकी आशा तो हुई, परन्तु पिताके उसी क्षण मरनेके ... मेरा हृदय सूख गया, बहुत ऊँचेसे गिरनेके कारण शरीरमें दर्द ...था, भयके कारण शरीर थर-थर काँपने लगा और सब अंगोंमें ताप करके प्यास मुझे सताने लगी। उस चाण्डालको बहुत दूर चला गया ... कर, गर्दन जरा ऊँची करके भय-चकित दृष्टिसे मैंने चारों तरफ देखा। ...की आहट होने पर भी फिर उसके आनेकी शंका करता और पद-पद ...र उसी कसाई को देखता, तमाल-वृक्षकी जड़मेंसे निकल कर मैं तालाबके पास जानेका यत्न करने लगा।

४३—पूरे पंख न निकलनेके कारण मेरे पैर डिगमिगाते थे। मैं क्षण क्षणमें